ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k ,o ihñ ihñ HkVV] U;k;efr

झारखंड राज्य एवं अन्य

cuke

शैलेन्द्र कुमार सिन्हा

L.P.A. No. 380 of 2011. Decided on 18th January, 2012.

रजिस्ट्रेशन अधिनियम, 1908—धारा 17—दस्तावेज का रजिस्ट्रेशन–दस्तावेज के रजिस्ट्रेशन के लिए सक्षम प्राधिकारी क्षेत्र का रजिस्ट्रार/सब-रजिस्ट्रार है जिससे दस्तावेज के रजिस्ट्रेशन के संबंध में निर्णय लेने की अपेक्षा की जाती है–उच्चतर प्राधिकारीगण के निर्देशों को अनदेखा किया जा सकता है और दस्तावेजों को रजिस्टर करने से इनकार का कारण जाने बिना चुनौती नहीं दी जा सकती है–दस्तावेज रजिस्टर करने के लिए रजिस्टर करने वाले प्राधिकारी को निर्देश देना उक्त प्राधिकारी की शक्ति को हथियाना होगा–किंतु रजिस्ट्री प्राधिकारी दस्तावेज रजिस्टर नहीं करके और साथ ही इनकार का आदेश पारित किए बिना दस्तावेज पर विचार नहीं कर सकता है। (पैराएँ 2 एवं 4)

अधिवक्तागण.–Mr. Shamim Akhtar, For the Appellants; M/s R.S. Mazumdar, Rohit Roay, For the Respondents.

आदेश

याची प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता अब सहमत हुए कि समुचित आदेश पारित करने के लिए रजिस्ट्री प्राधिकारी को निर्देश जारी किया जा सकता है; या तो दस्तावेज रजिस्टर करने के लिए अथवा दस्तावेज को रजिस्टर करने से इनकार करने वाला समुचित आदेश पारित करने के लिए जो विधि के अनुरुप होना चाहिए और अभिवचन, जो विधि में उपलब्ध नहीं है, को रजिस्ट्री प्राधिकारी द्वारा विचार में नहीं लिए जा सकते हैं और इसे राज्य द्वारा दाखिल उत्तर के प्रभाव के अधीन विनिश्चित नहीं किया जाना चाहिए।

2. चूँकि दस्तावेज के रजिस्ट्रेशन के लिए सक्षम प्राधिकारी क्षेत्र का रजिस्ट्रार/सब-रजिस्ट्रार है जिससे दस्तावेज के रजिस्ट्रेशन के संबंध में निर्णय लेने की अपेक्षा की जाती है और उच्चतर प्राधिकारीगण के निर्देशों को भी अनदेखा किया जा सकता है और दस्तावेज को रजिस्टर करने से इनकार का कारण जाने बिना चुनौती नहीं दी जा सकती है, और हमारे मत में, दस्तावेज रजिस्टर करने के लिए रजिस्ट्री प्राधिकारी को निर्देश देना उक्त प्राधिकारी की शक्ति को हथियाना होगा। अत:, याचीगण के कथन की दृष्टि में, आदेश दिया जाता है कि रजिस्ट्री प्राधिकारी दस्तावेज रजिस्टर करने का आदेश पारित करेगा अथवा दस्तावेज रजिस्टर करने से इनकार करते हुए समुचित आदेश पारित करेगा जो संक्षिप्त हो सकता है और रिट याचीगण को संसूचित किया जाए। यह निर्णय इस आदेश, जिसे याचीगण द्वारा प्रश्नगत दस्तावेज को रजिस्टर करने से इनकार किए जाने पर रजिस्ट्री प्राधिकारी को उपलब्ध कराया जा सकता है की प्रति की प्राप्ति की तिथि से पंद्रह दिनों के भीतर लिया जा सकता है तथा याची विधि में उपलब्ध उपचार का लाभ लेने के लिए स्वतंत्र होगा।

3. याचीगण-प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि दस्तावेज रजिस्टर नहीं करने की अनेक जिलों में प्रथा है और इस न्यायालय ने महाधिवक्ता द्वारा दिए गए आश्वासनों पर दिनांक 3.7.2007 के एल० पी० ए० सं० 8 वर्ष 2007 में निर्देश भी जारी किया है।

4. चाहे जो भी हो, रजिस्ट्री प्राधिकारी दस्तावेज रजिस्टर नहीं करके और साथ ही इनकार का आदेश पारित नहीं करके दस्तावेज पर विचार नहीं कर सकता है। राज्य को यह सुनिश्चित करने का निर्देश दिया

जाता है कि भविष्य में रजिस्ट्री प्राधिकारी या तो दस्तावेज रजिस्टर करे अथवा दस्तावेज रजिस्टर करने से इनकार करते हुए समुचित आदेश परित करे।

5. उक्त संप्रेक्षणों और निर्देशों के साथ, इस एल॰ पी॰ ए॰ को निपटाया जाता है।

6. इस आदेश की प्रति प्रत्यर्थी राज्य के विद्वान अधिवक्ता को दी जा सकती है।

---

ekuuh;k iue JhokLro] U;k;efr

फिलिप खरिया उर्फ फलिप्स खरिया एवं अन्य

cuke

कामिल खरिया

Civil Revision No. 6 of 2011. Decided on 23rd January, 2012.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश 9, नियम 13—एकपक्षीय डिक्री अपास्त किया जाना–आदेश 9, नियम 13 के अधीन आवेदन अवर न्यायालय द्वारा अनुज्ञात किया गया है–प्रत्यर्थी पर कोई समन तामील नहीं किया गया था–तामीला रिपोर्ट इंगित करता था कि किसी ने उसकी पैतृकता अथवा निवास का विवरण देते हुए उपनाम के अधीन उसका नाम दिया है–आदेश 9, नियम 13 के अधीन आवेदन अनुज्ञात करने के पहले संपूर्ण आदेश पत्रक का परीक्षण किया गया था और मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्य को विचार में लिया गया था–हस्तक्षेप के लिए कोई अच्छा आधार नहीं बनता है–याचिका खारिज। (पैराएँ 5 एवं 6)

अधिवक्तागण.–M/s Sunil Kumar, Sanjay Kumar Prasad, For the Petitioners; None, For the Opp. Party.

आदेश

पुनरीक्षकों की ओर से उपस्थित अधिवक्ता को सुना गया।

2. वर्तमान पुनरीक्षण अभिधान वाद सं॰ 50 वर्ष 2002 से उद्भूत होने वाले विविध केस सं॰ 15 वर्ष 2007 में सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश 9, नियम 13 के अधीन आवेदन अनुज्ञात करते हुए, क्रमशः दिनांक 10.9.2004 और दिनांक 20.9.2004 के एकपक्षीय निर्णय और डिक्री अपास्त करने वाले मुंसिफ, गुमला द्वारा पारित दिनांक 16.6.2010 के आदेश को चुनौती देते हुए दाखिल की गयी है।

3. कि गाँव कारीचुवा, पी॰ एस॰ कामदारा अवस्थित प्रश्नगत भूमि पर अधिकार, हक और हित की घोषणा के लिए और किसी कामिल खरिया, विपक्षी पक्षकर के पक्ष में जोहान नारो द्वारा दिनांक 18.6.1971 के विलेख के तहत निष्पादित अंगीकरण की घोषणा के लिए भी याची द्वारा अभिधान वाद सं॰ 50 वर्ष 2002 संस्थापित किया गया था। याचीगण के अनुसार, प्रत्यर्थी नोटिस के बावजूद उपस्थित होने में विफल रहा। नोटिस लेने से इनकार पर, मामला एकपक्षीय अग्रसर हुआ। केवल प्रोफार्मा प्रतिवादी सं॰ 3 उपस्थित हुआ और अपना लिखित कथन दाखिल किया और क्रमशः दिनांक 10.9.2004 और दिनांक 20.9.2004 के निर्णय और डिक्री के तहत मामला अंतिम रूप से विनिश्चित किया गया था। एकपक्षीय निर्णय और डिक्री को अपास्त करने की प्रार्थना के साथ दिनांक 13.8.2007 को विविध केस सं॰ 15 वर्ष 2007 संस्थापित किया गया था। (आवेदन की प्रति रिट याचिका के परिशिष्ट–1 के साथ संलग्न है) याचीगण ने सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश 9, नियम 13 के अधीन आवेदन का प्रतिवाद किया और रिट यचिका के परिशिष्ट–2 के तहत अपनी आपत्ति दाखिल किया। उपायुक्त और प्रोफॉर्मा विपक्षी पक्षकार को भी विविध केस में अभियोजित किया गया था और उपायुक्त की ओर से भी कारण बताओ दाखिल किया

गया था। उपायुक्त द्वारा याची के तर्क का समर्थन किया गया था और आपत्तिकर्ताओं की ओर से प्राख्यान यह था कि प्रत्यर्थी-प्रतिवादी जानबूझकर अपनी उपस्थिति दर्ज करने में विफल रहा और विविध केस तीन वर्षों के काफी बाद संस्थापित किया गया था और, इसलिए, इसे अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, निवेदन यह है कि प्रत्यर्थी ने स्वीकार किया है कि उसने नोटिस प्राप्त किया है और, इसलिए, उसे अपने आवेदन में किए गए प्राख्यान से न्यायालय के समक्ष अपने बयान से मुकरने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। समन सम्यक् रूप से तामील किए गए थे, किंतु प्रत्यर्थी-प्रतिवादी जानबूझकर उपस्थित नहीं हुआ। उपायुक्त ने भी अपनी आपत्ति दाखिल किया कि लंबा समय बीतने के बाद पुनर्स्थापन आवेदन पोषणीय नहीं है और इस प्रकार, सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश 9, नियम 13 के अधीन आवेदन का पूर्ण प्रतिवाद किया गया था। अवर न्यायालय ने विस्तारपूर्वक सुतार्किक आदेश द्वारा 2,500/- रुपये के व्यय पर आवेदन अनुज्ञात किया।

4. याचीगण की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने भी **महावीर सिंह बनाम सुभाष, सिविल अपील सं॰ 4881 वर्ष 2007,** मामले में दिनांक 12.10.2007 के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को उद्धृत किया। उक्त मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने निष्कर्षित किया कि आवेदक जो सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश 9 नियम 13 के अधीन न्यायालय के पास आया था, एकपक्षीय डिक्री पारित किए जाने के डेढ़ साल पहले इससे अवगत हो चुका था और प्रवर्तन डिक्री की जानकारी की तिथि से आरंभ होता है और, इसलिए, आवेदन को समय वर्जित माना।

5. मेरा मत है कि उक्त मामले के तथ्य वर्तमान मामले से भिन्न हैं जहाँ न्यायालय इस मत पर आया था कि अधीनस्थ न्यायाधीश, गुमला द्वारा पारित एकपक्षीय निर्णय और डिक्री के बारे में प्रत्यर्थी को हुई जानकारी की तिथि दिनांक 30.7.2007 थी। उस पर कोई समन तामील नहीं किया गया था यद्यपि बायें अंगूठे का निशान यह इंगित करने के लिए लगाया गया था कि समन तामील किए गए थे किंतु गवाह, जिसके बायें अंगूठे के निशान के समनों को पृष्ठांकित किया गया था के समन पर पृष्ठांकित एल॰ टी॰ आई॰ पैतृकता का उल्लेख नहीं करता था, भी वहाँ नहीं है। तामील रिपोर्ट यह भी इंगित करता था कि उसकी पैतृकता अथवा निवास का विवरण दिए बिना किसी ने उपनाम के अधीन उसका नाम दिया है। सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश 9 नियम 13 के अधीन आवेदन अनुज्ञात करने के पहले संपूर्ण ऑर्डरशीट का परीक्षण किया गया था और मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्य को विचार में लिया गया था। स्पष्टत:, व्यय भी अधिरोपित किया गया था।

6. याचीगण के अधिवक्ता को विस्तारपूर्वक सुनने और आक्षेपित आदेश का परिशीलन करने के बाद, मेरा सुविचारित मत है कि विद्वान अधीनस्थ-न्यायाधीश, गुमला ने प्रतिवाद कर रहे प्रत्यर्थी के परिवाद के समर्थन में अभिलेख पर लाए गए अनेक दस्तावेजों, मौखिक साक्ष्य और ऑर्डरशीट का संवीक्षण किया है। अधीनस्थ-न्यायाधीश गुमला द्वारा पारित एकपक्षीय निर्णय और डिक्री को अपास्त करने के स्वविवेक का प्रयोग न्यायोचित रूप से और निष्पक्षत: किया गया है। अधीनस्थ-न्यायाधीश, गुमला का दृष्टिकोण था कि निर्णय और डिक्री को वापस लेने के लिए आवेदन उस तिथि से समय के भीतर था जिस पर प्रत्यर्थी-प्रतिवादी ने जानकारी हासिल किया और, इसलिए, मैं नहीं समझती हूँ कि अभिलेख पर कोई प्रकट त्रुटि है अथवा यह स्पष्टत: गलत है जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन अधिकारिता के प्रयोग पर जोर डालता है। हस्तक्षेप के लिए कोई उपयुक्त आधार निर्मित नहीं हुआ है। रिट याचिका गुणागुण रहित है और तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है।

7. किंतु, यह समुचित मामला है जहाँ विचारण न्यायालय को अनुचित स्थगन प्रदान किए बिना शीघ्रातिशीघ्र वाद को विनिश्चित करने के लिए परिश्रम करना चाहिए क्योंकि पहले ही काफी समय बर्बाद किया गया है।

ekuuh; ,pñ lhñ feJk] U;k;efr

मेसर्स टाटा स्टील लिमिटेड (सीमेन्ट डिविजन), जमशेदपुर

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Acquittal Appeal No. 15 of 2009. Decided on 11th January, 2012.

सी॰/1 केस सं॰ 373 वर्ष 1999 में न्यायिक दंडाधिकारी प्रथम श्रेणी, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 3.6.2009 दोषमुक्ति के निर्णय के विरुद्ध।

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881—धारा 138—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—चेक का अनादर–दोषमुक्ति–स्वयं प्रतिफल का अस्तित्व संदेहास्पद है–अभियुक्त ने सिद्ध किया है कि प्रतिभूति के रूप में ब्लैंक चेकों को जारी किया गया था–उस पर परिवादी कंपनी का नाम और अभियुक्त का हस्ताक्षर एक ही कलम से लिखा गया है जबकि तिथि और राशि, आँकड़ों और शब्दों दोनों में, भिन्न कलम से लिखे गए हैं–अभियुक्त को सही प्रकार से संदेह का लाभ दिया गया और दोषमुक्त किया गया–अपील खारिज। (पैराएँ 13 से 16)

निर्णयज विधि.–(1993) 3 SCC 35; 2010(3) JCR 16 (SC)—Relied on; 2007 Cr.L.J 122; **2011 (4) JLJ (SC)83**—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. Shankar Lal Agrawal, For the Appellant; A.P.P., For the State; Mr. A.K. Das, For the Respondent no.2.

एच॰ सी॰ मिश्रा, न्यायमूर्ति.–दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया और अभिलेख का परिशीलन किया गया।

2. यह अपील सी॰/1 केस सं॰ 373 वर्ष 1999/विचारण सं॰ 493 वर्ष 2009 में श्री डी॰ सी॰ अवस्थी, विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 3 जून, 2009 के दोषमुक्ति के निर्णय के विरुद्ध निर्देशित है, जिसके द्वारा विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी ने अभियुक्त प्रत्यर्थी सं॰ 2 को परक्राम्य लिखत अधिनियम (इसके बाद 'एन॰ आई॰ एक्ट' के रूप में निर्दिष्ट) की धारा 138 के अधीन आरोप से यह अभिनिर्धारित करते हुए दोषमुक्त कर दिया है कि परिवादी अभियुक्त के विरुद्ध अपना मामला समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे सिद्ध करने में विफल रहा था।

3. परिवाद मामला मूलतः मेसर्स टाटा आयरन एण्ड स्टील कं॰ लि॰ (सीमेन्ट डिविजन), जमशेदपुर द्वारा अपने एटॉर्नी, श्री सर्वेश कुमार, क्षेत्रीय विक्रय प्रबंधक के माध्यम से दाखिल किया गया है। परिवाद मामले के अनुसार, अभियुक्त सत्यव्रत दास जो रैरंगपुर, मयूरभंज, उड़ीसा के मेसर्स बी॰ एन॰ इंटरप्राइजेज का स्वत्वधारी था, ने कपटपूर्वक और गैर–ईमानदार रूप से परिवादी की कंपनी को जोजेबेरा जमशेदपुर में 3,61,790/- रुपयों के मूल्य का सीमेन्ट की विपुल मात्रा देने के लिए उत्प्रेरित किया और सीमेन्ट की कीमत के मद में पूर्वोक्त राशि का स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, रैरंगपुर का दिनांक 27.3.1999 का चेक सौंपा। अभियुक्त को सीमेन्ट भेजा गया था। उक्त चेक को बैंक में प्रस्तुत किया गया था, किंतु यह बाउंस हो गया था और ''अपर्याप्त निधि'' के पृष्ठांकन के साथ दिनांक 28.4.1999 को परिवादी को वापस लौटा दिया गया था। बाद में, परिवादी ने नोटिस की प्राप्ति की तिथि से 15 दिनों के भीतर उक्त राशि की मांग करते हुए अभियुक्त पर दिनांक 29.4.1999 का मांग का कानूनी नोटिस तामील किया, किंतु दिनांक 6.5.1999 को मांग नोटिस प्राप्त करने के बावजूद, अभियुक्त ने राशि का भुगतान नहीं किया था और तद्नुसार, दिनांक 24.5.1999 को परिवादी द्वारा परिवाद याचिका दाखिल किया गया था।

4. यद्यपि अभिलेख से यह प्रतीत होता है कि परिवाद मामला कंपनी में सम्यक् रूप से नियुक्त एटॉर्नी अर्थात् सर्वेश कुमार के माध्यम से दाखिल किया गया था और उक्त सर्वेश कुमार का भी सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान पर परीक्षण किया गया था, किंतु जाँच के चरण के बाद उक्त सर्वेश कुमार मामले में उपस्थित नहीं हुआ था।

5. विचारण के क्रम में, किसी इ॰ ए॰ खान का परीक्षण सी॰ डब्ल्यू॰ 1 के रूप में परिवादी की ओर से किया गया था। इस गवाह ने अवर न्यायालय में चेक प्रस्तुत नहीं किया था; बल्कि उसने केवल प्रदर्श 1 के रूप में प्रस्तुत पर्ची को सिद्ध किया है जिसके द्वारा उसे कंपनी का प्रतिनिधित्व करने के लिए प्राधिकृत किया गया था। यद्यपि उसने अभियुक्त द्वारा चेक सौंपे जाने और इसको बैंक में जमा किए जाने और चेक के अनादर के संबंध में परिवादी के मामले के बारे में अभिसाक्ष्य दिया है किंतु उसने अपने प्रति परीक्षण में कथन किया है कि उसे मामले की व्यक्तिगत जानकारी नहीं है और उसने कंपनी के सीमेन्ट डिविजन में काम कभी नहीं किया था। उसने यह कथन भी किया है कि कंपनी का सीमेन्ट डिविजन बाद में बेच दिया गया था। प्रति परीक्षण में उसने यह भी स्वीकार किया है कि उसे जानकारी नहीं है कि अभियुक्त को सीमेन्ट के कितने बोरों की आपूर्ति की गयी थी किंतु वह केवल सीमेन्ट के धनीय मूल्य के बारे में बता सकता था और उसने यह भी स्वीकार किया है कि उसने चेक के सिवाए वर्तमान मामले के संबंध में किसी दस्तावेज को नहीं देखा था।

6. सी॰ डब्ल्यू॰ 2 पांडे अमरेन्द्र किशोर, एस॰ बी॰ आई॰, टेलको शाखा का मुख्य प्रबंधक है, जिसने चेक सिद्ध किया है, जिसे प्रदर्श 3/1 के रूप में चिन्हित किया गया है। चेक के पृष्ठ भाग पर किया गया हस्ताक्षर प्रदर्श 3 के रूप में चिन्हित किया गया है। उसने चेक के अनादर के बारे में कथन किया है और उस पत्र को सिद्ध किया है जिसके द्वारा परिवादी के चेक के अनादर के बारे में सूचित किया गया था और इसे प्रदर्श 4 के रूप में चिन्हित किया गया है।

7. चेक पर परिवादी अर्थात् टाटा आयरन एण्ड स्टील कंपनी का नाम और अभियुक्त का हस्ताक्षर एक ही स्याही में है, जबकि आँकड़ों और शब्दों दोनों में चेक की तिथि और राशि भिन्न-भिन्न स्याही में है जिसके बारे में न तो परिवाद याचिका में और न ही सी॰ डब्ल्यू॰ 1 के अभिसाक्ष्य में कोई उल्लेख है। यह भी गौर करने योग्य है कि चूँकि प्रश्नगत चेक सी॰ डब्ल्यू॰ 1 द्वारा सिद्ध नहीं किया गया था, उसके प्रतिपरीक्षण में उसका सामना इस तथ्य से करवाने का अवसर नहीं था।

8. बचाव पक्ष ने किसी दिव्यजीत भूइयाँ का परीक्षण ब॰ सा॰ 1 के रूप में किया है जिसने कथन किया है कि अभियुक्त का मेसर्स मैत्री इंटरप्राइजेज के साथ व्यावसायिक संबंध था और उसने मेसर्स मैत्री इंटरप्राइजेज द्वारा जारी पत्र सिद्ध किया है जिसे प्रदर्श A के रूप में चिन्हित किया गया है। उसने यह कथन भी किया है कि उक्त पत्र के अनुपालन में, अभियुक्त द्वारा हस्ताक्षरित दो ब्लैंक चेकों को प्रतिभूति के रूप में दिया गया था, जिसमें से एक प्रदर्श 3/1 है। प्रदर्श A के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि मेसर्स मैत्री इंटरप्राइजेज, टाटा आयरन एण्ड स्टील कंपनी लिमिटेड का सी॰ एण्ड एफ॰ एजेन्ट, ने उक्त पत्र जारी किया था और डीलरों को कहा था कि दिनांक 1 सितंबर, 1997 के बाद ''दी टाटा आयरन एण्ड स्टील कं॰ लि॰'' को भुगतेय समस्त डी॰ डी॰, आदि को स्वीकार किया जाएगा और उन सभी डीलरों, जिन्होंने ब्लैंक चेकों (दो) को आज की तिथि तक जमा नहीं किया था, को याद दिलाया गया था और दिनांक 15 सितंबर, 1997 तक सकारात्मक रूप से दो ब्लैंक चेकों को जमा करने का अनुरोध किया गया था।

9. अभियुक्त का बचाव है कि इस पत्र के अनुसरण में उसने मेसर्स मैत्री इंटरप्राइजेज, जो टाटा आयरन एण्ड स्टील कं॰ लि॰ का सी॰ एण्ड एफ॰ एजेन्ट था, को दो ब्लैंक चेक प्रतिभूति के रूप में दिया था तथा उसने प्रत्यक्षत: टाटा आयरन एण्ड स्टील कं॰ लि॰ को कोई चेक नहीं दिया था किंतु इन चेकों में से एक का उपयोग परिवादी द्वारा किया गया था।

10. परिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने दोषमुक्ति के आक्षेपित निर्णय को केवल इस आधार पर चुनौती दिया कि एक से अधिक दंडाधिकारियों द्वारा साक्ष्य दर्ज किया गया था। यह निवेदन भी किया गया है कि पूर्ववर्ती दंडाधिकारी द्वारा दर्ज साक्ष्य पर उत्तरजीवी दंडाधिकारी द्वारा विश्वास किया गया है और निर्णय पारित किया गया है। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि यह विधि का सुनिश्चित सिद्धांत है कि एन॰ आई॰ एक्ट की धारा 138 के अधीन कार्यवाही संक्षिप्त विचारण है और दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 326 (3) किसी प्रकार का संदेह नहीं छोड़ती है कि जब मामले का विचारण संक्षिप्त तरीके से किया जाता है, दंडाधिकारी, जो उस दंडाधिकरी का उत्तरवर्ती होता है जिसने साक्ष्य का पूर्ण अथवा आंशिक भाग दर्ज किया था, अपने पूर्ववर्ती दंडाधिकारी द्वारा इस प्रकार दर्ज साक्ष्य पर कृत्य नहीं कर सकता है। संक्षिप्त कार्यवाही में, उत्तरवर्ती न्यायाधीश अथवा दंडाधिकारी को उस चरण, जिस पर उसके पूर्ववर्ती ने इसे छोड़ा था, से विचारण के साथ अग्रसर होने का प्राधिकार नहीं है। इस संबंध में, विद्वान अधिवक्ता ने **नीतिनभाई सेवतीलाल शाह एवं एक अन्य बनाम मनुभाई मंजीभाई पांचाल, 2011(4) JLJ SC 83,** मामले में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पर विश्वास किया है। उक्त निर्णय पर विश्वास करते हुए विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि अपने पूर्ववर्ती दंडाधिकारी द्वारा दर्ज साक्ष्य पर विश्वास करते हुए विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी द्वारा आक्षेपित निर्णय पारित किया गया है और इसे विधि की दृष्टि में संपोषित नहीं किया जा सकता है और इस प्रकार, यह सुयोग्य मामला है जिसमें निर्णय अपास्त कर दिया जाए और मामले को नए सिरे से विचारण के लिए वापस भेज दिया जाए।

11. दूसरी ओर, अभियुक्त प्रत्यर्थी सं॰ 2 के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि विद्वान अवर न्यायालय द्वारा पारित निर्णय में कोई अवैधता नहीं है, क्योंकि अभियुक्त सिद्ध करने में सक्षम रहा है कि ब्लैंक चेकों को मामले में प्रदर्श A के रूप में सिद्ध पत्र के अनुसरण में प्रतिभूति के रूप में जारी किया गया था। तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि बचाव पक्ष परिवादी का मामला भंजित करने में सक्षम रहा है कि प्रश्नगत चेक अभियुक्त को आपूर्ति किए गए सीमेन्ट की कीमत के विरुद्ध जारी किया गया था और इस प्रकार, विद्वान अवर न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के आक्षेपित निर्णय में कोई अवैधता नहीं है और इसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

12. जहाँ तक संक्षिप्त विचारण में अनुसरण की जानेवाली प्रक्रिया के संबंध में परिवादी के विद्वान अधिवक्ता के प्रतिवाद का संबंध है, प्रत्यर्थी अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि यह सुनिश्चित विधि है कि संक्षिप्त विचारण के लिए विहित प्रक्रिया का अनुसरण नहीं करने से अभियुक्त पर प्रतिकूलता कारित होनी थी और परिवादी को कारित प्रतिकूलता का प्रश्न ही नहीं है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया है कि परिवादी अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय इस मामले के तथ्यों पर प्रयोज्य नहीं है क्योंकि उक्त मामले में मामला दोषसिद्धि के निर्णय के विरुद्ध माननीय सर्वोच्च न्यायालय में गया था जिसे अपास्त कर दिया गया था क्योंकि संक्षिप्त विचारण के लिए प्रक्रिया का अनुसरण नहीं किए जाने के कारण उक्त मामले में अभियुक्त पर प्रतिकूलता कारित हुई थी। इस संबंध में, प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने **शिवाजी संपत जगताप बनाम राजन हीरालाल अरोड़ा एवं एक अन्य, 2007 Cr. LJ 122,** मामले में माननीय बॉम्बे उच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि यद्यपि एन॰ आई॰ एक्ट की धारा 138 के अधीन मामले का संक्षिप्त तरीके से विचारण करने की आवश्यकता है जैसा एन॰ आई॰ एक्ट की धारा 143 के अधीन अनुध्यात किया गया है, किंतु यदि मामले का विचारण नियमित समन मामले के रूप में किया जाता है, यह संहिता की धारा 326 (3) के कार्यक्षेत्र के अंतर्गत नहीं आएगा। दूसरे शब्दों में, यदि मामले का विचारण सारतः संक्षिप्त रूप में नहीं किया गया है, यद्यपि यह संक्षिप्त रूप से विचारण किए जाने योग्य था, और नियमित समन

मामले के रूप में इसका विचारण किया गया था, इसे नए सिरे से सुनने की आवश्यकता नहीं है और उत्तरवर्ती दंडाधिकारी संहिता की धारा 326 (1) के अधीन अनुध्यात प्रक्रिया का अनुसरण कर सकता है। तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि विद्वान अवर न्यायालय में इस आधार पर भी पारित निर्णय में कोई अवैधता नहीं है, क्योंकि संक्षिप्त विचारण के लिए विहित प्रक्रिया का अनुसरण वर्तमान मामले में न्यायालय द्वारा नहीं किया गया था और अभिलेख दर्शाएँगे कि मामले का विचारण नियमित समन मामले के रूप में किया गया था।

13. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद और अभिलेखों का परिशीलन करने पर, मैं मामले के तथ्यों में पाता हूँ कि प्रत्यर्थी अभियुक्त यह दर्शाने में सक्षम रहा है कि स्वयं प्रतिफल का अस्तित्व संदेहास्पद था, क्योंकि बचाव पक्ष ने यह दर्शाने के लिए अभिलेख पर दस्तावेज लाया है कि कंपनी के सी० एण्ड एफ० एजेन्ट ने डीलरों को कंपनी के नाम में दो ब्लैंक चेकों को प्रस्तुत करने के लिए कहा था और बचाव पक्ष के मामले के अनुसार अभियुक्त द्वारा हस्ताक्षरित दो ब्लैंक चेक प्रस्तुत किया गया था जिसमें से एक का उपयोग इस मामले को दाखिल करने के लिए परिवादी द्वारा किया गया था। चेक का परिशीलन भी स्पष्टतः दर्शाता है कि उस पर परिवादी कंपनी का नाम और अभियुक्त का हस्ताक्षर एक ही स्याही में था जबकि तिथि और आंकड़ों एवं शब्दों दोनों में राशि भिन्न स्याही में थी। परिवादी का मामला यह नहीं है कि तिथि और राशि बाद में अभियुक्त की सहमति से भरी गयी थी बल्कि परिवादी का मामला प्रत्यक्षतः यह है कि परिवादी को 3,61,790/- रुपया सौंपा गया था।

14. मामले के इस दृष्टिकोण में मेरा सुविचारित दृष्टिकोण है कि अभियुक्त अपने विरुद्ध उपधारणा को खंडित करने में सक्षम रहा है और प्रतिफल का अस्तित्व ही संदेहास्पद बना दिया गया है। मामले के उस दृष्टिकोण में परिवादी को अपना मामला समस्त संदेहों के परे सिद्ध करना था, किंतु परिवादी ऐसा करने में विफल रहा है। इस संबंध में, **भारत बैरल एण्ड ड्रम मैन्यूफैक्चरिंग कंपनी बनाम अमीन चंद प्यारे लाल, (1993)3 SCC 35** (पैरा 12) मामले में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विधि सुनिश्चित की गयी है जिसमें निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:–

> *"12. ;gk Åij xkj fd, x, vud fu.k;k ij fopkj dju ij fofèk dh lkeu vkrh voLFkk ;g g fd tc ,d ckj çkfeljh ukV dk fu"iknu Lohdkj fd;k tkrk g] èkkjk 118 (a) d vèkhu mièkkj.kk mnHkr gkxh fd ;g çfrQy }kjk lefFkr gA ,lh mièkkj.kk [kMuh; gA çfroknh vfèklHkkO; çfrokn djd çfrQy dh vfLrRoghurk fl) dj ldrk gA ;fn ;g n'kkr g, fd çfrQy dk vfLrRo vufèklHkkO; vFkok lngkLin Fkk vFkok ;g voèk Fkk] çfroknh }kjk çek.k d vkjfHkd Hkkj dk fuogu fl) fd;k tkrk g] Hkkj oknh ij pyk tk,xk tk bl rF; d ekey d :i e fl) dju d fy, ckè; gkxk vkj bldk fl) dju e foQyrk ml ijØkE; fy[kr d vkèkkj ij vurk"k çnku dju dk xj gdnkj cuk,xhA çfrQy dh vfLrRoghurk fl) dju dk çfroknh d Åij ck> ;k rk çR;{k ;k fQj ifjfLFkfr;k] ftu ij og fo'okl djrk g] d lnHk e vfèklHkkO;rkvk dh cgyrk dk vfHky[k ij ykdj gk ldrk gA ,lh fLFkfr e] oknh fofèk d vèkhu ekey e fn, x, oknh d lk{; lfgr leLr lk{; ij fo'okl dju dk gdnkj gA ;fn tgk çfroknh çfrQy dh vfLrRoghurk n'kkdj çek.k d vkjfHkd Hkkj dk fuogu dju e foQy jgrk g] oknh lnk gh viu i{k e èkkjk 118(a) d vèkhu*

*mnHkr gku oky mièkkj.kk d ykHk dk gdnkj vfHkfuèkkfjr fd;k tk,xkA U;k;ky; çfroknh ij çR;{k lk{; ndj çfrQy d vfLrRo dk vfl) dju ij tkj ugh Mky ldrk g D;kfd udkjkRed lk{; dk vfLrRo u rk lHko g vkj u gh vuè;kr fd;k x;k g vkj ;fn bl fn;k tkrk g] bl lng l n[kuk gkxkA çfrQy fn, tku l dkjk budkj çdVr% dkb cpko çrhr ugh gkrk gA dN Hkh tk vfèkHkk0; g dk oknh ij fl) dju dk Hkkj Mkyu dk ykHk yu d fy, vfHky[k ij ykuk gh gkxkA mièkkj.kk dk vfl) dju d fy, çfroknh dk ,l rF;k vkj ifjfLFkfr;k dk vfHky[k ij ykuk gkxk ftu ij fopkj djd U;k;ky; ;k rk fo'ok l dj ldrk g fd çfrQy dk vfLrRo ugh Fkk vFkok bldh vfLrRoghurk bruh vfèkHkk0; Fkh fd dkb food'kh 0;fDr ekey d rF;k d vèkhu bl vfHkopu ij Ñ%; djxk fd ;g fo|eku ugh FkkA** (tkj fn;k x;k)*

रंगप्पा बनाम श्री मोहन, 2010 (3) JCR 16 (SC) के प्रकाशित मामले में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पूर्वोल्लिखित निर्णय अनुमोदित करते हुए उद्धृत किया गया है। विधि जैसी ऊपर अधिकथित की गयी है, मामले के तथ्यों पर पूरी तरह प्रयोज्य है।

15. विधि के पूर्वोल्लिखित सुनिश्चित सिद्धांतों की दृष्टि में मेरा सुविचारित दृष्टिकोण है कि इस तथ्य की दृष्टि में कि अभियुक्त ने यह दर्शाते हुए कि प्रतिफल का अस्तित्व अनधिसंभाव्य अथवा संदेहास्पद था, प्रमाण के आरंभिक भार का निर्वहन किया और अपीलार्थी परिवादी अवर न्यायालय में समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अपना मामला सिद्ध करने में विफल रहा था और इस प्रकार अभियुक्त को सही प्रकार से संदेह का लाभ दिया गया था और आरोप से दोषमुक्त कर दिया गया था। आक्षेपित निर्णय में कोई अवैधता नहीं है और इसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

16. परिणामस्वरुप, मैं इस अपील में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ जिसे तद्नुसार खारिज किया जाता है।

---

ekuuh;k iue JhokLro] U;k;efr

श्रीमती सुभद्रा देवी

cuke

श्रीमती विमला देवी सारावगी एवं अन्य

AFAD No. 49 of 2007. Decided on 24th November, 2011.

अभिधान वाद सं॰ 202/1975 में श्री ए॰ आर॰ के॰ सिन्हा, उप न्यायाधीश VI, राँची द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 8.4.2004 और दिनांक 19.4.2004 के निर्णय और डिक्री से उद्भूत होने वाली हक अपील सं॰ 22/2004 में श्री राय सतीश बहादुर, अपर न्यायिक आयुक्त XVI, राँची द्वारा पारित दिनांक 13.12.2006 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध।

(क) विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963—धारा 12—संविदा का विनिर्दिष्ट पालन—अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा वाद खारिज—विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद में वादी द्वारा स्थापित दावा का आधार करार है और यह स्थापित करना वादी की बाध्यकारी कर्त्तव्य है कि विक्रय करार उस व्यक्ति द्वारा विधिवत निष्पादित वैध दस्तावेज है जिसे वाद के विषयवस्तु के लिए संविदा करने का अधिकार है—वर्तमान मामले में प्रतिवादी द्वारा विक्रय करार हस्ताक्षरित नहीं किया गया है—मुख्तारनामा न तो अभिलेख पर है और न ही अन्यत्र इसे उल्लिखित किया गया है—वादी का मामला विश्वसनीय स्वीकार नहीं किया जा सकता है—अपील खारिज। (पैराएँ 11, 14 से 17)

(ख) भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872—धाराएँ 65 एवं 66—द्वितीयक साक्ष्य–ग्रहणीयता–केवल समुचित प्रमाण पर द्वितीयक साक्ष्य ग्रहण किया जा सकता है–वादी अपना मामला और विक्रय करार का अस्तित्व और अग्रिम के रूप में प्रतिवादी द्वारा प्राप्त किए गए किसी धन को सिद्ध करने में बुरी तरह विफल रहा। (पैरा 12)

निर्णयज विधि.–(2003) 9 SCC 606; (2010)10 SCC 512—Distinguished.

अधिवक्तागण.–Mr. Aparesh Kumar Singh, For the Appellant; M/s Manjul Prasad, V.B. Banerjee, Dilip Kumar Prasad, Deepak Kr. Pathak, Ajay Kr., For the Respondents.

पूनम श्रीवास्तव, न्यायमूर्ति.–यह वादी की दूसरी अपील है। वाद अंशत: डिक्री किया गया था।

2. श्री अपरेश कुमार सिंह, अधिवक्ता अपीलार्थी की ओर से उपस्थित हैं और श्री दिलीप कुमार प्रसाद की सहायता से श्री मंजुल प्रसाद, वरीय अधिवक्ता प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित हैं।

3. द्वितीय अपील वादी और मूल प्रतिवादी श्रीमती त्रिवेणी देवी के बीच हुए संविदा के विनिर्दिष्ट पालन के अनुतोष का दावा करते हुए मूल प्रतिवादी श्रीमती त्रिवेणी देवी के विरुद्ध वादी द्वारा दाखिल हक वाद सं॰ 202 वर्ष 1975 से उद्भूत होती है। विचारण न्यायालय के समक्ष वादी द्वारा स्थापित मामला जैसा वाद पत्र में वर्णित है यह है कि दिनांक 7.12.1972 को वादपत्र की अनुसूची के अंत में उल्लिखित संपत्ति के संबंध में विक्रय करार किया गया था और वैकल्पिक अनुतोष के रूप में यदि वादी अनुतोष (a) अर्थात् संविदा के विनिर्दिष्ट पालन का हकदार नहीं है, तब प्रतिवादी को दिनांक 7.12.1972 के प्रभाव से 12% वार्षिक दर से ब्याज के साथ 5000/- रुपयों को वापस करने और ब्याज के साथ 10,000/- रुपयों के मुआवजा का भुगतान करने और व्यय अधिनिर्णीत करने के लिए निर्देश दिया जाए।

4. वादी का मामला निम्नलिखित है:–

(i) प्रतिवादी श्रीमती त्रिवेणी देवी वाद भूमि की स्वामिनि है। प्रतिवादी ने वादी के साथ दिनांक 7.12.1972 को 1,27,500/- रुपया के कुल प्रतिफल के लिए वाद भूमि बेचने के लिए करार किया। वादी ने कुल प्रतिफल के विरुद्ध समायोजित किए जाने के लिए अग्रिम के रूप में 5000/- रुपयों का भुगतान किया। भूमि की दर 5100/- रुपया प्रति कट्ठा के दर से तय की गयी थी। वादी और प्रतिवादी सहमत हुए थे कि प्रतिवादी बिहार राज्य के अभिलेख में अपना नाम नामांतरित करवाएगी और दिनांक 28.2.1972 के पहले अद्यतन किराया का भुगतान कर देगी।

(ii) वादी ने प्रतिवादी से कोई सूचना नहीं पाया कि क्या उसका नाम बिहार राज्य के अभिलेख में नामांतरित कर दिया गया था, अत: वादी ने प्रतिवादी से पूछा और तत्पश्चात् वादी को सूचित किया गया था कि प्रतिवादी तब तक अपना नाम नामांतरित करवाने में अक्षम रही थी।

(iii) यद्यपि प्रतिवादी अपना नाम नामांतरित नहीं करवा सकी थी, वादी वाद भूमि खरीदने को सहमत हुआ और परिणामत: विक्रय विलेख के साथ संलग्न किए जाने के लिए नक्शा तैयार करने के लिए जमीन मापी गयी थी। वादी ने प्रतिवादी से आयकर विभाग से आवश्यक अनापत्ति प्रमाण पत्र प्राप्त करने का अनुरोध भी किया और विक्रय विलेख का प्रारूप अनुमोदन के लिए सौंपा गया था। तत्पश्चात प्रतिवादी विलेख के अपने भाग का पालन करने में विफल रही और आवश्यक दस्तावेजों को प्राप्त करने के लिए कोई कदम नहीं उठाया गया था। स्पष्टत: दिलचस्पी की यह कमी करार का पालन करने में एक रूकावट था।

5. वाद भूमि के संबंध में 1,27,500/- रुपयों की प्रतिफल राशि प्राप्त करने के बाद वादी के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित और रजिस्टर करने का निर्देश उसे देते हुए मूल प्रतिवादी श्रीमती त्रिवेणी सिंह के विरुद्ध व्यय के साथ दिनांक 24.6.1982 के आदेश के तहत वाद एकपक्षीय रूप से डिक्री किया गया था।

6. सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश 9 नियम 13 के अधीन प्रतिवादी द्वारा दिनांक 17.7.1982 को विविध केस सं॰ 50/1982 संस्थापित किया गया था। डिक्री अपास्त करने के लिए आवेदन दिनांक 26.2.1983 को खारिज कर दिया गया था। विविध अपील सं॰ 26/83 (R) दाखिल की गयी थी जिसे उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 15.3.1989 को अनुज्ञात किया गया था और हक वाद सं॰ 202/75 अपने मूल संख्या में पुनर्स्थापित कर दिया गया था। प्रतिवादी ने अपना लिखित कथन दाखिल किया और निम्नलिखित रूप से अभिवचनों से इनकार किया:

(i) वादी का वाद पोषणीय नहीं है और वादी के पास वाद हेतुक नहीं है और कि वादी का वाद झूठा, तुच्छ और खारिज किए जाने का दायी है। यह अभिवचन भी किया गया है कि आवश्यक पक्षों के असंयोजन के कारण वाद दोषपूर्ण है क्योंकि वाद संपत्ति इस प्रतिवादी द्वारा श्रीमती त्रिवेणी देवी और श्रीमती इंद्रमणि देवी के साथ अर्जित की गयी थी किंतु केवल प्रतिवादी को वाद में पक्षकार बनाया गया है। वाद परिसीमा द्वारा भी वर्जित है।

(ii) प्रतिवादी ने किसी भी तिथि पर वादी के साथ कोई करार नहीं किया था और न ही उसने वादी से कोई अग्रिम राशि प्राप्त किया था, और कि यह प्रतीत हुआ कि वादी ने एकपक्षीय सुनवाई के क्रम में तात्पर्यित करार दाखिल किया और अभिसाक्ष्य में अभिकथित किया कि प्रतिवादी ने अपने एजेन्ट के माध्यम से करार किया था। अभिकथित दस्तावेज अवैध, और शून्य है और उस पर बाध्यकारी नहीं है क्योंकि श्री हरखचंद सारोगी वादी के साथ कोई करार करने के लिए सशक्त नहीं था। वादी को पूरी सूचना थी कि प्रतिवादी का नाम नामांतरित नहीं किया गया था। यह कथन करना गलत है कि अभिकथित करार के अनुसरण में वाद भूमि मापी गयी थी। इन आधारों पर अभिवचन किया गया है कि वादी अनुतोष का हकदार नहीं है, दावा किए गए अनुतोष की तो बात ही दूर।

7. विचारण के दौरान मूल प्रतिवादी श्रीमती त्रिवेणी देवी की मृत्यु हो गयी। दिनांक 12.9.1995 के आदेश द्वारा उसके विधिक उत्तराधिकारियों को प्रतिस्थापित किया गया था जिन्हें प्रतिवादी सं॰ 1 से 5 तक अर्थात् श्रीमती चंद्रकला देवी एवं अन्य के रूप में क्रमश: प्रतिस्थापित किया गया था।

8. वादीगण की ओर से विचारण के दौरान तीन गवाहों को प्रस्तुत किया गया था। दिनांक 12.2.2004 को अ॰ सा॰ 1 नन्दलाल पांडे का परीक्षण किया गया था। वह औपचारिक गवाह है। उसने वादी श्रीमती सुभद्रा देवी द्वारा अपने बड़े भाई गोपाल नारायण सिंह के पक्ष में निष्पादित दिनांक 11.2.2004 के विशेष मुख्तारनामा को प्रदर्श 1 के रूप में सिद्ध किया है और प्रदर्श 1 पर गोपाल नारायण सिंह के हस्तलेखन और हस्ताक्षर में स्वीकृति को भी सिद्ध किया है। यह मुख्तारनामा गोपाल नारायण सिंह को वादी की ओर से वाद का प्रतिवाद करने के लिए प्राधिकृत करता था।

9. उप–न्यायाधीश VI, राँची द्वारा पारित दिनांक 8.4.2004 के निर्णय के तहत वाद एकपक्षीय रूप से डिक्री किया गया था चूँकि प्रतिवादीगण अपना निम्नलिखित कथन दाखिल करने के बाद विचारण का प्रतिवाद करने के लिए उपस्थित नहीं हुए थे। वाद एकपक्षीय रूप से व्यय के साथ प्रतिवादी के विरुद्ध अंशत: डिक्री किया गया था। प्रतिवादी को भुगतान किए जाने तक दिनांक 7.12.1972 के प्रभाव से 12% वार्षिक ब्याज के साथ 5000/- रुपया वापस करने का निर्देश दिया गया था और उन्हें वाद के संस्थापन की तिथि से वसूली की तिथि तक मुआवजा के रूप में 6% ब्याज के साथ 10,000/- रुपयों का भुगतान करने का निर्देश भी दिया गया था। किंतु उप न्यायाधीश VI, राँची द्वारा विनिर्दिष्ट पालन के लिए डिक्री

अस्वीकार कर दी गयी थी। अपीलार्थी ने प्रथम अपील हक अपील सं॰ 22/2004 अपर न्यायिक आयुक्त XVI, राँची के न्यायालय में दाखिल किया। अपील व्यय के बिना खारिज कर दी गयी थी, अवर न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री अपास्त कर दिया गया था। ब्याज के साथ 5000/- रुपए वापस करने की डिक्री और मुआवजा भी अपर न्यायिक आयुक्त XVI, राँची द्वारा दिनांक 13.12.2006 के निर्णय और आदेश के तहत खारिज कर दिया गया था। वर्तमान द्वितीय अपील दाखिल की गयी थी और विधि के निम्नलिखित सारवान प्रश्नों पर अपील ग्रहण किया गया था:–

"(I) D;k çfrokfnhx.k&çR;FkhZx.k }kjk vihy vFkok çfr vkifÙk dh vuifLFkfr e lh0 ih0 lh0 d vkn'k 41 fu;e 33 dk voyc yr g, lfonk d fofufn"V ikyu l budkj d fo#) oknh vihykFkh }kjk dh x;h vihy e oknh&vihykFkh d i{k e fopkj.k U;k;ky; }kjk çnku fd;k x;k okilh vkj evkotk dh fMØh vikLr dh tk ldrh g

(II) D;k fofufn"V ikyu dk vurk"k iku d fy, oknh dk xjgdnkj cukr g, fdlh [kM dh vuifLFkfr e lfonk d fofufn"V ikyu d vurk"k l budkj lik"k.kh; g D;kfd ;g lfonk (çn'k 4) d li.k xyr vFkkZo;u ij vkèkkfjr g\"

10. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित अधिवक्ता श्री अपरेश कुमार सिंह ने दो तर्क दिए हैं। प्रथम निवेदन यह है कि निर्णय के विरुद्ध किसी प्रति अपील की अनुपस्थिति में और इस कारण से भी कि प्रतिवादीगण कोई प्रति आपत्ति दाखिल करने में विफल रहे थे, 12% ब्याज के साथ अग्रिम धन की वापसी और 6% ब्याज के साथ व्यय के भुगतान की सीमा तक विचारण न्यायालय की डिक्री को अपास्त करते हुए अपीलीय न्यायालय ने विधि में गलती की। दूसरा तर्क यह है कि करार के अस्तित्व को नकारने का भार प्रतिवादीगण के कंधे पर था चूँकि विचारण न्यायालय के समक्ष करार विलेख प्रदर्शित किया गया था और प्रदर्श 4 के रूप में चिन्हित किया गया था। प्रतिवादीगण ने न तो अपना लिखित कथन दाखिल करने के बाद वाद का प्रतिवाद किया और न ही प्रति अपील स्थापित किया, अत: अवर अपीलीय न्यायालय के पास डिक्री का अंश, जो अपीलार्थी के पक्ष में था, को अपास्त करने की अधिकारिता नहीं थी।

11. मैं विधि के दो प्रश्नों का परीक्षण करने के लिए अग्रसर होती हूँ जिसपर विधि के सारवान प्रश्न के रूप में अधिवक्ता द्वारा तर्क किया गया है विनिर्दिष्ट पालन के एक वाद में वादी द्वारा स्थापित दावा का आधार करार है और यह स्थापित करना वादी का बाध्यकारी कर्तव्य है कि विक्रय करार उस व्यक्ति द्वारा विधित: निष्पादित वैध दस्तावेज है जिसे वाद की विषयवस्तु के लिए करार करने का अधिकार है। वर्तमान मामले में विक्रय विलेख पर प्रतिवादी श्रीमती त्रिवेणी देवी द्वारा हस्ताक्षर नहीं किया गया है बल्कि नियत मुख्तारनामा के रूप में किसी हरख चंद सारावगी द्वारा हस्ताक्षरित किया गया है। प्रदर्श 5 दिनांक 7.12.1972 के करार के अनुसरण में अग्रिम धन के रूप में 5000/- रुपयों के भुगतान को रेखांकित करने वाला दिनांक 7.12.1972 का रसीद है। यह रसीद भी हरख चंद सारावागी द्वारा प्रतिवादी श्रीमती त्रिवेणी देवी की ओर से जारी किया गया है। वादी ने अपने वाद पत्र में अभिवचन नहीं किया है कि विक्रय करार प्रतिवादी की ओर से मुख्तारनामा धारक हरख चंद सारावगी द्वारा किया गया था। कोई चर्चा तक नहीं है कि श्रीमती त्रिवेणी देवी ने कोई भी करार निष्पादित करने के लिए अथवा उसकी ओर से धन स्वीकार करने के लिए और इसकी रसीद जारी करने के लिए अपने मुख्तारनामा धारक को प्राधिकृत किया था। मैंने गौर किया है कि मुख्तारनामा न तो अभिलेख पर है और न ही इसे कहीं भी उल्लिखित किया गया है और इसलिए वादी ने अपना दावा इस आधार पर स्थापित नहीं किया है कि प्रतिवादी की ओर से करार किया गया था, बल्कि वाद पत्र में प्राख्यान यह है कि प्रतिवादी कतिपय निबंधनों और शर्तों

जो करार के भाग हैं और जिन्हें दोनों निर्णयों में और वाद पत्र में भी वर्णित किया गया है और जो अभिलेख का भाग निर्मित करते हैं, पर प्रश्नगत संपत्ति बेचने को सहमत हुई। स्पष्टत: प्रतिवादी के साथ करार प्रदर्श-4 और रसीद प्रदर्श 5 को जोड़ने के लिए किसी दस्तावेज की अनुपस्थिति में, जो वाद पत्र में किए गए प्राख्यानों को सिद्ध करने के लिए वादी पर बाध्यकारी था, उक्त प्रभाव का तर्क आधारहीन है। करार वादी के मामले की नींव है किंतु प्रदर्श 4 के साथ प्रतिवादी को जोड़ने के लिए कुछ भी नहीं है। ऐसा कोई भी करार नहीं है कि व्यक्ति, जिसने उक्त विलेख पर हस्ताक्षर किया था, वाद की विषय वस्तु के संबंध में प्रतिवादी की ओर से कृत्य करने के लिए प्राधिकृत था अथवा उसे कोई प्राधिकार था। द्वितीयक साक्ष्य के रूप में भी उक्त मुख्तारनामा को प्राप्त करने का प्रयास वादी की ओर से नहीं किया गया था, अत: प्रदर्शित विक्रय करार रद्दी कागज मात्र है। स्वीकृत रूप से, विक्रय करार पर न तो प्रतिवादी द्वारा हस्ताक्षर किया गया था और न ही रसीद पूर्वोक्त करार की ओर अग्रिम के रूप में धन की स्वीकृति दर्शाता है। दो दस्तावेजों पर एकमात्र हस्ताक्षर अभिकथित मुख्तारनामा धारक हरखचंद सारावगी का है। अ॰ सा॰ 3 एकमात्र गवाह है जो वादी के पक्ष में अभिसाक्ष्य देने आगे आया है किंतु उसने मुख्तारनामा के अस्तित्व के संबंध में कहीं भी कोई कथन नहीं किया है। विचारण न्यायालय को मुख्तारनामा के प्रश्न पर पृथक विवाद्यक गठित करना चाहिए था चूँकि प्रतिवादी द्वारा लिखित कथन में विनिर्दिष्ट इनकार है। नि:संदेह, लिखित कथन दाखिल करने के बाद प्रतिवादी विचारण के दौरान नियत अनेक तिथियों पर उपस्थित होने में विफल रही किंतु चूँकि लिखित कथन अभिवचन का भाग है, न्यायालय को हरखचंद सारावगी के प्राधिकार का परीक्षण करना चाहिए था जो विक्रय करार का हस्ताक्षरकर्ता था और जिसने अग्रिम धन के भुगतान के संबंध में रसीद पर हस्ताक्षर भी किया था। इसके अतिरिक्त, वादी अपना मामला सिद्ध करने का दायी है।

12. अपीलार्थी की ओर से अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि प्रतिवादी द्वारा हरखचंद सारावगी के पक्ष में निष्पादित मुख्तारनामा वादी के कब्जा में नहीं है और विक्रय करार विलेख को प्रदर्शित किया गया था और इस पर विचारण न्यायालय द्वारा विश्वास किया गया था। अवर अपीलीय न्यायालय निष्कर्ष पलट नहीं सकता था। साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 उन मामलों पर विचार करती है जिसमें दस्तावेजों से संबंधित द्वितीयक साक्ष्य स्वीकार किया जा सकता है। धारा 65 ऐसी ग्रहणीयता के लिए पालन की जाने वाली औपचारिकताओं को अधिकथित करती है जब मूल दस्तावेज विरोधी की अभिरक्षा में है जिस पर इसे प्रस्तुत करने की बाध्यता है किंतु जो नोटिस के बावजूद इसे प्रस्तुत करने में विफल रहता है, तब समुचित प्रमाण पर द्वितीयक साक्ष्य ग्रहण किया जा सकता है। वर्तमान मामले में, ऐसा कोई मुख्तारनामा प्रस्तुत करने के लिए वादी को नोटिस नहीं दिया गया था। स्वयं वाद पत्र में ऐसा कोई प्राख्यान नहीं है। वस्तुत: वाद के शुरूआत पर विचारण न्यायालय के समक्ष स्थापित वादी का मामला यह है कि प्रतिवादी द्वारा विक्रय करार किया गया था और वह संविदा की पक्ष थी। उसका हस्ताक्षर करार विलेख पर नहीं है, बल्कि इसके विपरीत, हरखचंद सारावगी के हस्ताक्षर दोनों दस्तावेजों अर्थात् करार और अग्रिम धन के भुगतान को दर्शाने वाले रसीद पर विद्यमान है। दस्तावेज प्रस्तुत करने के लिए अभिलेख पर आवेदन नहीं है और प्रतिवादीगण को भी नोटिस नहीं दिया गया है। प्रतिवादी विचारण के दौरान प्रतिवाद करने के लिए उपस्थित नहीं हुआ था, अत: वादी को पर्याप्त प्रमाण द्वारा अपना मामला सिद्ध करना चाहिए था। साक्ष्य अधिनियम की धारा 66 ''प्रस्तुत करने के लिए नोटिस की नियमावली' पर विचार करता है। धारा 66 का परिशीलन यह अभिनिर्धारित करने के लिए पर्याप्त है कि द्वितीयक साक्ष्य के अस्तित्व के लिए प्रावधानित प्रक्रिया का अनुसरण नहीं किया गया था और न ही दस्तावेज नियम 66 के परन्तुक के शर्तों में से किसी के अधीन आता है और इसलिए एकमात्र निष्कर्ष यह है कि वादी अपना मामला और विक्रय करार और यह भी कि अग्रिम के मद में प्रतिवादीगण द्वारा कोई धन प्राप्त किया गया था, सिद्ध करने में बुरी तरह विफल रहा।

13. विद्वान अधिवक्ता ने **बनारसी एवं अन्य बनाम रामफल, (2003)9, SCC 606,** पैराग्राफ 9, 10, 11, 14 और 15 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया है।

14. मैंने सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का परिशीलन किया है। वर्तमान मामले में, नि:संदेह कोई प्रति दावा दाखिल नहीं किया गया था और निर्णय के विरुद्ध अपील दाखिल नहीं किया गया था। स्वयं वादी डिक्री और मुआवजा के अधिनिर्णय और अग्रिम धन लौटाने को लेकर संतुष्ट नहीं था। वादी ने अपील दाखिल किया जिसे यह अभिनिर्धारित करते हुए खारिज कर दिया गया था कि कोई विक्रय करार नहीं था। दोनों अनुतोष का आधार स्वीकृत रूप से विक्रय करार है और अपील के आधारों का आकलन करते हुए अपीलीय न्यायालय निश्चयात्मक रूप से इस निर्णय पर आया कि विक्रय करार विलेख पर अथवा अग्रिम धन के भुगतान को दर्शाने वाले रसीद पर प्रतिवादी द्वारा हस्ताक्षर नहीं किया गया था। इस प्रभाव का कोई अभिवचन नहीं है कि मुख्तारनामा द्वारा प्रतिवादी की ओर से विलेख निष्पादित किया गया था। मुख्तारनामा के संपूर्ण सिद्धांत पर अविश्वास किया गया था और उक्त करार, जो वादी के मामले की नींव है, को झूठा अभिनिर्धारित किया गया था। जब एक बार निष्कर्ष पर पहुँचा गया था कि वादी मुख्तारनामा सिद्ध करने में अथवा यह स्थापित करने कि प्रतिवादी द्वारा कोई करार अथवा विक्रय की संविदा की गयी थी, में बुरी तरह विफल रहा था, स्पष्टत: अग्रिम धन अथवा अधिनिर्णीत मुआवजा की वापसी किया जाना ही होगा भले ही कोई प्रति दावा दाखिल नहीं किया गया था। वादी का साक्ष्य कि विक्रय करार मुख्तारनामा द्वारा निष्पादित किया गया था, का पठन नहीं किया जा सकता है क्योंकि इस प्रभाव का अभिवचन नहीं है और इसलिए **बनारसी (ऊपर)** के मामले में अधिकथित सिद्धांत वर्तमान मामले के तथ्यों के प्रति प्रासंगिक नहीं है।

15. विद्वान अधिवक्ता ने दो अन्य निर्णयों पर विश्वास किया है। सर्वोच्च न्यायालय के हाल के निर्णय हैं: **लक्ष्मण तात्यबा कानकाटे एवं अन्य बनाम तारामती हरिश्चंद्र घत्रक, (2010)7 SCC 717** और **मन कौर बनाम हरतार सिंह संधा, (2010)10 SCC 512** है। ये निर्णय किसी मामले में आवश्यक प्रमाण के तरीके से संबंधित है जहाँ वादी मुख्तारनामा धारक के कृत्य पर प्राख्यान करता है जिसने हस्ताक्षर पृष्ठांकित किया है। जब तक मुख्तारनामा धारक का अभिवचन स्थापित नहीं किया जाता है और ऐसे मुख्तारनामा धारक का परीक्षण नहीं किया जाता है और मुख्तारनामा धारक के प्राधिकार को सिद्ध करने के लिए साक्ष्य नहीं दिया जाता है, ऐसे वादी को अनुतोष प्रदान नहीं किया जा सकता है। स्पष्टत: वर्तमान मामले में, वाद के आरंभ से ही किसी साक्ष्य, अभिवचन अथवा ऐसे दृष्टिकोण की अनुपस्थिति में वादी का प्रतिवाद स्वीकार नहीं किया जा सकता है। वादी के कंधों पर भारी भार था जिसका निर्वहन उसके द्वारा नहीं किया गया था, अत: उसे इस तथ्य का लाभ लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती है कि करार प्रदर्श 4 और रसीद प्रदर्श 5 के रूप में चिन्हित किया गया था।

16. इन परिस्थितियों में, वादी का मामला विश्वसनीय नहीं माना जा सकता है। मुख्तारनामा की प्रति भी अभिलेख पर नहीं लायी गयी थी और वाद पत्र में प्राख्यान नहीं है। प्रदर्शों 4 और 5 को प्रतिवादी के साथ जोड़ने के लिए कुछ भी नहीं था। प्रतिवादी को दस्तावेज प्रस्तुत करने के लिए कोई नोटिस नहीं दी गयी थी।

17. अत: अभिलेख पर उपलब्ध संपूर्ण साक्ष्य पर समग्र रूप से विचार करने पर मेरा मत है कि वर्तमान अपील में विधि का प्रश्न उद्भूत नहीं होता है। अपील गुणागुण रहित है और तद्नुसार व्यय के साथ इसे खारिज किया जाता है।

ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k ,o ihñ ihñ HkVV] U;k;efr

सुनील चंद्र शर्मा, अरगोरा, राँची

cuke

भारतीय जीवन बीमा निगम, जमशेदपुर एवं अन्य

L.P.A. No. 211 of 2011. Decided on 3rd February, 2012.

सेवा विधि–एजेंसी की समाप्ति–प्रस्ताव फॉर्म दाखिल करते हुए तथ्य का अभिकथित दमन–यह अभिवचन कि अपीलार्थी ऐसे व्यक्ति को केवल विगत दो दिनों से जानता था, एक आधार नहीं हो सकता है क्योंकि प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए एजेन्ट को बीमाकृत किए जानेवाले व्यक्ति के इतिहास की जाँच करने की आवश्यकता है–चूँकि स्वयं प्रस्ताव गलत था, रिट याची की एजेंसी की समाप्ति को एकल न्यायाधीश द्वारा सही प्रकार से न्यायोचित और समुचित अभिनिर्धारित किया गया था–अपील खारिज। (पैराएँ 4 से 7)

अधिवक्तागण.–Mr. Lalan Kumar Singh, For the Appellant; M/s. Sachin Kumar, Syed Naushand Ahmad, For the Respondents.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अपीलार्थी ने दिनांक 12.8.1998 को बीमा के लिए प्रस्ताव प्रस्तुत किया और विनियम 8(2) (b) के मुताबिक उसे स्वीकृति के लिए प्रस्तावों की अनुशंसा करने के पहले बीमाकृत किए जाने वाले जीवनों के संबंध में जाँच करने और किन्हीं परिस्थितियों, जो निम्नांकित किए जाने वाले जोखिम को विपरीत रूप से प्रभावित कर सकते हैं, को निगम के ध्यान में लाने की आवश्यकता है।

3. याची–अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि प्रस्ताव प्रारूप में उसने स्पष्टत: उल्लिखित किया कि याची ऐसे व्यक्ति को केवल विगत दो दिनों से जानता था, अत: उसने किसी तथ्य को नहीं दबाया है। विकास अधिकारी द्वारा इस प्रस्ताव को अनुमोदित किया गया था और वह भी डॉक्टर से प्रमाणपत्र प्राप्त करने के बाद।

4. आगे निवेदन किया गया है कि चूँकि याची–अपीलार्थी उस व्यक्ति, जिसका प्रस्ताव उसने प्रस्तुत किया था, को नहीं जानता था, अत: उसने कुछ गलत नहीं किया था। निवेदन किया गया है कि विकास अधिकारी के विरुद्ध विभागीय जाँच संचालित की गयी थी और उसे विमुक्त कर दिया गया था जिस पर प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि विकास अधिकारी को विमुक्त नहीं किया गया था बल्कि उसे दोषी पाया गया था और परिनिन्दा का दंड अधिनिर्णीत किया गया था।

5. जहाँ तक रिट याची–अपीलार्थी के मामले का संबंध है कि वह केवल विगत दो दिनों से ऐसे व्यक्ति को जान रहा था, एक आधार नहीं हो सकता है क्योंकि प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए एजेन्ट को बीमाकृत किए जाने वाले व्यक्ति के भूतकाल में जाँच करने की आवश्यकता है।

6. उक्त कारणों की दृष्टि में, चूँकि स्वयं प्रस्ताव गलत था, अत: रिट याची की एजेन्सी की समाप्ति को विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा सही प्रकार से न्यायोचित और समुचित अभिनिर्धारित किया गया था। प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि स्वयं याची ने इसी प्रारूप में निवेदन किया है कि प्रस्तावित व्यक्ति अच्छे स्वास्थ्य का है। चाहे जो भी हो, हम एल॰ पी॰ ए॰ में कोई गुणागुण नहीं पाते हैं।

7. उक्त कारणों की दृष्टि में, इस एल॰ पी॰ ए॰ को खारिज किया जाता है।

ekuuh; ,pñ lhñ feJk] U;k;efr

गौरंग दत्ता

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Acquittal Appeal No. 18 of 2009. Decided on 12th January, 2012.

दांडिक अपील सं॰ 288 वर्ष 2008 में अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट III द्वारा पारित दिनांक 24.4.2009 के दोषमुक्ति के निर्णय के विरुद्ध।

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881—धारा 138 सह-पठित धाराएँ 118 एवं 139—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 378—चेक का अनादर–दोषमुक्ति–परिवाद याचिका में चेक देने की तिथि कथित नहीं की गयी है–अपीलार्थी पर नोटिस भी तामील नहीं किया गया–परिवादी द्वारा यह दर्शाने के लिए कोई साक्ष्य नहीं दिया गया है कि अभियुक्त के मौनानुकूलता से नोटिस वापस कर दी गयी थी–परिवादी समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अपना मामला सिद्ध करने में विफल रहा–अभियुक्त ने यह दर्शाते हुए कि प्रतिफल का अस्तित्व अनधिसंभाव्य था, प्रमाण के आरंभिक भार का निर्वहन किया–आक्षेपित निर्णय में अवैधता नहीं है–अपील खारिज।

(पैराएँ 10 से 14)

निर्णयज विधि.–(1993) 3 SCC 35; 2010(3) JCR 16 (SC)—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. Kaushik Sarkhel, For the Appellant; Mr. Amresh Kumar, For the State; Mr. Zaid Ahmad, For the Respondent No.2.

एच॰ सी॰ मिश्रा, न्यायमूर्ति.–दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया और अभिलेख का परिशीलन किया गया।

2. यह अपील दांडिक अपील सं॰ 288 वर्ष 2008 में श्री कमल कुमार विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट III, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 24.4.2009 के दोषमुक्ति के निर्णय के विरुद्ध निर्देशित है जिसके द्वारा विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने सी॰ पी॰ केस सं॰ 414 वर्ष 2006/विचारण सं॰ 471 वर्ष 2008 में अभियुक्त प्रत्यर्थी सं॰ 2 को परक्राम्य लिखत अधिनियम (इसके बाद 'एन॰ आई॰ एक्ट' के रूप में निर्दिष्ट) की धारा 138 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध करने वाले विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 1.9.2008 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश को अपास्त कर दिया है। विद्वन अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया था कि अभियुक्त अधिसंभाव्य बचाव करने में सफल हुआ था और एन॰ आई॰ एक्ट के अधीन उपधारणा अभियुक्त द्वारा खंडित की गयी थी। तद्नुसार, विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी अभियुक्त को आरोप से दोषमुक्त कर दिया गया था।

3. परिवादी गौरंग दत्ता ने अभियुक्त मो॰ कलाम आजाद के विरुद्ध अवर न्यायालय में यह कथन करते हुए परिवाद याचिका दाखिल किया था कि परिवादी दत्ता मैंशन, हीरापुर, धनबाद अवस्थित दुकान सं॰ 8 का स्वत्वधारी है और अभियुक्त को 625/- रुपया प्रतिमाह मासिक किराए पर, जिसे बाद में 781/- रुपया प्रतिमाह तक बढ़ा दिया गया था, किराएदार के रूप में लाया गया था और परिवादी तथा अभियुक्त के बीच सहमति हुई थी कि उक्त किराया के अतिरिक्त अभियुक्त दिए गए बिल के मुताबिक जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ को प्रत्येक माह पृथक रूप से विद्युत ऊर्जा के उपभोग के प्रभार का भुगतान करेगा। परिवादी द्वारा अभिकथित किया गया है कि अक्टूबर, 2004 और अक्टूबर, 2005 के दौरान अभियुक्त ने 10,729/-

रुपयों का 578 यूनिट उपभोग किया और जब परिवादी को जानकारी हुई कि प्रत्यर्थी ने राशि जमा करने का परवाह नहीं किया था, उसने अभियुक्त से जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ के बिलों का भुगतान करने को कहा। अभियुक्त ने गैरईमानदार रूप से और कपटपूर्वक परिवादी को उत्प्रेरित किया और परिवादी से 10,000/- रुपयों की राशि ली और परिवादी के पक्ष में बैंक ऑफ इंडिया, हीरापुर एस॰ एस॰ आई॰ शाखा का दिनांक 31.12.2005 का 10,000/- रुपयों का पोस्ट डेटेड चेक जारी किया। उक्त चेक को बैंक में जमा किया गया था किंतु इसे दिनांक 6.1.2006 को बैंक द्वारा जारी रिटर्न मेमो के तहत ''अपर्याप्त राशि'' के पृष्ठांकन के साथ भुगतान किए बिना वापस कर दिया गया था। दिनांक 31.1.2006 को पंद्रह दिनों के भीतर राशि का भुगतान करने के लिए अभियुक्त को मांग का कानूनी नोटिस भेजा गया था किंतु जब तामील किए बिना उक्त नोटिस को लौटा दिया गया था, परिवाद मामला दाखिल किया गया था। परिवाद याचिका में कथन किया गया है कि स्वयं अभियुक्त द्वारा डाकिया के माध्यम से नोटिस की वापसी करवा दी गयी थी यद्यपि उसी पता पर अभियुक्त अपने परिवार के अनेक सदस्यों के साथ निवास कर रहा था जिसे परिवादी ने विचारण के दौरान सिद्ध किया।

4. अभिलेख के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि परिवादी ने इस मामले में तीन गवाहों का परीक्षण किया है। सी॰ डब्ल्यू॰ 1 अरविंद कुमार सिंह ने परिवादी के मामले का समर्थन किया है। किंतु, इस गवाह के साक्ष्य से स्पष्ट है कि उसने कथन किया है कि अभियुक्त द्वारा परिवादी को दिनांक 4.11.2005 को चेक दिया गया था और उसने अपने प्रति परीक्षण में भी स्वीकार किया है कि चेक दिनांक 4.11.2005 को दिया गया था।

5. सी॰ डब्ल्यू॰ 2 सुनील कुमार कुजूर, इलाहाबाद बैंक के प्रबंधक हैं जिन्होंने चेक की पर्ची सिद्ध किया है जिसे परिवादी द्वारा जमा किया गया था जिसे प्रदर्श 1 के रूप में चिन्हित किया गया था। उन्होंने चेक के पृष्ठ भाग पर मुहर को भी सिद्ध किया है जिसे प्रदर्श 2 के रूप में चिन्हित किया गया था। उन्होंने चेक का रिटर्न मेमो भी सिद्ध किया है जिसे प्रदर्श 3 के रूप में चिन्हित किया गया था और इसके अनुसरण में परिवादी को दी गयी सूचना प्रदर्श 3/1 के रूप में चिन्हित की गयी थी।

6. सी॰ डब्ल्यू॰ 3 स्वयं परिवादी है जिसने अपने मामले का समर्थन किया है और चेक भी सिद्ध किया है जिसे प्रदर्श 4 के रूप में चिन्हित किया गया था। कानूनी नोटिस प्रदर्श 5 के रूप में चिन्हित की गयी थी, लिफाफा प्रदर्श 5/1 के रूप में चिन्हित किया गया था और अभिस्वीकृति प्रदर्श 5/2 के रूप में चिन्हित की गयी थी। बचाव पक्ष की ओर से परिवादी के प्रति परीक्षण से प्रकट है कि उसने स्वीकार किया है कि दिनांक 4.11.2005 को प्रातः लगभग 10-11 बजे परिवादी को चेक दिया गया था। उसने यह भी स्वीकार किया है कि परिवादी अभियुक्त ने उसके विरुद्ध सी॰ पी॰ केस सं॰ 494 वर्ष 2006 दाखिल किया था जो पगड़ी की राशि से संबंधित झूठा मामला है।

7. अभियुक्त का बचाव यह है कि कोई विद्युत बकाया नहीं था, बल्कि देखरेख के लिए अभियुक्त द्वारा परिवादी को चेक दिया गया था किंतु परिवादी ने 1,20,000/- रुपयों की राशि वापस नहीं किया था जिसे अभियुक्त द्वारा परिवादी को किराया पर परिवादी की दुकान लेते समय पगड़ी के रूप में दिया गया था जिसके लिए एक अन्य मामला भी लंबित था। अभियुक्त ने अपना परीक्षण डी॰ डब्ल्यू॰ 1 के रूप में किया था और अपने साक्ष्य में अपने मामले का समर्थन किया है। अभियुक्त ने अपने खाता के पासबुक को प्रदर्श A के रूप में सिद्ध किया है, जो दर्शाता है कि स्वयं खाता दिनांक 8.11.2005 को खोला गया था। चेक बुक को प्रदर्श B के रूप में सिद्ध किया गया है जो दर्शाता है कि दिनांक 10.11.2005 को अभियुक्त को चेक बुक जारी किया गया था। यह प्रतीत होता है कि चेक सं॰ 0104431, जो इस मामले का विषयवस्तु है, स्वयं उक्त चेक बुक का है।

8. परिवादी अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि परिवादी अवर न्यायालय में चेक प्रस्तुत करके और इस तथ्य को सिद्ध करके अपना मामला सिद्ध करने में सक्षम रहा है कि इसे समय के भीतर उसके द्वारा बैंक में जमा किया गया था और जब चेक का अनादर किया गया था, अभियुक्त को मांग की कानूनी नोटिस भेजी गयी थी और बाद में जब धन वापस लौटाया नहीं गया था, परिवाद याचिका दाखिल की गयी थी। तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि एन॰ आई॰ एक्ट की धाराओं 118 एवं 139 के अधीन अभियुक्त के विरुद्ध उपधारणा है जिसका खंडन करने में अभियुक्त सक्षम नहीं हुआ है और तद्नुसार, विचारण न्यायालय ने सही प्रकार से अभियुक्त को दोषसिद्ध और दंडादेशित किया है। यह निवेदन भी किया गया है कि विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पूर्णत: अवैध है, क्योंकि एकमात्र आधार जिस पर अभियुक्त को दोषमुक्त किया गया है यह है कि चेक सौंपे जाने की तिथि पर अर्थात् दिनांक 4.11.2005 को अभियुक्त द्वारा खाता तक नहीं खोला गया था और केवल उक्त आधार पर विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि प्रतिफल की अस्तित्वहीनता की अत्यन्त अधिसंभावना है और विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय को अपास्त कर दिया है। तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि यह सुयोग्य मामला है जिसमें विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय के निर्णय को अपास्त कर दिया जाए और विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के आदेश को मान्य ठहराया जाए।

9. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय में कोई अवैधता नहीं है, क्योंकि अभियुक्त यह सिद्ध करने में सक्षम रहा है कि उसके द्वारा खाता दिनांक 8.11.2005 को खोला गया था और दिनांक 10.11.2005 को उसे चेक बुक जारी किया गया था। विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया है कि चेक दिनांक 4.11.2005 को सौंपा गया था और परिवादी जिसका परीक्षण सी॰ डब्ल्यू॰ 3 के रूप में किया गया है, ने भी अपने प्रति परीक्षण में स्वीकार किया है कि दिनांक 4.11.2005 को उसे चेक सौंपा गया था। मामले के उस दृष्टिकोण में, तिथि जिस पर चेक अभिकथित रूप से अभियुक्त द्वारा परिवादी को सौंपा गया बताया जाता है, उस तिथि पर चेक अभियुक्त के पास उपलब्ध ही नहीं था, अत: उक्त तिथि पर परिवादी को चेक सौंपे जाने का प्रश्न ही नहीं था। यह अभियुक्त का मामला सत्य बनाता है कि पगड़ी राशि वापस लौटाने के लिए पक्षों के बीच विवाद था और किसी विद्युत बकाया को चुकता करने के लिए उक्त चेक परिवादी को नहीं दिया गया था। तद्नुसार विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि आक्षेपित निर्णय में कोई अवैधता नहीं है और इसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

10. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर और अभिलेख का परिशीलन करने पर, मैं पाता हूँ कि यद्यपि परिवादी ने अपने परिवाद याचिका में कथन किया है कि दिनांक 31.12.2005 का पोस्ट डेटेड चेक अभियुक्त द्वारा उसे दिया गया था किंतु संपूर्ण परिवाद याचिका में चेक दिए जाने की तिथि कथित नहीं की गयी है। परिवादी के मुख्य परीक्षण में भी, जिसका सी॰ डब्ल्यू॰ 1 के रूप में परीक्षण किया गया है, चेक दिए जाने की तिथि उसके द्वारा कथित नहीं की गयी है। किंतु, सी॰ डब्ल्यू॰ 1 अरविंद कुमार सिंह ने कथन किया है कि दिनांक 4.11.2005 को अभियुक्त द्वारा परिवादी को चेक दिया गया था और उसने अपने प्रति परीक्षण में इस तथ्य को दोहराया है। पुन: परिवादी ने सी॰ डब्ल्यू॰ 3 के रूप में भी अपने प्रति परीक्षण में स्वीकार किया है कि दिनांक 4.11.2005 को उसे उक्त चेक दिया गया था। बचाव पक्ष ने अभिलेख पर प्रदर्श A अर्थात् पासबुक लाया है जो दर्शाता है कि खाता स्वयं दिनांक 8.11.2005 को

खोला गया था और चेकबुक प्रदर्श B दर्शाता है कि इसे दिनांक 10.11.2005 को उसे जारी किया गया था और चेक जो वर्तमान मामले का विषयवस्तु है, स्वयं उक्त चेक बुक का था। इस प्रकार, अभियुक्त सिद्ध करने में सक्षम रहा है कि प्रश्नगत चेक दिनांक 4.11.2005 को परिवादी को कभी नहीं सौंपा जा सकता था जिस तिथि पर परिवादी चेक पाने का दावा करता है। चेक सौंपे जाने की यह तिथि केवल भूल नहीं कही जा सकती है क्योंकि सी॰ डब्ल्यू॰ 1 अरविंद कुमार सिंह द्वारा यही तिथि दी गयी है और जैसा स्वयं परिवादी सी॰ डब्ल्यू॰ 3 द्वारा भी स्वीकार किया गया है। इसके अतिरिक्त, यद्यपि परिवादी ने अपनी परिवाद याचिका में कथन किया है कि कानूनी नोटिस डाकिया के मौनानुकूलता के साथ तामिल किए बिना लौटा दिया गया था और उसने विचारण के क्रम में इस तथ्य को सिद्ध करने का परिवाद याचिका में वचन दिया था, किंतु अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि परिवादी द्वारा यह दर्शाने के लिए कोई साक्ष्य नहीं दिया गया है कि डाकिया और अभियुक्त के बीच कोई मौनानुकूलता थी जिस कारण उक्त नोटिस 'सदैव अनुपस्थित' पृष्ठांकन के साथ वापस लौटा दी गयी थी। परिवादी ने इस संबंध में कोई स्वतंत्र गवाह प्रस्तुत नहीं किया है, यद्यपि उसने अपने साक्ष्य में कथन किया है कि नोटिस उस पता पर भेजी गयी थी जहाँ अभियुक्त का परिवार निवास करता था। यह दर्शाने के लिए परिवादी द्वारा साक्ष्य नहीं दिया गया है कि उक्त नोटिस अभियुक्त की मौनानुकूलता से लौटायी गयी थी। यह स्पष्टतः उपदर्शित करता है कि एन॰ आई॰ एक्ट की धारा 138 के परन्तुक (b) के अधीन आवश्यक अभियुक्त पर मांग की नोटिस के तामीले की आवश्यकता पूरी नहीं की गयी थी।

11. मामले के इस दृष्टिकोण में, मेरा सुविचारित मत है कि अभियुक्त अपने विरुद्ध उपधारणा का खंडन करने में सक्षम रहा है और प्रतिफल का अस्तित्व ही अत्यन्त संदेहास्पद बना दिया गया है। मामले के उस दृष्टिकोण में परिवादी को समस्त युक्तियुक्त संदेह के परे अपना मामला सिद्ध करना था, किंतु परिवादी ऐसा करने में विफल रहा। इस संबंध में, **भारत बैरल एंड ड्रम मैन्यूफैक्चरिंग कंपनी बनाम अमीन चंद प्यारेलाल, (1993)3 SCC 35** (पैरा 12), मामले में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विधि सुनिश्चित की गयी है जिसमें निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:–

> *"12. ;gk Åij xkj fd, x, vud fu.k;k ij fopkj dju ij fofèk dh lkeu vkrh voLFkk ;g g fd tc ,d ckj çkfeljh ukV dk fu"iknu Lohdkj fd;k tkrk g] èkkjk 118(a) d vèkhu mièkkj.kk mnHkr gkxh fd ;g çfrQy }kjk lefFkr gA ,lh mièkkj.kk [kMuh; gA çfroknh vfèklHkk0; çfrokn djd çfrQy dh vfLrRoghurk fl) dj ldrk gA ;fn ;g n'kkr g, fd çfrQy dk vfLrRo vufèklHkk0; vFkok lngkLin Fkk vFkok ;g voèk Fkk] çfroknh }kjk çek.k d vkjfHkd Hkkj dk fuogu fl) fd;k tkrk g] Hkkj okuh ij pyk tk,xk tk bl rF; d ekey d :i e fl) dju d fy, ckè; gkxk vkj bldk fl) dju e foQyrk ml ijØkE; fy[kr d vkèkkj ij vurk"k çnku dk xj gdnkj cuk,xhA çfrQy dh vfLrRoghurk fl) dju dk çfroknh d Åij ck> ;k rk çR;{k ;k fQj ifjfLFkfr;k] ftu ij og fo'okl djrk g] d lnHk e vfèklHkk0; rkvk dh cgyrk dk vfHky[k ij ykdj gk ldrk gA ,lh fLFkfr e] okuh fofèk d vèkhu ekey e fn, x, okuh d lk{; lfgr leLr lk{; ij fo'okl dju dk gdnkj gA ;fn tgk çfroknh çfrQy dh vfLrRoghurk n'kkdj çek.k d vkjfHkd Hkkj dk fuogu dju e foQy jgrk g] okuh lnk gh viu i{k e èkkjk 118(a) d vèkhu mnHkr gku oky mièkkj.kk d ykHk dk gdnkj vfHkfuèkkfjr fd;k tk,xkA U;k;ky;*

*çfroknh ij çR;{k lk{; ndj çfrQy d vfLrRo dk vfl) dju ij tkj ugh Mky ldrk g D;kfd udkjkRed lk{; dk vfLrRo u rk lHko g vkj u gh vuè;kr fd;k x;k g vkj ;fn bl fn;k tkrk g] bl lng l n[kuk gkxkA çfrQy fn, tku l dkjk budkj çdVr% dkb cpko çrhr ugh gkrk gA dN Hkh tk vfèkl Hkk0; g dk oknh ij fl) dju dk Hkkj Mkyu dk ykHk yu d fy, vfHky[k ij ykuk gh gkxkA mièkkj.kk dk vfl) dju d fy, çfroknh dk , l rF;k vkj ifjfLFkfr;k dk vfHky[k ij ykuk gkxk ftu ij fopkj djd U;k;ky; ;k rk fo'okl dj ldrk g fd çfrQy dk vfLrRo ugh Fkk vFkok bldh vfLrRoghurk bruh vfèkl Hkk0; Fkh fd dkb food'kh y 0;fDr ekey d rF;k d vèkhu bl vfHkopu ij Ñ%; djxk fd ;g fo|eku ugh FkkA** (tkj fn;k x;k)*

पूर्वोल्लिखित निर्णय **रंगप्पा बनाम श्री मोहन, 2010 (3) JCR 16 (SC)** में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अनुमोदन करते हुए उद्धृत किया गया है। ऊपर अधिकथित विधि इस मामले के तथ्यों पर पूर्णतः प्रयोज्य है।

12. विधि के पूर्वोल्लिखित सुनिश्चित सिद्धांतों की दृष्टि में मेरा सुविचारित दृष्टिकोण है कि इस तथ्य की दृष्टि में कि अभियुक्त ने यह दर्शाते हुए कि प्रतिफल का अस्तित्व अनधिसंभाव्य अथवा संदेहास्पद था, प्रमाण के आरंभिक बोझ का निर्वहन किया, अपीलार्थी परिवादी अवर न्यायालय में समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अपना मामला सिद्ध करने में विफल रहा। इसके अतिरिक्त, जैसी चर्चा ऊपर की गयी है, एन॰ आई॰ एक्ट की धारा 138 के परन्तुक (b) के अधीन आवश्यक अभियुक्त पर मांग के नोटिस के तामीले की सांविधिक आवश्यकता भी पूरी नहीं की गयी थी।

13. पूर्वोक्त कारणों से, मैं पाता हूँ कि विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय सही प्रकार से इस निष्कर्ष पर आया है कि वर्तमान मामले में प्रतिफल की अस्तित्वहीनता की अत्यधिक अधिसंभाव्यता है और अभियुक्त अधिसंभाव्य प्रतिवाद करने में सफल हुआ है और अभियुक्त द्वारा उपधारणा खंडित की गयी है और तद्नुसार विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि का निर्णय और दंडादेश अपास्त कर दिया गया है। मैं विद्वान अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय में कोई अवैधता नहीं पाता हूँ और इसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

14. परिणामस्वरुप, मैं इस अपील में गुणागुण नहीं पाता हूँ जिसे तद्नुसार खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efrx.k

हीरा मरांडी एवं एक अन्य

cuke

झारखंड राज्य

Criminal Appeal (DB) No. 723 of 2002. Decided on 21st December, 2011.

सत्र विचारण सं॰ 181 वर्ष 1999 में श्री हरीश चंद्र मिश्रा, विद्वान सत्र न्यायाधीश, देवघर द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 5.9.2002 और दिनांक 7.9.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 302/324–हत्या–घोर उपहति–आजीवन कारावास और प्रत्येक को 5000/- रुपयों का जुर्माना अधिनिर्णीत–चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा और अन्वेषण अधिकारी द्वारा दर्ज निष्कर्षों द्वारा अभियोजन मामला संपुष्ट किया गया–घटना विवादित भूमि

पर हुई थी जिस पर अपीलार्थीगण और अन्य अभियुक्तगण द्वारा अंशतः खेती की जाती थी किंतु मृत शरीर कहीं और पाया गया था–मात्र इसलिए कि प्राथमिकी में नामित अभियुक्तगण में से कुछ को दोषमुक्त कर दिया गया है, अपीलार्थीगण इसका लाभ नहीं पा सकते थे–इसी प्रकार से, मात्र इसलिए कि प्राथमिकी में नामित तीन अभियुक्तगण को दोषमुक्त कर दिया गया था, साक्ष्य जो इन दो अपीलार्थीगण के विरुद्ध संगत है, पर अविश्वास नहीं किया जा सकता है–अपील खारिज। (पैराएँ 7 से 11)

अधिवक्तागण.–M/s. B.K. Prasad, Bakshee Bibha, For the Appellant; Mr. Krishna Shankar, For the Respondent.

न्यायालय द्वारा.–यह दांडिक अपील सत्र विचारण सं॰ 181 वर्ष 1999, मधुपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 85 वर्ष 1999 के तत्सम, में विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 5.9.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 7.9.2002 के दंडादेश के विरुद्ध निर्देशित है जिसके द्वारा विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अपीलार्थीगण को भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 302/324 के अधीन दंडनीय अपराधों का दोषी अभिनिर्धारित किया और तद्नुसार उनको धारा 302 के अधीन आजीवन कठोर कारावास भुगतने और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 324 के अधीन एक वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला, जैसा फागो राम हंसदा द्वारा दर्ज लिखित रिपोर्ट से प्रतीत होता है, यह है कि दिनांक 26.5.1999 की सुबह में सूचक का पिता अभियुक्तगण अर्थात् हीरा मरांडी, बाल गोविन्द मरांडी, गोकुल मरांडी, शोभा मरांडी और कारु हंसदा को विवादाधीन भूमि को जोतने से रोकने के लिए गया था। सूचक भी अपने पिता के पीछे गया। अभिकथित किया गया है कि अभियुक्तगण, जो भुजाली, लाठी, आदि से लैस थे, ने प्रयास किया और जमुना हंसदा पर उपहति कारित किया। विनिर्दिष्टतः अभिकथित किया गया है कि हीरा मरांडी और बाल गोविन्द मरांडी, जो भुजाली से लैस थे, ने मृतक की गर्दन और मस्तक पर उपहति कारित किया जबकि शेष अभियुक्तगण, जो लाठी से लैस थे, ने उस पर प्रहार किया था। जब सूचक ने अपने पिता को बचाने का प्रयास किया, अभियुक्तगण द्वारा उसका पीछा भी किया गया था और प्रहार किया गया था जिससे उसने उपहतियों को पाया था। उसने यह भी प्रकट किया है कि उपहति पाने के बाद वह कुछ क्षणों के लिए बेहोश हो गया, और जब उसे होश आया, वह पुलिस थाना पहुँचा और इस लिखित रिपोर्ट को दाखिल किया। लिखित रिपोर्ट के आधार पर, भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 307, 326, 324, 323 और 34 के अधीन दिनांक 26.5.1999 को मधुपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 85 वर्ष 1999 नामित अभियुक्तगण के विरुद्ध दर्ज किया गया था। चूँकि वाद के संस्थापन के बाद जमुना हंसदा की उपहतियों के चलते मृत्यु हो गयी, दिनांक 27.5.1999 के आदेश के तहत भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 जोड़ी गयी थी।

3. अन्वेषण प्रारम्भ हुआ और समापन पर भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 323, 324, 326, 307, 302 और 34 के अधीन पाँच अभियुक्तगण के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया गया था। मामला सुपुर्द किए जाने के बाद अपीलार्थीगण सहित समस्त नामित पाँच अभियुक्तगण के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 323, 324, 326, 307 और 302 के अधीन आरोपों को विरचित किया गया था। चूँकि उन्होंने निर्दोषिता का अभिवचन किया, उनका विचारण किया गया था।

4. अभियोजन ने आरोपों को सिद्ध करने के लिए कुल मिलाकर 13 गवाहों का परीक्षण किया जिसमें से फागो राम हंसदा (सूचक), बसोनी देवी (मृतक की पत्नी) और देवंती देवी (सूचक की पत्नी) का परीक्षण क्रमशः अ॰ सा॰ 1, अ॰ सा॰ 2 और अ॰ सा॰ 3 के रूप में किया गया था। दुखन मरांडी (अ॰ सा॰ 4) और रावन मरांडी (अ॰ सा॰ 5) को घटना का गवाह अभिकथित किया गया है। अनीता देवी (अ॰ सा॰ 6), लखीन्द्र मरांडी (अ॰ सा॰ 7), जीतन हंसदा (अ॰ सा॰ 8), मेलोडी (अ॰ सा॰ 9), भोला तुरी (अ॰

सा॰ 10) ने अभियोजन मामले का समर्थन नहीं किया है और उन्हें पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया है। योगेन्द्र नारायण सिंह (अ॰ सा॰ 11) डॉक्टर है जिन्होंने जमुना हंसदा के मृत शरीर का शव परीक्षण किया था जबकि डॉ॰ विश्वनाथ दास (अ॰ सा॰ 12) ने सूचक का इलाज किया था और उपहति रिपोर्ट सिद्ध किया था। रणविजय सिंह अन्वेषण अधिकारी है जिसका परीक्षण अ॰ सा॰ 13 के रूप में किया गया है। फागो राम हंसदा (सूचक) अ॰ सा॰ 1, बसोनी देवी (अ॰ सा॰ 2) और देवंती देवी (अ॰ सा॰ 3) ने अभियोजन मामले का पूरा समर्थन किया है और उन्होंने कथन किया है कि घटना की तिथि पर मृतक जमुना हंसदा विवादित खेत जोते जाने के विरुद्ध आपत्ति करने गया था किंतु अभियुक्तगण, जो भुजाली और लाठी से लैस थे, ने उसकी गर्दन, मस्तक और शरीर के अन्य भाग पर प्रहार किया। उपहति प्राप्त करने के बाद जमुना हंसदा गिर गया और बाद में उपहतियों के कारण दम तोड़ दिया। इन गवाहों द्वारा कथन किया गया है कि सूचक फागो राम हंसदा ने अपने पिता को बचाने का प्रयास किया किंतु अभियुक्तगण द्वारा उसका भी पीछा किया गया था और उस पर प्रहार किया गया था और उसने उपहति प्राप्त किया था। दुखन मरांडी (अ॰ सा॰ 4) और रावन मरांडी (अ॰ सा॰ 5) ने भी इस तथ्य का समर्थन किया है कि हीरा मरांडी और बालगोविन्द मरांडी ने मृतक पर भुजाली से प्रहार कारित किया था जिसके परिणामस्वरुप उसने उपहतियाँ पायी और उसकी मृत्यु हो गयी। उन्होंने आगे इस तथ्य का समर्थन किया है कि सूचक पर भी अभियुक्तगण द्वारा प्रहार किया गया था जब उसने अपने पिता को बचाने के लिए मध्यक्षेप किया। डॉ॰ योगेन्द्र नारायण सिंह (अ॰ सा॰ 11) ने निम्नलिखित उपहतियों को पाया था: (i) ट्रेचिया तक गर्दन तक गहरा 5" x 2" आकार वाला गर्दन के पीछे तेज धारदार हथियार से कटने की उपहति; (ii) बाएँ स्केपुलर क्षेत्र पर तेज भेदती उपहति, आकार 2" x 2" आकार वाला गर्दन के पीछे तेज धारदार हथियार से कटने की उपहति; (iii) बाएँ कान के बगल में 1" x 1/2" की तेज धारदार हथियार से कटने की उपहति। (3) खोपड़ी का विच्छेद किए जाने पर ब्रेन मैटर पेल था। (3) विच्छेद किए जाने पर छाती, फेफड़ा और दिल पेल पाया गया था। (4) एबडोमन, स्पलीन, लीवर और किडनी विच्छेदन किए जाने पर पेल थे। डॉक्टर ने प्रदर्श 2 के रूप में शव परीक्षण रिपोर्ट सिद्ध किया है।

डॉ॰ विश्वनाथ दास (अ॰ सा॰ 12) ने दिनांक 26.9.1992 को प्रात: 10 बजे डी॰ सी॰ अस्पताल, मधुपुर में सूचक का परीक्षण किया था और उसके शरीर पर निम्नलिखित उपहतियों को पाया था:–

(i) ck;h dèk vkj ck;h ckg d mijh fgLl ij ykyjx dh 4"x1" vfLFk rd xgjh dVh t[eA

(ii) ck;h dykb d fiNy Hkkx d mij yky jx dk 2"x1/2" ekli'kh rd xgjk dVu dk t[eA

(iii) ck;h ckg d fupy v'k d mij ikf'od yky jx dk v)pnkdkj 2"x 1/2" ekli'kh rd xgjk fonh.k t[eA

(iv) ,fifeMykb l 2"nj [kkiMh d ck; fgLl ij yky jx dk 2"x1/4" dk vfLFk rd xgjk fonh.k [ku cgrk t[eA

(v) pgj d ck; fgLl ij yky jx dk 1"x1/4" dk ekli'kh rd xgjk fonh.k t[eA

उक्त उपहतियों के अलावा शरीर के अन्य भागों पर उपहति, खरोंच और लालिमा को भी डॉक्टर ने ध्यान में लिया था।

5. अन्वेषण अधिकारी (अ॰ सा॰ 13) ने अपने द्वारा किए गए अन्वेषण का समर्थन किया है, अपने अभिसाक्ष्य को पैरा–5 में घटनास्थल का वर्णन किया है और आगे पक्षद्रोही गवाहों के बयानों को आई॰ ओ॰ को निर्दिष्ट किया गया था जिसे उसने स्वीकार किया था और कहा था कि उन गवाहों ने उसके समक्ष ऐसे बयान दिए थे।

6. अपीलार्थीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री बी॰ प्रसाद ने आक्षेपित निर्णयों को इस आधार पर चुनौती दिया है कि अभियोजन निष्पक्षत: सामने नहीं आया है। सूचक ने प्राथमिकी में पाँच अभियुक्तगण को नामित किया था किंतु विद्वान सत्र न्यायाधीश ने तीन अभियुक्तगण की उपस्थिति पर अविश्वास किया था और उनको समस्त आरोपों से दोषमुक्त कर दिया था और यह भी संप्रेक्षित किया गया था कि शायद भूमि विवाद के कारण उनको झूठा आलिप्त किया गया था। विद्वान अधिवक्ता ने इस बिंदु पर काफी जोर दिया है कि अभियोजन घटनास्थल और घटना के समय को स्थापित करने में विफल रहा है। तर्कों के क्रम में, उन्होंने न्यायालय का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया है कि घटना स्थल पर खून का धब्बा नहीं पाया गया था। अभियोजन गवाहों के अनुसार घटना विवादित भूमि पर हुई थी जिसको अपीलार्थीगण और अन्य अभियुक्तगण द्वारा अंशत: जोता गया था किंतु मृत शरीर शोभा देवी के खेत में पाया गया था। अभियोजन गवाहों ने यह प्रकट नहीं किया है कि किस प्रकार जमुना हंसदा का मृत शरीर शोभा देवी के खेत में पड़ा था। उन्होंने आगे इंगित किया है कि मृतक का पेट मदिरा के गंध के साथ आधे पचे भोजन से भरा था, ब्लैडर खाली था और फिकल मैटर कम था। डॉक्टर का यह निष्कर्ष उपदर्शित करता है कि सुबह में कोई घटना नहीं हुई थी बल्कि मृतक ने खाना खाने के बाद किसी अन्य से उपहतियाँ प्राप्त की थी किंतु भूमि विवाद के कारण इन अपीलार्थीगण को मामले में फँसाया गया है। आगे निवेदन किया गया है कि अ॰ सा॰ 2 और 3 ने अपने अभिसाक्ष्यों में स्वीकार किया है कि उपहति पाने के बाद मृतक को अस्पताल ले जाया गया था किंतु रास्ते में ही उसकी मृत्यु हो गयी। यह तथ्य अन्य गवाहों के साक्ष्य से समर्थन नहीं पाता है जिन्होंने कहा है कि मृत शरीर शोभा देवी के खेत में पड़ा था और घटनास्थल पर ही उसकी मृत्यु हो गयी थी। निवेदन किया गया है कि डॉक्टर के अनुसार गर्दन पर कारित उपहति घातक थी और यह मृत्यु का कारण थी और इसलिए बाल गोविन्द द्वारा कारित उपहतियों को घातक वार नहीं माना जा सकता है और उसे भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषी अभिनिर्धारित नहीं किया जाना चाहिए था। इन अपीलार्थीगण और अन्य अभियुक्तगण के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 34 के अधीन आरोप विरचित नहीं किया गया है।

7. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने अपीलार्थीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों का जोरदार विरोध किया है और आक्षेपित निर्णयों का समर्थन किया है। निवेदन किया गया है कि सूचक घायल गवाह है और उसने उसी घटना में उपहतियों को पाया था और उस पर अविश्वास करने का कारण नहीं है। केवल इसलिए कि प्राथमिकी में नामित अभियुक्तगण में से कुछ को दोषमुक्त कर दिया गया है, अपीलार्थीगण इसका लाभ नहीं पा सकते थे। जहाँ तक भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 34 के अधीन आरोप का संबंध है, भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 34 के मदद से विनिर्दिष्ट आरोप को विरचित किए बिना भी, यदि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य और अभियुक्तगण द्वारा किए गए प्रत्यक्ष कृत्य उपदर्शित करते हैं कि उनका सामान्य आशय था, धारा 34 की मदद से दोषसिद्धि का आदेश पारित किया जा सकता है।

8. हमने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का सावधानीपूर्वक संवीक्षण किया है और निर्णय का परिशीलन किया है। हम अपीलार्थीगण द्वारा दिए गए तर्कों में सार नहीं पाते हैं कि अभियोजन द्वारा घटनास्थल और घटना का समय सिद्ध नहीं किया गया है। दिनांक 27.5.1999 अर्थात् घटना के अगले दिन प्रात: 11 बजे शव-परीक्षण किया गया था और डॉक्टर के मतानुसार मृत्यु से बीता समय लगभग 36 घंटा था। यह उपदर्शित करता है कि घटना पिछले दिन के प्रात:काल के दौरान हुई थी। जहाँ तक इन दोनों अपीलार्थीगण द्वारा कारित उपहतियों का संबंध है, अ॰ सा॰ 1 से अ॰ सा॰ 5 तक के साक्ष्य उपदर्शित करते हैं कि वे भुजाली से लैस थे और उन्होंने मृतक के शरीर के गर्दन और उपरी हिस्से पर वार किया

था। डॉक्टर अ॰ सा॰ 12 ने सूचक का परीक्षण किया था जिसके शरीर पर अनेक कटे जख्म और उपहतियाँ थी और इन्हें उसके कंधे, उंगली और कान के पास कारित किया गया था।

9. अब घटनास्थल पर आते हुए, अभियोजन गवाहों ने निष्पक्षत: कथन किया था कि अपीलार्थीगण और उनके सहयोगियों द्वारा विवादित भूमि को जबरन जोता जा रहा था और वे भुजाली जैसे घातक हथियार से लैस थे। अ॰ सा॰ 1 से अ॰ सा॰ 5 तक का और अ॰ सा॰ 13 का साक्ष्य इंगित करता है कि खेत का हिस्सा जोता गया था और तब घटना हुई थी। सूचक जो घायल गवाह है ने इंगित किया है कि जब वह अपने पिता जमुना हंसदा (मृतक) को बचाने का प्रयास किया, अपीलार्थीगण द्वारा उसका पीछा किया गया था और भुजाली से उस पर उनके द्वारा प्रहार किया गया था। ऐसा नहीं है कि घटनास्थल, जहाँ अभिकथित घटना हुई थी, की सतह चिकनी/कड़ी/पक्की थी जिस पर आसानी से खून के धब्बों का पता लगाया जा सकता था बल्कि यह खेत था जिसे अंशत: जोता गया था और इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रश्नगत भूमि मुलायम मिट्टी वाली कृषि भूमि थी। इसके अतिरिक्त इस मामले में जहाँ चश्मदीद गवाह उपलब्ध हैं, घटना स्थल से रक्त रंजित मिट्टी को जब्त नहीं किया जाना अत्यन्त महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि उन चश्मदीद गवाहों के साक्ष्य संगत, और विश्वसनीय हैं। यह विचार किया गया है कि अ॰ सा॰ 1 से अ॰ सा॰ 5 तक के साक्ष्य इस बिंदु पर संगत हैं कि स्थल, जिसे अभियुक्तगण द्वारा अंशत: जोता गया था, पर मृतक और सूचक पर प्रहार कारित किया गया था। अत: हम इस प्रतिवाद से सहमत नहीं हैं कि केवल इसलिए कि घटनास्थल से रक्तरंजित मिट्टी जब्त नहीं किया गया था, अभियोजन घटनास्थल स्थापित करने में विफल रहा है।

10. यह विधि का सुनिश्चित सिद्धांत है कि साक्ष्य का संवीक्षण करते हुए अनाज और भूसा की कहानी अपनायी जानी चाहिए। केवल इसलिए कि प्राथमिकी में नामित तीन अभियुक्तगण को दोषमुक्त कर दिया गया था, साक्ष्य, जो इन दोनों अपीलार्थीगण के विरुद्ध संगत है, पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। चूँकि मृतक पर कड़े और भोथरे पदार्थ द्वारा कारित उपहतियाँ नहीं पायी गयी थी, तीन अभियुक्तगण, जो अभिकथित रूप से लाठी से लैस थे, को दोषमुक्त कर दिया गया था किंतु जहाँ तक इन दो अपीलार्थीगण का संबंध है; अभिलेख पर उपलब्ध संगत साक्ष्य यह है कि वे भुजाली से लैस थे और उन्होंने मृतक और सूचक पर उपहति कारित करने के लिए हथियार का उपयोग किया था। अब जहाँ तक भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 34 की प्रयोज्यता और सहायता का संबंध है, अन्वेषण अधिकारी ने अपीलार्थीगण और अन्य अभियुक्तगण द्वारा किए गए विनिर्दिष्ट अपराधों के लिए भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 34 की मदद से आरोप-पत्र दाखिल किया था किंतु अनवधानता के कारण भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 34 के अधीन आरोप विरचित नहीं किया गया था। अब हमें यह विचार करना है कि क्या भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 34 की मदद के बिना आरोप विरचित किए जाने पर दोषसिद्धि का निर्णय पारित किया जा सकता था? हमारा दृष्टिकोण है कि अभियुक्तगण द्वारा निभायी गयी भूमिका, उनके द्वारा उपयोग किए गए हथियार और उपहति कारित करने के लिए चुना गया शरीर का भाग यह विचार करने के लिए प्रासंगिक है कि क्या अपराध करने का उनका सामान्य आशय था या नहीं। वर्तमान मामले में, दोनों अपीलार्थीगण, जो भुजाली से लैस थे, ने हथियार का सक्रिय उपयोग किया था और मृतक के शरीर के महत्वपूर्ण अंगों पर उपहतियों को कारित किया था। इतना ही नहीं सूचक का पीछा भी किया गया था और उस पर प्रहार किया गया था, और उसने अनेक कटने की उपहतियों और जख्मों को पाया था।

11. उपर की गयी चर्चा की दृष्टि में, हम इस अपील में गुणागुण नहीं पाते हैं और आक्षेपित निर्णय में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। तद्नुसार, सत्र विचारण सं॰ 181 वर्ष 1999 में विद्वान सत्र न्यायाधीश, देवघर द्वारा पारित दोष सिद्धि का निर्णय और दंडादेश मान्य ठहराया जाता है।

ekuuh;k iue JhokLro] U;k;efr

विष्णु दयाल उर्फ विष्णु दयाल गुप्ता एवं एक अन्य

cuke

झारखंड राज्य

W.P. (Cr.) No. 222 of 2010. Decided on 17th January, 2012.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 173—भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 379, 406, 467, 475 एवं 120B—भारत का संविधान—अनुच्छेद 20 (2) एवं 226—दांडिक कार्यवाहियों की बहुलता—एकल घटना के संबंध में विभिन्न पुलिस थानों द्वारा कई अन्वेषण नहीं किये जा सकते हैं—बिष्टुपुर पुलिस थाना के कहने पर शुरू की गयी कार्यवाही संविधान का और दं॰ प्र॰ सं॰ द्वारा प्रावधानित विधिक प्रक्रिया का उल्लंघन करती है—बिष्टुपुर पुलिस मामला के संबंध में कार्यवाहियाँ अभिखंडित। (पैराएँ 7, 11 से 16)

निर्णयज विधि.—AIR 1992 SC 604; 2004 Cr.L.J. 4219; AIR 2001 SC 2637—Relied on.

अधिवक्तागण.—M/s Sujit Narayan Prasad, Birendra Burman, For the Petitioners; J.C. to S.C. III, For the Respondent.

आदेश

वर्तमान रिट याचिका बिष्टुपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 251 वर्ष 1995 जी॰ आर॰ सं॰ 2544 वर्ष 1995 के तत्सम, से उद्भूत होने वाली संपूर्ण दांडिक कार्यवाही को चुनौती देते हुए दाखिल की गयी है। अभिकथित अपराध भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 379, 420, 471 और 120B के अधीन हैं किंतु दिनांक 18.5.2009 को मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, जमशेदपुर द्वारा भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 379, 406, 467, 475 और 120B के अधीन संज्ञान लिया गया था जिसे आक्षेपित किया गया है।

2. याचीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने आरंभ में ही मेरे ध्यान में लाया है कि जी॰ आर॰ केस सं॰ 974 वर्ष 1996 और जी॰ आर॰ सं॰ 2544 वर्ष 1995 को मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी के न्यायालय, राँची से मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, जमशेदपुर के न्यायालय को अंतरित करने की प्रार्थना करते हुए दांडिक विविध सं॰ 5460 वर्ष 1996 (R) में दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 407 के अधीन कार्यवाही के अंतरण के लिए मामला दाखिल किया गया था किंतु, बाद में इसे वापस ले लिए जाने के कारण खारिज कर दिया गया था।

3. मामले के तथ्यों के अनुसार दिनांक 4 सितंबर 1988 से शुरू होकर दिनांक 30 मई, 1989 तक की अवधियों के बीच वाणिज्य कर विभाग के कार्यालय से अनेक एफ॰ 'फॉर्म' को गलत स्थान पर रख दिया गया था/चुरा लिया गया था। सहायक आयुक्त (आई॰ बी॰) जमशेदपुर के कार्यालय से अभिकथित रूप से चुराए गए 'डी॰', श्रृंखला के फॉर्म बाजार में प्रसारित पाए गए थे। उक्त फॉर्म के उपयोग का परिणाम राजस्व और राजकीय कोष को नुकसान में हुआ। राँची जिला के कोतवाली पुलिस थाना में केस सं॰ 163 वर्ष 1996 (याचिका के मेमो का परिशिष्ट-4) के तहत प्राथमिकी दर्ज की गयी थी। 'डी॰' श्रृंखला के 'एफ॰' फॉर्म सहित विभिन्न श्रृंखला में 'एफ॰' फॉर्म की संख्या उल्लिखित की गयी है।

4. विवरण, जिनके संबंध में कार्यवाही राँची में प्रगति पर है, को यहाँ नीचे चार्ट में संगणित किया जाता है:—

Sl. No.	Sl. No. of F forms	The businessmen outside the State in whose favour it has been issued.	Price	Remarks
1.	89-90/D-1761 50	M/s Rajadhiraj & Shivani/ Dalsda	4,73,200/-	Not issued from the office
2.	89-90/D-2505 93	-do-	2,38,000,/-	-do-
3.	89-90/D-4501 19	-do-	5,93,236/-	Jamshedpur Anchal office (theft)
4.	89-90/D-4501 21	-do-	4,18,100/-	-do-
5.	89-90/D-4500 96	-do-	2,20,2000/-	-do-
6.	89-90/D-4501 19	-do-	5,73,600/-	-do-
7.	90-91/D-4500 94	-do-	11,97,000/-	-do-
8.	90-91/D-4500 95	-do-	14,89,800/-	-do-
9.	91-92/D-2121 99	-do-	9,73,166/-	Not issued from the office
10.	91-92/D-1049 28	-do-	1126,246/-	-do-
11.	91-92/D-1049 72	-do-	12,97,122/-	-do-
12.	91-92/D-1049 27	-do-	37,57,201/-	-do-
13.	91-92/D-4500 85	-do-	5,73,600/-	-do-
14.	91-92/D-1138 84	M/s Bishanchand & Company Oil & Vanaspati	6,32,100/-	-do-
15.	93-94/D-4302 14	M/s Modi Vanaspati Manu. Co. Modi Nagar/Vanaspati	2,87,400/-	-do-
16.	93-94/D-4302 13	-do-	8,44,200/-	-do-
17.	93-94/D-4302 12	-do-	8,50,050	-do-

5. वर्ष 1989 से वर्ष 1994 तक से संबंधित घटना के संबंध में भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 420, 406, 467, 468, 471, 379 और 120B के अधीन और बिहार वित्त अधिनियम की धाराओं 49(1)(b), 49 (2) और 49 (3) के अधीन भी राँची में कोतवाली पी॰ एस॰ केस सं॰ 163 वर्ष 1996 (जी॰ आर॰ सं॰ 974 वर्ष 1996) दर्ज किया गया था।

6. बाद में, सं॰ D-450119, 450121, 450096, 450085, 450094 और 450095 के 'डी॰' श्रृंखला के 'एफ॰' फॉर्मों की अभिकथित चोरी के लिए जमशेदपुर जिला में एक अन्य मामला बिष्टुपुर पुलिस केस सं॰ 251 वर्ष 1995, जी॰ आर॰ सं॰ 2544 वर्ष 1995 के तत्सम, संस्थापित किया गया था और दिनांक 18.6.1996 को उक्त फॉर्मों के संबंध में प्राथमिकी संस्थापित की गयी थी। जमशेदपुर में

संस्थापित मामले के अनुसरण में कार्यवाही को वर्तमान याचिका में चुनौती दी गयी है। इस प्रकार, 'डी॰' श्रृंखला वाले ये छह 'एफ॰' फॉर्म प्राथमिकी की विषय वस्तु हैं।

7. वर्तमान रिट याचिका में संपूर्ण विवाद इस प्रश्न से संबंधित है कि राँची में एक कार्यवाही आरंभ की गयी थी जो जारी है और इसके जारी रहने के दौरान 'डी॰' श्रृंखला के 'एफ॰' फॉर्म अर्थात् प्रासंगिक समय पर अभिकथित तौर पर चुराए गए वही फॉर्म से संबंधित एक अन्य प्राथमिकी का दर्ज किया जाना पश्चातवर्ती कार्यवाही में अभिकथित किया गया है। अभिकथन यह है कि अन्वेषण जारी रहा और काफी समय बीतने के बाद बाजार में इन्हें पाया गया था जिन्हें याचीगण के मालों के संबंध में उपयोग किया गया था। 'एफ॰' फॉर्मों के संबंध में कार्यवाही राँची में जारी है और याचीगण के अनुसार अंतिम चरण पर है और साक्ष्य बंद किए जाने की संभावना है जिसे प्रत्यर्थी द्वारा विवादित नहीं किया गया है। भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 379, 420, 471, 120B के अधीन दर्ज बिष्टुपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 251 वर्ष 1995, जी॰ आर॰ सं॰ 2544 वर्ष 1995 के तत्सम से उद्भूत पश्चातवर्ती दांडिक कार्यवाही पुनः आरंभ हुई और वर्तमान रिट याचिका में चुनौती के अधीन है। पुलिस ने अन्वेषण पूरा किया है, आरोप-पत्र दाखिल किया है और संज्ञान लिया गया है। याची की शिकायत यह है कि साक्ष्य, तथ्यों और दस्तावेजों के उसी संवर्ग के लिए जो उसी संख्या वाले 'डी॰' श्रृंखला के 'एफ॰ फॉर्मों से संबंधित है के लिए पश्चातवर्ती कार्यवाही आरंभ की गयी है जबकि राँची में दर्ज मामला जी॰ आर॰ सं॰ 974 वर्ष 1996 लगभग समाप्ति पर है। इस प्रकार, याचीगण 'डी॰' श्रृंखला के उन्हीं 'एफ॰', फॉर्मों के लिए दो समानांतर कार्यवाही के अध्यधीन किए जा रहे हैं किंतु एक भिन्न पुलिस थाना अर्थात् बिष्टुपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 251 वर्ष 1995 द्वारा जो विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, राँची के न्यायालय में जी॰ आर॰ सं॰ 974 वर्ष 1996 का विषय वस्तु भी है। जोरदार तर्क किया गया है कि संविधान सुनिश्चित करता है कि देश के नागरिक को एक ही अपराध के लिए दो बार विचारित और दंडित नहीं किया जा सकता है। भारत के संविधान का अनुच्छेद 20 (2) "दोहरे परिसंकट के सिद्धांत'' पर विचार करता है। यह दो बार अभियोजन वर्जित करता है। यह प्रावधान अनुध्यात करता है कि यदि पहले दंड का आदेश पारित किया जा चुका है, तब पश्चातवर्ती चरण पर दूसरी बार कार्यवाही आरंभ नहीं की जाती है। स्पष्टतः राँची में आरंभ की गयी और जारी कार्यवाही में दंड का आदेश पारित किया जाना है। किंतु बाद में आरंभ की गयी कार्यवाही 'एफ॰' फॉर्म क्रमांक 89-90/D-450119, 89/90/D-450119, 89-90/D450 119, 90-91/D450094 और 90-91/D 450095 से संबंधित है। स्वीकृत रूप से इसी संख्या वाले ये 'एफ॰' फॉर्म जी॰ आर॰ केस सं॰ 974 वर्ष 1996 के विषयवस्तु हैं। यद्यपि शब्द 'अभियोजन' किसी विभागीय कार्यवाही को आच्छादित नहीं करेगा किंतु स्पष्टतः दांडिक कार्यवाही सम्मिलित करेगा। सर्वोच्च न्यायालय और अनेक उच्च न्यायालयों द्वारा आदेश दिया गया है कि संविधान के अनुच्छेद 20(2) में शब्द 'अभियोजन' द्योतक है और इसका अर्थ है कि एक अपराध के संबंध में उत्तरवर्ती दांडिक कार्यवाही की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। प्रत्येक नागरिक को जीवन का अधिकार है और यह अधिकार शांतिपूर्ण जीवन के अधिकार को सम्मिलित करता है और, इसलिए, संविधान का अनुच्छेद 20(2) एकल घटना, एक ही आरोपों और साक्ष्य के एक ही संवर्ग के संबंध में दांडिक कार्यवाही की बहुलता से नागरिक को परेशानी से बचाने के लिए है। **टी॰ टी॰ एंटनी बनाम केरल राज्य एवं अन्य, AIR 2001 Supreme Court 2637** मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश दिया कि एक ही संज्ञेय अपराध, एक ही घटना के लिए दूसरी प्राथमिकी दर्ज नहीं की जा सकती है। चूँकि दूसरी प्राथमिकी दर्ज नहीं की जा सकती है, परिणामतः एक ही संज्ञेय अपराध अथवा एक ही घटना के संबंध में प्रत्येक पश्चातवर्ती सूचना की प्राप्ति पर नया अन्वेषण नहीं किया जा सकता है। प्राथमिकी की

प्राप्ति पर अपराध स्टेशन डायरी में प्रविष्ट किया जाता है और संबंधित पुलिस थाना का प्रभारी–अधिकारी अपराध और उसी संव्यवहार अथवा उसी घटना के क्रम में किए गए संबंधित अपराधों का अन्वेषण करता है और अंततः दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 173 के अधीन रिपोर्ट दाखिल किया जाता है। विधि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 173 के अधीन अनेक रिपोर्टों को अनुध्यात नहीं करती है। एकल घटना के संबंध में विभिन्न पुलिस थानों द्वारा अनेकों अन्वेषण नहीं किए जा सकते हैं। पश्चातवर्ती कार्यवाही को अभिखंडित करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने पूर्वोक्त निर्णय के पैराग्राफ 27 में अभिनिर्धारित किया:–

> *^^lfoèkku d vuPNnk 19 vkj 21 d vèkhu ukxfjdk d ey vfèkdkjk vkj lK; vijkèk dk vUo"k.k dju dh ifyl dh 0;kid 'kfDr d chp U;k;ky; dk U;k;kfpr lryu LFkkfir djuk gkxkA ble dkb fookn ugh gk ldrk g fd n0 ç0 l0 dh èkkjk 173 dh mièkkjk (8) ifyl dk vfrfjDr vUo"k.k dju] vfrfjDr lk{; (ekf[kd vkj nLrkoth nkuk) çkIr dju vkj vfrfjDr fjikV vFkok fjikVk dk vxlfjr dju d fy, l'kDr cukrh gA fdr ukjx ekey (Åij) e lçf{kr fd;k x;k Fkk fd U;k;ky; dh vuefr l vfrfjDr vUo"k.k lpkfyr djuk lefpr gkxkA fdr vUo"k.k dh 0;kid 'kfDr n0 ç0 l0 dh èkkjk 173(2) d vèkhu vfre fjikV nkf[ky fd, tku d igy vFkok ckn e mÙkjorh çkFkfefd;k d nkf[ky fd, tku d ifj.kkeLo#i ,d ;k vfèkd lK; vijkèkk dk mnHkr dju okyh ,d gh ?kVuk d lcèk e ukxfjd dk çR;d le; u, vUo"k.k d vè;èkhu fd, tku dh vi{kk ugh djrh g cfYd ;g fn, x, ekey e vUo"k.k dh lkfofèkd 'kfDr d n#i;kx dk ekeyk gkxkA gekj nf"Vdk.k e ,d gh l0;ogkj d Øe e vfHkdfFkr :i l fd, x, mlh vFkok lcfèkr lK; vijkèk] ftld lcèk e çFke çkFkfedh d vulj.k e vUo"k.k vHkh tkjh g vFkok èkkjk 173(2) d vèkhu vfre fjikV nMkfèkdkjh dk vxlkfjr dj fn;k x;k g] d lcèk e nkf[ky f}rh; vFkok mÙkjorh çkFkfefd;k ij vkèkkfjr u, vUo"k.k dk ekeyk n0 ç0 l0 dh èkkjk 482 d vèkhu vFkok lfoèkku d vuPNn 226/227 d vèkhu 'kfDr d ç;kx d fy, l;kX; ekeyk gk ldrk gA***

8. उपकार सिंह बनाम वेद प्रकाश एवं एक अन्य, 2004 Cr. L.J. 4219, मामले में इसी दृष्टिकोण का अनुसरण किया गया था।

9. विद्वान अधिवक्ता का अगला निवेदन कार्यवाहियों में अभिकथित अपराधों के संबंध में है जिसमें भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 420, 406, 467, 468, 471, 379 और 120B के अधीन न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया गया है।

10. विद्वान अधिवक्ता प्रतिवाद करते हैं कि प्रासंगिक समय पर, जब फॉर्मों को गायब पाया गया था, याचीगण के विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज नहीं की गयी थी। यह भी स्पष्ट नहीं है कि क्या वर्ष 1988-89 में गायब फॉर्मों के संबंध में कोई रिपोर्ट दाखिल की गयी थी। जब वस्तुतः पता चला था कि फॉर्मों को चुरा लिया गया है। याचीगण का नाम आलोक में तब आया जब लंबी अवधि बीतने के बाद खुले बाजार में फॉर्मों का पता चला था।

11. मैं वर्तमान अभियोजन के संबंध में विद्वान अधिवक्ता के निवेदन से सहमत हूँ कि 'डी॰' श्रृंखला के वही छह फॉर्म रिट याचिका के विषय वस्तु हैं जो राँची में चल रही कार्यवाही के विषयवस्तु हैं। बिष्टुपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 251 वर्ष 1995 के तहत प्राथमिकी की विषयवस्तु सं॰ D4501, 450121, 450096,

450094 और 450095 वाले 'डी॰' श्रृंखला के 'एफ॰' फॉर्मों से संबंधित है। स्पष्टत: याचीगण एक साथ दो विचारणों का सामना कर रहे हैं और विद्वान अधिवक्ता का निवेदन यह है कि उन्हें दोहरे परिसंकट के अध्यधीन किया जा रहा है जो संविधान के विरुद्ध है। राँची के और जमशेदपुर के दोनों न्यायालयों ने संज्ञान लिया है चूँकि आरोप-पत्र दाखिल किया जा चुका है। मेरे ध्यान में यह भी लाया गया है कि जी॰ आर॰ सं॰ 974 वर्ष 1996 में राँची में कार्यवाही समाप्ति पर है। अभियोजन साक्ष्य बंद किए जाने की संभावना है जबकि बिष्टुपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 251 वर्ष 1995, जी॰ आर॰ सं॰ 2544 वर्ष 1955 के तत्सम, के संबंध में अभी भी आरोप विरचित किया जाना है। स्पष्टत: 'डी॰' श्रृंखला के 'एफ॰' फॉर्म, जिन्हें अपराध करने के लिए दुरुपयोग किए जाने के लिए याचीगण के कहने पर अभिकथित रूप से तैयार किया गया था, का परीक्षण पहले ही राँची में किया जा चुका है और जब एक बार संव्यवहार में उन फॉर्मों का उपयोग कर लिया गया था, यह नहीं माना जा सकता है कि उन्हीं संख्या वाले फॉर्मों का बाद के चरण पर बार बार उपयोग किया गया था। मेरे दृष्टिकोण में, यदि उन्हीं फॉर्मों का उपयोग अपराधों को करने के लिए किया गया था, पुलिस को जी॰ आर॰ केस सं॰ 974 वर्ष 1996 के तहत राँची में लंबित मामले में दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 173 (8) के अधीन ''अतिरिक्त अन्वेषण करना चाहिए था। विभिन्न पुलिस थानों द्वारा बार-बार एक ही अपराध का अन्वेषण नहीं किया जा सकता है। यदि इसकी अनुमति दी जाती है, इसका परिणाम ऐसी स्थिति में होगा जिसकी अनुमति दंड प्रक्रिया संहिता नहीं देती है। ऐसी स्थिति अभूतपूर्व परिणामों की ओर ले जाएगी।

12. मेरे दृष्टिकोण में बिष्टुपुर पुलिस थाना की प्रेरणा पर आरंभ की गयी कार्यवाही संविधान का और दंड प्रक्रिया संहिता द्वारा प्रावधानित प्रक्रिया का उल्लंघन करती है। नि:संदेह, दोषसिद्धि अथवा दंडादेश अभी भी दर्ज किया जाना है किंतु चूँकि राँची में विचारण समाप्त होने जा रहा है याचीगण जमशेदपुर में दर्ज द्वितीय प्राथमिकी के आधार पर नए विचारण और इस प्रकार राज्य के विभिन्न जिलों में पश्चातवर्ती रिपोर्ट संस्थापित करके बार-बार विचारणों के अध्यधीन नहीं किए जा सकते हैं।

13. विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि याचीगण को उक्त फॉर्मों को सुपुर्द नहीं किया गया था कोई अभिकथन नहीं है कि याचीगण ने अभिकथित रूप से चुराए गए फॉर्मों के बदले में किसी को कतिपय मालों से अलग होने के लिए उत्प्रेरित नहीं किया और किसी अभिकथन की अनुपस्थिति में उक्त फॉर्मों को गढ़ा गया था, अभिकथित अपराध प्रथम दृष्टया आरंभ में नहीं बनते है। भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 379, 406, 467 और 475 के अधीन अपराधों के अवयव पूरी तरह गायब हैं। भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 120B के अधीन अपराध गठित करने के लिए षडयंत्र का अभिकथन नहीं है। अपराधों अथवा किसी ऐसे अभिकथन कि याचीगण द्वारा अथवा उनकी प्रेरणा पर फॉर्मों को चुराया गया था अथवा दुर्विनियोग किया गया था, के साथ याचीगण को जोड़ने के लिए कुछ भी नहीं है। मालों का कतिपय संव्यवहार मात्र याचीगण की अंतर्ग्रस्तता को सिद्ध नहीं करता है और इसलिए **हरियाणा राज्य एवं अन्य बनाम चौधरी भजनलाल एवं अन्य, AIR SC Pg. 604** में अधिकथित सिद्धांतों की दृष्टि में दांडिक अभियोजन अभिखंडित किए जाने का दायी है।

सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित सात श्रेणियों को तैयार है जहाँ संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन अथवा दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 482 के अधीन अभियोजन अथवा प्राथमिकी अभिखंडित किया जा सकता है वे सात श्रेणियाँ इस प्रकार हैं:-

1. tgk çkFkfedh vFkok ifjokn e fd, x, vfHkdFkuk dk T;k dk R;k fy;k tkrk g vkj mudh l i.krk e Lohdkj fd;k tkrk g] fQj Hkh o çFke n"V;k dkb vijkèk xfBr ugh djr g vFkok vfHk;Dr d fo#) ekeyk ugh cur gA

2. tgk çkFkfedh e fd, x, vfHkdFku vkj çkFkfedh d lkFk lyXu vU; lkefx;k fdlh lK; vijkèk dk çdV ugh djrh g tk lfgrk dh èkkjk 155 (2) d dk;{k= d vèkhu nMkfèkdkjh d vkn'k d vèkhu d flok, lfgrk dh èkkjk 156 (1) d vèkhu ifyl vfèkdkfj;k }kjk vUo"k.k dk U;k;kfpr ugh Bgjkrh gA

3. tgk çkFkfedh vFkok ifjokn e fd, x, v[kfMr vfHkdFku vkj bld leFku e lxfgr lk{; fdlh vijkèk dk fd;k tkuk çdV ugh djr g vkj vfHk;Dr d fo#) ekeyk ugh cukr gA

4. tgk çkFkfedh e fd, x, vfHkdFku lK; vijkèk xfBr ugh djr g cfYd doy vlK; vijkèk xfBr djr g] ogk nMkfèkdkjh d vkn'k d fcuk ifyl vfèkdkjh }kjk vUo"k.k dh vuefr ugh nh tkrh g tlk lfgrk dh èkkjk 155 (2) d vèkhu vuè;kr fd;k x;k gA

5. tgk çkFkfedh vFkok ifjokn e fd, x, vfHkdFku bru crd rFkk vrfufgr :i l vufèklHkk0; g ftud vkèkkj ij dkb food'khy 0;fDr bl U;k;kfpr fu"d"k ij ugh igp ldrk g fd vfHk;Dr d fo#) vxlj gku d fy, i;kIr vkèkkj gA

6. lfgrk vFkok lcfèkr vfèkfu;e (ftld vèkhu nkfMd dk;okgh lLFkkfir dh x;h g d çkoèkkuk e l fdlh e dk;okgh d lLFkkiu vkj bldk tkjh j[ku d fy, fofèkd otuk lfEefyr dh x;h g vkj@vFkok 0;fFkr 0;fDr dh f'kdk;r d çHkkodkjh çfrk"k.k dk çkoèkkfur djr g, lfgrk vFkok lcfèkr vfèkfu;e e fo'k"k çkoèkku gA

7. tgk nkfMd dk;okgh Li"Vrh vlnHkkoi.k g vkj@vFkok tgk dk;okgh çkboV vkj futh f'kdk;r d dkj.k mldk viekfur dju dh nf"V l vkj vfHk;Dr l çfr'kkèk yu d fy, vrjLFk gr d lkFk }"kiod lLFkkfir dh x;h gA

14. इस प्रकार, याचीगण की ओर से निवेदन है कि प्राथमिकी के कोरा पठन अथवा दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 173 के अधीन पुलिस द्वारा दाखिल आरोप-पत्र से प्रथम दृष्टया अभिकथित अपराध नहीं बनाता है। किंतु यह प्रश्न राँची न्यायालय में विचाराधीन है, अत: मैं यह मत देने का इच्छुक नहीं हूँ कि क्या अपराध गठित करने के लिए अवयव पर्याप्त हैं।

15. किंतु, यह कहना सही है कि तथ्यों और दस्तावेजों के उसी संवर्ग पर जमशेदपुर में द्वितीय कार्यवाही अथवा कोई अन्य पश्चातवर्ती कार्यवाही असंवैधानिक होने के नाते जारी नहीं रखी जा सकती है और, इसलिए, बिष्टुपुर पुलिस थाना के संबंध में कार्यवाही निश्चित रूप से अभिखंडित किए जाने का दायी है।

16. इन तथ्यों और परिस्थितियों में और पूर्वोक्त पैराग्राफों में जो कुछ कहा गया है, की दृष्टि में रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है। विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, जमशेदपुर के न्यायालय में लंबित बिष्टुपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 251 वर्ष 1995 जी॰ आर॰ सं॰ 2544 वर्ष 1995 के तत्सम के संबंध में कार्यवाही एतद् द्वारा अभिखंडित की जाती है।

ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k ,o vij'k dekj flg] U;k;efr

मेसर्स विक्रोमेटिक स्टील प्राइवेट लिमिटेड (397 में)

मेसर्स भवानी फेरस प्राईवेट लिमिटेड (398 में)

cuke

झारखंड राज्य विद्युत बोर्ड एवं अन्य (दोनों में)

L.P. A. Nos. 397 with 398 of 2011. Decided on 6th February, 2012.

विद्युत विधियाँ–बिल–एच॰ टी॰ एस॰ एस॰ कोटि–याची की इकाई के पास एक इंडक्शन फर्नेस है किंतु वह अभिकथित रूप से री-रॉलिंग मिल भी चला रहा है–याची 300 के॰ वी॰ ए॰ से अधिक संविदा मांग वाला इंडक्शन इकाई चला रहा है और इंडक्शन फर्नेस भी चला रहा है और 500 कि॰ ग्रा॰ से अधिक क्षमता वाला मेल्टिंग फर्नेस इकाई भी चला रहा है–याची की इकाई निश्चय ही एच॰ टी॰ एस॰ एस॰ कोटि में आता है–सामान्यतः आपूर्ति एकल बिंदु पर की जानी चाहिए और जिसे याची के परिसर को वर्ष 1996 से दिया जा रहा है–विनिर्दिष्ट समावेश को सामान्य समावेश नहीं बनाया जा सकता है ताकि एक इकाई के लिए एक से अधिक कनेक्शन लिया जा सके–लाइसेंसी केवल टैरिफ ऑर्डर के अनुसार विद्युत प्रभारित कर सकता है और न कि अन्यथा भले ही वे टैरिफ ऑर्डर के पहले अन्यथा प्रभारित कर रहे थे–आक्षेपित बिल पारित। (पैराएँ 9 से 12)

अधिवक्तागण.–Mr. M. S. Mittal, For the Appellant; M/s. Ajit Kumar, Prabhat Kumar Singh (in 397), M/s. Rajesh Shankar and A. Prakash (in 398), For the Respondent J.S.E.B.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. अपीलार्थी विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा 27 सितम्बर, 2011 को पारित आदेश के विरुद्ध व्यथित है जिसके द्वारा याची की रिट याचिका खारिज कर दी गयी है।

3. याची के पास वर्ष 1996 से विद्युत कनेक्शन है और वह इस एकल कनेक्शन से इंडक्शन फर्नेस और रोलिंग मिल दोनों चला रहा है। आरंभ में याची की इकाई की संविदा मांग 1400 के॰ वी॰ ए॰ थी और अब यह बढ़कर 3800 के॰ वी॰ ए॰ हो गयी है। याची को एच॰ टी॰ एस॰ एस॰ कोटि के अधीन वर्ष 2004 में जारी टैरिफ अनुसूची प्रदान करने के बाद उस टैरिफ के अनुसार बिल दिया गया था जो रिट याची अपीलार्थी के अनुसार प्रासंगिक समय पर भी रिट याची के लिए अलाभदायी था।

4. चाहे जो भी हो, लाइसेंसी झारखंड राज्य विद्युत बोर्ड ने एच॰ टी॰ एस॰ और एच॰ टी॰ एस॰ एस॰ कोटियों के विलय के प्रस्ताव के साथ टैरिफ विहित करने के लिए आयोग को आवेदन दिया। टैरिफ आवेदन में की गयी इस विनिर्दिष्ट प्रार्थना को झारखंड राज्य विद्युत विनियामक आयोग द्वारा बिंदु सं॰ 12.33 में विनिर्दिष्टतः अस्वीकार कर दिया गया था तथा इस तथ्य के बावजूद कि याची को आरंभ से एच॰ टी॰ एस॰ एस॰ कोटि के अनुसार जे॰ एस॰ ई॰ बी॰ द्वारा बिल दिया जाता था और एच॰ टी॰ एस॰ कोटि के साथ एच॰ टी॰ एस॰ एस॰ कोटि का विलय करने का प्रस्ताव आयोग द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है, फिर भी विद्युत बोर्ड ने एच॰ टी॰ एस॰ के टैरिफ के अनुसार विद्युत प्रभारों का भुगतान करने के लिए इसको कहते हुए रिट याची को पत्र जारी किया है और याची को अपने री-रोलिंग मिल के लिए पृथक कनेक्शन प्राप्त

करने के लिए कहा है। विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष उक्त प्रार्थना को अस्वीकार करने वाला टैरिफ आवेदन और टैरिफ आदेश की प्रति, दोनों को प्रस्तुत किया गया था किंतु दोनों विद्वान अधिवक्ताओं ने निवेदन किया कि अनवधानतापूर्वक विद्वान एकल न्यायाधीश यह उपधारित करते हुए कि झारखंड राज्य विद्युत बोर्ड का प्रस्ताव टैरिफ प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया था, मामले को विनिश्चित करने के लिए अग्रसर हुए और दिनांक 13 सितंबर, 2011 का आक्षेपित आदेश पारित किया था।

5. उक्त ताथ्यिक त्रुटि के अतिरिक्त, एल॰ पी॰ ए॰ में आयोग ने हमारे समक्ष स्पष्टत: उपदर्शित करते हुए शपथपत्र दाखिल किया कि टैरिफ आर्डर की दृष्टि में झारखंड राज्य विद्युत बोर्ड को इस इकाई को एच॰ टी॰ एस॰ कोटि इकाई के रूप में मानते हुए बिल देने का अधिकार नहीं था।

6. किंतु, विद्युत बोर्ड के विद्वान अधिवक्ता ने यह कथन करते हुए तथ्यों को सुभिन्न करने का प्रयास किया कि याची की इकाई के पास इंडक्शन फर्नेस है किंतु वह साथ ही री–रोलिंग मिल भी चला रहा है और इसलिए याची की इकाई को इंडक्शन/आर्क फर्नेस की इकाई नहीं कहा जा सकता है और विद्युत बोर्ड के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार टैरिफ ऑर्डर 2009 में विशेष सेवा (एच॰ टी॰ एस॰ एस॰) के अधीन स्पष्टत: प्रावधानित किया गया है कि यह उन सारे ग्राहकों पर प्रयोज्य होगा जिन्होंने इंक्शन/आर्क फर्नेस के लिए 300 के॰ वी॰ ए॰ और अधिक की मांग की संविदा की थी। इंडक्शन/आर्क फर्नेस के मामले में संविदा मांग इंडक्शन/आर्क फर्नेस की कुल क्षमता और टेक्निकल स्पेशिफिकेशन के मुताबिक उपकरणों पर आधारित होगी और न कि माप के आधार पर। एच॰ डी॰ एस॰ एस॰ की प्रयोज्यता के खंड में यह भी प्रावधानित किया गया है कि यह टैरिफ 500 कि॰ ग्रा॰ अथवा इसके नीचे की मेल्टिंग क्षमता के इंडक्शन फर्नेस वाली कास्टिंग इकाईयों पर लागू नहीं होगा, अत: विद्युत बोर्ड के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार एच॰ टी॰ विशेष सेवा (एच॰ टी॰ एस॰ एस॰) टैरिफ केवल उन इकाईयों पर लागू होगी जिनके पास इंडक्शन/आर्क फर्नेस है और यदि कोई उपभोक्ता इंडक्शन/आर्क फर्नेस के अतिरिक्त किसी अन्य प्रयोजन के लिए विद्युत का उपयोग कर रहा है, तब उसे उन उपभोक्ताओं की कोटि में स्थापित नहीं किया जा सकता है जो केवल इंडक्शन/आर्क फर्नेस चला रहे हैं।

7. विद्युत बोर्ड के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यदि याची दो इकाईयाँ, एक फर्नेस और दूसरा री–रोलिंग मिल चलाना चाहता है, उसे दो पृथक कनेक्शन लेना चाहिए। विद्युत बोर्ड के विद्वान अधिवक्ता ने आपूर्ति के निबंधनों और शर्तों को अंतर्विष्ट करने वाले वित्तीय वर्ष 2011-2012 के लिए टैरिफ ऑर्डर की धारा 14 की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया जो विनिर्दिष्टत: प्रावधानित करती है कि ऊर्जा आपूर्ति संपूर्ण परिसर के लिए एकल बिंदु पर ही सामान्यत: प्रदान की जाएगी। किंतु, यह सामान्य नियम है और इसकी शर्त में अपवाद दिया गया है कि कोयला खान ऊर्जा जैसे कतिपय कोटियों में ऊर्जा की आपूर्ति तकनीकी व्यवहार्यता के अध्यधीन उपभोक्ता के अनुरोध पर एक से अधिक बिंदु पर की जा सकती है। किंतु ऐसे मामलों में मीटरिंग और बिलिंग प्रत्येक बिंदु के लिए पृथक रूप से की जाएगी। बोर्ड के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि एच॰ टी॰ एस॰ एस॰ कोटि के उपभोक्ताओं की कोटि के अंतर्गत आने वाली अत्यन्त छोटी इकाई रखने की अनुमति उपभोक्ता को देना पूर्णत: अन्यायोचित होगा जो री–रोलिंग मिल जैसा अन्य प्रयोजन के लिए विद्युत का उपयोग कर सकते हैं।

8. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों पर विचार किया है और विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए प्रासंगिक आदेशों और कारणों का परिशीलन किया है। आरंभ में हम संप्रेक्षित कर सकते हैं कि कुछ त्रुटि थी जो आक्षेपित निर्णय से प्रकट है, जब विद्वान एकल न्यायाधीश इस उपधारणा के अधीन

कि एच॰ टी॰ एस॰ कोटि और एच॰ टी॰ एस॰ एस॰ कोटि का विलय करने की राज्य विद्युत बोर्ड की प्रार्थना को आयोग द्वारा स्वीकार कर लिया गया था, मामले को विनिश्चित करने के लिए अग्रसर हुए जबकि तथ्य यह है कि इसे अस्वीकार कर दिया गया था। अत: टैरिफ ऑर्डर द्वारा एच॰ टी॰ एस॰ और एच॰ टी॰ एस॰ एस॰ का विलय निरपवादत: और विनिर्दिष्टत: अस्वीकार कर दिया गया है और इसलिए राज्य विद्युत बोर्ड उपभोक्ता को एच॰ टी॰ एस॰ अथवा एच॰ टी॰ एस॰ एस॰ कोटि में रख सकता है और उस कोटि के अनुसार जिसमें उपभोक्ता आता है, विद्युत प्रभारित कर सकता है।

9. याची 300 के॰ वी॰ ए॰ से अधिक (इस मामले में 3800 के॰ वी॰ ए॰) की संविदा मांगवाला इंडक्शन इकाई चला रहा है और इंडक्शन फर्नेस भी चला रहा है और 500 कि॰ ग्रा॰ से अधिक की क्षमतावाला मेल्टिंग फर्नेस इकाई भी रखे है (इस मामले में याची की इकाई के पास 5000 कि॰ ग्रा॰ की मेल्टिंग क्षमता है) और इसलिए स्वीकृत अवस्था की दृष्टि में याची की इकाई निश्चय ही एच॰ टी॰ एस॰ कोटि में आती है।

10. टैरिफ आदेश में, प्रावधानित किया गया है कि औद्योगिक इकाईयों को सामान्यत: एक विद्युत कनेक्शन होना चाहिए बल्कि आयोग द्वारा दाखिल उत्तर के मुताबिक कहा जाए तो औद्योगिक इकाईयों के पास एकल बिंदु कनेक्शन होना चाहिए, अत:, एक इकाई के लिए विद्युत के लिए एक उपभोक्ता होना चाहिए और जहाँ तक री-रोलिंग मिल के लिए उपमीटर के लिए विद्युत बोर्ड के सुझाव का संबंध है, हम टैरिफ आदेश अथवा किसी अन्य आदेश से कोई विधिपूर्ण कारण नहीं पाते हैं जो टैरिफ आदेश में कोई प्रावधान नहीं होने के बावजूद प्रचलित हो सकता है।

11. आयोग के निर्णय की दृष्टि में जो लाइसेंसी पर बाध्यकारी है और टैरिफ ऑर्डर 2010 की धारा 14 भी उपदर्शित करती है कि सामान्यत: आपूर्ति एकल बिंदु पर की जानी चाहिए जो रिट याची के परिसर को वर्ष 1996 से दिया जा रहा है। एक अपवाद प्रतीत होता है किंतु यह सीमित परिणाम का है और कतिपय कनेक्शनों पर लागू होता है जिसे स्वयं इस खंड में अत्यन्त स्पष्ट किया गया है जब इसने स्पष्ट कथन किया कि ''कोयला खान जैसे कतिपय कोटियों में टेक्नीकल व्यवहार्यता के अधीन उपभोक्ता के अनुरोध पर एक से अधिक बिंदुओं पर ऊर्जा की आपूर्ति की जा सकती है।'' इस विनिर्दिष्ट समावेश का सामान्य समावेश नहीं बनाया जा सकता है ताकि एक इकाई के लिए एक से अधिक कनेक्शन लिया जा सके। यह भी विवादित नहीं है कि लाइसेंसी केवल टैरिफ आदेश के मुताबिक, न कि अन्यथा, विद्युत प्रभारित कर सकता है भले ही वे टैरिफ आदेश के पहले अन्यथा प्रभारित कर रहे थे।

12. उक्त विधिक विवाद्यकों पर निर्णय के आलोक में दोनों एल॰ पी॰ ए॰ याची को रखते हुए झारखंड राज्य विद्युत बोर्ड द्वारा दिया गया बिल अभिखंडित किया जाता है और प्रत्यर्थी झारखंड राज्य विद्युत बोर्ड याची को एच॰ टी॰ एस॰ एस॰ उपभोक्ता की कोटि में रखकर बिल देने के लिए स्वतंत्र होगा।

---

ekuuh; ,pñ lhñ feJk] U;k;efr

राजेश कुमार शर्मा

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Acquittal Appeal No. 24 of 2008. Decided on 12th January, 2012.

सी॰/1 केस सं॰ 1100 वर्ष 2002 में न्यायिक दंडाधिकारी प्रथम श्रेणी, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 9.5.2007 के दोषमुक्ति के निर्णय के विरुद्ध।

(क) परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881—धारा 138 सह-पठित धाराएँ 118 एवं 139—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 378—चेक का अनादर–दोषमुक्ति–चेक किसी मित्रवत कर्ज के रूप में विधितः प्रवर्तनीय कर्ज अथवा दायित्व के निबंधनानुसार परिवादी को जारी नहीं किया गया था यह भूमि के क्रय मूल्य के एक भाग के तौर पर अग्रिम भुगतान के रूप में दिया गया था–परिवादी केवल भूमि के संव्यवहार में जिसे पूरा नहीं किया गया था, बिचौलिए के रूप में चेक का संरक्षक था–परिवर्तित तिथि के साथ चेक का पुनर्पृष्ठांकन चेक को पूर्णतः संदेहास्पद बनाता है और यह परिवादी के मामले के साथ संगत नहीं है–अभियुक्त की भूमिका समाप्त हो जाती है जब वह अभिलेख पर तर्कपूर्ण साक्ष्य लाकर परिवादी के मामले पर संदेह सृजित करने में सक्षम रहता है–अपील खारिज। (पैराएँ 8, 10, 11, 13 एवं 14)

(ख) परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881—धारा 87—चेक में परिवर्तन–परिवादी समस्त संदेहों के परे यह सिद्ध करने में विफल रहा कि चेक की तिथि में लिप्त लेखन और परिवर्तन अभियुक्त द्वारा किया गया था–स्वयं चेक शून्य हो गया था। (पैरा 12)

निर्णयज विधि.–(1993) 3 SCC 35; 2010(3) JCR 16 (SC)—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. Ananda Sen, For the Appellant; Mr. Amresh Kumar, For the State; Mr. A.K. Sahani, For the Respondent No.2.

एच॰ सी॰ मिश्रा, न्यायमूर्ति.–दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया और अभिलेख का परिशीलन किया गया।

2. यह दोषमुक्ति अपील सी॰ 1/ केस सं॰ 1100 वर्ष 2002/विचारण सं॰ 323 वर्ष 2007 में श्री एस॰ के॰ चौधरी, न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 9 मई, 2007 के दोषमुक्ति के निर्णय से उद्‌भूत होती है, जिसके द्वारा विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त प्रत्यर्थी सं॰ 2 को परक्राम्य लिखत अधिनियम (इसमें इसके बाद 'एन॰ आई॰ एक्ट' के रूप में निर्दिष्ट) की धारा 138 के अधीन अपराध के लिए यह अभिनिर्धारित करते हुए दोषमुक्त कर दिया गया है कि परिवादी यह सिद्ध करने में विफल रहा है कि प्रश्नगत चेक अभियुक्त द्वारा मित्रवत कर्ज के निपटारे के लिए जारी किया गया था जैसा परिवादी द्वारा दावा किया गया है।

3. परिवादी के मामला के अनुसार, परिवादी ने अभियुक्त को 24,000/- रुपया मित्रवत कर्ज दिया था और अभियुक्त ने इसपर विचार करके सिंहभूम क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, गम्हरिया शाखा का 24,000/- रुपयों की राशि के लिए सं॰ 166779 वाला चेक दिनांक 2.1.2002 को उसे दिया था। उक्त चेक परिवादी द्वारा दिनांक 1.7.2002 को बैंक में जमा किया गया था किंतु अपर्याप्त निधि के कारण इसका अनादर करके इसे वापस लौटा दिया गया था। जब परिवादी द्वारा इस तथ्य को अभियुक्त के ध्यान में लाया गया था, अभियुक्त ने उस चेक पर अपना हस्ताक्षर और तिथि पृष्ठांकित किया और दिनांक 19.10.2002 को चेक संग्रहण के लिए बैंक में पुनः प्रस्तुत किया गया था, किंतु परिवादी ने पुनः दिनांक 21.10.2002 को सूचित किया कि अपर्याप्त निधि के कारण चेक का अनादर कर दिया गया था। तत्पश्चात् परिवादी द्वारा दिनांक 1.11.2002 को मांग की कानूनी नोटिस रजिस्टर्ड पोस्ट द्वारा अभियुक्त को 15 दिनों के भीतर भुगतान करने के लिए कहते हुए दी गयी थी। अभियुक्त द्वारा नोटिस प्राप्त किया गया था और उसके उत्तर में उसने दायित्व से इनकार किया। अतः, अवर न्यायालय में परिवादी द्वारा परिवाद दाखिल किया गया था।

4. अभिलेख से, यह प्रतीत होता है कि अवर न्यायालय में दोनों पक्षों द्वारा साक्ष्य दिया गया था। परिवादी ने सी॰ डब्ल्यू॰ 1 के रूप में स्वयं का परीक्षण किया है और एक अन्य गवाह अर्थात् श्रीकांत कटक, जो सिंहभूम क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक का शाखा प्रबंधक था, का परीक्षण सी॰ डब्ल्यू॰ 2 के रूप में किया गया है। गवाहों ने परिवादी के मामले का समर्थन किया है। सी॰ डब्ल्यू॰ 1 राजेश कुमार शर्मा परिवादी है जिसने अपने साक्ष्य में कथन किया है कि उक्त चेक दिनांक 20.1.2002 का था जिसे उसने दिनांक 1.7.2002 को बैंक में जमा किया था किंतु इसका अनादर करके इसे लौटा दिया गया था। तत्पश्चात् उसने अभियुक्त को चेक के अनादर के बारे में सूचित किया और अभियुक्त ने चेक पर पृष्ठांकन किया जिसे पुनः बैंक में जमा किया गया था और पुनः इसका अनादर किया गया था। उसने मांग की नोटिस के बारे में भी कथन किया है। इस गवाह ने चेक को सिद्ध किया है जिसे प्रदर्श 1 के रूप में चिन्हित किया गया था और कानूनी नोटिस को प्रदर्श 2 के रूप में चिन्हित किया गया था। कानूनी नोटिस भेजने की डाक रसीद प्रदर्श 3 के रूप में चिन्हित की गयी थी और चेक रिटर्न मेमों को प्रदर्श 4 और 4/1 के रूप में चिन्हित किया गया था। कानूनी नोटिस का उत्तर भी सिद्ध किया गया था जिसे प्रदर्श 5 के रूप में चिन्हित किया गया था। किंतु, उसने अपने प्रति परीक्षण में कथन किया है कि अभियुक्त ने दिनांक 20.4.2002 को चेक पुनर्पृष्ठांकित किया था। उसने अपने प्रति परीक्षण में यह भी स्वीकार किया है कि सत्य नारायण शर्मा उसका ससुर है और अभियुक्त और उसके ससुर के बीच भूमि की खरीद और विक्रय के लिए करार था किंतु उसने इस जानकारी से इनकार किया है कि उसके ससुर ने अभियुक्त को केवल 11 डिसमिल भूमि बेचा था। उसने इस सुझाव से भी इनकार किया है कि 24,000/- रुपयों का उक्त चेक अभियुक्त द्वारा परिवादी को इसे बिचौलिए के रूप में रखने और भूमि का संव्यवहार पूरा हो जाने के बाद अपने ससुर को चेक सौंपने के लिए दिया गया था। सी॰ डब्ल्यू॰ 2 बैंक अधिकारी ने चेक और रिटर्न मेमो पर हस्ताक्षर सिद्ध किया है।

5. अभियुक्त ने अवर न्यायालय में बचाव में एक गवाह प्रस्तुत किया है और अभिलेख पर कतिपय दस्तावेजों को लाया है जिन्हें प्रदर्शों के रूप में चिन्हित किया गया था। अभियुक्त ने ब॰ सा॰ 1 के रूप में स्वयं का परीक्षण किया है जिसमें उसने कथन किया है कि उसने 2,94,000/- रुपयों के प्रतिफल के लिए 15 डिसमिल भूमि खरीदने के लिए सत्य नारायण शर्मा के हस्ताक्षर को सिद्ध किया है जिन्हें प्रदर्श A श्रृंखला और B श्रृंखला के रूप में चिन्हित किया गया था और उसने उक्त करार पर गवाहों के हस्ताक्षरों को भी सिद्ध किया है। करार पर सत्यनारायण शर्मा का कुछ लेखन और हस्ताक्षर भी सिद्ध किए गए हैं। उसने करार के बारे में अभिसाक्ष्य दिया है और कथन किया है कि उसे केवल 11 डिसमिल भूमि दी गयी थी और तत्पश्चात्, 78,000/- रुपयों के प्रतिफल के लिए शेष चार डिसमिल भूमि के विक्रय के लिए एक अन्य करार था जिसके अनुसरण में उसने मुनिराम शर्मा (परिवादी के पिता) को 54,000/- रुपया दिया था और राजेश शर्मा को 24,000/- रुपयों का चेक दिया था जिसने उक्त करार पर चेक की प्राप्ति को पृष्ठांकित भी किया था जिसे अभियुक्त द्वारा सिद्ध किया गया था और इसे प्रदर्श I के रूप में चिन्हित किया गया था। इस गवाह ने उक्त करार पर अन्य हस्ताक्षरों को भी सिद्ध किया है जिसे प्रदर्शों के तौर पर चिन्हित किया गया था। इस गवाह ने आगे कथन किया कि उसने चेक पर केवल एक हस्ताक्षर किया था और उसने चेक पर दूसरा हस्ताक्षर नहीं किया था। उसने कथन किया है कि सत्य नारायण शर्मा ने उसे भूमि का शेष चार डिसमिल नहीं दिया था और इस प्रकार, उसने उसके विरुद्ध धन वाद दाखिल किया है। परिवादी की ओर से अपने प्रति परीक्षण में इस गवाह ने चेक के पृष्ठांकन पर हस्ताक्षर से इनकार किया है और कथन किया है कि उक्त हस्ताक्षर निर्मित हस्ताक्षर है। उसने करार पर परिवादी के हस्ताक्षर

की कूटरचना करने के सुझाव से भी इनकार किया है और इस सुझाव से भी इनकार किया है कि चार डिसमिल भूमि के लिए प्रतिफल के रूप में चेक नहीं दिया गया था। उसने यह कथन भी किया है कि उसने धन वाद का वाद पत्र और लिखित कथन भी दाखिल किया है। यह कहा जा सकता है कि धन वाद का वाद पत्र और लिखित कथन इस मामले में प्रदर्शों के रूप में चिन्हित किया गया है। ब॰ सा॰ 2 विजय कुमार औपचारिक गवाह है और उसने करार सिद्ध किया है जिसे प्रदर्शों N और N/1 के रूप में चिन्हित किया गया था।

6. चेक, जिसे प्रदर्श 1 के रूप में अभिलेख पर लाया गया है, के परिशीलन से प्रकट है कि चेक मूलत: दिनांक 20.1.2002 का था किंतु इस पर लिप्त लेखन करके इसे 20.4.2002 बनाया गया था और तिथि 20.4.2002 पृथक रूप से भी लिखी गयी थी। अभियुक्त राजेश साव का हस्ताक्षर है कि अभियुक्त द्वारा अपने साक्ष्य में इस हस्ताक्षर से इनकार किया गया है। उसने विनिर्दिष्टत: कथन किया है कि उसने चेक के नीचे केवल एक हस्ताक्षर किया था। करार पर परिवादी द्वारा अभिस्वीकृत चेक की प्राप्ति, जिसे प्रदर्श I के रूप में चिन्हित किया गया है, का अंग्रेजी (हिन्दी) में अनुवाद किया जाए, इसका पठन निम्नलिखित होगा: ''चेक सं॰ 166779 वाला सिंहभूम क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, गम्हरिया शाखा के खाता सं॰ एस॰ बी॰ 1233 का 24,000/- रुपयों का चेक पाया गया।'' उस पर परिवादी का हस्ताक्षर है।

7. आक्षेपित निर्णय के परिशीलन से, यह प्रकट है कि मामले की सुनवाई के क्रम में परिवादी द्वारा इस लेखन और हस्ताक्षर से इनकार किया गया था। परिवादी को हस्तलेखन विशेषज्ञ से इसका परीक्षण करवाने की स्वतंत्रता दी गयी थी जिसे परिवादी ने अस्वीकार कर दिया था। आक्षेपित निर्णय में इसके संबंध में अवर न्यायालय निम्नलिखित निष्कर्ष पर आया जिसका पठन निम्नलिखि है:–

> *^^tgk rd fnukd 3.12.01 d djkj ij ifjoknh }kjk fd, x, ukfVx (çn'k I) ft lij xokgk d gLrk{kjk] çn'k J d :i e] d lkFk fpfUgr çn'k dk cy Hkh g] dk lcèk g] ; vfHkopu fd ;g >Bk vkj eux<r g vkj ;g ifjoknh d y[ku e vkj mld gLr{kjkèkhu ugh g] ifjoknh d fo}ku vfèkoDrk }kjk rd d le; ij fd, x, Fk vkj bl U;k;ky; u gLry[ku fo'k"kK }kjk ifjoknh d gLrk{kjk dk lR;kfir djoku dh Lor=rk ifjoknh dk fn;k Fkk fdr ifjoknh u , lk ugh fd;k Fkk vkj ml vkn'k d fo#) l= U;k;ky; d le{k nkfMd iujh{k.k lO 163/06 nkf[ky fd;k Fkk vkj ekuuh; l= U;k;kèkh'k u fnukd 21.1.07 d vkn'k d rgr iujh{k.k [kkfjt dj fn;k FkkA tgk rd ifjoknh d fo}ku vfèkoDrk d gLry[ku d çHkko d vfHkopuk fd djkj ij ukfVx (çn'k 1) ifjoknh d y[ku vkj gLrk{kj e ugh g] dk lcèk g] ;g U;k;ky; gLry[ku fo'k"kK ugh g fdr y[kuk vkj gLrk{kjk] ftUg pd ij vxth vkj fgnh e fd;k x;k g] vkj ifjoknh d ,lO ,0 ij fd, x, fgnh e gLrk{kj vkj odkyrukek ij vxth e fd, x, gLrk{kj vkj ifjoknh dh vud gkftfj;k d dkj ifj'kh yu l Li"V g fd ble dkQh le#irk g vkj vkIr cf) dk 0;fDr Hkh dgk ldrk g fd y[ku vkj gLrk{kj ml h 0;fDr }kjk fd;k x;k g ft lu ifjokn ;kfpdk] odkyrukek] ,lO ,0] vfHklk{; vkj vud gkftfj;k ij viuk gLrk{kj djd ;g ekeyk*

*nkf[ky fd;k g vkj bl çdkj ifjoknh d fo}ku vfèkoDrk d vfHkopu fofèk dh nf"V e vFkok rF; e fcYdy lik"k.kh; ugh g vkj blfy, leLr ;fDr;Dr lngk d ij LFkkfir gkrk g fd djkj (çn'k&I) ij y[ku vkj gLrk{kj ifjoknh }kjk fd;k x;k gA***

8. अवर न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि परिवादी द्वारा चेक किसी विधित: प्रवर्तनीय कर्ज अथवा दायित्व जैसे मित्रवत कर्ज के निबंधनों में जारी नहीं किया गया था, बल्कि इसे भूमि के खरीद मूल्य के भाग के रूप में अग्रिम भुगतान के तौर पर जारी किया गया था और यह एन॰ आई॰ एक्ट की धारा 138 के अधीन अपराध के कार्य क्षेत्र में नहीं आता है क्योंकि परिवादी भूमि के संव्यवहार में, जिसे पूरा नहीं किया गया था, बिचौलिए के रूप में चेक का केवल संरक्षक था। तद्नुसार, अवर न्यायालय ने अभियुक्त को आरोप से दोषमुक्त कर दिया है।

9. अपीलार्थी परिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि अवर न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति का आक्षेपित निर्णय बिल्कुल अवैध है क्योंकि परिवादी इस तथ्य को सिद्ध करने में सफल रहा है कि चेकों को सम्यक् तिथि के भीतर बैंक में प्रस्तुत किया गया था और जब इसका अनादर किया गया था, अभियुक्त के पुन: पृष्ठांकन के अधीन तिथि परिवर्तित की गयी थी और जब पुन: इसका अनादर किया गया था, अभियुक्त को मांग की कानूनी नोटिस दी गयी थी। उसके उत्तर में, अभियुक्त ने दायित्व से इनकार किया और इस प्रकार समय के भीतर परिवाद दाखिल किया गया था। विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया है कि एन॰ आई॰ अधिनियम की धाराओं 118 और 139 के अधीन अभियुक्त के विरुद्ध उपधारणा है जिसका खंडन करने में परिवादी सक्षम नहीं हुआ है। तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि यह सुयोग्य मामला है जिसमें दोषमुक्ति का निर्णय अपास्त कर दिया जाए और अभियुक्त को एन॰ आई॰ एक्ट की धारा 138 के अधीन अपराध के लिए दोषी पाकर उसे इसके लिए उपयुक्त दंड दिया जाए।

10. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि अवर न्यायालय द्वारा पारित निर्णय में कोई अवैधता नहीं है क्योंकि अभियुक्त विक्रय, जिस पर स्वयं परिवादी ने चेक संख्या को उल्लिखित करने वाला चेक भी प्राप्त किया है, के करार को अभिलेख पर लाकर अपने विरुद्ध उपधारणा का खंडन करने में सक्षम हुआ है। यद्यपि परिवादी ने अपने हस्ताक्षर से इनकार किया है किंतु अवर न्यायालय ने परिवादी को हस्तलेखन विशेषज्ञ द्वारा इसको सत्यापित करवाने की स्वतंत्रता दी थी, जिसे परिवादी ने अस्वीकार कर दिया था और मामले के उस दृष्टिकोण में अवर न्यायालय इस निष्कर्ष पर आया है कि चेक भूमि के संव्यवहार में जिसे पूरा नहीं किया गया था बिचौलिए के रूप में परिवादी को सौंपा गया था। निवेदन किया गया है कि अभियुक्त अपने विरुद्ध उपधारणा का खंडन करने में सक्षम रहा है और तत्पश्चात् परिवादी समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अपना मामला सिद्ध करने में विफल रहा है। तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि विद्वान अवर न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय में अवैधता नहीं है।

11. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और अभिलेख का परिशीलन करने पर, मैं पाता हूँ कि परिवाद में परिवादी ने कथन किया है कि उसने प्रश्नगत चेक दिनांक 1.7.2002 को बैंक में प्रस्तुत किया था और जब अपर्याप्त निधि के कारण अनादर करके चेक लौटा दिया गया था, यह तथ्य अभियुक्त के ध्यान में लाया गया था और अभियुक्त ने अपने हस्ताक्षर और तिथि के साथ चेक पुनर्पृष्ठांकित किया था। इस प्रकार, इस कथन से स्पष्ट है कि अभियुक्त द्वारा तिथि परिवर्तन और पुनर्पृष्ठांकन दिनांक 1.7.2002 को अथवा इसके बाद किया गया था। किंतु, अपने प्रति परीक्षण में, इस गवाह ने कथन किया

है कि अभियुक्त द्वारा दिनांक 20.4.2002 को पृष्ठांकन किया गया था। चेक, जिसे प्रदर्श 1 के रूप में सिद्ध किया गया है, के परिशीलन से प्रतीत होता है कि तिथि 20.4.2002 में परिवर्तित की गयी थी। इस प्रकार, यह प्रकट है कि यदि दिनांक 1.7.2002 को अथवा तत्पश्चात चेक पृष्ठांकित किया गया था, सामान्यत: तिथि को 20.4.2002 के रूप में लिखने का अवसर नहीं था। इसके अतिरिक्त, चेक जो मूलत: दिनांक 2.1.2002 (जैस परिवाद में कथन किया गया है) अथवा 20.1.2002 का था, दिनांक 20.4.2002 को इसके पुनर्पृष्ठांकन के लिए इस तथ्य की दृष्टि में अवसर नहीं था कि उक्त तिथि पर चेक स्वयं वैध चेक था और उक्त तिथि पर इसके पुनर्पृष्ठांकन के लिए अवसर नहीं था। अभियुक्त ने अपने साक्ष्य में विनिर्दिष्टत: कथन किया है कि उसने चेक पर केवल एक हस्ताक्षर किया था और उसने चेक पर कोई पुनर्पृष्ठांकन करने से इनकार किया है। मामले के उस दृष्टिकोण में मेरा सुविचारित मत है कि परिवर्तित तिथि के साथ चेक का पुनर्पृष्ठांकन चेक को पूर्णत: संदेहास्पद बनाता है और यह परिवादी के मामले के साथ मेल नहीं खाता है। इसके अतिरिक्त, अभियुक्त ने परिवादी द्वारा चेक की प्राप्ति को भी अभिलेख पर लाया है जिसे करार पर प्रदर्श I के रूप में सिद्ध किया गया था, जिसने स्वयं परिवादी द्वारा स्पष्टत: चेक की संख्या कथित की गयी है। यद्यपि परिवादी द्वारा लेखन और हस्ताक्षर से इनकार किया गया है किंतु, इसका सत्यापन करवाने के लिए अवर न्यायालय द्वारा दी गयी स्वतंत्रता परिवादी द्वारा अस्वीकार कर दी गयी थी और इस प्रकार, अवर न्यायालय सही प्रकार से इस निष्कर्ष पर आया है कि उक्त चेक वस्तुत: भूमि संव्यवहार में जिसे पूरा नहीं किया था, परिवादी को बिचौलिए के रूप में दिया गया था। इस प्रकार, परिवादी यह सिद्ध करने में विफल रहा है कि चेक जारी करने के लिए वैध प्रतिफल था। यह विधि का सुनिश्चित सिद्धांत है कि अभियुक्त की भूमि समाप्त हो जाती है यदि वह अभिलेख पर तर्कपूर्ण साक्ष्य लाकर परिवादी के मामले पर संदेह सृजित करने में सक्षम रहता है और इस मामले में अभियुक्त इसमें पूरी तरह सफल हुआ है। इस संबंध में, **भारत बैरल एण्ड ड्रम मैन्यूफैक्चरिंग कंपनी बनाम अमीन चंद प्यारेलाल, (1993)3 SCC 35** (पैरा 12), मामले में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विधि सुनिश्चित की गयी है जिसमें निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:–

> *"12. ;gk Åij xkj fd, x, vud fu.k;k ij fopkj dju ij fofèk dh lkeu vkrh voLFkk ;g g fd tc ,d ckj çkfeljh ukV dk fu"iknu Lohdkj fd;k tkrk g] èkkjk 118(a) d vèkhu mièkkj.kk mnHkr gkxh fd ;g çfrQy }kjk lefFkr gA ,lh mièkkj.kk [kMuh; gA çfroknh vfèklHkk0; çfrokn djd çfrQy dh vfLrRoghurk fl) dj ldrk gA ;fn ;g n'kkr g, fd çfrQy dk vfLrRo vufèklHkk0; vFkok lngkLin Fkk vFkok ;g voèk Fkk] çfroknh }kjk çek.k d vkjfHkd Hkkj dk fuogu fl) fd;k tkrk g] Hkkj oknh ij pyk tk,xk tk bl rF; d ekey d :i e fl) dju d fy, ckè; gkxk vkj bldk fl) dju e foQyrk ml ijØkE; fy[kr d vkèkkj ij vurk"k çnku dk xj gdnkj cuk,xhA çfrQy dh vfLrRoghurk fl) dju dk çfroknh d Åij ck> ;k rk çR;{k ;k fQj ifjfLFkfr;k] ftu ij og fo'okl djrk g] d lnHk e vfèklHkk0; rkvk dh cgyrk dk vfHky[k ij ykdj gk ldrk gA ,lh fLFkfr e] oknh fofèk d vèkhu ekey e fn, x, oknh d lk{; lfgr leLr lk{; ij fo'okl dju dk gdnkj gA ;fn tgk çfroknh çfrQy dh vfLrRoghurk n'kkdj çek.k d vkjfHkd Hkkj dk fuogu dju e foQy jgrk g] oknh lnk gh viu i{k e èkkjk 118(a) d vèkhu mnHkr gku oky mièkkj.kk d ykHk dk gdnkj vfHkfuèkkfjr fd;k tk,xkA U;k;ky;*

*çfroknh ij çR;{k lk{; ndj çfrQy d vfLrRo dk vfl) dju ij tkj ugh Mky ldrk g D;kfd udkjkRed lk{; dk vfLrRo u rk lHko g vkj u gh vuè;kr fd;k x;k g vkj ;fn bl fn;k tkrk g] bl lng l n[kuk gkxkA çfrQy fn, tku l dkjk budkj çdVr% dkb cpko çrhr ugh gkrk gA dN Hkh tk vfèkl Hkk0; g dk oknh ij fl) dju dk Hkkj Mkyu dk ykHk yu d fy, vfHky[k ij ykuk gh gkxkA mièkkj.kk dk vfl) dju d fy, çfroknh dk , l rF;k vkj ifjfLFkfr;k dk vfHky[k ij ykuk gkxk ftu ij fopkj djd U;k;ky; ;k rk fo'ok l dj ldrk g fd çfrQy dk vfLrRo ugh Fkk vFkok bldh vfLrRoghurk bruh vfèkl Hkk0; Fkh fd dkb food'khy 0;fDr ekey d rF;k d vèkhu bl vfHkopu ij Ñ%; djxk fd ;g fo|eku ugh FkkA** (tkj fn;k x;k)*

पूर्वोल्लिखित निर्णय **रंगप्पा बनाम श्री मोहन, 2010 (3) JCR 16 (SC)** में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अनुमोदन करते हुए उद्धृत किया गया है। ऊपर अधिकथित विधि इस मामले के तथ्यों पर पूर्णतः प्रयोज्य है।

12. इसके अतिरिक्त, इस तथ्य की दृष्टि में कि परिवादी समस्त संदेहों के परे यह सिद्ध करने में विफल रहा है कि चेक पर लिप्त लेखन और तिथि परिवर्तन अभियुक्त द्वारा किया गया था, स्वयं चेक एन॰ आई॰ अधिनियम की धारा 87 की दृष्टि में शून्य बन गया था, क्योंकि इसमें तात्विक परिवर्तन था।

13. विधि के पूर्वोल्लिखित सिद्धांतों की दृष्टि में, मेरा सुविचारित दृष्टिकोण है कि अभियुक्त यह दर्शाकर कि प्रतिफल का अस्तित्व अनधिसंभाव्य अथवा संदेहास्पद था, अपने विरुद्ध उपधारणा को खंडित करने में सक्षम रहा है और अपीलार्थी परिवादी अवर न्यायालय में समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अपना मामला सिद्ध करने में विफल रह था। इसके अतिरिक्त, स्वयं चेक एन॰ आई॰ अधिनियम की धारा 87 की दृष्टि में शून्य बन गया था क्योंकि इसमें तात्विक परिवर्तन था। तद्नुसार, विद्वान अवर न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के आदेश में अवैधता नहीं है और इसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

14. परिणामस्वरुप, मैं इस अपील में गुणागुण नहीं पाता हूँ, जिसे तद्नुसार खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k ,o ihñ ihñ HkVV] U;k;efr

बिरेन्द्र कुमार मिश्रा

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

Contempt Case (Civil) No. 440 of 2010. Decided on 1st February, 2012.

न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971—धारा 12—याची की नियुक्ति के लिए खंडपीठ द्वारा दिए गए निर्देश का अभिकथित अननुपालन–पाठ्यक्रम की समतुल्यता के संबंध में विवाद–पाठ्यक्रम की समतुल्यता पर सक्षम प्राधिकारी अथवा विशेषज्ञ द्वारा निर्णय किए जाने की आवश्यकता है–यदि कोई विवाद है और पाठ्यक्रम में से किसी एक की अमान्यता पर मनमाने निर्णय का अभिकथन है, तब भी जब यह नियोक्ता/राज्य सरकार द्वारा पहले ही स्वीकार किए गए अन्य पाठ्यक्रम के समतुल्य होने के लिए अर्हित होता है, न्यायालय सामग्रियों, जिन्हें पक्षों द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत किया जा सकता है, के आधार पर न्यायालय अपना निर्णय दे

सकता है–अवमान अधिकारिता में न्यायालय पाठ्यक्रमों और प्रशिक्षण के संबंध में पूरी जाँच नहीं कर सकता है–समुचित उपचार उच्च न्यायालय के निर्णय के बाद राज्य सरकार द्वारा पारित किए गए आदेश को चुनौती देना है। (पैराएँ 5 से 9)

निर्णयज विधि.–2005(2) JCR 293 (Jhr)—Referred to.

अधिवक्तागण.–M/s H.K. Mahato, For the Petitioner; Mr. Abhay Kr. Mishra, For the O.Ps.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. याची इस कारण से व्यथित है कि एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 532 वर्ष 2005 में इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 15.1.2009 के आदेश का अनुपालन इस तथ्य के बावजूद नहीं किया गया है कि याची के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार इस न्यायालय की खंडपीठ ने स्पष्ट रूप से यह निष्कर्ष दर्ज किया कि मानसिक विकलांग राष्ट्रीय संस्थान, सिकंदराबाद से रिट याची द्वारा प्राप्त किया गया प्रमाण पत्र शिक्षक प्रशिक्षण प्रदान करने का प्रमाणपत्र है और खंडपीठ ने स्पष्टत: अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी सं॰ 7 के दृष्टिकोण की दृष्टि में और नियमावली के नियम 2 (ख), जो अपीलार्थी के समान प्रशिक्षित उम्मीदवारों को अपवर्जित नहीं करता है, में भी प्रशिक्षित उम्मीदवारों की सामान्य परिभाषा की दृष्टि में राज्य सरकार को यह निर्णय लेने का निर्देश दिया गया है कि क्या अपीलार्थी को नियमावली के नियम 2 (ख) के अधीन प्रशिक्षित उम्मीदवार के रूप में माना जा सकता है, इस घोषणा के तुल्य है कि याची द्वारा प्राप्त किया गया प्रमाण पत्र अर्हक पाठ्यक्रम के समतुल्य है जैसा नियम 2 (ख) में विहित किया गया है। इस स्पष्ट निष्कर्ष के बावजूद विभाग के सचिव ने दिनांक 19.5.2010 के आदेश के तहत नियुक्ति के लिए याची की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया है।

3. यह प्रतीत होता है कि विवाद पाठ्यक्रम की समतुल्यता के संबंध में था और विवाद्यक यह था कि क्या मानसिक विकलांग राष्ट्रीय संस्थान (संक्षेप में एन॰ आई॰ एम॰ एच॰) द्वारा दिया गया प्रमाण पत्र नियम 2 (ख) में नियोक्ता अथवा राज्य सरकार द्वारा विहित अर्हता के समतुल्य पाठ्यक्रम है। हम प्रत्यर्थी सं॰ 7 के शपथ पत्र के पैरा 9 और 10 को उद्धृत करना चाहेंगे जिस पर याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा विश्वास किया गया है और जो निम्नलिखित हैं:–

*"9. e vkx dgrk vkj fuonu djrk g fd lkekU; èkkjkvk e tku d fy, ,l f'k{kdk dh l{kerk dk vfèkd Qyoku ekuk tkuk pkfg, D;kfd fdlh ekey e ;fn d{kk e dkb fu"kDr Nk= g rc ml Nk= dk lHkkyuk ef'dy ugh gkxkA ljdkj dh ^^lo f'k{kk vfHk;ku** uhfr d vèkhu ;g vko';d g fd ljdkj d ^^lck dk f'k{kk** dk y{; çkIr dju d fy, çR;d çkFkfed fo|ky; e fo'k"k f'k{kdk dk fu;Dr fd;k tkuk pkfg,A*

*10. ;g mYy[k djuk mi;Dr g fd jkT;k e l dN u igy gh fo'k"k f'k{kdk dk lkekU; dkfV e f'k{kdk d lerY; ?kkf"kr fd;k gA bl ekey e] kph lvfgr mEehnokj g D;kfd og çkFkfed f'k{kd HkUkh ijh{kk e lQy gvk vkj çkFkfed f'k{kd d :i e fu;fDr d fy, ml d uke dh vu'kIk dh x;h FkhA vr%] ml dh l{kerk d ckj e dkb lng ugh g vkj lcfèkr çkfèkdkjh dk ml viuh çfrHkk fl) dju dk ekdk nuk gkxkA***

4. याची के विद्वान अधिवक्ता ने **दिलीप कुमार महतो, 2005 (2) JCR 293 (Jhr.)** मामले में दिए गए इस न्यायालय के पूर्व के निर्णय पर विश्वास किया है।

5. यह सुनिश्चित विधि है कि पाठ्यक्रम की समतुल्यता पर सक्षम प्राधिकारी अथवा विशेषज्ञ द्वारा, स्पष्टत: और सामान्यत: नियोक्ता द्वारा निर्णय करने की आवश्यकता है और उस प्रयोजन से अनेक तथ्यों

को विचार में लिए जाने की आवश्यकता है। यदि कोई विवाद है और पाठ्यक्रम में से किसी एक की अमान्यता पर भी, जब यह नियोक्ता/राज्य सरकार द्वारा पहले ही स्वीकार किए गए अन्य पाठ्यक्रम के समतुल्य होने के लिए अर्हित होता है, मनमाने निर्णय का अभिकथन है, तब न्यायालय सामग्री, जिसे पक्षों द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत किया जा सकता है, के आधार पर अपना निर्णय दे सकता है।

6. यहाँ इस मामले में, यह प्रतीत होता है कि याची ने एक वर्षीय पाठ्यक्रम में मानसिक विकासरोध में डिप्लोमा प्रमाण पत्र प्राप्त किया और खंडपीठ ने प्रत्यर्थी सं॰ 7, जो और कोई नहीं बल्कि याची को प्रमाण पत्र देने वाला संस्थान है, द्वारा पैरा 9 और 10 में लिए गए दृष्टिकोण पर विचार किया और इसलिए प्रतीत होता है कि खंडपीठ ने निम्नलिखित पंक्तियों में मुख्यत: संप्रेक्षण किया:–

> *^^vkx çrhr gkrk g fd ,u0 vkb0 ,e0 ,p0 l çf'k{k.k çklr dju oky mEehnokj lkekU; Nk=k dk Hkh i<k ldr g D;kfd ifj"kn u dk;Øe bl rjhd l fodfl r fd;k g fd bu fo'k"k f'k{kdk dk lkj igyvk e çf'kf{kr fd;k tkrk g rkfd o fu%'kDr Nk=k vkj lkekU; Nk=k nkuk dk lHkky ldA**

7. अत:, पैरा 9 और 10 से यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी सं॰ 7 जो हितबद्ध पक्ष है, द्वारा लिये गये दृष्टिकोण, जो स्पष्टत: याची के पक्ष में है, को सक्षम प्राधिकारी अर्थात् राज्य सरकार द्वारा विचार किए जाने के लिए अभिवचन के रूप में लिया गया था और इसलिए, अंतत: खंडपीठ द्वारा दिया गया निर्देश यह है

> *^^-------------jkT; ljdkj dk ;g fu.k; yu dk fun'k fn;k tkrk g fd D;k vihykFkh dk fu;ekoyh d fu;e 2([k) d vèkhu çf'kf{kr mEehnokj d :i e ekuk tk ldrk gA**

8. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, अवमान अधिकारिता में, हम पाठ्यक्रमों और प्रशिक्षण, जिसे रिट याचीगण द्वारा प्राप्त किया गया है, के संबंध में पूरी जाँच नहीं कर सकते हैं और जब एक बार राज्य सरकार ने, यद्यपि राज्य सरकार के विभाग के सचिव के माध्यम से, निर्णय ले लिया है, अभिलेख पर सामग्रियों को प्रस्तुत करके मामले में निर्णय प्राप्त करने के लिए उस आदेश को चुनौती देना ही समुचित रास्ता है ताकि समुचित घोषणा की जा सके जिसे अवमान अधिकारिता में प्रदान नहीं किया जा सकता है। हम यह पता लगाने में अक्षम हैं कि क्या राज्य द्वारा लिया गया निर्णय इस न्यायालय द्वारा जारी निर्देश की अवज्ञा करने के आशय के साथ लिया गया है और साथ ही हमारा सुविचारित मत है कि अवमान याची उपचारहीन नहीं है और समुचित उपचार इस न्यायालय के निर्णय के बाद राज्य सरकार द्वारा पारित निर्णय को चुनौती देना है।

9. इस संप्रेक्षण के साथ यह अवमान याचिका निपटायी जाती है और नोटिसों को उन्मोचित किया जाता है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k ,o vij'k dekj flg] U;k;efr

झारखंड राज्य एवं अन्य

cuke

मेसर्स डोमको स्मोकलेस फ्यूल (प्रा॰) लि॰

L.P.A. No. 268 of 2006. Decided on 24th January, 2012.

स्टांप अधिनियम, 1899—धारा 47A—स्टांप शुल्क–स्टांप शुल्क करार में दर्शाए गए विक्रय प्रतिफल के अनुसार भुगतान योग्य नहीं है–रजिस्ट्री प्राधिकारी उस तिथि पर, जब अंतरण विलेख उसके समक्ष प्रस्तुत किया जाता है, बाजार मूल्य के अनुसार स्टांप शुल्क प्रभारित करने के लिए बाध्य है–यह इस पर निर्भर नहीं है कि क्रेता द्वारा विक्रेता को कितने प्रतिफल का भुगतान किया गया है। (पैराएँ 6 एवं 7)

निर्णयज विधि.–AIR 2008 SC 509; (2010) 4 SCC 350—Relied on.

अधिवक्तागण.–J.C. to A.G., For the Appellants; M/s P.K. Prasad, Ayush Aditya, Debolina Sen, For the Respondent.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. अपीलार्थी राज्य रिट याची–प्रत्यर्थी द्वारा दाखिल रिट याचिका अनुज्ञात करते हुए डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 5075 वर्ष 2005 में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 16 दिसंबर, 2005 के आदेश से व्यथित है।

3. इस एल॰ पी॰ ए॰ को विनिश्चित करने के प्रयोजन से प्रासंगिक संक्षिप्त तथ्य ये हैं कि रिट याची–प्रत्यर्थी के अनुसार उसने 15 लाख रुपयों के प्रतिफल के लिए अचल संपत्ति खरीदने के लिए करार किया था और उस प्रयोजन से दिनांक 10 मई, 1995 को विक्रेता द्वारा रिट याची के पक्ष में करार निष्पादित किया गया था। उक्त करार पर विक्रेता द्वारा कार्य नहीं किया गया था और इसलिए रिट याची–प्रत्यर्थी ने दिनांक 10 मई 1995 की संविदा के विनिर्दिष्ट पालन के लिए वर्ष 2003 में सिविल वाद दाखिल किया था। वाद को उसी साल 2003 में डिक्री किया गया था। डिक्री के बाद विक्रय विलेख निष्पादित किया गया था और अक्टूबर, 2003 में ही रजिस्ट्रीकरण के लिए उप–रजिस्ट्रार के समक्ष प्रस्तुत किया गया था। किंतु स्टांप उप–कलक्टर द्वारा आपत्ति की गयी थी कि संपत्ति को केवल 15 लाख रुपयों पर अधोमूल्यित किया गया था जबकि सर्किल दर, जहाँ संपत्ति अवस्थित है, एक लाख रुपया प्रति कट्ठा है। इस आपत्ति के कारण मामला दर्ज किया गया था और स्टांप उप–कलक्टर को निर्दिष्ट किया गया था जिन्होंने अभिनिर्धारित किया कि याची प्रत्यर्थी को संपत्ति के बाजार मूल्य पर स्टांप शुल्क का भुगतान करना होगा जिसे स्टांप उप–कलक्टर द्वारा 2 लाख रुपया प्रति कट्ठा पर निर्धारित किया गया था। विद्वान एकल न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि ''सिविल न्यायालय द्वारा पारित विनिर्दिष्ट पालन के लिए डिक्री के अनुसरण में निष्पादित हस्तांतरण के लिखत के मामले में जिसमें समुचित स्टांप शुल्क के भुगतान से बचने की दृष्टि से अंतरण की विषयवस्तु का मूल्यांकन करने में जानबूझकर अधोमूल्यन अथवा सद्भाव की कमी का अभिकथन नहीं है, यह तथ्य मात्र कि विक्रय के करार और दस्तावेज के निष्पादन के बीच समय अंतराल है, स्वयं में स्टांप अधिनियम की धारा 47 के अधीन अपनी शक्ति का अवलंब लेना रजिस्ट्री प्राधिकारी के लिए पर्याप्त नहीं है जब तक यह विश्वास करने का कारण नहीं है कि समुचित स्टांप शुल्क के भुगतान से बचने की दृष्टि में अधोमूल्यन करने के लिए लिखत के पक्षों की ओर से कोई प्रयास किया गया है।''

4. संप्रेक्षण के बाद विद्वान एकल न्यायाधीश ने दिनांक 21.2.2004 को स्टांप शुल्क कलक्टर द्वारा पारित आदेश को अपास्त कर दिया, अत: राज्य द्वारा इस एल॰ पी॰ ए॰ को दाखिल किया गया है।

5. आरंभ में ही, हम कथन कर सकते हैं कि स्वयं रिट याची–प्रत्यर्थी के अनुसार दिनांक 10 मई, 1995 को संपत्ति का बाजार मूल्य 15 लाख रुपया था, अत: हम इस तथ्य का न्यायिक नोटिस ले सकते

हैं कि अचल संपत्ति का मूल्य वर्ष 2003 में संपत्ति का वही बाजार मूल्य बना नहीं रह सकता था।

6. चाहे जो भी हो, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के हाल के निर्णय की दृष्टि में स्टांप शुल्क करार में दर्शाए गए विक्रय प्रतिफल के अनुसार भुगतान योग्य नहीं है जिसके लिए हम **हरियाणा राज्य एवं अन्य बनाम मनोज कुमार, (2010)4 SCC 350,** मामले में दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास कर सकते हैं जिसमें विनिर्दिष्टत: विवाद्यक इस मामले के विवाद्यक के समरुप था। उस मामले में, उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय में संप्रेक्षित किया गया था कि **''डिक्री की अधिप्रमाणिकता चुनौती के लिए खुला नहीं होने के चलते विक्रय मूल्य की वास्तविकता को उपधारित करना ही होगा।''** माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि उच्च न्यायालय के इस निष्कर्ष को संपोषित नहीं किया जा सकता है **''क्योंकि इसके दूरगामी प्रभाव और परिणाम होंगे। यदि खरीददार और बेचने वाले द्वारा तय किए गए विक्रय मूल्य की वास्तविकता को चुनौती नहीं दी जा सकती है, तब अधिकतर मामलों में यह संभावना नहीं है कि राज्य कभी भी सर्किल दर अथवा कलेक्टर दर के अनुसार स्टांप शुल्क प्राप्त करेगा।''**

7. अन्यथा भी, संपत्ति के बाजार मूल्य, जैसा यह अंतरण विलेख की प्रस्तुति की तिथि पर है, के अनुसार स्टांप शुल्क के भुगतान के लिए कहना डिक्री की शुद्धता को चुनौती नहीं देना है क्योंकि विक्रेता को किसी भी प्रतिफल के लिए अपनी संपत्ति बेचने का अधिकार है जो उस मूल्य पर विक्रय सम्मिलित करता है जो संपत्ति के बाजार मूल्य की तुलना में कम हो सकती है। ऐसे मामलों में भी भुगतान योग्य स्टांप शुल्क संपत्ति का बाजार मूल्य है जैसा यह रजिस्ट्री प्राधिकारी के समक्ष विक्रय विलेख की प्रस्तुति की तिथि पर है। ऐसे मामले में भी जहाँ बाजार मूल्य और करार में दर्शाया गया विक्रय प्रतिफल एक ही है, तब भी संपत्ति का बाजार मूल्य बदल सकता है जब रजिस्ट्री प्राधिकारी के समक्ष वास्तविक अंतरण विलेख प्रस्तुत किया जाता है। रजिस्ट्री प्राधिकारी उस तिथि पर जब अंतरण विलेख उसके समक्ष प्रस्तुत किया जाता है, बाजार मूल्य के अनुसार स्टांप शुल्क प्रभारित करने के लिए बाध्य है। यह इस पर निर्भर नहीं है कि क्रेता द्वारा विक्रेता को कितने प्रतिफल का भुगतान किया गया है।

8. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने अत्यन्त निष्पक्षतापूर्वक स्वीकार किया कि एक अन्य मामले में भी, **राजस्थान राज्य एवं अन्य बनाम मेसर्स खंडका जैन ज्वेलर्स, AIR 2008 SC पृष्ठ 509,** में भी माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा समरूप दृष्टिकोण अपनाया गया था कि स्टांप शुल्क विक्रय विलेख के निष्पादन के समय पर बाजार मूल्य के अनुसार प्रभारित किए जाने का दायी है। उक्त कारणों की दृष्टि में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश संपोषित नहीं किया जा सकता है और अपास्त किए जाने का दायी है।

9. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि राज्य सरकार के मत में भी संपत्ति की सर्किल दर एक लाख रुपया प्रति कट्ठा थी और स्टांप उप-कलक्टर ने अभिलेख पर किसी सामग्री के बिना प्रश्नगत संपत्ति का बाजार मूल्य दो लाख रुपया प्रति कट्ठा पर घोषित किया और इसलिए इस गणना पर भी स्टांप उप-कलक्टर का आदेश अपास्त किया जाता है।

10. संपत्ति का बाजार मूल्य क्या था जब उक्त संपत्ति के अंतरण के लिए अंतरण विलेख प्रस्तुत किया गया था, तथ्य का प्रश्न है और इसलिए इस प्रश्न को एल॰ पी॰ ए॰ में उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है और वह भी प्रत्यर्थी द्वारा जिसने स्टांप उप-कलक्टर द्वारा अपने आदेश में अभिनिर्धारित बाजार मूल्य की शुद्धता को चुनौती नहीं दिया था और उसने रिट याचिका में भी इस प्रश्न को नहीं उठाया था और रिट याचिका का कोई ताथ्यिक आधार नहीं है और इसलिए, प्रत्यर्थी द्वारा एल॰ पी॰ ए॰ में इसे अब उठाया नहीं जा सकता है।

11. उक्त कारणों की दृष्टि में, इस एल॰ पी॰ ए॰ को अनुज्ञात किया जाता है और डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 5075 वर्ष 2005 में पारित दिनांक 16.12.2005 के आक्षेपित निर्णय और आदेश को अपास्त किया जाता है। याची की रिट याचिका को खारिज किया जाता है। व्यय को लेकर आदेश नहीं है।

---

ekuuh; Mhñ ,uñ iVy] U;k;efr

महेश प्रसाद लंकेश

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 40 of 2012. Decided on 17th January, 2012.

सेवा विधि–संप्रत्यावर्तन–याची में सांविधिक अधिकार निहित नहीं है कि जब एक बार वह प्रतिनियुक्ति पर है, न्यूनतम अवधि के लिए वह प्रतिनियुक्ति पर बना रहेगा–यह सब कुछ लोक आवश्यकता और प्रशासनिक अत्यावश्यकताओं पर निर्भर करता है–याचिका खारिज। (पैराएँ 3 से 5)

अधिवक्तागण.–M/s Sujit Narayan Prasad, For the Petitioner; J.C. to G.P. V, For the Respondents.

आदेश

याची के लिए उपस्थित अधिवक्ता दिनांक 26 दिसंबर, 2011 के आदेश (याचिका के मेमो का परिशिष्ट–10) को चुनौती दे रहे हैं जिसके तहत याची को उसके प्रतिनियुक्ति के विभाग अर्थात् ग्रामीण संकर्म विभाग से पथ निर्माण विभाग अर्थात् मूल विभाग में संप्रत्यावर्तित कर दिया गया था।

2. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि याची झारखंड के ग्रामीण संकर्म विभाग में प्रतिनियुक्ति पर था जिसका मूल विभाग पथ निर्माण विभाग है और चूँकि याची ने भ्रष्टाचार अभिकथित करते हुए ठेकेदार के विरुद्ध और कार्यपालक अभियंता के विरुद्ध भी परिवाद किया था, दिनांक 26 दिसंबर, 2011 का यह आदेश असद्भावपूर्ण आशय के साथ पारित किया गया था। इसके अतिरिक्त, याची को दिनांक 28 फरवरी, 2009 के आदेश (याचिका के मेमो का परिशिष्ट–1) के तहत प्रतिनियुक्ति पर स्थापित किया गया था और संप्रत्यावर्तन का आदेश दिसंबर, 2011 में अर्थात् केवल तीन वर्ष बाद पारित किया गया था जबकि प्रतिनियुक्ति के संबंध में पथ निर्माण विभाग द्वारा जारी दिनांक 31 जनवरी, 2011 के सामान्य परिपत्र (याचिका के मेमो का परिशिष्ट–2) के अनुबंध के मुताबिक याची को छह वर्षों तक प्रति नियुक्ति के विभाग में बने रहने की अनुमति दी जानी चाहिए थी। अत: प्रार्थना की गयी है कि दिनांक 26 दिसंबर, 2011 के आदेश को अभिखंडित और अपास्त किया जा सकता है।

3. दोनों पक्षों के अधिवक्ता को सुनने पर और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, मैं मुख्यत: निम्नलिखित तथ्यों और कारणों से इस याचिका को ग्रहण करने का आधार नहीं देखता हूँ:–

(i) oreku ;kph duh; vfHk;rk] iFk fuek.k foHkkx] >kj[kM ljdkj d :i e dk;jr g tgk l ml >kj[kM jkT; e xkeh.k lde foHkkx e çfrfu;Dr fd;k x;k FkkA ekey d rF;k l vkx çrhr gkrk g fd ;kph dk fnukd 26 fnlcj] 2011 d vk{kfir vkn'k }kjk iFk fuek.k foHkkx e lçR;kofrr dj fn;k x;k FkkA

(ii) ;gk ;g mYy[k djuk mi;Dr g fd xkeh.k lde foHkkx e cu jgu d fy, ;kph u oèkkfud :i l vfèkdkj fufgr ugh fd;k g vkj u gh >kj[kM jkT; d xkeh.k lde foHkkx e ;kph dk cuk, j[ku d fy, çR;Fkhx.k e lkfofèkd drO; fufgr fd;k x;k gA bl çdkj] çR;Fkhx.k }kjk fdlh Hkh lkfofèkd drO; dk mYy?ku ugh fd;k x;k gA

(iii) ;kph u fdlh Bdnkj d fo#) vkj dk;ikyd vfHk;rk d fo#) Hkh dN ifjokn nkf[ky fd;k g] fdr bldk vFk ;g ugh g fd vk{kfir vkn'k ikfjr dju e iokDr vfèkdkjh dk vlnHkkoi.k vk'k; gA e[; vfHk;rk&lg&vij vk;Dr&lg&fo'k"k lfpo }kjk vkn'k ikfjr fd;k x;k gA bl çdkj] vR;r Åp in ij LFkkfir vfèkdkjh }kjk vk{kfir vkn'k ikfjr fd;k x;k g vkj çdVr% e[; vfHk;rk&lg&vij vk;Dr&lg&fo'k"k lfpo] ftUgku lçR;koru vkn'k ikfjr fd;k g] d fo#) ;kph dk ifjokn ugh gA vr% vfèkdkjh] ftUgku vk{kfir vkn'k ikfjr fd;k g] d fo#) vlnHkko dk vfHkdFku bl U;k;ky; }kjk Lohdkj ugh fd;k x;k FkkA

(iv) ;kph d vfèkoDrk d fuonu d lcèk e fd ;kph dk Qjojh] 2009 e xkeh.k lde foHkkx e çfrfu;Dr fd;k x;k Fkk vkj fnlcj] 2011 vFkkr rhu o"kk d lf{kIr vofèk d ckn mlI lçR;kofrr fd;k x;k g] ;g Li"V g fd çfrfu;fDr dh vofèk lf{kIr g fdr bldk vFk ;g ugh g fd çR;Fkhx.k lf{kIr vofèk d ckn ;kph dk lçR;kofrr ugh dj ldr g D;kfd ifjf'k"V&2 ij ektn ifji=] ftl ij ;kph d vfèkoDrk u fo'okl fd;k] fun'kkRed çrhr gkrk g vkj u fd ;g vkKkid çÑfr dk gA ;kph e dkb lkfofèkd vfèkdkj fufgr ugh g fd tc ,d ckj og çfrfu;fDr ij g] dkb U;ure vofèk g ftld fy, og çfrfu;fDr ij cuk jgxkA ;g lc dN ykd vko';drk vkj ç'kklfud vR;ko';drkvk ij fuHkj djrk gA

(v) vkx] ifjf'k"V&10 ij vk{kfir vkn'k d ifj'khyu ij ;g yxHkx nk ntu vfHk;rkvk d LFkkukrj.k@lçR;koru dk l;Dr vkn'k çrhr gkrk gA

4. अत: इन परिस्थितियों के संवर्ग में अर्थात् आक्षेपित आदेश जिसे लगभग दो दर्जन कर्मचारियों के संबंध में पारित किया गया है, यह तथ्य कि प्रतिनियुक्ति के विभाग में बने रहने के लिए याची में विधिक रूप से निहित अधिकार नहीं है चूँकि परिशिष्ट–2 पर परिपत्र निर्देशात्मक और न कि आज्ञापक, प्रकृति का है और यह तथ्य भी कि याची ने मूल विभाग में पहले ही कर्तव्य संभाल लिया है जैसा–याची के अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है, रिट याचिका में कोई सार नहीं है।

5. तद्नुसार, यह रिट याचिका खारिज की जाती है।

---

ekuuh; ,pñ lhñ feJk] U;k;efr

आर॰ एस॰ एस॰ एल॰ एन॰ भाष्करुडू

cuke

बिहार राज्य (अब झारखंड राज्य) एवं एक अन्य

Cr.W.J.C. No. 130 of 1999(R). Decided on 5th January, 2012.

भारत के संविधान के अनुच्छेदों 226 और 227 के अधीन आवेदन के मामले में।

भारतीय दंड संहिता, 1860–धारा 406/34—भारत का संविधान–अनुच्छेद 226—न्यास का दांडिक भंग–संज्ञान–इसके लिए कीमत का भुगतान किए जाने के बावजूद बुक की गयी कार की डिलीवरी नहीं किए जाने का अभिकथन–यद्यपि भुगतान कंपनी के नाम पर किया गया था किंतु इसका भुगतान प्रत्यक्षतः याची को नहीं किया गया था–याची कार निर्माण करने वाली कंपनी का उच्च पदधारी है–भुगतान कंपनी के प्राधिकृत डीलर को किया गया था–सिवाए इसके कि याची वाहनों का स्वामी है और उसने अपने प्राधिकृत डीलरों के माध्यम से वाहनों के विक्रय की योजना पेश की थी, संपूर्ण परिवाद याचिका में याची के विरुद्ध अभिकथन नहीं है–संव्यवहार के किसी चरण पर याची की ओर से कोई आपराधिक मनः स्थिति नहीं है–याची के विरुद्ध कोई दांडिक दायित्व नहीं हो सकता है–याची के विरुद्ध बतायी गयी किसी विनिर्दिष्ट भूमिका की अनुपस्थिति में याची के विरुद्ध कोई अपराध नहीं बनता है–संपूर्ण दांडिक कार्यवाही अभिखंडित–रिट आवेदन अनुज्ञात। (पैराएँ 9, 17, 18 एवं 19)

निर्णयज विधि.–2010(10) SCC 479—Applied; AIR 1980 SC 439; 2009 (10) SCC 48; 2011 (1) SCC 74—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. Delip Jerath, For the Petitioner; Mr. Deepak Kumar Bharati, For the Complainant; Mr. Rajesh Kumar, For the State.

एच॰ सी॰ मिश्रा, न्यायमूर्ति.–यह रिट आवेदन याची द्वारा मारुति उद्योग लिमिटेड का अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक होने के नाते दाखिल किया गया है जिन्हें चूटिया पी॰ एस॰ केस सं॰ 78 वर्ष 1999, जी॰ आर॰ केस सं॰ 1355 वर्ष 1999 के तत्सम, में भारतीय दंड संहिता की धाराओं 406/34 के अधीन अपराध के लिए अभियुक्त बनाया गया है और इसमें उक्त दांडिक मामले में उसके विरुद्ध संपूर्ण दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन के लिए प्रार्थना की गयी है।

2. मामले के तथ्य संक्षिप्त हैं। विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 गुरनाम सिंह ने मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, राँची के न्यायालय में परिवाद मामला दाखिल किया था जिसे परिवाद केस सं॰ 308 वर्ष 1999 के रूप में दर्ज किया गया था। उक्त परिवाद मामले में, याची को अन्य लोगों जो मेसर्स आशीष ऑटोमोबाइल्स, मेन रोड, राँची के पदधारी और कार्यपालक थे और किसी श्री एम॰ के॰ सोमानी, सोमानी स्विस इंडस्ट्रीज लिमिटेड जिसका रजिस्टर्ड कार्यालय कोलकाता में था, के साथ अभियुक्तगण में से एक बनाया गया था। परिवादी ने अभिकथित किया कि याची, जो उक्त परिवाद मामले में अभियुक्त सं॰ 3 था, मारुति वेहिकल्स का स्वामी था और अपने प्राधिकृत डीलरों के माध्यम से, जिनमें से एक अभियुक्त सं॰ 2 एम॰ के॰ सोमानी है जो अपने सेल्स एक्जीक्यूटिवों अर्थात् अभियुक्त सं॰ 1 और 4, जो मेसर्स आशीष ऑटोमोबाइल्स लिमिटेड के सीनियर एक्सीक्यूटिव और सेल्स ऑफिसर थे, के माध्यम से कार बुक किया करता था, मारुति वाहनों की बिक्री के लिए योजना चलाया था। तद्नुसार, परिवादी ने अभियुक्त सं॰ 1 और 4 से संपर्क किया और वे अभियुक्त सं॰ 2 श्री एम॰ के॰ सोमानी जो कोलकाता में था से अनापत्ति पाने पर एक मारुति कार की कीमत स्वीकार करने के लिए सहमत हुए और परिणामस्वरुप श्री एम॰ के॰ सोमानी के अनुमोदन से परिवादी द्वारा इसकी कीमत का भुगतान करने के बाद एक वाहन बुक किया गया था जिसकी व्यवस्था उसने 18% वार्षिक ब्याज पर पंजाब नेशनल बैंक से कर्ज लेकर किया था। परिवादी के मामले के अनुसार, कार की कीमत जमा करने के बावजूद उसको कार डिलीवरी नहीं की गयी थी और इसलिए परिवादी ने

याची अर्थात् मेसर्स मारुति उद्योग लिमिटेड के अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक सहित अभियुक्तगण के विरुद्ध परिवाद याचिका दाखिल किया था।

3. जहाँ तक याची का संबंध है, केवल यह अभिकथित किया गया है कि धन मारुति उद्योग लिमिटेड के नाम में जमा किया गया था जिसका याची अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक था और उसके द्वारा दिए गए आश्वासन के बावजूद न तो उसको कार की डिलीवरी दी गयी थी और न ही परिवादी को धन वापस लौटाया गया था।

4. उक्त परिवाद याचिका पुलिस मामले के संस्थापन के लिए भेजा गया था जिसके आधार पर याची सहित अभियुक्तगण के विरुद्ध चूटिया पी॰ एस॰ केस सं॰ 78 वर्ष 1999, जी॰ आर॰ सं॰ 1355 वर्ष 1999 के तत्सम, संस्थापित किया गया था।

5. याची ने अन्य बातों के साथ साथ यह निवेदन करते हुए अपने विरुद्ध प्राथमिकी के संस्थापन को चुनौती दिया है कि यदि परिवाद याचिका में कथित समस्त तथ्यों को सत्य स्वीकार किया भी जाता है, याची के विरुद्ध कोई अपराध नहीं बनता है। यह निवेदन भी किया गया है कि परिवाद याचिका के अनुसार, संपूर्ण संव्यवहार अन्य अभियुक्तगण के साथ, और न कि प्रत्यक्षत: याची के साथ किया गया था और केवल इस तथ्य के कारण कि याची मारुति उद्योग लिमिटेड का अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक था, याची को अन्य अभियुक्तगण द्वारा किए गए अपराधों अगर कोई हो, के लिए प्रतिनिधिक रूप से दायी नहीं बनाया जा सकता है। इस प्रकार, इस रिट आवेदन में विनिश्चित किया जाने वाला एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या परिवाद याचिका में किए गए बयानों के आधार पर मारुति उद्योग लिमिटेड का अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक होने के नाते याची के विरुद्ध कोई अपराध बनता है।

6. परिवाद याचिका के सादे पठन से प्रतीत होता है कि संपूर्ण परिवाद याचिका में याची के विरुद्ध कोई अभिकथन नहीं है सिवाए इस कथन के कि याची मारुति वेहिकल्स का स्वामी है और अपने प्राधिकृत डीलरों के माध्यम से मारुति वाहनों के विक्रय के लिए योजना चलाया था और कि यद्यपि धन मारुति उद्योग लिमिटेड के नाम में जमा किया गया था जिसका याची अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक है, न तो कार की डिलीवरी की गयी थी और न ही परिवादी को धन लौटाया गया था।

7. इस चरण पर यह इंगित किया जा सकता है कि रिट आवेदन के पैराग्राफ 21 में कथन किया गया है कि याची को आशीष ऑटोमोबाइल्स के मुख्य कार्यपालक अधिकारी श्री एम॰ के॰ सोमानी द्वारा सूचित किया गया था कि परिवादी द्वारा जमा की गयी बुकिंग राशि ब्याज के साथ 1,92,962/- रुपया मूलधन की ओर और 18,450/- रुपया ब्याज की ओर, उसे वापस लौटाया जा चुका था जिस राशि को प्रत्यर्थी सं॰ 2 परिवादी द्वारा सम्यक रूप से प्राप्त किया गया था। प्रत्यर्थी सं॰ 2 परिवादी द्वारा एक प्रतिशपथ पत्र दाखिल किया गया है जिसमें निम्नलिखित शब्दों में इस पैराग्राफ का उत्तर दिया गया है:-

> *"(xi) fd fjV ;kfpdk d ijk 21 e fn, x, c;ku d lcèk e ;g dFku vkj fuonu fd;k tkrk g fd mle fn, x, c;ku Hkked g vkj bl lhek rd lR; ugh g fd fnukd 30.10.1998 d vkMj cfdx Qke d fucèkuku lkj ;kph Lo; foØ; d fucèkuk vkj 'krk d [kM 2 d rgr tek dju dh frFk l okgu d Hkxrku ij 20% okf"kd nj l C;kt dk Hkxrku dju d fy, lger gvk Fkk vkj f}rh; r% fnukd 7 vçy] 1999 d i= d rgr ;kph vkj çfrufèk foyc dh vofèk d fy, ,e0 ;0 ,y0 d nj ij 8% okf"kd nj l vfrjDr C;kt dk Hkxrku dju d fy, lger g, Fk vkj blfy, mDr lnHk e tek jkf'k ij dy C;kt 28%*

*okf"kd nj l curk g ftldk Hkxrku vHkh Hkh ;kph] mldh diuh vFkok çfrufèk;k dk 19,148.70/-#i;k dh lhek rd oreku çR;Fkh dk fd;k tkuk g tk C;kt d dkj.k vHkh Hkh cdk;k g vkj blfy, fjV ;kfpdk d iokDr ijk e fd;k x;k çdFku ijh rjg vLohdkj fd;k tkrk gA***

8. इस प्रकार, इस बयान पर इसके तथ्य का प्रश्न होने के नाते, रिट अधिकारिता में विचार नहीं किया जा सकता है और इस प्रकार, मैं इस ताथ्यिक प्रश्न पर विचार नहीं कर रहा हूँ कि क्या वस्तुत: याची को भुगतान किया गया था या नहीं। परिवादी के उक्त प्रकथन को केवल इसलिए उद्धृत किया गया है क्योंकि उसमें यह उल्लेख है कि प्रतिनिधि (वर्तमान डीलर) विलंब की अवधि के लिए एम॰ यू॰ एल॰ के दर के ऊपर और अतिरिक्त 8% वार्षिक दर से अतिरिक्त ब्याज का भुगतान करने के लिए सहमत हुआ था। इस संबंध में, उनके समक्ष लंबित विवाद के कारण वाणिज्यकर प्राधिकारीगण द्वारा आदेशित विक्रय कर रजिस्ट्रीकरण के अचानक रद्दकरण के कारण राशि वापस लौटाने अथवा कार की डिलीवरी देने में अपनी अक्षमता दर्शाते हुए और एम॰ यू॰ एल॰ दर के ऊपर और अतिरिक्त 8% वार्षिक ब्याज का भुगतान करने का परिवादी द्वारा दिए गए कानूनी नोटिस के उत्तर में आशीष ऑटोमोबाइल्स द्वारा जारी दिनांक 7 अप्रिल, 1999 के पत्र को परिवादी द्वारा परिशिष्ट A/1 के रूप में अभिलेख पर लाया गया है।

9. इस प्रकार, उक्त से स्पष्ट है कि यद्यपि भुगतान मारुति उद्योग लिमिटेड के नाम पर किया गया था किंतु इसका भुगतान प्रत्यक्षत: याची को नहीं किया गया था बल्कि इसका भुगतान मारुति उद्योग लिमिटेड के प्राधिकृत डीलरों को किया गया था और जो भी संव्यवहार एवं व्यवहार था वह प्राधिकृत डीलर के साथ था और न कि प्रत्यक्षत: याची के साथ। यद्यपि दस्तावेजों को यह दर्शाने के लिए अभिलेख पर लाया गया है कि याची ने अपने स्तर पर डीलर और प्रतिवादी के बीच विवाद सुलझाने का प्रयास भी किया था किंतु याची द्वारा इसको सुलझाया नहीं जा सका था। स्वयं प्रत्यर्थी परिवादी द्वारा अभिलेख पर लाए गए परिशिष्ट-A/1 से प्रतीत होता है कि डीलर के विक्रय कर रजिस्ट्रीकरण के रद्दकरण के कारण वास्तविक मुश्किल थी जिस कारण न तो कार की डिलीवरी दी जा सकी थी और न ही धन वापस लौटाया गया था और डीलर आशीष ऑटोमोबाइल्स वाहन की विलंबित डिलीवरी की अवधि के लिए एम॰ यू॰ एल॰ दर के ऊपर और अतिरिक्त 8% वार्षिक दर से अतिरिक्त ब्याज का भुगतान करने के लिए सहमत हुआ था।

10. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि याची को इस मामले में झूठा आलिप्त किया गया है क्योंकि यह विधि का सुनिश्चित सिद्धांत है कि याची को मारुति उद्योग लिमिटेड का केवल अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक होने के नाते प्रतिनिधिक दायित्व के जरिए भारतीय दंड संहिता की धाराओं 406/34 के अधीन अपराध, जिसे डीलर द्वारा किया जा सकता था, के लिए दायी अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता था। तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि इस याची के विरुद्ध आरंभ की गयी दांडिक कार्यवाही याची को अनावश्यक परेशानी कारित करने के अतिरिक्त विधि की दृष्टि में पूर्णत: दोषपूर्ण है और इसको अभिखंडित करने की प्रार्थना की है।

11. अपने प्रतिवाद के समर्थन में, याची के विद्वान अधिवक्ता ने **बी॰ एस॰ भार्गव एवं एक अन्य बनाम बिहार राज्य एवं एक अन्य** मामले में **दांडिक विविध सं॰ 2932 वर्ष 1995 (R)** में इस न्यायालय के दिनांक 29.2.1996 के अप्रकाशित निर्णय पर विश्वास किया है जिसमें मारुति उद्योग लिमिटेड के विरुद्ध संस्थापित समरुप मामले में यह पाया गया था कि यद्यपि ड्राफ्ट मारुति उद्योग लिमिटेड के नाम पर जारी किया गया था किंतु इसे डीलरों के पास जमा किया गया था और न कि प्रत्यक्षत: मारुति

उद्योग लिमिटेड के साथ। यह भी पाया गया था कि परिवादी और मारुति उद्योग लिमिटेड के बीच संविदात्मक संबंध नहीं था। तद्नुसार, कंपनी के विरुद्ध संस्थापित दांडिक मामला इस न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए खंडित कर दिया गया था कि याची कंपनी के विरुद्ध प्रकटत: कोई दांडिक मामला नहीं हो सकता है यद्यपि राशि का नगदीकरण करवाने के लिए याची का सिविल दायित्व हो सकता था।

12. विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान **महाराष्ट्र राज्य विद्युत वितरण कंपनी लिमिटेड एवं एक अन्य बनाम दातार स्विचगियर लिमिटेड एवं अन्य, 2010 (10) SCC 479,** मामले जिसमें महाराष्ट्र राज्य विद्युत बोर्ड के अध्यक्ष को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 192 और 199 सहपठित धारा 34 के अधीन अपराध के लिए अभियुक्त बनाया गया था, में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की ओर आकृष्ट किया है जिसमें निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था:–

> *"30. ;g io l ipfyr fofèk g fd tgk dgh Hkh fofèkd dYiuk }kjk çfrufèkd nkf;Ro dk fl}kr vkÑ"V gkrk g vkj fdlh 0;fDr] tk vU;Fkk vijkèk dju e 0;fDrxr :i l vrxLr ugh g] dk bld fy, nk;h cuk;k tkrk g] bl lcfèkr lofèk e fofufn"Vr% çkoèkkfur djuk gkxkA gekj er e u rk HkkO n0 l0 dh èkkjk 192 vkj u gh HkkO n0 l0 dh èkkjk 199 çfrufèkd nkf;Ro d fl)kr dk lfEefyr djrh g vkj bl fy, ifjokn e çR;d vfHk;Dr dh Hkfedk dk fofufn"Vr% dFku djuk ifjoknh ij ckè;dkjh FkkA , l0 d0 vyèk] (2008)5 SCC 662 ¼i"B 667, ijk 19) e fd, x, fuEufyf[kr lç{k.kk dk m}r djuk ykHknk;h gkxk%&*
>
> *"19. pfd LohÑr :i l Mk¶Vk dk diuh d uke ij fn;k x;k Fkk] vr% Hky gh vihykFkh bldk çcèk fun'kd Fkk] ml nM lfgrk dh èkkjk 406 d vèkhu vijkèk dju okyk ugh dgk tk ldrk gA ;fn vkj tc lofèk , lh fofèkd dYiuk dk l tu vuè;kr djrh g] ;g bld fy, fofufn"Vr% çkoèkku cukrh gA lofèk d vèkhu vfèkdfFkr fdlh çkoèkku dh vuifLFkfr e diuh dk fun'kd vFkok depkjh Lo; diuh }kjk fd, x, fdlh vijkèk d fy, çfrufèkd :i l nk;h vfHkfuèkkfjr ugh fd;k tk ldrk gA** ¼tkj fn;k x;k½*

13. इस निर्णय पर विश्वास करते हुए विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि परिवाद याचिका में अपराध करने में याची की भूमिका प्रदर्शित करने वाले किसी विनिर्दिष्ट प्रकथन की अनुपस्थिति में याची का कोई दांडिक दायित्व नहीं है और इस प्रकार, याची को परिवाद याचिका में और इसके अनुसरण में दर्ज प्राथमिकी में अभियुक्त नहीं बनाया जा सकता था। तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना किया कि याची के विरुद्ध दांडिक कार्यवाही जारी रखना पूर्णत: अवैध है और अभिखंडित किए जाने योग्य है।

14. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी परिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यह विधि का सुनिश्चित सिद्धांत है कि कंपनी का अध्यक्ष–सह–प्रबंध निदेशक कंपनी का न्यासी होता है और यदि कंपनी अथवा इसके प्राधिकृत एजेन्ट द्वारा कोई अपराध किया जाता है, इसके लिए कंपनी का अध्यक्ष बराबर रूप से दायी होता है। अपने प्रतिवाद के समर्थन में विद्वान अधिवक्ता ने **शिवनारायण लक्ष्मीनारायण जोशी एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य, AIR 1980 SC 439,** मामले में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि कंपनी के प्रबंध निदेशक का आस्तियों का न्यासी होने के नाते कंपनी के संपत्ति पर पर्याप्त प्रभाव और नियंत्रण है।

15. प्रत्यर्थी परिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने **के॰ के॰ आहूजा बनाम वी॰ के॰ वोरा एवं एक अन्य, 2009 (10) SCC 48,** मामले में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि प्रबंध निदेशक प्रथम दृष्टया कंपनी का प्रभारी और कंपनी के व्यवसाय और कार्यकलापों के लिए जिम्मेवार है और कंपनी द्वारा किए गए अपराध के लिए अभियोजित किया जा सकता है।

16. परिवादी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा **इरिडियम इंडिया टेलीकॉम लिमिटेड बनाम मोटोरोल इनकॉरपोरेट एवं अन्य, 2011 (1) SCC 74,** मामले में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भी विश्वास किया है जिसमें अभिनिर्धारित किया गया है कि अभियुक्त के विरुद्ध दांडिक कार्यवाही आरंभिक चरण में केवल तब अभिखंडित की जा सकती हे जब परिवाद अथवा इसके साथ संलग्न कागजातों को देखते ही कोई अपराध गठित नहीं होता है। दूसरे शब्दों में, परीक्षा अभिकथनों और परिवाद, जैसे वे हैं, को बिना कुछ जोड़े घटाए लेने पर यदि कोई अपराध नहीं बनता है, तब उच्च न्यायालय दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 482 के अधीन अपनी शक्तियों के प्रयोग में कार्यवाही अभिखंडित करने में न्यायोचित होगा। उक्त मामले में यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि इसके अधिकारियों अथवा एजेन्टों के कृत्यों के लिए निगम को भी दांडिक रूप से दायी अभिनिर्धारित किया जा सकता है। इस निर्णय पर विश्वास करते हुए विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि इस आरंभिक चरण पर याची के विरुद्ध दांडिक कार्यवाही अभिखंडित करने के लिए यह सुयोग्य मामला नहीं है।

17. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद और अभिलेख का परिशीलन करने पर, मैं पाता हूँ कि यदि परिवाद में याची के विरुद्ध किए गए अभिकथनों को संपूर्णता में लिया जाता है, याची के विरुद्ध केवल यह अभिकथन है कि याची मारुति उद्योग लिमिटेड के अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक होने के नाते मारुति वाहनों का स्वामी है जिसने अपने प्राधिकृत डीलरों के माध्यम से वाहनों के विक्रय की योजना चलायी थी और अंत में कथन किया गया है कि यद्यपि कार की कीमत मारुति उद्योग लिमिटेड के नाम से जमा की गयी थी जिसका यह याची अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक है किंतु न तो परिवादी को कार की डिलीवरी दी गयी थी और न ही धन वापस लौटाया गया था। इस अभिकथन के सिवाए संपूर्ण परिवाद याचिका में याची के विरुद्ध कोई अन्य अभिकथन नहीं है और जो अभिकथन हैं, वे प्राधिकृत डीलर के अधिकारियों और कार्यपालकों के विरुद्ध है जिनको भुगतान किया था और जिनके द्वारा न तो परिवादी को कार की डिलीवरी दी गयी थी और न ही उसका धन वापस लौटाया गया था। यह नहीं कहा जा सकता है कि याची की ओर से संव्यवहार के किसी चरण पर कोई आपराधिक मन: स्थिति थी। अत: मेरा सुविचारित मत है कि दी गयी परिस्थितियों में याची का जो भी दायित्व है, यह सिविल दायित्व हो सकता है किंतु याची का दांडिक दायित्व नहीं हो सकता है। ऊपर निर्दिष्ट **बी॰ एस॰ भार्गव के मामले (ऊपर)** में दांडिक विविध सं॰ 2932 वर्ष 1995 (R) में इस न्यायालय द्वारा समरुप दृष्टिकोण अपनाया गया था। इसके अतिरिक्त, मेरे सुविचारित मत में, याची के विरुद्ध बताए गए किसी विनिर्दिष्ट भूमिका की अनुपस्थिति में याची के विरुद्ध कोई अपराध बनता हुआ नहीं कहा जा सकता है और याची को प्रतिनिधिक दायित्व के सिद्धांत की किसी विधिक कल्पना द्वारा दंड संहिता की धारा 406 के अधीन अपराध करता नहीं कहा जा सकता है क्योंकि यह सुनिश्चित है कि यदि और जब संविधि ऐसी विधिक कल्पना का सृजन अनुध्यात करती है, यह इसके लिए विनिर्दिष्टत: प्रावधान बनाती है। याची का मामला **महाराष्ट्र राज्य विद्युत वितरण कंपनी लिमिटेड (ऊपर)** के मामले में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय द्वारा पूर्णत: आच्छादित है।

18. पूर्वोल्लिखित चर्चा की दृष्टि में, मैं पाता और अभिनिर्धारित करता हूँ कि यद्यपि याची के मारुति उद्योग लिमिटेड का अध्यक्ष होने के नाते यह देखना कि या तो परिवादी को कार की डिलीवरी दी जाए या फिर उसके धन को वापस लौटाया जाए, सिविल दायित्व हो सकता है किंतु जहाँ तक दांडिक दायित्व का संबंध है, मैं पाता हूँ कि याची का कोई दांडिक दायित्व इस तथ्य की दृष्टि में नहीं है कि संपूर्ण परिवाद याचिका में याची द्वारा किए गए किसी अपराध का कोई विनिर्दिष्ट अभिकथन नहीं है और इस प्रकार याची के विरुद्ध दांडिक कार्यवाही जारी रखना पूर्णतः अवैध है और विधि की दृष्टि में संपोषित नहीं किया जा सकता है।

19. पूर्वोल्लिखित चर्चा की दृष्टि में, चूटिया पी॰ एस॰ केस सं॰ 78 वर्ष 1999, जी॰ आर॰ सं॰ 1355 वर्ष 1999 के तत्सम, प्राथमिकी और संपूर्ण दांडिक कार्यवाही, जहाँ तक यह याची से संबंधित है, एतद् द्वारा अभिखंडित की जाती है। तद्नुसार, यह रिट आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; ç'kkUr dekj] U;k;efr

संजू कुमारी

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 6187 of 2005. Decided on 1st February, 2012.

भारत का संविधान—अनुच्छेद 342—आरक्षण—एक राज्य में अधिसूचित अनुसूचित जाति अथवा अनुसूचित जनजाति को किसी अन्य राज्य में आरक्षण का लाभ नहीं दिया जा सकता है—यदि याची द्वारा जाति प्रमाण पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया है, तब वह अनुसूचित जाति समुदाय से आने वाले उम्मीदवार के लिए आरक्षित पद के विरुद्ध नियुक्ति के लिए हकदार नहीं है—किंतु, चूँकि याची ने ऐसे व्यक्ति से विवाह किया है जो झारखंड राज्य में बोकारो का स्थायी निवासी है, प्रत्यर्थी याची के पक्ष में जाति प्रमाण पत्र जारी करने से इनकार नहीं कर सकता है—आवेदन अंशतः अनुज्ञात। (पैराएँ 7 से 12)

निर्णयज विधि.—W.P. (S) No. 3846 of 2010; (2004)9 SCC 481—Relied on.

अधिवक्तागण.—Mr. D. K. Dubey, For the Petitioner; M/s. Abhay Kumar Mishra, Gautam Kumar, For the State; M/s. S. Piprawal, Mahadeo Thakur, For J.P.S.C.

प्रशांत कुमार, न्यायमूर्ति.—इस रिट आवेदन में याची ने निम्नलिखित अनुतोषों के लिए प्रार्थना किया है:—

(a) çkFkfed çf'kf{kr f'k{kdk d in d fy, o"k 2002-2003 e yh x;h ijh{kk vkj fnukd 18 vxLr] 2005 dk çdkf'kr ifj.kke] ftl d }kjk vkj ftl d vèkhu ;kph dk vulfpr tkfr dkfV d vèkhu ckdkjk ftyk e lQy ?kkf"kr fd;k x;k g] d fucèkuku lkj fu;fDr i= tkjh dju d fy, çR;Fkhx.k dk lefpr fun'k nu d fy,A

(b) tlk dkfed ,o ç'kklfud lèkkj vkj jktHkk"kk foHkkx }kjk tkjh fnukd 29.4.2005 d i= l0 1219 d fucèkuku lkj vko';d g vkj ;kph d ifr dk dkQh igy l vFkkr o"k 1980 d igy cjek dk LFkk;h fuokl h gku d dkj.k 27.3.90 dk bl lcèk e l{ke çkfèkdkjh }kjk tkjh çek.k i= d vkykd e Hkh

tkfr vkj vkokl h; çek.k i= tkjh dju d fy, çR;Fkh l0 5 l 7 rd dk lefpr fun'k tkjh dju d fy,A

(c) bl rF; dh nf"V e fd çkFkfed çf'kf{kr f'k{kdk d in ij fu;fDr d fy, çR;Fkhx.k }kjk foKkiu e , lh dkb 'kr mfYyf[kr ugh dh x;h Fkh fd vU; jkT; }kjk tkjh tkfr çek.k i= dk fu;fDr d lcèk e çHkko ugh fn;k tk,xk] ;kph d lcèk e fnukd 29.4.2005 d i= l0 1219 dk çHkko ugh nu d fy, çR;Fkhx.k dk lefpr fun'k tkjh dju d fy,A

(d) fdlh vU; vurk"k vFkok vurk"kk d fy, ftudk ;kph ekey d rF;k vkj ifjfLFkfr;k e vR;Ur gdnkj gA

2. यह कथन किया गया है कि परिशिष्ट–1 के तहत झारखंड लोक सेवा आयोग द्वारा जिला कैडर में प्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति के लिए विज्ञापन जारी किया गया था। कथन किया गया है कि याची ने उक्त विज्ञापन के अनुसरण में आवेदन दिया। तत्पश्चात, वह लिखित परीक्षा में उपस्थित हुई और सफल हुई। कथन किया गया है कि अनुसूचित जाति की कोटि में बोकारो जिला की मेधा सूची के क्रमांक–6 पर उसका नाम आया था। तत्पश्चात, वह प्रमाणपत्रों के सत्यापन के लिए जिला शिक्षा अधीक्षक, बोकारो के कार्यालय गयी। उस अवधि के दौरान, जिला शिक्षा अधीक्षक के अधीनस्थ स्टाफ ने उसको सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी जाति एवं आवासीय प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने के लिए कहा। कथित किया गया है कि तत्पश्चात उसने सक्षम प्राधिकारी के समक्ष जाति प्रमाण पत्र जारी करने के लिए आवेदन दिया किंतु इसे इस आधार पर जारी नहीं किया गया था कि उसका स्थायी पता बिहार राज्य का है। कथन किया गया है कि कार्मिक प्रशासनिक सुधार एवं राजभाषा विभाग ने दिनांक 29.4.2005 को पत्र सं॰ 1219 जारी किया जिसमें कथन किया गया है कि यदि कोई उम्मीदवार झारखंड राज्य के किसी अधिकारी द्वारा जारी जाति प्रमाण पत्र प्रस्तुत करता है, तब भी उसे नियुक्त नहीं किया जाएगा यदि उसका स्थायी पता किसी अन्य राज्य का है। कथन किया गया है कि याची का विवाह वर्ष 1988 में किसी राजेन्द्र रजक के साथ हुआ था जो बोकारो जिला में करगली, बेरमों का निवासी है और तब से वह अपने पति के साथ रह रही है। कथन किया गया है कि बिहार राज्य के पुनर्गठन के पहले वह उस क्षेत्र में रह रही है जिसने बाद में झारखंड राज्य गठित किया है और इस प्रकार वह झारखंड राज्य से जाति प्रमाण पत्र पाने की हकदार है भले ही राज्य के पुनर्गठन के बाद उसका स्थायी गृह पता बिहार राज्य के अंतर्गत आता है। निवेदन किया गया है कि चूँकि याची को झारखंड लोक सेवा आयोग द्वारा सफल घोषित किया गया है, अत: वह नियुक्ति की हकदार है।

3. झारखंड लोक सेवा आयोग की ओर से प्रतिशपथ पत्र दाखिल किया गया है जिसमें कथन किया गया है कि झारखंड लोक सेवा आयोग ने इस शर्त पर परिणाम प्रकाशित किया है कि उम्मीदवारों द्वारा प्रस्तुत उनके प्रमाण पत्रों अर्थात् एकेडमिक, प्रशिक्षण, जिला विकल्प और जाति प्रमाण पत्र के सत्यापन के बाद ही चयनित उम्मीदवारों को नियुक्ति पत्र जारी किया जाएगा। आगे कथन किया गया है कि शिक्षा विभाग, झारखंड सरकार ने नियुक्ति पत्र जारी किए जाने के पहले चयनित उम्मीदवारों के दस्तावेजों/प्रमाणपत्रों के सत्यापन के लिए मार्गदर्शक सिद्धांतों को जारी किया था। प्रत्यर्थी सं॰ 4 (जिला शिक्षा अधीक्षक, बोकारो) ने पृथक प्रतिशपथ पत्र दाखिल किया है जिसमें उन्होंने कथन किया है कि बोकारो जिला में अनुसूचित जाति कोटि में याची का चयन किया गया था। उन्होंने आगे कथन किया कि नोटिस के बावजूद याची ने सत्यापन के लिए अपना जाति और आवासीय प्रमाण पत्र प्रस्तुत नहीं किया था। इस तथ्य को सिद्ध करने के लिए प्रत्यर्थी सं॰ 4 के रिट आवेदन के साथ संलग्न परिशिष्ट–4 पर विश्वास किया। आगे कथन किया

गया है कि याची ने बाद के चरण पर किसी राजेन्द्र रजक के पक्ष में जारी जाति प्रमाण पत्र को यह कहते हुए दाखिल किया कि उक्त राजेन्द्र रजक उसका पति है और वह करगली, बेरमो, जिला बोकारो का निवासी है। किंतु, उसने किसी सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी स्वयं अपना जाति प्रमाण पत्र प्रस्तुत नहीं किया था। तद्नुसार, कथन किया गया है कि याची नियुक्ति की हकदार नहीं है।

4. याची के विद्वान अधिवक्ता श्री धनंजय दूबे द्वारा निवेदन किया गया है कि चूँकि याची का विवाह वर्ष 1988 में श्री राजेन्द्र रजक के साथ हुआ है जो बोकारो जिला में करगली, बेरमो का निवासी है, अत: वह जाति प्रमाण पत्र पाने की हकदार है भले ही उसका स्थायी पता राज्य के पुनर्गठन के बाद बिहार राज्य के अंतर्गत आता है। आगे निवेदन किया गया है कि परिशिष्ट–5 अर्थात् कार्मिक विभाग का अनुदेश वर्ष 2005 में जारी किया गया था, अत: यह वर्ष 2002-2003 में जारी विज्ञापन के मामले पर प्रयोज्य नहीं था। निवेदन किया गया है कि चूँकि याची ने अपने पति का जाति प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया था जिसे वर्ष 1990 में जारी किया गया था, अत: प्रत्यर्थीगण याची के पक्ष में नियुक्ति पत्र जारी करने के लिए बाध्य है क्योंकि उसे झारखंड लोक सेवा आयोग द्वारा सफल घोषित किया गया है।

5. दूसरी ओर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता सं॰ III श्री अभय कुमार मिश्रा और झारखंड लोक सेवा आयोग के विद्वान अधिवक्ता श्री संजय पिपरवाल ने निवेदन किया कि याची का परिणाम उस शर्त के अध्यधीन प्रकाशित किया गया था कि वह नियुक्ति पत्र जारी किए जाने के पहले सत्यापन के लिए जाति प्रमाण पत्र और आवासीय प्रमाण पत्र सहित समस्त दस्तावेजों को प्रस्तुत करेगी। उन्होंने आगे निवेदन किया कि परिशिष्ट–4 से स्पष्ट है कि याची ने आवासीय और जाति प्रमाण पत्र प्रस्तुत नहीं किया था। तद्नुसार, उन्होंने निवेदन किया कि याची नियुक्ति की हकदार नहीं है।

6. निवेदनों को सुनने पर, मैंने मामले के अभिलेख का परिशीलन किया है। जैसा ऊपर गौर किया गया है, इस रिट आवेदन में याची ने मुख्यत: दो अनुतोष प्रदान किए जाने के लिए प्रार्थना किया है: प्रथमत:, प्रशिक्षित शिक्षक के पद पर उसकी नियुक्ति के लिए प्रत्यर्थीगण को आदेश देते हुए निर्देश जारी करने के लिए क्योंकि उसे झारखंड लोक सेवा आयोग द्वारा ली गयी परीक्षा में सफल घोषित किया गया है और द्वितीयत: जाति प्रमाण पत्र और आवासीय प्रमाण पत्र जारी करने के लिए प्रत्यर्थी सं॰ 5 से 7 को आदेश देते हुए निर्देश जारी करने के लिए क्योंकि उसका पति बिहार राज्य के पुनर्गठन के पहले झारखंड राज्य के क्षेत्र के अंतर्गत निवास करता है। प्रथमत: मैं उसकी पहली प्रार्थना पर विचार करने के लिए अग्रसर होता हूँ।

7. स्वीकृत रूप से, याची को झारखंड लोक सेवा आयोग द्वारा ली गयी परीक्षा में सफल घोषित किया गया था और अनुसूचित जाति कोटि में बोकारो जिला के लिए तैयार की गयी मेधा सूची में क्रमांक 6 पर उसका नाम आया था। यह भी स्वीकृत अवस्था है कि प्रमाण पत्रों के सत्यापन के लिए याची परिणाम के प्रकाशन के बाद प्रत्यर्थी सं॰ 4 के कार्यालय में उपस्थित हुई थी और सत्यापन के लिए विभिन्न दस्तावेजों को प्रस्तुत किया था। परिशिष्ट–4 से स्पष्ट है कि उसने जाति प्रमाण पत्र और आवासीय प्रमाण पत्र प्रस्तुत नहीं किया था। यह उल्लेखनीय है कि अनुसूचित जाति उम्मीदवार के लिए आरक्षित पद के विरुद्ध याची का चयन किया गया है। उक्त परिस्थिति के अधीन, सत्यापन के लिए स्वयं अपना जाति प्रमाण पत्र प्रस्तुत करना उसके लिए बाध्यकारी है। प्रत्यर्थी सं॰ 4 द्वारा प्रतिशपथ पत्र में कथन किया गया है कि नोटिस के बावजूद याची ने सत्यापन के लिए अपना जाति और आवासीय प्रमाण पत्र प्रस्तुत नहीं किया था। उक्त परिस्थिति के अधीन, यदि याची द्वारा जाति प्रमाण पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया था, तब वह मेरी दृष्टि में अनुसूचित जाति समुदाय से आने वाले उम्मीदवार के लिए आरक्षित पद के विरुद्ध नियुक्ति के लिए हकदार

नहीं है। मामले के उस दृष्टिकोण में, याची इस रिट आवेदन में दावा किए गए प्रथम अनुतोष को पाने की हकदार नहीं है।

8. अब दूसरे अनुतोष पर आते हुए, याची द्वारा कथन किया गया है कि उसने वर्ष 1988 में किसी राजेन्द्र रजक के साथ विवाह किया था जो बोकारो जिला में करगली, बेरमो का निवासी है। उसने आगे कथन किया कि बेरमो के राजेन्द्र रजक की पत्नी होने के कारण वह झारखंड राज्य की स्थायी निवासी है, अत: वह आवासीय प्रमाण पत्र और जाति प्रमाण पत्र पाने की हकदार है और सक्षम प्राधिकारी पूर्वोक्त प्रमाण पत्रों को पाने से उसको इस आधार पर वर्जित नहीं कर सकता है कि उसका स्थायी पता बिहार राज्य के अंतर्गत आता है।

9. विद्वान स्थायी अधिवक्ता III श्री मिश्रा द्वारा निवेदन किया गया है कि एक राज्य से प्रवास करने वाला व्यक्ति उस राज्य जहाँ उसने प्रवास किया है, में आरक्षण के लाभ का दावा नहीं कर सकता है।

10. यह सत्य है कि एक राज्य में अधिसूचित अनुसूचित जाति अथवा अनुसूचित जनजाति को भारत के संविधान के अनुच्छेद 342 के अधीन सादी अभिव्यक्ति ''उस राज्य के संबंध में'' की दृष्टि में किसी अन्य राज्य में आरक्षण का लाभ नहीं दिया जा सकता है। उदाहरणस्वरुप, यदि मिजोरम राज्य में अनुसूचित जाति से आने वाला उम्मीदवार झारखंड राज्य में प्रवासित हो गया हो, तब वह मिजोरम राज्य द्वारा जारी जाति प्रमाण पत्र के आधार पर अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित पद के विरुद्ध नियुक्त किए जाने का हकदार नहीं है क्योंकि भारत के संविधान के अनुच्छेद 342 के मुताबिक उक्त उम्मीदवार की जाति मिजोरम राज्य के संबंध में अनुसूचित जाति के रूप में और न कि झारखंड राज्य के लिए, अधिसूचित की गयी है।

11. किंतु वर्तमान मामले में, तथ्य भिन्न है। इस मामले में, जैसा याची द्वारा कथन किया गया है, उसने वर्ष 1988 में ऐसे व्यक्ति से विवाह किया जो बोकारो जिला में करगली, बेरमो का निवासी है। इस प्रकार, बिहार राज्य के पुनर्गठन की तिथि के काफी पहले उसका विवाह हुआ था। उसने आगे कथन किया कि विवाहोपरांत वह स्थायी रूप से बोकारो जिला में निवास कर रही है। यह भी स्पष्ट है कि जाति धोबी बिहार के विभाजन से पहले अनुसूचित जाति थी और राज्य के पुनर्गठन के बाद यह दोनों नवसृजित राज्यों में अनुसूचित जाति बनी हुई है। उक्त परिस्थिति के अधीन, यह प्रवास का मामला नहीं है बल्कि ऐसा मामला है जहाँ प्रशासनिक कारण से राज्य को द्विविभाजित कर दिया गया था। जैसा याची द्वारा कथन किया गया है कि राज्य के द्विविभाजन के समय पर वह झारखंड राज्य में निवास कर रही थी क्योंकि उसने ऐसे व्यक्ति से विवाह किया था जो बोकारो का स्थायी निवासी है। इस प्रकार, झारखंड के सृजन के बाद, मेरी दृष्टि में, याची के पक्ष में जाति प्रमाण पत्र जारी करने से इनकार करने की छूट प्रत्यर्थीगण को नहीं है। मेरा पूर्वोक्त दृष्टिकोण **सुधाकर विधाल कुंभरे बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य, (2004)9 SCC 481,** में दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से और **डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 3846 वर्ष 2010 (मधु बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य)** में पारित इस न्यायालय की खंडपीठ के दिनांक 4.10.2010 के निर्णय से भी समर्थन पाता है।

12. उक्त की गयी चर्चा की दृष्टि में, मैं इस रिट आवेदन को अंशत: अनुज्ञात करता हूँ और प्रत्यर्थी सं॰ 5 से 7 को निर्देश देता हूँ कि यदि याची जाति और आवासीय प्रमाण पत्र जारी करने के लिए आवेदन देती है, तब प्रत्यर्थीगण उसके इस दावा कि उसने वर्ष 1988 में राजेन्द्र रजक के साथ विवाह किया था, के संबंध में पूरी जाँच करेंगे और यदि प्रत्यर्थीगण उसका दावा सत्य पाते हैं, तब वे तुरन्त उसके पक्ष में जाति और आवासीय प्रमाण पत्र जारी करेंगे। किंतु, जैसा यहाँ पहले अभिनिर्धारित किया गया है कि याची शिक्षक के पद पर नियुक्ति के लिए हकदार नहीं है क्योंकि उसने अनुसूचित जाति के उम्मीदवार के लिए आरक्षित पद के विरुद्ध नियुक्ति किए जाने के लिए प्रासंगिक दस्तावेजों को संलग्न नहीं किया है।

ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k ,o ihñ ihñ HkVV] U;k;efr

सिटिजन कॉज

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W. P. (PIL) No. 858 of 2009. Decided on 18th January, 2012.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 207 एवं 208—बिहार विनिर्दिष्ट भ्रष्ट आचरण निवारण अधिनियम, 1983—धारा 34—अभियुक्त को पुलिस कागजातों की आपूर्ति–अभियुक्त को यह जानने का अधिकार है कि अभियोजन किस साक्ष्य पर विश्वास कर रहा है–दं॰ प्र॰ सं॰ की धाराओं 207 एवं 208 के अधीन निर्दिष्ट दस्तावेजों को अभियुक्त को निःशुल्क प्रदान करना होगा–पुलिस रिपोर्ट और चालानों को प्राप्त करने के लिए सक्षम न्यायालयों को दं॰ प्र॰ सं॰ की धाराओं 173, 207 और 208 का अनुपालन करने का निर्देश दिया गया–पुलिस के निगरानी विभाग, जो अधिकारियों की कमी से बंद होने के कगार पर है, को पूरी ताकत देने के लिए राज्य सरकार को निर्देश के साथ याचिका निपटायी गयी। (पैराएँ 16 से 25)

अधिवक्तागण.–Mr. M.S. Anwar, For the Petitioner; Mr. R.R. Mishra, For the State.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. याची के विद्वान वरीय अधिवक्ता ने इस न्यायालय के दिनांक 14 सितंबर, 2011 के आदेश के पैरा 6 की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया जिसका पठन निम्नलिखित है:–

*"6. ;kph u fjV ;kfpdk dh çkFkuk (b0) e fcgkj@>kj[kM fofufn"V Hk"V vkpj.k fuokj.k vfèkfu;e] 1983 d çHkkodkjh fØ;kUo;u d fy, vkj fo'k"kr% vfèkfu;e dh èkkjk 34 d fØ;kUo;u d fy, çkFkuk fd;k g tk çkoèkku djrh g fd ykd miØe] çkfèkdj.k] lgdkjh lfefr] fuxek] fudk;k] ckM] lkIkbVh vFkok lxBuk vkj dnh; vfèkfu;e] vè;kn'k] fu;ekoyh vFkok fofu;eu d vèkhu xfBr fdlh vU; uke l Kkr vFkok ft lij jkT; ljdkj dk viuk fu;=.k vFkok çkfèkdkj g] d jkT; ljdkj d lodk vkj vfèkdkfj;k vkj leLr depkjhx.k] vfèkdkfj;k vkj vè;{k] mikè;{k] fun'kdk] mifun'kdk vkj lnL;k] vkfn vkj mu leLr ykxk tk fdlh rjhd l mDr ykd miØek] vkfn d fØ;kdyki l lcfèkr g] viuh fu;fDr d ckn in xg.k dju d lkFk&lkFk fofgr çkQkek e viuh li.k py vkj vpy lifÙk dk 0;kjk nxA***

3. याची के विद्वान वरीय अधिवक्ता ने हमारा ध्यान दिनांक 9 सितंबर, 2010 की सरकारी अधिसूचना की ओर आकृष्ट किया जिसके द्वारा राज्य सरकार ने झारखंड सरकारी सेवक आचरण नियमावली, 2001 के नियम 9 को संशोधित किया है।

4. यह प्रतीत होता है कि इस आदेश द्वारा तत्कालीन बिहार राज्य द्वारा दिनांक 5 अप्रिल, 1976 का संख्या 69491 का एक आदेश संशोधित किया गया है जो सरकारी सेवकों की चल और अचल संपत्ति

के ब्योरे का प्रस्तुतीकरण तीन माह के भीतर करने की अपेक्षा करता है और तत्पश्चात ऐसी संपत्तियों के नियत अवधि पर ब्योरा निरन्तर दाखिल किए जाने की अपेक्षा करता है। इस अधिसूचना द्वारा यह भी प्रावधानित किया गया है कि प्रमुख सचिव और सचिव आदेश क्रियान्वित करवाएँगे।

5. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यह इस न्यायालय के आदेश का जानबूझकर उल्लंघन करने का स्पष्ट मामला है जिसमें उपदर्शित किया गया है कि याची ने बिहार विनिर्दिष्ट भ्रष्ट आचरण निवारण अधिनियम, 1983 की धारा 34 के क्रियान्वयन के लिए प्रार्थना किया है जिसे झारखंड राज्य द्वारा अपनाया गया है।

6. वर्ष 1983 के उक्त अधिनियम की धारा 34 राज्य सरकार के सेवकों और अधिकारियों और समस्त कर्मचारियों और लोक उपक्रम, प्राधिकरण, सहकारी समिति, निगम, निकाय, बोर्ड, सोसाइटी अथवा संगठन के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, निदेशक, उपनिदेशक और सदस्यों और केंद्रीय अधिनियम, अध्यादेश, नियमावली अथवा विनियमन के अधीन गठित किसी अन्य नाम से ज्ञात अथवा जिसपर राज्य सरकार का अपना नियंत्रण अथवा प्राधिकार है और वे समस्त लोग जो किसी प्रकार से उक्त लोक उपक्रम, आदि के क्रियाकलाप से संबंधित हैं, को आच्छादित करती है। ऐसे व्यक्तियों को अधिनियम की धारा 34 के उपखंड (2) के मुताबिक अपनी सेवाओं को ग्रहण करने के समय पर अथवा तीन माह की महत्तम अवधि के भीतर अपनी चल और अचल संपत्ति का विवरण देने की आवश्यकता है। यदि सक्षम प्राधिकारी के निर्देश के बाद भी ऐसी घोषणा प्रस्तुत नहीं की जाती है, तब उन्हें एक वर्ष की अवधि के कारावास अथवा जुर्माना अथवा दोनों के साथ दंडित किया जाएगा। इसके अतिरिक्त, न्यायालय को संपत्ति जब्त करने के लिए, यदि पूर्वोल्लिखित अधिकारियों और कर्मचारियों को भ्रष्ट आचरण द्वारा इसको अर्जित करने का दोषी पाया जाता है, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अध्याय 34 के प्रावधान के अनुसरण में आदेश पारित करने का अधिकार है।

7. प्रथम दृष्टया, यह प्रतीत होता है कि वर्ष 1983 के अधिनियम की धारा 34 के उपखंड (2) की कठोरता से बचने के लिए दिनांक 9 सितंबर, 2010 की इस अधिसूचना को जारी किया गया है और कथन किया गया है कि अधिसूचना दिनांक 14 सितंबर, 2011 के इस न्यायालय के आदेश के अनुपालन में निकाली गयी थी और उक्त अधिनियम की धारा 34 के अधीन संपत्ति का विवरण देने की अपेक्षा करने के बजाए दिनांक 9 सितंबर, 2010 की अधिसूचना द्वारा उक्त निर्दिष्ट ऐसे कर्मचारियों की संपत्तियों का विवरण प्राप्त करने की अपेक्षा की गयी है। ऐसी संपत्तियों का विवरण नहीं दिए जाने की स्थिति में केवल विभागीय कार्यवाही आरंभ की जा सकती है।

8. किंतु, हमारा सुविचारित मत है कि सरकार इस उद्देश्य को प्राप्त करने में भी विफल हुई जिसे दिनांक 9 सितंबर, 2010 की अधिसूचना जारी करके प्राप्त किया जाना इप्सित किया गया था क्योंकि केवल कुछ सरकारी कर्मचारियों ने अपना रिटर्न दाखिल किया है। चूँकि सरकार विधि प्रवर्तित करने के लिए बाध्य है जो दिनांक 9 सितंबर, 2010 की अधिसूचना द्वारा संशोधित नहीं की गयी है और न ही वर्ष 1983 के अधिनियम के अधीन बनाए गए सांविधिक प्रावधान के ऊपर इसका प्रभाव है, अत: दिनांक 9 सितंबर, 2010 की अधिसूचना के बावजूद सरकार विधि के अनुरूप कृत्य करने के लिए बाध्य है।

9. शपथपत्र से हमने पाया कि सरकार ने 3059 सरकारी कर्मचारियों की संपत्तियों का विवरण स्पष्टत: शपथ पत्र दाखिल करने की तिथि, जिसे दिनांक 16 दिसंबर, 2011 को दाखिल किया गया था, पर प्राप्त किया गया है जो उपदर्शित करता है कि वस्तुत: सरकारी कर्मचारियों ने दिनांक 9 सितंबर, 2010 की अधिसूचना द्वारा जारी निर्देशों का अनुपालन नहीं किया है जो तीन माह के भीतर संपत्ति का विवरण प्रस्तुत किया जाना अपेक्षित करता है। अत: हम जानना चाहते हैं कि क्या दिनांक 9 सितंबर, 2010 की

अधिसूचना जारी करने में भी राज्य सरकार की ओर पर सद्भाव था। हम राज्य सरकार को शपथ पर कथन करने का निर्देश देते हैं कि क्या दिनांक 9 सितंबर, 2010 की अधिसूचना द्वारा दिए गए आदेश अथवा दिनांक 9 सितंबर, 2010 की अधिसूचना के परिणामस्वरुप जारी किसी आदेश के अननुपालन के कारण यदि कर्मचारियों ने अपनी संपत्तियों का विवरण नहीं दिया है जैसी आवश्यकता है, तब कर्मचारियों में से किसी के विरुद्ध कोई विभागीय कार्यवाही आरंभ की गयी है और यदि आरंभ की गयी है, सरकार शपथ पर कथन कर सकती है कि कितने व्यक्तियों के विरुद्ध ऐसी विभागीय कार्यवाही आरंभ की गयी है जैसा दिनांक 9 सितंबर, 2010 की अधिसूचना द्वारा अपेक्षित है।

10. दोहराए जाने की कीमत पर हम उपदर्शित कर सकते हैं कि जब तक वर्ष 1983 के अधिनियम की धारा 34 के प्रावधान को क्रियान्वित नहीं करने के लिए संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं दिया जाता है, तब न्यायालय को यह संप्रेक्षित करके कि दिनांक 9 सितंबर, 2010 की अधिसूचना केवल वर्ष 1983 के अधिनियम की धारा 34 की पकड़ से भ्रष्ट अधिकारियों को बचाने के लिए छद्मावरण है, समुचित आदेश पारित करना होगा।

11. अत:, उक्त आदेश की दृष्टि में राज्य सरकार आज के दिन से तीन सप्ताह की अवधि के भीतर शपथपत्र दाखिल कर सकती है।

12. राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि इस रिट याचिका को दाखिल किए जाने के समय पर अथवा इसके निकट की अवधि के भीतर भ्रष्टाचार निवारण के कुल 88 मामले थे जिसमें से भा॰ दं॰ सं॰ के अपराधों से संबंधित जिला पुलिस के समक्ष अन्वेषण के अधीन 24 मामले थे, किन्तु उन 24 मामलों में भ्रष्टाचार के अभिकथन भी हैं। निगरानी विभाग के पास 64 मामले थे जिनमें से 14 मामलों में दिनांक 14 सितंबर, 2011 को अथवा इसके पहले आरोप पत्र दाखिल किए जा चुके है और 31 मामलों में दिनांक 14 सितंबर, 2011 के बाद चालान दाखिल किए गए हैं। एक मामला निगरानी केस सं॰ 3/99 सी॰ बी॰ आई॰ को भेज दिया गया है। शेष 18 मामलों में, छह मामले कतिपय कर्मचारियों के संबंध में थे जिनके लिए उच्च न्यायालय और माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उन व्यक्तियों की सेवाओं को नियमित करते हुए कतिपय आदेशों को पारित किया और उक्त की दृष्टि में मामला राज्य सरकार के विचाराधीन है कि उनका अभियोजन जारी रखा जाए या नहीं।

13. इसके अतिरिक्त, अनेक मामलों में यद्यपि चालान दाखिल किए गए थे और बाद में पाँच मामलों में अन्वेषण चल रहा है और एक मामले में अन्वेषण अधिकारी ने जानबूझकर मामला विलंबित किया है। अब इसे विभाग को वापस लौटा दिया गया है। राज्य के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, मुख्यत: निगरानी मामलों का पूरा ख्याल रखा गया है।

14. इस मोड़ पर, हम निगरानी विभाग के समक्ष अब लंबित मामलों की नवीनतम अवस्था को जानना चाहेंगे और विलंबित मामलों की संख्या को उक्त शपथपत्र में क्रमवार अर्थात् वर्षवार उपदर्शित किया जा सकता है।

15. राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि मुख्यत: अनेक निगरानी मामलों में चालानों को दाखिल किया गया है किंतु इस न्यायालय के ध्यान में आया है कि झारखंड राज्य में दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धाराओं 207 और 208 के प्रावधानों का अनुसरण नहीं करने की सामान्य परिपाटी है और न ही पुलिस अन्वेषण पूरा करने पर पुलिस रिपोर्ट और पूरे दस्तावेजो को दाखिल करती है जैसा दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 173 के अधीन आवश्यक है जो न केवल विहित फॉर्मेट में रिपोर्ट को दाखिल किए जाने की अपेक्षा करती है जैसा दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 173 की उपधारा (2) के अधीन प्रावधानित किया गया है अपितु यह दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 173 की उपधारा (6) के अधीन दिए गए अपवाद के अध्यधीन समस्त व्यक्तियों, जिन्हें अभियोजन ने अपने गवाह के रूप में प्रस्तुत करना प्रस्तावित किया था, के दं॰ प्र॰ सं॰ की धाराओं

161/164 के अधीन दर्ज बयानों सहित समस्त दस्तावेजों अथवा इसके प्रासंगिक उद्धरणों, जिन पर अभियोजन ने विश्वास करना प्रस्तावित किया था, को अग्रसारित करने की अपेक्षा करती है। यह ध्यान में आया है कि दं० प्र० सं० की धारा 173 की उपधारा (5) का सामान्यत: अनुपालन नहीं किया जाता है और दं० प्र० सं० की धारा 161 के अधीन दर्ज बयानों और दस्तावेजों के पूर्ण संवर्ग को विचारण न्यायालयों में दाखिल नहीं किया जाता है और पुलिस द्वारा अपने पास रख लिया जाता है जो दं० प्र० सं० की धारा 173 की उपधारा (6) का उल्लंघन है। केवल इसी कारण से न्यायालय को आरोपों को विरचित करने पर तर्कों को सुनने सहित आगे किसी कदम को उठाने के प्रयोजन से केस डायरी को मंगाने की आवश्यकता है और केवल रिपोर्ट, जैसा दं० प्र० सं० की धारा 173 की उपधारा (2) में प्रावधानित किया गया है, को और गवाहों के बयानों को भी दं० प्र० सं० की धारा 173 की उपधारा (5) में निर्दिष्ट किसी दस्तावेज के बिना सत्र विचारण के लिए सत्र न्यायालय को अग्रसारित किया जाता है जिसका परिणाम सत्र न्यायालय द्वारा पुलिस कागजातों की प्रतीक्षा करना होता है।

16. दं० प्र० सं० की धारा 207 अभियुक्त को पुलिस रिपोर्ट और अन्य दस्तावेजों की प्रति की आपूर्ति प्रावधानित करती है जब कार्यवाही पुलिस रिपोर्ट पर संस्थापित की गयी है और दं० प्र० सं० की धारा 207 स्पष्टत: आज्ञा देती है कि ऐसे रिपोर्ट और दस्तावेजों को अभियुक्त को नि:शुल्क किसी विलंब के बिना दिया जाएगा। दं० प्र० सं० की धारा 208 भी अभियुक्त को पुलिस रिपोर्ट से अन्यथा और सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय संस्थापित मामलों में बयानों और दस्तावेजों की प्रतियों की आपूर्ति प्रावधानित करती है। दं० प्र० सं० की धाराओं 207 और 208 को उद्धृत करना आवश्यक है:–

"207. ***vfHk;Dr dk ifyl fjikV ;k vU; nLrkotk dh çfrfyfi nuk-****&fdlh ,l eksey e tgk dk;okgh ifyl fjikV d vkèkkj ij lfLFkr dh xb g] eftLVV fuEufyf[kr e l çR;d dh ,d çfrfyfi vfHk;Dr dk vfoyEc fu%'kYd nxk%&*

(i) ifyl fjikV(

(ii) èkkjk 154 d vèkhu y[kc) dh xb çFke bfÙkyk fjikV(

(iii) èkkjk 161 dh mièkkjk (3) d vèkhu vfHkfyf[kr mu lHkh 0;fDr;k d dFku] ftudh viu lkf{k;k d :i e ijh{kk dju dk vfHk;ktu dk fopkj g] mue l fdlh ,l Hkkx dk NkMdj ftudk ,l NkMu d fy, vkonu èkkjk 173 dh mièkkjk (6) d vèkhu ifyl vfèkdkjh }kjk fd;k x;k g(

(iv) èkkjk 164 d vèkhu y[kc) dh xb lLohÑfr;k ;k dFku] ;fn dkb gk(

(v) dkb vU; nLrkot ;k mldk llxr m)j.k] tk èkkjk 173 dh mièkkjk (5) d vèkhu ifyl fjikV d lkFk eftLVV dk Hkkth xb g%

ijUr eftLVV [k.M (iii) e fufn"V dFku d fdlh ,l Hkkx dk ifj'khyu dju vkj ,l fuonu d fy, ifyl vfèkdkjh }kjk fn, x, dkj.kk ij fopkj dju d i'pkr ;g fun'kn ldrk g fd dFku d ml Hkkx dh ;k mld ,l çHkkx dh] tl k eftLVV Bhd le>] ,d çfrfyfi vfHk;Dr dk nh tk,%

ijUr ;g vkj fd ;fn eftLVV dk lekèkku gk tkrk g fd [k.M (V) e fufn"V dkb nLrkot fo'kkydk; g rk og vfHk;Dr dk mldh çfrfyfi nu d ctk; ;g fun'k nxk fd ml Lo; ;k lyhMj }kjk U;k;ky; e mldk fujh{k.k gh dju fn;k tk,xkA

208. ***l'ku U;k;ky; }kjk fopkj.kh; vU; ekeyk e vfHk;Dr dk dFkuk vkj nLrkotk dh çfrfyfi;k nuk-****&tgk ifyl fjikV l fHkUu vkèkkj*

ij lfLFkr fdlh ekey e] èkkjk 204 d vèkhu vknf'kdk tkjh dju oky eftLVV dk ;g çrhr gkrk g fd vijkèk vuU; r% l'ku U;k;ky; }kjk fopkj.kh; g] ogk eftLVV fuEufyf[kr e l çR;d dh ,d çfrfyfi vfHk;Dr dk vfoyEc fu%'kYd nxk&

(i) mu lHkh 0;fDr;k d] ftudh eftLVV }kjk ijh{kk dh tk pdh g] èkkjk 200 ;k èkkjk 202 d vèkhu y[kc) fd, x, dFku(

(ii) èkkjk 161 ;k èkkjk 164 d vèkhu y[kc) fd, x, dFku] vkj lLohÑfr;k] ;fn dkb gk(

(iii) eftLVV d le{k i'k dh xb dkb nLrkotk] ftu ij fuHkj jgu dk vfHk;ktu dk fopkj g%

ijUr ;fn eftLVV dk lekèkku gk tkrk g fd ,lh dkb nLrkot fo'kkydk; g] rk og vfHk;Dr dk mldh çfrfyfi nu d ctk; ;g fun'k nxk fd ml Lo; ;k lyhMj }kjk U;k;ky; e mldk fujh{k.k gh dju fn;k tk,xkA

17. यह विचित्र है कि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 173 की उपधारा (6) के अधीन अपवाद के अध्यधीन दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 161(3) के अधीन दर्ज बयानों, पुलिस रिपोर्ट और प्राथमिकी की प्रति सहित समस्त पुलिस कागजातों और समस्त प्रासंगिक दस्तावेजों को पाने के अभियुक्त के अधिकार और सांविधिक प्रावधान होने के बावजूद इन्हें अभियुक्त को प्रदान नहीं किया जाता है जिसका परिणाम इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिकाओं को दाखिल किए जाने में होता है जिनमें याची–अभियुक्त द्वारा केवल यह प्रार्थना की जाती है कि उसे उक्त निर्दिष्ट दस्तावेजों को प्रदान किया जाए। न्यायालयों को दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 173 की उपधारा (7) द्वारा भ्रमित नहीं होना चाहिए जो प्रावधानित करती है कि शब्द ''जहाँ मामले का अन्वेषण करने वाला पुलिस अधिकारी सुविधाजनक पाता है'', दं॰ प्र॰ सं॰ की धाराओं 207 और 208 में निर्दिष्ट दस्तावेजों की प्रतियों की आपूर्ति के मामले में पुलिस अधिकारी का मनमाना स्वविवेक नहीं है। इसके अतिरिक्त, अभियुक्त को यह जानने का अधिकार है कि अभियोजन किस साक्ष्य पर विश्वास कर रहा है। साथ ही साथ पुलिस थाना द्वारा भेजा गया रिपोर्ट और धारा 173 की उपधाराओं में निर्दिष्ट दस्तावेज को न्यायालय में दाखिल किए जाने पर वे न्यायालय के अभिलेख बन जाते हैं जिन्हें स्वयं लोक अभियोजक सहित किसी को उसके उपयोग के लिए नहीं दिया जा सकता है। अत: ऐसे पूरे संवर्ग को लोक अभियोजक को भी दिए जाने की आवश्यकता है।

18. उक्त की दृष्टि में, हम झारखंड राज्य के पुलिस महानिदेशक को यह देखने का निर्देश देते हैं कि दं॰ प्र॰ सं॰ की धाराओं 172, 173, 207 और 208 का कठोरतापूर्वक अनुपालन किया जाए और जब कभी दंडाधिकारी के न्यायालय में चालान दाखिल किया जाता है, उन्हें चालान दाखिल करने के समय पर, दस्तावेजों के साथ दाखिल किया जाए जैसा दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 173 में निर्दिष्ट किया गया है जो पहले ही ऊपर निर्दिष्ट किया जा चुका है। पुलिस रिपोर्ट और अन्य दस्तावेजों की प्रतियों को, जैसा धाराओं 207/208 के अधीन निर्दिष्ट किया गया है अभियुक्त को नि:शुल्क दिया जाए। दं॰ प्र॰ सं॰ की धाराओं 173, 207 और 208 के अननुपालन के मामले में न्यायालय को पुलिस रिपोर्ट पर अथवा ऑर्डरशीट में इस नोट के साथ कि दस्तावेज पूर्ण नहीं है, चालान को स्वीकार करने से इनकार करने की स्वतंत्रता होगी और उस स्थिति में अन्वेषण अधिकारी और राज्य सरकार गंभीर परिणामों, जो हो सकते हैं, के जिम्मेदार होंगे। अन्वेषण करने वाला पुलिस अधिकारी को पृथक रूप से केस डायरी रखना होगा जैसा दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 172 के अधीन आवश्यक है।

19. ''केस डायरी'' और चालान (पुलिस रिपोर्ट) और दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 173 में उल्लिखित दस्तावेजों के बीच भिन्नता पर गौर करना भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 172 निम्नलिखित है:–

*"172. **vUo"k.k e dk;okfg;k dh Mk;jh-**&(1) çR;d ifyl vfèkdkjh] tk bl vè;k; d vèkhu vUo"k.k djrk g] vUo"k.k e dh xb viuh dk;okgh dk fnu&çfrfnu ,d Mk;jh e fy[kxk] ft le og le; tc ml bfÙkyk feyh] og le; tc mlu vUo"k.k vkjEHk fd;k vkj tc lekIr fd;k] og LFkku ;k o LFkku tgk og x;k vkj vUo"k.k }kjk vfHkfuf'pr ifjfLFkfr;k dk fooj.k gkxkA*

(1A) èkkjk 161 d vèkhu vulèkku d nkjku vfHkyf[kr xokgk d c;ku dl Mk;jh e tkM tk;xA

(1B) mi&èkkjk (1) e of.kr Mk;jh ,d okY;e gkxh vkj lE;d :i l i"Bkfdr gkxhA

(2) dkb n.M U;k;ky; ,l U;k;ky; e tkp ;k fopkj.k d vèkhu ekey dh ifyl Mk;fj;k dk exk ldrk g vkj ,l Mk;fj;k dk ekey e lk{; d :i e rk ugh fdUr ,l tkp ;k fopkj.k e viuh lgk;rk d fy, mi;kx e yk ldrk gA

(3) u rk vfHk;Dr vkj u mld vfHkdÙkk ,l Mk;fj;k dk exku d gdnkj gkx vkj u og ;k o doy bl dkj.k mUg n[ku d gdnkj gkx fd o U;k;ky; }kjk n[kh xb g] fdUr ;fn o ml ifyl vfèkdkjh }kjk] ft lu mUg fy[kk g] viuh Lefr dk rkt dju d fy, mi;kx e ykb tkrh g] ;k ;fn U;k;ky; mUg ,l ifyl vfèkdkjh dh ckrk dk [k.Mu dju d ç;ktu d fy, mi;kx e ykrk g rk Hkkjrh; lk{; vfèkfu;e] 1872 (1872 dk 1) dh] ;FkkfLFkfr] èkkjk 161 ;k èkkjk 145 d micUèk ykx gkxA

दं० प्र० सं० की धारा 172 की दृष्टि में अन्वेषण करने वाले प्रत्येक पुलिस अधिकारी को ''केस डायरी'' रखने की आवश्यकता है और मामले की प्रत्येक घटना को दर्ज करने के अतिरिक्त उसे धारा 161 के अधीन दर्ज गवाहों के बयानों को ''अंत:स्थापित'' करने की आवश्यकता है। धाराएँ 172 और 173 स्पष्ट करती हैं कि धारा 161 के अधीन मूल बयानों को न्यायालय में दाखिल किया जाएगा और इसकी प्रतियाँ केस डायरी में रहेंगी।

20. हम इसे आगे स्पष्ट कर रहे हैं कि अन्वेषण में कार्यवाही की ''केस डायरी'' को दं० प्र० सं० की धारा 172 के अधीन रखने की आवश्यकता है और अन्वेषण करने वाले पुलिस अधिकारी का कर्तव्य है कि वह समय जिस पर उसे सूचना मिली थी, उसके द्वारा दौरा किए गए स्थान अथवा स्थानों और अपने अन्वेषण के माध्यम से अभिनिश्चित परिस्थिति का विवरण देते हुए डायरी में अन्वेषण की उसकी कार्यवाही को दैनिक रूप से प्रविष्ट करने की जरूरत है और यह आगे अपेक्षा करती है कि दं० प्र० सं० की धारा 161 के अधीन अन्वेषण के दौरान दर्ज गवाहों के बयान को केस डायरी में अंत:स्थापित किया जाएगा। दं० प्र० सं० की धारा 172 की उपधारा (1A) में स्पष्टत: उल्लिखित किया गया है कि अन्वेषण के दौरान दं० प्र० सं० की धारा 161 के अधीन दर्ज गवाहों के बयान को केस डायरी में अंत:स्थापित किया जाएगा जो स्पष्टत: उपदर्शित करती है कि दं० प्र० सं० की धारा 161 के अधीन बयानों का द्वितीय संवर्ग पृथक शीट पर दर्ज किया जाता है और इसकी प्रति केस डायरी में बनी रहती है। दं० प्र० सं० की धारा 172 की उपधारा (2) अत्यंत प्रासंगिक है जो स्पष्टत: घोषणा करती है कि ऐसी डायरियों के मामले में साक्ष्यित नहीं किया जाएगा बल्कि वे केवल ऐसी जाँच में मदद के लिए हैं।

21. हम आगे और भी स्पष्ट करते हैं कि अभियोजन एजेंसी द्वारा पूरी गंभीरता से इस आदेश का अनुपालन करने की आवश्यकता है और अभियोजन की ओर से कमी को इस आदेश की जानबूझकर अवज्ञा माना जाएगी।

22. पुलिस रिपोर्ट और चालानों को प्राप्त करने के लिए सक्षम समस्त न्यायालयों को दं० प्र० सं० की धाराओं 173, 207 और 208 का अनुपालन करने का निर्देश दिया जाता है।

23. इस आदेश की प्रति (पैरा 15 से 23) संपूर्ण झारखंड राज्य में समस्त न्यायालयों को प्रसारित की जाए और इस आदेश की प्रति को पुलिस महानिदेशक, झारखंड राज्य को समस्त पुलिस थानों को उक्त निर्दिष्ट निर्देशों का अनुसरण करने और दं॰ प्र॰ सं॰ की धाराओं 172, 173, 207 और 208 का अनुपालन करने का अनुदेश जारी करने के लिए भेजा जाए।

24. इस न्यायालय के ध्यान में लाया गया है कि यद्यपि झारखंड राज्य में पुलिस का निगरानी विभाग है किंतु यह अधिकारियों की कमी के कारण बंद होने के कगार पर है और जो पद धारण कर रहे हैं, वे इस कारण से काम करने के अनिच्छुक हैं कि वे पुलिस के निगरानी विभाग में काफी देर से आए है और वह भी सेवानिवृत्ति की कगार पर जिस समय पर गलत जाल में फँस जाने की आशंका के अधीन वे किसी जोखिम को उठाना नहीं चाहते हैं ताकि उनकी सेवानिवृत्ति लाभों पर प्रभाव न पड़ सके। किंतु, वर्तमान में, गंभीर विवाद्यक यह है कि लगभग नौ माह से पुलिस महानिदेशक का पद भी खाली पड़ा है। आरक्षी अधीक्षक के मंजूर पाँच पदों के विरुद्ध चार पद तथ्य के सत्यापन के अध्यधीन रिक्त पड़े हैं और कि पुलिस उप अधीक्षक के 22 पद हैं जिसमें से 12 पद रिक्त है और 10 कार्यरत अधिकारियों में से छह अधिकारी सेवानिवृत्त होनेवाले हैं। यह स्पष्टत: उपदर्शित किया गया है कि पुलिस के निगरानी विभाग में पदस्थापित अधिकारीगण सेवानिवृत्ति के कगार पर हैं। पी॰ सी॰ अधिनियम के अधीन पुलिस उप अधीक्षक अन्वेषण अधिकारी है और यह निगरानी विभाग में कार्यकारी बल की स्थिति है।

25. राज्य सरकार को मामले पर तुरन्त गौर करना चाहिए और पुलिस के निगरानी विभाग को पूर्ण अथवा पर्याप्त मजबूती प्रदान करने के लिए तुरन्त निर्णय लेना चाहिए, जो निगरानी विभाग के समक्ष निगरानी मामलों की विशाल संख्या की दृष्टि में अत्यन्त आवश्यक है।

26. हमने राज्य सरकार के लिए अनेक निर्देशों को पारित किया है और इस आदेश में हम इस कारण से भारी हृदय से निर्देश जारी कर रहे हैं क्योंकि हमारी आशा कि सरकार गवर्नेंस के क्षेत्र में सक्रिय होगी, के बावजूद इस न्यायालय को वैध कारणों से आदेश पारित करने की आवश्यकता है।

27. प्रत्यर्थी-राज्य के लिए श्री आर॰ आर॰ मिश्रा, जी॰ पी॰ II का नाम दर्शाने के बाद भविष्य में इस मामले को सूचीबद्ध करने का निर्देश कार्यालय को दिया जाता है।

28. दिनांक 28 फरवरी, 2012 को इस मामले को सूची में सबसे ऊपर रखा जाए।

---

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efrx.k

मनोज कुमार सिंह उर्फ भोला सिंह उर्फ भोला

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W. P. H. B. (Cr.) (D.B.) No. 307 of 2011. Decided on 25th January, 2012.

झारखंड अपराध नियंत्रण अधिनियम, 2002—धारा 12(2)—निरोध–जिला मजिस्ट्रेट याची को अभ्यावेदन के अधिकार के बारे में सूचित करने के लिए बाध्य था–निरोध आदेश में अभ्यावेदन के अधिकार के बारे में जिला मजिस्ट्रेट द्वारा याची को सूचित नहीं किया गया था–जब मामला लंबित रहने के दौरान याची द्वारा लिखित अभ्यावेदन दिया गया था और इसे

सलाहकार बोर्ड को भी संबोधित किया गया था, इसे सलाहकार बोर्ड को भी अग्रसारित कर दिया जाना चाहिए था–निरोध के आक्षेपित आदेशों को अपास्त किया गया। (पैराएँ 6 एवं 7)

निर्णयज विधि.–AIR 2000 SC 2504; 1970 SCC (Cr.) 92—Relied on; 2008 (1) East Cr. Cases 18 (Patna); 1977 Cri. LJ 406—Referred.

अधिवक्तागण.–M/s A. K. Kashyap, Lina Shakti, S.N.P. Ray, For the Petitioner; Mr. Kumar Sundaram, For the Respondent.

आदेश

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन यह रिट याचिका झारखंड अपराध नियंत्रण अधिनियम, 2002 (संक्षेप में 'अधिनियम') की धारा 12(2) के अधीन पारित निरोध आदेशों के विरुद्ध दाखिल की गयी है।

2. याची के लिए उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री ए॰ के॰ कश्यप ने निवेदन किया कि जिला मजिस्ट्रेट ने दिनांक 21.7.2011 के मेमो सं॰ 1199 में अंतर्विष्ट निरोध आदेश (परिशिष्ट–1) में अभ्यावेदन के अधिकार के बारे में याची को सूचित नहीं किया था। इस पहलू पर उन्होंने **महाराष्ट्र राज्य बनाम संतोष शंकर आचार्य, AIR 2000 Supreme Court 2504,** में प्रकाशित निर्णय पर विश्वास किया जिसमें अन्य बातों के साथ साथ निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था:–

*^^vfèkfu;e d çkoèkkuk dk ,dek= rkfdd vkj lketL;i.k vFkkZo;u ;g gkxk fd ,l ekey e tgk bl rF; d ckotn fd ml vkèkkjk vkj lkefx;k d lkFk fujkèk d rF; dk rjUr jkT; ljdkj dk fjikV dju dh vko';drk g vkj bl rF; d ckotn fd Lo; vfèkfu;e èkkjk 8(1) d vèkhu jkT; ljdkj dk vH;konu fn;k tkuk fofufn"Vr% çkoèkkfur djrk g] èkkjk 3(2) d vèkhu vfèkdkjh }kjk fujkèk vkn'k tkjh fd;k tkrk g] mDr fujkèk çkfèkdkjh rc rd fujkèk çkfèkdkjh cuk jgrk g tc rd mld }kjk tkjh fujkèk vkn'k jkT; ljdkj }kjk fujkèk vkn'k tkjh fd, tku dh frfFk l 12 fnuk dh vofèk d Hkhrj vuekfnr ugh fd;k tkrk gA ifj.kkeLo#i] tc rd jkT; ljdkj }kjk mDr fujkèk vkn'k vuekfnr ugh fd;k tkrk g] fujkèk çkfèkdkjh cnh l vH;konu xg.k dj ldrk g vkj ckEc lkèkkj.k mi[kM vfèkfu;e dh èkkjk 21 d çkoèkkuk d vèkhu viuh 'kfDr d ç;kx e vkn'k dk l'kkfèkr] ifjofrr vFkok fo[kfMr dj ldrk g tks egkjk"V vfèkfu;e dh èkkjk 14 d vèkhu çkoèkkfur fd;k x;k gA 'kfDr;k dk ,l vFkkZo;u egkjk"V vfèkfu;e dh èkkjk 8(1) vkj èkkjk 14 vkj èkkjk 3 d çkoèkkuk dk i.kr% fØ;k'khy cuk,xhA ;g voLFkk gku d dkj.k cnh dk ;g rF; l lfpr ugh fd;k tkuk fd og fujkèk çkfèkdkjh d ikl rc rd vH;konu n ldrk Fkk tc rd ,l ekey e] tgk jkT; ljdkj l fHkUUk fdlh vfèkdkjh }kjk egkjk"V vfèkfu;e dh èkkjk 3(2) d vèkhu fujkèk vkn'k tkjh fd;k tkrk g] jkT; ljdkj }kjk fujkèk vkn'k vuekfnr ugh fd;k tkrk g] lfoèkku d vuPNn 22(5) d vèkhu cnh d cgeY; vfèkdkj dk 0;frØe.k xfBr djxkA***

उन्होंने **बिनोद यादव बनाम बिहार राज्य, 2008 (1) East Cr. Cases 18 (Patna)** में दिए गए निर्णय पर विश्वास किया जिसमें अधिनियम के समरुप प्रावधानों वाले बिहार अपराध नियंत्रण अधिनियम, 1981 के संबंध में **संतोष कुमार आचार्य (ऊपर)** में दिए गए निर्णय अनुसरण किया गया था।

उन्होंने आगे निवेदन किया कि याची द्वारा दाखिल अभ्यावेदन सलाहकार बोर्ड के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया था। इस बिंदु पर उन्होंने **सुनील कुमार साहनी बनाम बिहार राज्य, 2008 (4) East Cr. Cases 167 (Patna),** में निर्णय के पैराग्राफ 15; **सिराज शेख बनाम जिला मजिस्ट्रेट (कलकत्ता), 1977 Cri L.J. 406,** में निर्णय के पैराग्राफ 6; और **जय नारायण सुकुल बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, 1970 SCC (Cr.) 92,** में निर्णय के पैराग्राफ 20 पर विश्वास किया जिसका पठन निम्नलिखित है:–

*"20.0;kid rkj ij dgr g,] cfn;k d vH;konu d lcèk e pkj fl)krk dk vulj.k fd;k tkuk gkxkA çFker%] lefpr çkfèkdkjh cnh dk vH;konu nu dk volj nu d fy, vkj cnh d vH;konu ij ;FkkIHko 'kh?k fopkj dju d fy, ckè; gA f}rh;r%] lefpr çkfèkdkjh }kjk cnh d vH;konu ij fopkj lykgdkj ckM }kjk cnh d vH;konu ij fopkj lfgr lykgdkj ckM }kjk dh x;h fdlh dkjokb l i.kr% Lor= gA rrh;r% fopkj d ekey e dkb foyc ugh gkuk pkfg,A ;g lR; g fd fopkj dju d fy, lefpr çkfèkdkjh }kjk fy, x, le; d eki d çfr dkb dBkj fu;e vfèkdfFkr ugh fd;k tk ldrk g fdr ;g ;kn j[kuk gkxk fd ukxfjdk dk xoul e ljdkj dk pkdl jguk gkxkA ukxfjd dk vfèkdkj ljdkj d lg&lcfèkr dr0; dk tUe nrk gA prFkr%] lefpr ljdkj dk cnh d vH;konu d lkFk ekey dk lykgdkj ckM d ikl Hktu d igy vH;konu ij viu er vkj fu.k; dk ç;kx djuk gkxkA ;fn lefpr ljdkj cnh dk fueDr dj nrh g] ljdkj lykgdkj ckM dk ekeyk ugh HktxhA fdr ;fn ljdkj cnh dk fueDr ugh djxh] ljdkj cnh d vH;konu d lkFk ekeyk lykgdkj ckM dk HktxhA ;fn rRi'pkr lykgdkj ckM cnh dh fuefDr d i{k e er vfHk0;Dr djxk] ljdkj cnh dk fueDr djxhA ;fn lykgdkj ckM cnh dh fuefDr d fo#) dkb er vfHk0;Dr djrk g] ljdkj fQj Hkh cnh dk fueDr dju dh 'kfDr dk ç;kx dj ldrh gA***

3. उन्होंने यह निवेदन भी किया कि संबंधित प्राधिकारियों की ओर से विवेक का गैर–इस्तेमाल हुआ है क्योंकि कुछ मामलों, जिन्हें निरोध का आधार बनाया गया है, में याची अंतर्ग्रस्त नहीं है। किंतु अधिनियम की धारा 12A की दृष्टि में, उन्होंने इस बिंदु पर आगे जोर नहीं डाला था।

4. दूसरी ओर, राज्य के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री कुमार सुंदरम ने आक्षेपित आदेशों का समर्थन किया। उन्होंने निवेदन किया कि अभ्यावेदन के उसके अधिकार के बारे में संसूचित नहीं किए जाने से याची प्रतिकूलता से ग्रस्त नहीं हुआ है क्योंकि दिनांक 21.7.2011 को उसको निरुद्ध किए जाने के तुरन्त बाद उसकी पत्नी ने दिनांक 25.7.2011 को अभ्यावेदन दिया था। उन्होंने आगे निवेदन किया कि जब गृह विभाग द्वारा सलाहकार बोर्ड को मामला निर्दिष्ट किया गया था, याची ने कोई अभ्यावेदन नहीं दिया था। इसे बाद में अर्थात् दिनांक 17.8.2011 को दिया गया था। गृह विभाग ने इस पर विचार करने के बाद दिनांक 19.8.2011 को इसे अस्वीकार कर दिया था। अत:, उन्होंने निवेदन किया कि याची द्वारा किए गए पूर्वोक्त प्रतिवादों में गुणागुण नहीं है। उन्होंने हमारे समक्ष प्रासंगिक अभिलेख को भी प्रस्तुत किया। हमने सलाहकार बोर्ड के अभिलेख का भी परिशीलन किया है।

5. इस पर, श्री कश्यप ने निवेदन किया कि याची पर उपयुक्त शर्तों को अधिरोपित किया जा सकता है।

6. संतोष कुमार आचार्य (ऊपर) के निर्णय की दृष्टि में, जिला मजिस्ट्रेट याची को अभ्यावेदन के अधिकार के बारे में सूचित करने के लिए बाध्य था किंतु यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि याची को इसके बारे में सूचित किया गया था। किंतु, याची की पत्नी को दिनांक 25.7.2011 को मुख्य सचिव के पास अभ्यावेदन देता बताया जाता है जो अभिलेख पर उपलब्ध है। किंतु, न तो इस पर कोई पृष्ठांकन है और न ही इस पर कोई आदेश पारित किया गया था और न ही इसे सलाहकार बोर्ड को भेजा गया था। आगे प्रतीत होता है कि दिनांक 1.8.2011 के पत्र द्वारा गृह विभाग द्वारा सलाहकार बोर्ड को मामला भेजा गया था। दिनांक 3.8.2011 को मामला सलाहकार बोर्ड के समक्ष रखा गया था। सलाहकार बोर्ड की बैठक दिनांक 20.8.2011 को नियत की गयी थी। इस बीच, याची ने दिनांक 17.8.2011 को अभ्यावेदन दिया जिसे गृह सचिव को और सलाहकार बोर्ड को भी संबोधित किया गया था। इसे दिनांक 19.8.2011 को अर्थात् सलाहकार बोर्ड के आदेश के एक दिन पहले अस्वीकार कर दिया गया था। यह सत्य है कि बंदी-याची सलाहकार बोर्ड के समक्ष उपस्थित हुआ, उसे सुना गया था और अभिलेखों का परिशीलन किया गया था किंतु जब दिनांक 17.8.2011 को अर्थात् सलाहकार बोर्ड के समक्ष मामला लंबित रहने के दौरान उसके द्वारा लिखित अभ्यावेदन दिया गया था और इसे सलाहकार बोर्ड को भी संबोधित किया गया था, इसे सलाहकार बोर्ड को अग्रसारित किया जाना चाहिए था भले ही **जयनारायण सुकुल (ऊपर)** के निर्णय की दृष्टि में गृह विभाग उस पर आदेश पारित करने के लिए सक्षम था।

7. इन तथ्यों और परिस्थितियों एवं ऊपर गौर किए निर्णयों की दृष्टि में याची के निरोध के आक्षेपित आदेशों को अपास्त किया जाता है; उसे तुरन्त अभिरक्षा से निर्मुक्त करना चाहिए यदि किसी अन्य दांडिक मामले में उसकी आवश्यकता नहीं है; किंतु यदि उसे निर्मुक्त किया जाता है, वह आक्षेपित निरोध आदेश की तिथि से एक वर्ष की अवधि तक प्रत्येक माह एक बार स्थानीय पुलिस थाना, गोलमुरी (बर्मा माइंस) जमशेदपुर को रिपोर्ट करेगा।

---

ekuuh; ç'kkr dekj] U;k;efr

श्रीधर नाथ सिन्हा उर्फ एस॰ एन॰ सिन्हा एवं एक अन्य

cuke

बिहार राज्य एवं एक अन्य

Criminal Misc. No. 776 of 2000 (R). Decided on 23rd February, 2012.

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948—धारा 22A—ठेका श्रम (विनियमन एवं उत्सादन) अधिनियम, 1970—धारा 22A के अधीन संज्ञान लिया गया–याची की कंपनी अभिकथित रूप से अंग्रेजी और हिंदी में असंदत्त मजदूरी के भुगतान की तिथि प्रदर्शित करने में विफल रही जो ठेका श्रम (विनियमन एवं उत्सादन) केंद्रीय नियमावली, 1971 के नियम 81(1)(i) के उल्लंघन में है–अपर मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी ने ठेका श्रम (विनियमन एवं उत्सादन) अधिनियम, 1970 के अधीन संज्ञान लेने के बजाय न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अधीन संज्ञान लिया–आक्षेपित आदेश विवेक का इस्तेमाल नहीं दर्शाता है–आक्षेपित आदेश अभिखंडित–आवेदन अनुज्ञात।

(पैराएँ 2, 5 एवं 6)

अधिवक्तागण.–Mr. A. K. Das, For the Petitioners; Mr. S. K. Dubey, For the Opp. Parties.

प्रशांत कुमार, न्यायमूर्ति.—यह आवेदन सी॰/2 केस सं॰ 85/99 में अपर मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, घाटशिला द्वारा पारित दिनांक 16.12.1999 के आदेश के अभिखंडन के लिए दाखिल किया गया है, जिसके द्वारा उन्होंने न्यूनतम मजदूरी अधिनियम की धारा 22A के अधीन संज्ञान लिया।

2. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री ए॰ के॰ दास ने निवेदन किया है कि परिवाद याचिका में अभिकथित किया गया है कि याची की कंपनी ने ठेका श्रम (विनियमन एवं उत्सादन) अधिनियम, 1970 और ठेका श्रम (विनियमन एवं उत्सादन) केंद्रीय नियमावली, 1971 के प्रावधानों का उल्लंघन किया। यह निवेदन किया गया है कि विद्वान अवर न्यायालय ने परिवाद याचिका पर विवेक का इस्तेमाल किए बिना न्यूनतम मजदूरी अधिनियम की धारा 22A के अधीन संज्ञान लिया। परिवाद याचिका में अभिकथन नहीं है कि याची कंपनी के कर्मचारियों में से किसी को न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के उल्लंघन में मजदूरी का भुगतान किया गया था। इस प्रकार, न्यूनतम मजदूरी अधिनियम की धारा 22A के अधीन अपराध नहीं बनता है। तद्नुसार, निवेदन किया गया है कि आक्षेपित आदेश संपोषित नहीं किया जा सकता है।

3. विद्वान अपर पी॰ पी॰ श्री एस॰ के॰ दूबे ने परिवाद याचिका के परिशीलन के बाद पूर्वोक्त निवेदनों को विवादित नहीं किया है।

4. निवेदनों को सुनने पर मैंने मामले के अभिलेख का परिशीलन किया है।

5. परिवाद याचिका के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि श्रम प्रवर्तन अधिकारी (सी॰) ने पूर्वोक्त परिवाद याचिका दाखिल किया और उसमें अभिकथन किया कि याची की कंपनी अंग्रेजी और हिंदी में असंदत्त मजदूरी के भुगतान की तिथि को प्रदर्शित करने में विफल रही थी जो ठेका श्रम (विनियमन एवं उत्सादन) केंद्रीय नियमावली, 1971 के नियम 81 (1) (i) के उल्लंघन में थी। किंतु आक्षेपित आदेश के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि विद्वान अपर मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी ने ठेका श्रम (विनियमन एवं उत्सादन) अधिनियम, 1970 के अधीन संज्ञान लेने के बजाए न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अधीन संज्ञान लिया जो स्पष्टत: दर्शाता है कि उन्होंने विवेक का इस्तेमाल किए बिना आक्षेपित आदेश पारित किया जो मेरी दृष्टि में न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है। तद्नुसार, उक्त आदेश को संपोषित नहीं किया जा सकता है।

6. परिणामस्वरुप, इस आवेदन को अनुज्ञात किया जाता है और आक्षेपित आदेश को एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k ,o ihñ ihñ HkVV] U;k;efr

अनिल कुमार

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

LPA No. 334 of 2011. Decided on 1st February, 2012.

सेवा विधि—अनुकंपा पर नियुक्ति—याची तृतीय वर्ग पद पर नियुक्ति का पात्र था—दुर्बल अधिकार भी दृष्टिबोध का मामला है और विधि का नियम नहीं हो सकता है क्योंकि जब एक बार अधिकार मिलता है, यह अधिकार है और यदि किसी सबसे मजबूत अधिकार को विनष्ट किया जा सकता है तब भी वह विधि के अनुरुप ही किया जा सकता है जो ऐसे अधिकार वाले

व्यक्ति को अनुतोष से इनकार करने की अनुमति देती है–तृतीय वर्ग के पद पर याची की नियुक्ति से मनमाना इनकार और अन्य व्यक्ति को नियुक्ति दिया जाना, जिसे भी उसी अनुशंसा कमिटि द्वारा तृतीय वर्ग पद पर नियुक्त किए जाने के लिए अनुशंसित किया गया है, भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 का स्पष्टतः उल्लंघन है–अपील अनुज्ञात। (पैराएँ 4, 8 एवं 9)

निर्णयज विधि.–(1994)6 SCC 560—Referred to.

अधिवक्तागण.–M/s. Manoj Tandon, S.S. Kumar, For the Appellant; Mr. Ajit Kumar, For the Respondents.

न्यायालय द्वारा.–पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. अपीलार्थी अपनी रिट याचिका डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 6295 वर्ष 2009 की खारिजी के विरुद्ध व्यथित है, जिसमें याची ने प्रार्थना किया कि वह अनुशंसात्मक कमिटि, जिसने तृतीय वर्ग पद पर अन्य व्यक्तियों सहित याची की अनुकंपा पर नियुक्ति के लिए अनुशंसा किया है, द्वारा की गयी अनुशंसा की दृष्टि में तृतीय वर्ग पद पर अनुकंपा पर नियुक्ति का पात्र और हकदार था।

3. विद्वान एकल न्यायाधीश का दृष्टिकोण था कि अनुकंपा पर नियुक्ति विधितः निहित अधिकार नहीं है और नियुक्ति, जिसे याची को प्रस्तावित किया गया है और दिया गया है और रिट याची द्वारा स्वीकार किया गया है, द्वारा याची अपने परिवार का भरण–पोषण कर सकता है और यदि वह अपनी पसंद का पद विशेष चाहता है, उसे उक्त पद के लिए आवेदन देकर अन्य उम्मीदवारों के साथ स्पर्धा करनी होगी और उस पद पर नियुक्ति के लिए विहित समुचित चयन प्रक्रिया के अनेक चरणों के माध्यम से उत्तीर्ण होना होगा। विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह भी संप्रेक्षित किया कि याची उच्चतर पद के लिए पात्र मात्र होने के कारण उक्त उच्चतर पद का दावा नहीं कर सकता है।

4. यह विवादित नहीं है कि याची तृतीय वर्ग पद पर नियुक्ति के लिए पात्र था। यह भी विवादित नहीं है कि नियमावली के मुताबिक तृतीय वर्ग पद पर नियुक्ति दी जा सकती थी। यह भी विवादित नहीं है कि दिनांक 11.3.2008 को अनुशंसा कमिटि द्वारा लिए गए निर्णय में तृतीय वर्ग पद पर याची सहित अनेक अन्य उम्मीदवारों की नियुक्ति के लिए सक्षम कमिटि ने अनुशंसा किया था तथा अन्य उम्मीदवारों को तृतीय वर्ग पद पर नियुक्ति दी जा चुकी है किंतु केवल याची को ही चतुर्थ वर्ग पर नियुक्ति का प्रस्ताव दिया गया है जिसे याची ने स्वीकार किया है। यह सत्य है कि अनुकंपा पर नियुक्ति नियमित नियुक्ति नहीं है क्योंकि इस ढंग द्वारा कोई अन्य के साथ स्पर्धा किए बिना सरकारी सेवा में नियुक्ति पा सकता है और इसी कारण से अनुकंपा पर नियुक्ति अधिकार नहीं है। किंतु, हमारा सुविचारित मत है कि दुर्बलतम अधिकार भी बलिष्ठतम अधिकार बन जाता है यदि ऐसे अधिकार को स्थापित किया जाता है और मनमाने रूप से विनष्ट नहीं किया जा सकता है। जब एक बार व्यक्तियों के एक 'वर्ग' को लाभ देने के लिए स्वयं राज्य सरकार द्वारा नीति विरचित की गयी है और वह भी मानवीय आधार पर, तब वह अधिकार, जिसे दुर्बलतम अधिकार कहा गया है, इतना दुर्बल अधिकार नहीं हो सकता है कि यह मनमानेपन के विरुद्ध संघर्ष नहीं कर सकता है। अतः जब कभी भी दुर्बलतम अधिकार को भी मनमाने रूप से इनकार किया जाता है, न्यायालय ऐसे दुर्बल अधिकार की रक्षा करेगा। यदि राज्य सरकार के नीतिगत निर्णय के अधीन कुछ रियायत और लाभ दिया जाता है, राज्य सरकार को यह घोषित करने का अधिकार नहीं है कि चूँकि यह व्यक्तियों के वर्ग को अनुतोष देने के लिए लिया गया निर्णय था और इसलिए वे इस नीतिगत निर्णय के साथ खिलवाड़ कर सकते हैं और व्यक्तियों, जो पात्र हैं, को अनुकंपा नियुक्ति देने से मनमाने रूप से इनकार कर सकते हैं और साथ ही स्वयं अपने पसंद के व्यक्तियों को वह लाभ दे सकते हैं। दुर्बल

अधिकार दृष्टिबोध का मामला भी हैं और विधि का नियम नहीं हो सकता है क्योंकि जब एक बार अधिकार है, यह अधिकार है और यदि किसी बलिष्ठतम अधिकार को विनष्ट किया जा सकता है तब भी वह विधि के अनुरूप किया जा सकता है जो ऐसे अधिकार वाले व्यक्ति को अनुतोष देने से इनकार करने की अनुमति देती है। यही अवस्था दुर्बल अधिकार के साथ है। यह उन मामलों में से एक है जिसमें सरकार ने पूरा मनमानापन दर्शाया है। राज्य को तथ्यों की पूरी जानकारी थी कि याची तृतीय वर्ग पद पर नियुक्त किए जाने का हकदार था और नियमों में से किसी में इस नियुक्ति को दिए जाने के विरुद्ध कोई वर्जना नहीं थी और केवल यही नहीं बल्कि उसी अनुशंसाओं में से अनेक व्यक्तियों को तृतीय वर्ग पद पर नियुक्ति दी गयी है किंतु याची को तृतीय वर्ग की रिक्तता के बाद भी इनकार किया गया है। यह प्रत्यर्थी राज्य का स्पष्ट मनमाना कृत्य है।

5. प्रत्यर्थी–राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने **राजस्थान राज्य बनाम उमराव सिंह, (1994)6 SCC 560,** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया। उक्त मामले में, प्रत्यर्थी के पिता की मृत्यु सब–इंस्पेक्टर सी॰ आई॰ डी॰ (विशेष शाखा) के रूप में कार्यरत रहते हुए हो गयी थी। प्रत्यर्थी ने सब–इंस्पेक्टर अथवा एल॰ डी॰ सी॰ के रूप में अनुकंपा पर नियुक्ति के लिए आवेदन दिया और परिणामस्वरुप एल॰ डी॰ सी॰ के रूप में नियुक्त किया गया था। उसने उस नियुक्ति को स्वीकार करने के बाद सब–इंस्पेक्टर के रूप में नियुक्ति इप्सित किया। उससे इनकार किया गया था। राजस्थान उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने राजस्थान (सेवारत रहते हुए मृत्यु होने पर) सरकारी सेवकों के आश्रितों की भर्त्ती नियमावली, 1975 के नियम 5 के परन्तुक के अनुरूप सब–इंस्पेक्टर के पद पर नियुक्ति के लिए उसकी उम्मीदवारी पर विचार करने का निर्देश दिया। उक्त निर्णय के विरुद्ध अपील उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा विलंब के आधार पर खारिज कर दी गयी थी। उक्त आदेश के विरुद्ध अपील में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित संप्रेक्षित किया:–

> *^^,y0 MhO lh0 d :i e fu;fDr Lohdkj dj fy, tku ij vudik d vkèkkj ij fu;fDr d fy, fopkj fd, tku dk çR;Fkh dk vfèkdkj i.k gk pdk FkkA vudik ij vkx fopkj dHkh ugh mnHkr gkxkA vU;Fkk] ;g ^^vrghu vudik** dk ekeyk gkxkA ifyl d lc&bliDVj d :i e fu;Dr gku dh ik=rk ,d pht g] p;u çfØ;k fcYdy vyx pht gA rFkkdFkr ik=rk ek= d dkj.k mPp U;k;ky; dk bl nf"Vdk.k dk dk;y vk'oklu fn;k x;k Fkk fd fu;ekoyh d fu;e 5d ijUrd d vèkhu fun'k tkjh fd;k tk, ftldh bl ekey d rF;k ij dkb ç;kT; rk ugh gA*****

6. माननीय सर्वोच्च न्यायालय का भी दृष्टिकोण था कि द्वितीय अनुकंपा पर विचार किए जाने के लिए याची–आवेदक की नियुक्ति के मामले पर विचार करने के लिए नियोक्ता को निर्देश देने वाला एकल न्यायाधीश का निर्णय स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

7. हमने ऊपर निर्दिष्ट निर्णय के निर्णयाधार पर विचार किया और यह एक ऐसा मामला था जहाँ याची ने सब–इंस्पेक्टर अथवा एल॰ डी॰ सी॰ के पद के लिए आवेदन दिया और उसे एल॰ डी॰ सी॰ के पद पर नियुक्ति दी गयी थी। उसने पद स्वीकार किया जबकि यहाँ तथ्यपरक स्थिति बिल्कुल भिन्न है। याची ने तृतीय वर्ग पद के लिए आवेदन दिया था और उसने चतुर्थ वर्ग पर नियुक्ति कभी इप्सित नहीं किया। अत: यह एक ऐसा मामला नहीं था जहाँ नियोक्ता ने समय के किसी बिंदु पर निर्णय लिया था कि तृतीय वर्ग के पद पर रिट याची की पात्रता के बावजूद उसे चतुर्थ वर्ग के पद पर नियुक्त किया जा सकता है। बल्कि कहा जाए कि राज्य ने केवल याची के लिए अनुशंसा स्वीकार नहीं किया है जहाँ यह अनुशंसा की गयी है कि याची को तृतीय वर्ग के पद का प्रस्ताव दिया जाए।

अत:, उक्त निर्दिष्ट निर्णय वर्तमान मामले में प्रयोज्य नहीं है। उस मामले में आवेदक की प्रार्थनाओं में से एक राज्य सरकार द्वारा स्वीकार की गयी थी और एल॰ डी॰ सी॰ के पद पर नियुक्ति स्वीकार करके आवेदक द्वारा उसे स्वीकार किया गया था, अत: माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने संप्रेक्षित किया कि यदि ऐसी परिपाटी की अनुमति दी जाएगी, यह 'अंतहीन अनुकंपा' का मामला होगा। यहाँ हमने पहले ही संप्रेक्षित किया है कि तृतीय वर्ग के पद पर याची की नियुक्ति से मनमाना इनकार और अन्य व्यक्तियों, जिन्हें भी उसी अनुशंसा कमिटि द्वारा तृतीय वर्ग के पद पर नियुक्त किए जाने के लिए अनुशंसित किया गया है, को नियुक्ति देना स्पष्टत: भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के उल्लंघन में है और, इसलिए, विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश संपोषित नहीं किया जा सकता है और यह अपास्त किए जाने का दायी है और इसलिए अपास्त किया जाता है।

8. तद्नुसार, यह एल॰ पी॰ ए॰ अनुज्ञात किया जाता है और तृतीय वर्ग पद पर जैसा अनुशंसा रिट याची-अपीलार्थी को नियुक्ति का प्रस्ताव देकर स्वयं अपने निर्णय, जैसा अनुशंसा कमिटि द्वारा लिया गया है, को क्रियान्वित करने का निर्देश प्रत्यर्थीगण को दिया जाता है। किंतु, यह आदेश भविष्यलक्षी होगा और आज के दिन से दो माह की अवधि के भीतर इस आदेश का अनुपालन किया जा सकता है।

---

ekuuh; vkjï dï ejkfB;k ,o Mhï ,uï mikè;k;] U;k;efrx.k

अनिल सिंह (208 में)

प्रेम सिंह (376 में)

cuke

झारखंड राज्य (दोनों में)

Criminal Appeal (DB) Nos. 208, 376 of 2004.Decided on 23rd February, 2012.

सत्र विचारण सं॰ 84 वर्ष 2003 में श्री आलोक कुमार दूबे, अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट सं॰ 1, गुमला द्वारा पारित क्रमश: दिनांक 12 जनवरी, 2004 और 13 जनवरी, 2004 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के आदेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302, 394/34 एवं 411 सह-पठित आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 27—डकैती एवं हत्या–दोषसिद्धि–डॉक्टर के साक्ष्य द्वारा अभियोजन मामला पूर्णत: संपुष्ट–पहचान परीक्षा परेड में गवाहों द्वारा अपीलार्थीगण को पहचान की गयी–अभिग्रहण सूची के गवाहों ने अपीलार्थीगण की संस्वीकृति पर आग्नेयास्त्र के अभिग्रहण को पूर्णत: समर्थित किया है–दो तिथियों पर टी॰ आई॰ परेड संचालित करने में कुछ भी गलत नहीं है–गवाहों ने उनकी भूमिका जैसा फर्दबयान में कथित किया गया है, बताते हुए स्पष्टत: अपीलार्थीगण को पहचाना है–केवल इस उपधारणा के आधार पर की उनकी पहचान के पहले न्यायालय में अपीलार्थीगण की प्रस्तुति के समय पर गवाहों ने उनको देखा होगा क्योंकि वे हितबद्ध गवाह हैं, गवाहों द्वारा की गयी स्पष्ट पहचान को ठुकराया नहीं जा सकता है–अपीलार्थीगण को झूठा आलिप्त किया गया है ऐसा उपदर्शित करने के लिए कुछ भी नहीं है–दोषसिद्धि और दंडादेश अभिपुष्ट–अपील खारिज। (पैराएँ 5 से 9)

अधिवक्तागण.–M/s B. M. Tripathy, Naveen Kumar Jaiswal, For the Appellant; Mr. Ravi Prakash, For the State.

न्यायालय द्वारा.–ये दोनों अपीलें सत्र विचारण सं॰ 84 वर्ष 2003 में दोनों अपीलार्थीगण को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 302/394/34/411 और आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन अपराधों के लिए दोषसिद्ध और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302/34 के अधीन अपराधों के लिए कठोर आजीवन कारावास, भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 394/34 के अधीन अपराधों के लिए 10 वर्षों का कठोर कारावास; भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 411 के अधीन अपराधों के लिए 3 वर्षों का कठोर कारावास और आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन अपराध के लिए 5 वर्षों का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश देते हुए विद्वान अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट सं॰ I, गुमला द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 12.1.2004 और 13.1.2004 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के आदेश से उद्भूत होती हैं। किंतु समस्त दंडादेशों को साथ-साथ चलने का निर्देश दिया गया था।

दोनों मामलों को साथ-साथ सुना गया था और इस एक ही निर्णय द्वारा निपटाया जा रहा है।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला निम्नलिखित है:

अ॰ सा॰ 9 प्रमोद कुमार ने दिनांक 28.9.2002 को दोपहर लगभग 1.50 बजे सदर अस्पताल में फर्दबयान दर्ज किया कि वह विगत 20 वर्षों से साहू ब्रदर्स पेट्रोल पंप में खजांची है। वह और एक अन्य कर्मचारी अ॰ सा॰ 2 पेट्रोल पंप में कार्यरत थे। स्वामी मिथिलेश कुमार साहू उर्फ नन्ही (मृतक) भी काउंटरों में से एक पर उपस्थित था। दोपहर लगभग 1.50 बजे दो अज्ञात व्यक्ति अपने हाथों में देसी पिस्तौल लिए कार्यालय में घुसे। एक अन्य व्यक्ति पिस्तौल के साथ काउंटर के बाहर खड़ा था। दोनों दुष्टों ने सूचक के कनपटी पर पिस्तौल तानते हुए धन मांगा। उसने धन दे दिया जिसे दुष्टों द्वारा अपनी ''गंजी'' में रखा गया था। दुष्ट मिथिलेश के पास गए और उससे भी पिस्तौल की नोक पर धन माँगा। मिथिलेश ने कहा समस्त धन नगद काउंटर में रखा था। इस पर दुष्टों ने मिथिलेश पर पिस्तौल के कुंदे से प्रहार किया और धन मांगते रहे और ड्राअर खोलने को कहा। जब मिथिलेश इसे खोलने जा रहा था, एक दुष्ट ने उसके कनपटी से पिस्तौल सटाकर गोली चलायी। तत्पश्चात्, दोनों दुष्ट बाहरी दरवाजे से भाग गए। तीसरा दुष्ट कार्यालय के बाहर खड़ा था। उसने ब्लैंक फायर किया। समस्त तीनों दुष्ट एक लाख रुपयों की राशि लूटने और मिथिलेश की हत्या करने के बाद मोटरसाइकिल से भाग गए। सूचक ने दुष्टों को पहचानने का दावा किया। उसने कहा कि अन्य ने भी घटना को देखा था।

3. अभियोजन ने 15 गवाहों का परीक्षण किया। अ॰ सा॰ 1 डॉक्टर है जिन्होंने शव परीक्षण किया। उन्होंने मृत्यु का कारण सीधा निशाना (Point blank) रेंज से चलायी गयी गोली से हुई उपहति और दाहिने भौंह के निकट एक विदीर्ण जख्म को मृत्यु का कारण पाया। अ॰ सा॰ 2 सुरेश प्रसाद उर्फ सुरेन्द्र प्रसाद प्राथमिकी में नामित एक अन्य कर्मचारी है जो भी प्रासंगिक समय पर पेट्रोल पंप पर कार्यरत था। अ॰ सा॰ 3, 4 एवं 7 अनुश्रुत गवाह हैं। अ॰ सा॰ 5 ने दुष्टों को भागते हुए देखा। उसने गवाहों को पहचान परीक्षा परेड (टी॰ आई॰ परेड) में और न्यायालय में भी पहचाना। अ॰ सा॰ 6 ने भी दुष्टों को घटना स्थल से भागते देखा था। किंतु इस गवाह को टी॰ आई॰ परेड के लिए नहीं ले जाया गया था। अ॰ सा॰ 8 न्यायिक दंडाधिकारी है जिन्होंने टी॰ आई॰ परेड संचालित किया था। अ॰ सा॰ 9 सूचक है। अ॰ सा॰ 10 अन्य चश्मदीद गवाह है जो घटनास्थल पर उपस्थित था। इस गवाह ने अनिल सिंह (अपीलार्थी) को टी॰ आई॰ परेड में और न्यायालय में भी पहचाना था। अ॰ सा॰ 11 और 12 दोनों अपीलार्थीगण की संस्वीकृति पर आग्नेयास्त्रों और नगद की कुछ राशि के, अभिग्रहण के गवाह हैं। अ॰ सा॰ 13 अन्वेषण अधिकारी है। अ॰ सा॰ 14 और 15 पुलिसकर्मी है जिन्होंने तात्विक प्रदर्शों को प्रस्तुत किया।

बचाव पक्ष ने दो गवाहों ब॰ सा॰ 1 और 2 का परीक्षण इस बिंदु पर किया कि अ॰ सा॰ 10 कृष्णा सिंह अपीलार्थी अनिल सिंह को पहले से जानता था।

4. दोनों मामलों में अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री बी॰ एम॰ त्रिपाठी ने निवेदन किया कि अपीलार्थीगण द्वारा घटना एवं इसके तरीके को विवादित नहीं किया गया है, किंतु उनकी पहचान को विवादित किया है। उन्होंने निवेदन किया कि यद्यपि अपीलार्थी अनिल सिंह को दिनांक 2.10.2010 को न्यायालय को अग्रसरित किया गया था और अपीलार्थी प्रेम सिंह को दिनांक 13.11.2010 को न्यायालय को अग्रसारित किया गया था किंतु टी॰ आई॰ परेड पृथक रूप से किया गया था अर्थात् प्रेम सिंह के लिए दिनांक 14.11.2002 को और तब अनिल सिंह के लिए दिनांक 16.12.2002 को टी॰ आई॰ परेड संचालित करने में अत्यन्त विलंब किया गया था और यह ज्ञात नहीं है कि अपीलार्थीगण के लिए पृथक रूप से टी॰ आई॰ परेड क्यों संचालित किया गया था। टी॰ आई॰ परेड के पहले अनेक अवसरों पर अपीलार्थीगण को न्यायालय में प्रस्तुत किया गया था और, इसलिए, टी॰ आई॰ परेड में उनकी पहचान के पहले अभियुक्तगण–अपीलार्थीगण को गवाहों द्वारा देखे जाने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है। उन्होंने यह भी निवेदन किया कि पिलेट और देशी पिस्तौल को न्यायालयिक प्रयोगशाला में भेजा नहीं गया था और आग्नेयास्त्र और धन की बरामदगी गढ़ी गयी थी। अंत में, उन्होंने निवेदन किया कि अपीलार्थीगण नौ वर्षों से अधिक समय से कारा अभिरक्षा में बने हुए हैं।

5. दूसरी ओर, विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ श्री रवि प्रकाश ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया और निम्नलिखित निवेदन किया:–

घटना दिनदहाड़े हुई थी। फर्दबयान 20 मिनटों के भीतर दर्ज किया गया था। गवाहों ने स्पष्ट रूप से कथन किया कि उन्होंने टी॰ आई॰ परेड में उनकी पहचान के पहले अपीलार्थीगण को पुलिस थाना में अथवा न्यायालय में नहीं देखा था। अभियुक्तगण की पेशी के समय पर, गवाहों को उपस्थित होने की आवश्यकता नहीं है। यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि वे उपस्थित थे। बचाव पक्ष इस उपधारणा के आधार पर तर्क नहीं कर सकता है कि गवाहों को अपीलार्थीगण को उनकी पहचान के पहले से ही देखने का अवसर था। टी॰ आई॰ परेड केवल संपुष्टि के प्रयोजन से किया गया है। अ॰ सा॰ 8 दंडाधिकारी द्वारा कराये गए पहचान के तरीके को चुनौती नहीं दी गयी है। अभिग्रहण सूची गवाहों ने अपीलार्थीगण की संस्वीकृति पर आग्नेयास्त्र के अभिग्रहण का पूरा समर्थन किया है। दो तिथियों पर टी॰ आई॰ परेड संचालित करने में कुछ भी गलत नहीं है। प्रेम सिंह के लिए पहचान परीक्षा की प्रार्थना दिनांक 13.11.2002 को की गयी थी और इसे दिनांक 14.11.2002 को किया गया था और तब तुरन्त दिनांक 18.11.2002 को अनिल सिंह की टी॰ आई॰ परेड संचालित करने की प्रार्थना की गयी थी किंतु पहचान करने वाले गवाहों की बीमारी के कारण इसे केवल दिनांक 16.12.2002 को किया जा सका था। अपीलार्थीगण को झूठा आलिप्त किया जाना उपदर्शित करता हुआ कुछ भी नहीं है। उन्हें सही प्रकार से इस जघन्य अपराध में दोषसिद्ध और दंडादेशित किया गया है।

6. अभिलेखों का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने और पक्षों को विस्तारपूर्वक सुनने के बाद हम राज्य के अधिवक्ता के निवेदनों में सार पाते हैं। घटना विवादित नहीं है। यह दिनदहाड़े हुई थी। फर्दबयान घटना के 20 मिनट भीतर दर्ज किया गया था। सूचक (अ॰ सा॰ 9) ने पेट्रोल पंप के एक अन्य कर्मचारी अ॰ सा॰ 2 की उपस्थिति प्रकट किया था। समस्त गवाह संगति में हैं और घटना के तरीके पर एक दूसरे को संपुष्ट करते हैं। पहचान करने वाले गवाहों अर्थात् अ॰ सा॰ 5 और 9 ने स्पष्टत: अपीलार्थीगण को पहचाना था। उन्होंने प्रेम सिंह को दुष्ट के रूप में पहचाना था जिसने डकैती करने के क्रम में गोली दागकर उपहति द्वारा मिथिलेश की हत्या की थी। अ॰ सा॰ 10 ने अनिल सिंह को पहचाना था। गवाहों ने फर्दबयान में कथित उनकी भूमिका को बताते हुए स्पष्टत: अपीलार्थीगण को पहचाना है। इसी तरीके से उन्होंने अभियोजन द्वारा अभिकथित उनकी अलग–अलग भूमिका बताते हुए न्यायालय में अपीलार्थीगण को पहचाना है। उन्होंने न्यायालय में स्पष्ट रूप से कथन किया है कि उन्होंने टी॰ आई॰ परेड के पहले

अपीलार्थीगण को पुलिस थाना में अथवा न्यायालय में नहीं देखा था। केवल इस उपधारणा के आधार पर कि उनकी पहचान के पहले अपीलार्थीगण को न्यायालय में पेश किए जाने के समय पर गवाहों ने उनको देखा होगा क्योंकि वे हितबद्ध गवाह थे, गवाहों द्वारा किया गया निरपवाद पहचान ठुकराया नहीं जा सकता है। अपीलार्थीगण को झूठा आलिप्त करने को उपदर्शित करता हुआ कुछ भी नहीं है।

हमारे मत में, टी॰ आई॰ परेड करने में कोई विलंब नहीं हुआ था। इसमें कुछ भी गलत नहीं है यदि इसे एक के बाद एक किया गया था। चूँकि घटना का तरीका विवादित नहीं है और प्रत्यक्ष साक्ष्य उपलब्ध है, देशी पिस्तौल को न्यायालयिक परीक्षण के लिए नहीं भेजा जाना अभियोजन मामले को संदेहास्पद नहीं बनाएगा। यह भी गौर किया जा सकता है कि अपीलार्थीगण ने अपना दोष संस्वीकार किया था और उनकी संस्वीकृति पर अपराध में प्रयुक्त आग्नेयास्त्रों को बरामद किया गया था जिन्हें विभिन्न स्थलों पर छुपाया गया था। भले ही नगद की कुछ राशि की बरामदगी अलग रखी जाती है, अपीलार्थीगण की संस्वीकृति पर अपराध में प्रयुक्त आग्नेयास्त्रों की बरामदगी इस मामले में प्रासंगिक कारक है जो अभियोजन के मामले का समर्थन करता है।

7. श्री त्रिपाठी ने अनिल सिंह के दंडादेश के प्रश्न पर भी तर्क किया और निवेदन किया कि मृतक की हत्या करने का उसका कोई आशय नहीं था क्योंकि वह बाहर खड़ा था। अधिकाधिक उसने अपीलार्थीगण के भाग जाने को सुकर बनाया था।

8. ऐसे निवेदन स्वीकार्य नहीं हैं। अभियोजन ने स्पष्टतः सिद्ध किया है कि वह पेट्रोल पंप के निकास द्वार पर खड़ी चालू मोटर साइकिल पर प्रतीक्षा कर रहा था। उसने हवा में गोली चलायी जब समस्त तीनों दुष्ट मोटरसाइकिल पर भाग गए। उसने सक्रिय रूप से भाग लिया है और संयुक्त रूप से अपराध किया है।

9. हमारे मत में, अपीलार्थीगण को सही प्रकार से उक्त अपराधों का दोषी अभिनिर्धारित किया गया है। अभियोजन ने समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अपीलार्थीगण के विरुद्ध अपना मामला सिद्ध किया है। इस जघन्य अपराध में अपीलार्थीगण के विरुद्ध पारित दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं है।

तद्नुसार, दोनों अपीलार्थीगण के विरुद्ध विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि और दंडादेश को अभिपुष्ट करते हुए इन दोनों अपीलों को निपटाया जाता है।

---

ekuuh; ,pñ lhñ feJk] U;k;efr

चंदेश्वर प्रसाद सिन्हा

cuke

बिहार राज्य (अब झारखंड) एवं अन्य

Cr. W.J.C. No. 43 of 2000 (R). Decided on 16th February, 2012.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन एक आवेदन के मामले में।

भारत का संविधान–अनुच्छेद 226—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973— धारा 147—अधिक्रमण को हटाने के लिए निर्देश–दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 147 के अधीन कार्यवाही में सब डिविजनल दंडाधिकारी द्वारा पारित आदेश के निष्पादन के लिए व्यवहार्यतः रिट याचिका दाखिल की गयी–रिट याचिका बिल्कुल पोषणीय नहीं है और तद्नुसार खारिज की जाती है।

(पैराएँ 3 एवं 5)

अधिवक्तागण.–Mr. Rajeev Kumar, For the Petitioner; Mr. Rajesh Kumar, For the State.

न्यायालय द्वारा.–बार-बार बुलाए जाने पर भी याची की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ। रिट याचिका का परिशीलन किया गया और प्रत्यर्थी राज्य की ओर से विद्वान जी॰ पी॰–V को सुना गया।

2. यह रिट याचिका एम॰ 37/1998 में पारित सब-डिविजनल दंडाधिकारी, राँची के आदेश जिसके द्वारा ग्राम हिनू, पी॰ एस॰ डोरन्डा, जिला राँची में अवस्थित दो कट्ठा माप वाले आर॰ एस॰ भूखंड सं॰ 431, खाता सं॰ 27 के संबंध में अधिक्रमण हटाने के लिए निजी प्रत्यर्थी सं॰ 5 के विरुद्ध दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 147 के अधीन आदेश पारित किया गया था, को क्रियान्वित करने के लिए तत्कालीन कार्यपालक दंडाधिकारी को आदेश देते हुए निर्देश के लिए और/अथवा समुचित रिट जारी करने के लिए याची द्वारा दाखिल की गयी है।

3. रिट याचिका के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि निजी प्रत्यर्थी सं॰ 5, जिसके विरुद्ध दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 147 के अधीन उक्त कार्यवाही में आदेश पारित किया गया था, द्वारा वाद भी दाखिल किया गया था।

4. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि यह दो निजी पक्षों के बीच का वाद है और यह रिट याचिका दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 147 के अधीन सब डिविजनल दंडाधिकारी द्वारा पारित आदेश के निष्पादन के लिए व्यवहार्यत: दाखिल की गयी है।

5. इस मामले के तथ्यों में, यह रिट याचिका बिल्कुल पोषणीय नहीं है और तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; vkjh vkjh çlkn] U;k;efr

धीरेन्द्र नाथ पॉल

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

Cr. M. P. No. 1471 of 2010. Decided on 22nd February, 2012.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 125—भरण-पोषण—पत्नी को 1000/- रुपया और पुत्री को 1000/- रुपया अंतरिम भरण-पोषण दिया गया—जारकर्म और अधित्यजन के आधार पर कुटुंब न्यायालय के समक्ष दाखिल आवेदन एकपक्षीय डिक्री किया गया—याची के पक्ष में तलाक का एकपक्षीय डिक्री प्रदान किया गया था किंतु उस डिक्री को न्यायालय द्वारा स्थगित कर दिया गया है, जब एकपक्षीय डिक्री अपास्त करने के लिए विपक्षी पक्षकार ने आवेदन दाखिल किया—न्यायालय ने याची की आय को विचार में लेने पर पत्नी और पुत्री प्रत्येक को 1000/- रुपयों का भरण-पोषण प्रदान करने का आदेश पारित किया—आक्षेपित आदेश में अवैधता नहीं है—आवेदन खारिज। (पैराएँ 3, 4, 6, 7 एवं 8)

अधिवक्तागण.—M/s A. K. Sahani, Amrita Banerjee, For the Petitioner; A.P.P., For the State; Mr. A. K. Das, For the Opp.party no. 2.

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता और विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. यह आवेदन भरण-पोषण केस सं॰ 92 वर्ष 2010 में पारित दिनांक 26.8.2010 के आदेश के विरुद्ध निर्देशित है जिसके द्वारा और जिसके अधीन दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अधीन पत्नी को 1000/- रुपया और पुत्री को 1000/- रुपया अंतरिम भरण-पोषण अनुज्ञात किया गया है। उस आदेश के विरुद्ध यह आवेदन दाखिल किया गया है।

3. आक्षेपित आदेश का विरोध करते हुए निवेदन किया गया था कि चूँकि पत्नी जारकर्म में रह रही थी, जारकर्म और अधित्यजन के आधार पर कुटुंब न्यायालय के समक्ष तलाक आवेदन लाया गया था। दिनांक 20.8.2009 को याची के पक्ष में एकपक्षीय डिक्री प्रदान किया गया था। नौ माह बाद पत्नी द्वारा दो मामलों को दाखिल किया गया था, एक भारतीय दंड संहिता की धारा 498A के अधीन अपराध के संबंध में और दूसरा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 498A के अधीन भरण–पोषण प्रदान करने के संबंध में। न्यायालय ने इस तथ्य को सम्यक् रूप से ध्यान में लिए बिना कि जारकर्म के आधार पर पहले ही तलाक की डिक्री प्रदान की जा चुकी है, अंतरिम भरण–पोषण का आदेश पारित किया जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 (4) में अंतर्विष्ट प्रावधान की दृष्टि में बिल्कुल अवैध है और इसलिए आदेश अपास्त किए जाने की अपेक्षा करते हैं।

4. इसके विरुद्ध, विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री दास ने निवेदन किया कि यह सत्य है कि याची के पक्ष में तलाक का एकपक्षीय आदेश पारित किया गया था किंतु ज्योंही याची को पता चला कि एकपक्षीय डिक्री पारित की गयी है, एकपक्षीय आदेश को अपास्त करने के लिए आवेदन दाखिल किया गया था जिस पर एकपक्षीय तलाक प्रदान करने वाला आदेश न्यायालय द्वारा स्थगित कर दिया गया है। इस स्थिति के अधीन, मामला यह है कि तलाक की कोई डिक्री नहीं है और कि न्यायालय ने याची की आय को विचार में लेते हुए पत्नी के लिए 1000/- रुपया और पुत्री के लिए 1000/- रुपया अंतरिम भरण–पोषण का आदेश पारित किया और तद्द्वारा न्यायालय ने आदेश पारित करने में अवैधता नहीं किया था।

5. मैं विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 की ओर से किए गए निवेदन में सार पाता हूँ।

6. यह प्रतीत होता है कि याची के पक्ष में तलाक की एकपक्षीय डिक्री प्रदान की गयी थी किंतु उस डिक्री को न्यायालय द्वारा स्थगित कर दिया गया है जब विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने एकपक्षीय डिक्री अपास्त करने के लिए आवेदन दाखिल किया।

7. इस स्थिति के अधीन, याची वर्तमान में जारकर्म के आधार पर प्रदान की गयी तलाक की डिक्री का लाभ नहीं ले सकता है। आगे प्रतीत होता है कि न्यायालय ने याची की आय को विचार में लेने पर पत्नी और पुत्री प्रत्येक को 1000/- रुपया का भरण–पोषण प्रदान करने का आदेश पारित किया और तद्द्वारा वह कोई अवैधता करते प्रतीत नहीं होते हैं।

8. इस प्रकार, मैं इस आवेदन में गुणागुण नहीं पाता हूँ। तद्नुसार, इसे खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; vkjh dh ejkfB;k ,o vij'k dekj flg] U;k;efrx.k

माझी समद

cuke

झारखंड राज्य

Cr. Appeal (D.B.) No. 1286 of 2003. Decided on 2nd February, 2012.

सत्र विचारण सं॰ 401/1997 में श्री सत्या एन॰ प्रसाद, द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश, चाईबासा पश्चिमी सिंहभूम द्वारा पारित दिनांक 17.5.2003 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 302—हत्या–आजीवन कारावास–मंशा संदेहास्पद जादू-टोना था जिसे मृतका द्वारा अभिकथित रूप से किया गया था–मृतका की पुत्री के साक्ष्य ने प्राथमिकी और शव परीक्षण रिपोर्ट को संपुष्ट किया–प्राथमिकी दर्ज किए जाने में कोई विलंब नहीं और कहानी गढ़ने का अवसर नहीं था–फरार होने का आचरण प्रासंगिक नहीं है–अपीलार्थी को झूठा आलिप्त करने का कोई कारण नहीं है–अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य को विश्वसनीय पाया गया–अपीलार्थी के विरुद्ध मामला समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे सिद्ध किया गया–अपील खारिज। (पैराएँ 5 से 9)

अधिवक्तागण.–Mr. Yogesh Modi, For the Appellant; Mr. S. P. Jha, For the State.

निर्णय

अपीलार्थी की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ। श्री योगेश मोदी को इस मामले में अपीलार्थी की ओर से न्यायालय की सहायता करने के लिए न्याय मित्र के रूप में नियुक्त किया गया है।

बाद में:

न्यायालय द्वारा.–यह अपील अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध करने के लिए दोषसिद्ध करते हुए सत्र विचारण सं॰ 401/97 में विद्वान द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश चाईबासा, पश्चिमी सिंहभूम द्वारा पारित दिनांक 17.5.2003 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के आदेश के विरुद्ध निर्देशित है।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि अ॰ सा॰ 2 बेहरा पूर्ति (सूचक) ने बैजनाथ कोदंग (अ॰ सा॰ 3) के साथ दिनांक 24.7.1996 को रात्रि लगभग 9.30 बजे फर्दबयान दर्ज किया कि उसकी लगभग 45 वर्षीय माता जोबना पूर्ति (मृतका) और लगभग 18 वर्षीय छोटी बहन जेमा कुई पूर्ति (अ॰ सा॰ 1) खेत में काम कर रही थी जब अपीलार्थी कुल्हाड़ी छुपाते हुए वहाँ आया और जोबना पूर्ति से कहा कि वह उससे बात करना चाहता था। तब वह उसके निकट गया और अपनी कमीज में छुपायी गयी कुल्हाड़ी को बाहर निकाल कर जोबना पूर्ति की गर्दन पर उपहति कारित किया जिसके परिणामस्वरुप वह खेत के किनारे गिर गयी। तब अपीलार्थी ने पुनः टांगी का वार किया और जोबना पूर्ति की हत्या कर दी। उसने अ॰ सा॰ 1 को गंभीर परिणामों की धमकी दी जिस पर अ॰ सा॰ 1 घर की ओर दौड़ी औरी सूचक को घटना के बारे में बताया। सूचक खेत में गया और जोबना पूर्ति का मृत शरीर पाया। अपीलार्थी पहले ही भाग चुका था। सूचक ने आगे कथन किया कि अपीलार्थी ने गाँव के मुंडा के समक्ष कहा कि जोबना पूरती ने अपीलार्थी के पैर पर जादू टोना किया था जिस कारण उसके पैर में सूजन था और इसलिए उसने जोबना पूर्ति की हत्या कर दी। घटना किसी मंटू पूर्ति द्वारा भी देखी गयी थी। इस फर्दबयान पर प्राथमिकी दर्ज की गयी थी।

3. अपीलार्थी के विद्वान ए॰ सी॰ श्री योगेश मोदी ने निवेदन किया कि अपीलार्थी का आचरण प्रासंगिक है क्योंकि यह दर्शाने के लिए कुछ नहीं है कि उसने चश्मदीद गवाह (अ॰ सा॰ 1) की हत्या करने का प्रयास किया और इसके अतिरिक्त, उसे अगले दिन अपने घर में पाया गया था जहाँ से उसे गिरफ्तार किया गया था। उन्होंने आगे निवेदन किया कि प्राथमिकी दर्ज करने में विलंब हुआ था, अतः, कहानी गढ़े जाने का अवसर है। उन्होंने इंगित किया कि प्राथमिकी में किसी भूमि विवाद का जिक्र नहीं है किंतु अ॰ सा॰ 1 और 2 जो हितबद्ध गवाह हैं ने कथन किया है कि भूमि विवाद भी था। निवेदन किया गया है कि भूमि विवाद के कारण अपीलार्थी को झूठा आलिप्त किया गया है। उन्होंने आगे निवेदन किया कि प्राथमिकी के मुताबिक किसी मंटू पूर्ति ने घटना देखा था किंतु इस मामले में उसका परीक्षण नहीं

किया गया था जो भी संदेह सृजित करता है। उन्होंने यह भी निवेदन किया कि न्यायिकेतर संस्वीकृति का कोई साक्ष्यीय मूल्य नहीं है जिसके आधार पर कुल्हाड़ी की अभिकथित बरामदगी की गयी थी। उन्होंने निवेदन किया कि कुल्हाड़ी गाँव के घरों में उपलब्ध सामान्य हथियार है और इसके अतिरिक्त अ॰ सा॰ 3, जो अभिग्रहण सूची के गवाहों में से एक है, ने किसी अभिग्रहण के बारे में चर्चा तक नहीं किया था। आगे, अभिगृहित कुल्हाड़ी को रासायनिक परीक्षण के लिए नहीं भेजा गया था। अंत में, उन्होंने निवेदन किया कि अपीलार्थी लगभग 15 वर्षों से कारा में बना हुआ है और अब तक उसकी आयु लगभग 65 वर्ष होगी।

4. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया।

5. अभियोजन ने सात गवाहों का परीक्षण किया:–

अ॰ सा॰ 1 जेमा कुई पूर्ति मृतका की पुत्री है जिसे चश्मदीद गवाह के रूप में प्रक्षेपित किया गया है।

अ॰ सा॰ 2 बेहरा पूर्ति सूचक है जिसने अ॰ सा॰ 1 से सूचना पाया और प्राथमिकी दर्ज किया।

अ॰ सार॰ 3 बैजनाथ कोदंग अनुश्रुत गवाह है।

अ॰ सा॰ 4 और 5 पक्षद्रोही गवाह है।

अ॰ सा॰ 6 अन्वेषण अधिकारी है।

अ॰ सा॰ 7 डॉक्टर है जिन्होंने शव परीक्षण रिपोर्ट सिद्ध किया।

6. मात्र इसलिए कि अ॰ सा॰ 1 मृतका की पुत्री है, उसके साक्ष्य को अविश्वसनीय नहीं कहा जा सकता है। उस पर अविश्वास करने के लिए उसके साक्ष्य में कुछ भी नहीं है। उसका साक्ष्य प्राथमिकी और शव परीक्षण रिपोर्ट से संपुष्ट होता है। शव परीक्षण रिपोर्ट में तेज धार वाले हथियारों द्वारा कारित टेम्पोरल क्षेत्र पर एक कटने का जख्म और गर्दन पर दो कटने के जख्म पाए गए थे। अ॰ सा॰ 2 मृतका का पुत्र है। उसने अभियोजन मामले का भी पूरा समर्थन किया है जैसा उसे अ॰ सा॰ 1 से पता चला था। अ॰ सा॰ 1 और 2 ने अपने प्रति परीक्षण में कथन किया कि पक्षों के बीच भूमि विवाद था। यह सत्य है कि प्राथमिकी में भूमि विवाद उपदर्शित नहीं किया गया था किंतु प्राथमिकी बृहद शब्द कोष नहीं है। इसके अतिरिक्त, प्राथमिकी में कथन किया गया था कि मंशा मृतका द्वारा अभिकथित रूप से किया गया जादू टोना था जैसा अपीलार्थी द्वारा ग्राम मुंडा के समक्ष प्रकट किया गया था।

7. इसके अतिरिक्त, जब अ॰ सा॰ 1 चश्मदीद गवाह उपलब्ध है, मंशा अप्रासंगिक हो जाता है। जैसा पहले गौर किया गया है, अ॰ सा॰ 1 का साक्ष्य चिकित्सीय साक्ष्य और अ॰ सा॰ 2 और 3 के साक्ष्य द्वारा समर्थित किया गया है। अ॰ सा॰ 3 ने अन्य बातों के साथ कथन किया कि अ॰ सा॰ 1 ने मुंडा के समक्ष कहा कि अपीलार्थी ने उसकी माता की हत्या की थी।

अ॰ सा॰ 6 अन्वेषण अधिकारी ने कथन किया कि अ॰ सा॰ 4 (पक्षद्रोही गवाह) ने उसके समक्ष कथन किया था कि अपीलार्थी ने कुल्हाड़ी से मृतका की हत्या कर दी थी। उसने आगे कथन किया कि अ॰ सा॰ 5 (पक्षद्रोही गवाह) ने उसके समक्ष कथन किया था कि अ॰ सा॰ 1 ने अ॰ सा॰ 5 को बताया कि अपीलार्थी ने कुल्हाड़ी से मृतका की हत्या कर दी थी।

अ॰ सा॰ 7 डॉ॰ जवाहर खान है जिन्होंने शव परीक्षण रिपोर्ट को सिद्ध किया है। उन्होंने कथन किया कि डॉ॰ वी॰ के॰ सिंह ने दिनांक 27.9.1996 को शव परीक्षण किया था और स्वयं अपने हस्तलेखन में शव परीक्षण रिपोर्ट तैयार किया था। इस गवाह ने डॉ॰ वी॰ के॰ सिंह का हस्तलेखन और हस्ताक्षर सिद्ध किया है।

अपीलार्थी को झूठा आलिप्त किए जाने को सुझाने के लिए कुछ भी नहीं है। यह समझ में नहीं आता कि केवल भूमि विवाद के कारण वास्तविक हमलावर को छोड़कर अ॰ सा॰ 1 क्यों अपीलार्थी को झूठा आलिप्त करेगी। प्राथमिकी दर्ज करने में कोई विलंब नहीं हुआ है। घटना शाम में लगभग 4 बजे हुई बतायी जाती है। तत्पश्चात् अ॰ सा॰ 1 ने अ॰ सा॰ 2 को सूचित किया। तब अ॰ सा॰ 2 गाँववालों के साथ घटना स्थल पर गया। तब पुलिस थाना, जो लगभग 4 कि॰ मी॰ दूर है, में रात्रि लगभग 9.30 बजे फर्दबयान दर्ज की गयी थी। इन परिस्थितियों में, यह नहीं कहा जा सकता है कि प्राथमिकी दर्ज करने में विलंब हुआ था और कहानी गढ़ने का मौका था।

8. अ॰ सा॰ 1 की हत्या नहीं करने का अपीलार्थी का आचरण भी प्रासंगिक नहीं है। जब अपीलार्थी ने उसको गंभीर परिणामों की धमकी दी, वह भाग गयी। इसी प्रकार फरार नहीं होने का आचरण भी प्रासंगिक नहीं है।

9. मामले का सावधानीपूर्वक परीक्षण करने के बाद यह प्रतीत होता है कि अभियोजन समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अपीलार्थी के विरुद्ध अपना मामला सिद्ध करने में सक्षम हुआ है। अपीलार्थी के विरुद्ध पारित दोषसिद्धि और दंडादेश के आक्षेपित निर्णय में इस न्यायालय के हस्तक्षेप के लिए कोई आधार नहीं बनाया गया है। तद्नुसार, अपील खारिज की जाती है।

---

ekuuh; ç'kkr dekj] U;k;efr

मोहन मंडल उर्फ सुशांत मंडल एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. Revision No. 484 of 2011. Decided on 22nd February, 2012.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 273 एवं 317—व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट–साक्ष्य अभियुक्त की उपस्थिति में लिया जाना होगा जब तक कि उसकी व्यक्तिगत उपस्थिति को अभिमुक्त नहीं कर दिया जाता है–विचारण न्यायालय ने अभियुक्त को व्यक्तिगत उपस्थिति से अभिमुक्त किया और उनको अपने अधिवक्ता के माध्यम से प्रतिनिधित्व किए जाने की अनुमति दी–अभियुक्तगण की अनुपस्थिति में परिवादी द्वारा गवाह की प्रस्तुति में कोई विधिक अवरोध नहीं है–जब विधि परिवादी को गवाहों को प्रस्तुत करने की अनुमति देती है जब अभियुक्त की व्यक्तिगत उपस्थिति को अभिमुक्त किया जाता है, पुनरीक्षण न्यायालय के लिए केवल इस आधार पर कि अभियुक्त याचीगण का प्रतिनिधित्व किया जा रहा था, उन्मोचन आदेश अपास्त करना विधिपूर्ण नहीं है–आक्षेपित आदेश अपास्त–याचिका अनुज्ञात। (पैराएँ 5 से 8)

अधिवक्तागण.–Mr. Mahesh Tewari, For the Petitioner; APP, For the State; Mr. Kalyan Banerjee, For the O.P. No. 2.

आदेश

यह पुनरीक्षण दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 69 वर्ष 2011 में सत्र न्यायाधीश, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 14.6.2011 के आदेश के अभिखंडन के लिए दाखिल की गयी है जिसके द्वारा उन्होंने सी॰ पी॰ केस सं॰ 1003 वर्ष 2009 में विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 18.4.2011 के आदेश को अपास्त कर दिया था।

2. यह प्रतीत होता है कि परिवादी–विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने याचीगण के विरुद्ध यह अभिकथन करते हुए परिवाद याचिका दाखिल किया कि उन्होंने भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 498A के अधीन अपराध किया है। आगे यह प्रतीत होता है कि संज्ञान लिए जाने के बाद याचीगण ने अवर न्यायालय में आत्मसमर्पण किया और जमानत प्राप्त किया। तत्पश्चात्, दिनांक 5.10.2010, 10.12.2010, 27.1.2011, 17.2.2011 और 16.3.2011 कें आदेशों के तहत परिवादी को आरोप का साक्ष्य प्रस्तुत करने का आदेश दिया गया था किंतु उक्त निर्देशों के बावजूद परिवादी ने आरोप का कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया था। दिनांक 16.3.2011 को आदेश दर्शाता है कि दिनांक 5.4.2011 को साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए परिवादी को आखिरी मौका दिया गया था। प्रतीत होता है कि दिनांक 5.4.2011 को परिवादी द्वारा गवाह प्रस्तुत नहीं किया गया था, अत: विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी ने आरोप के लिए परिवादी का साक्ष्य बन्द कर दिया और आरोप के बिंदु पर मामले को सुनवाई के लिए दिनांक 18.4.2011 नियत किया। तत्पश्चात, दिनांक 18.4.2011 को याचीगण को उन्मोचित कर दिया गया था क्योंकि आरोप पर परिवादी द्वारा साक्ष्य नहीं दिया गया था। दिनांक 18.4.2011 के पूर्वोक्त आदेश को सत्र न्यायाधीश, धनबाद के न्यायालय में दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 69 वर्ष 2011 दाखिल करके चुनौती दी गयी थी। उक्त दांडिक पुनरीक्षण दिनांक 14.6.2011 के आदेश के तहत अनुज्ञात किया गया था जिसे इस मामले में आक्षेपित किया गया है।

3. याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह निवेदन किया गया है कि विद्वान सत्र न्यायाधीश ने दांडिक पुनरीक्षण केवल इस आधार पर अनुज्ञात किया कि दिनांक 5.10.2010 से दिनांक 16.3.2011 तक याचीगण में से कुछ दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 317 के अधीन आवेदन दाखिल करके प्रतिनिधित्व पर थे। निवेदन किया गया है कि साक्ष्य के परीक्षण के लिए समस्त अभियुक्तगण की उपस्थित आवश्यक नहीं है यदि उनको व्यक्तिगत उपस्थिति से न्यायालय द्वारा अभिमुक्त कर दिया गया है। इस प्रकार, याचीगण में से कुछ की अनुपस्थिति गवाह प्रस्तुत करने से परिवादी को वर्जित नहीं करती है जैसा न्यायालय द्वारा निर्देश दिया गया है। तद्नुसार, निवेदन किया गया है कि विद्वान सत्र न्यायाधीश का निष्कर्ष विधि के विरुद्ध है।

4. विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री कल्याण बनर्जी निवेदन करते हैं कि दिनांक 6.9.2010 के आदेश के मुताबिक आरोप तक भविष्य में नियत प्रत्येक तिथि पर याचीगण को उपस्थित होने की आवश्यकता थी। उक्त परिस्थिति के अधीन, आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता नहीं है।

5. निवेदनों को सुनने पर, मैंने मामले के अभिलेख का परिशीलन किया है। आक्षेपित आदेश के परिशीलन पर, मैं पाता हूँ कि विद्वान अवर न्यायालय ने पुनरीक्षण केवल इस आधार पर अनुज्ञात किया कि अभियुक्तगण में से कुछ ने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 317 के अधीन आवेदन दाखिल करके जमानत प्रदान किए जाने के बाद अनुपस्थिति बने रहे। विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा कथन किया गया है कि अवर न्यायालय ने अभियुक्तगण के विरुद्ध प्रपीड़क कार्रवाई करने के बजाए उनको आक्षेपित आदेश द्वारा उन्मोचित कर दिया जो उनके अनुसार अनुचित है। विचारण न्यायालय के ऑर्डरशीट की प्रमाणित प्रति (परिशिष्ट 4) के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि परिवादी ने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 317 के अधीन अभियुक्तगण द्वारा दाखिल आवेदनों का विरोध नहीं किया था और इन्हें किसी विरोध के बिना विभिन्न तिथियों पर अनुज्ञात किया गया था। ऑर्डरशीट से आगे यह प्रतीत होता है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने अनेक अवसरों पर आरोप के पहले गवाहों को प्रस्तुत करने का निर्देश परिवादी को दिया था और परिवादी ने गवाह प्रस्तुत नहीं किया था, उसको साक्ष्य प्रस्तुत करने का अंतिम अवसर दिया गया था, तत्पश्चात दिनांक 5.4.2011 को अभियोजन साक्ष्य बंद कर दिया गया था।

6. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 273 के मुताबिक अभियुक्त की उपस्थिति में साक्ष्य लेने की आवश्यकता होती है जबतक उसे व्यक्तिगत उपस्थिति से अभिमुक्त नहीं कर दिया जाता है। जैसा यहाँ ऊपर कथन किया गया है, दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 317 के अधीन आवेदन अनुज्ञात करके विद्वान विचारण न्यायालय ने अभियुक्तगण को व्यक्तिगत उपस्थिति से अभिमुक्त कर दिया और अपने अधिवक्ता के

माध्यम से प्रतिनिधित्व किए जाने के लिए अनुमति दिया। इस प्रकार, अभियुक्तगण की अनुपस्थिति में परिवादी द्वारा गवाह की प्रस्तुति में कोई विधिक अवरोध नहीं है।

7. यह प्रतीत होता है कि न्यायालय द्वारा निर्देश दिए जाने के बावजूद परिवादी ने छह माह तक गवाहों को प्रस्तुत नहीं किया था और इस कारण दिनांक 18.4.2011 के आदेश के तहत याचीगण को उन्मोचित कर दिया गया था। विद्वान सत्र न्यायाधीश का निष्कर्ष कि विद्वान विचारण न्यायालय ने रुटीन तरीके से दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 317 के अधीन आवेदन अनुज्ञात किया और मामला बंद कर दिया जब परिवादी ने कोई कदम नहीं उठाया था, समुचित प्रतीत नहीं होता है। मेरी दृष्टि में, जब परिवादी ने विचारण न्यायालय में दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 317 के अधीन याची द्वारा दाखिल आवेदन का विरोध नहीं किया था, इस संबंध में पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष शिकायत करने की छूट परिवादी को नहीं थी। इसके अतिरिक्त, जब विधि परिवादी को गवाह प्रस्तुत करने की अनुमति देती है तथा जब अभियुक्तगण को व्यक्तिगत उपस्थिति से अभिमुक्त कर दिया जाता है, केवल इस आधार पर कि अभियुक्त याचीगण प्रतिनिधित्व पर थे, उन्मोचन के आदेश को अपास्त करना पुनरीक्षण न्यायालय के लिए विधिपूर्ण नहीं है।

8. ऊपर की गयी चर्चाओं की दृष्टि में, मैं इस पुनरीक्षण को अनुज्ञात करता हूँ और दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 69 वर्ष 2011 में विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 14.6.2011 के आदेश को अपास्त करता हूँ।

---

ekuuh; Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efr

मो॰ हसमत अली उर्फ मो॰ हसमत एवं एक अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

W. P. (Cr.) No. 181 of 2010. Decided on 13th February, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 436—अग्नि द्वारा रिष्टि–समन का आदेश एवं गैर-जमानती गिरफ्तारी वारंट जारी–विवेक का इस्तेमाल किए बिना दांडिक पुनरीक्षण में सत्र न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्देश के आधार मात्र पर दंडाधिकारी द्वारा आक्षेपित आदेश पारित किया गया और उन्होंने एस॰ ए॰ पर दर्ज परिवादी के बयान और जाँच के दौरान दिए गए साक्ष्य पर चर्चा नहीं किया है–अतिरिक्त साक्ष्य देने के लिए परिवादी को अवसर नहीं दिया गया–आक्षेपित आदेश अपास्त। (पैराएँ 2 से 4)

अधिवक्तागण.–Mr. Gautam Kumar, For the Petitioners; JC to SC III, For the Respondents.

आदेश

यह दांडिक रिट याचिका दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 50 वर्ष 2009 में विद्वान सत्र न्यायाधीश, प्रथम, राजमहल द्वारा पारित दिनांक 29.8.2009 के आदेश और पी॰ सी॰ आर॰ केस सं॰ 650 वर्ष 2008 के संबंध में विद्वान दंडाधिकारी द्वारा पारित दिनांक 12.10.2009 के आदेश के अभिखंडन के लिए दोनों आदेशों को अपास्त करने की प्रार्थना के साथ दाखिल किया गया है।

2. निवेदन किया गया है कि विद्वान दंडाधिकारी ने जाँच समाप्त करने के बाद साक्ष्य को सत्य नहीं पाया था और दिनांक 13.5.2009 के आदेश के तहत परिवाद को खारिज कर दिया जिसके बाद परिवादी ने दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 50 वर्ष 2009 दाखिल किया जिसे परिवादी/प्रत्यर्थी सं॰ 2 के पक्ष में अनुज्ञात किया गया था। विद्वान दंडाधिकारी ने आगे जाँच किए बिना अथवा परिवादी अथवा उसके गवाहों का परीक्षण किए बिना याचीगण को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 436 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए विचारण का सामना करने का निर्देश देते हुए दिनांक 12.10.2009 का पूर्वोक्त आदेश पारित किया और गिरफ्तारी का

गैर–जमानती वारंट जारी किया। आक्षेपित आदेश अवैध और मनमाने हैं और इसलिए अपास्त किए जाने के दायी है।

3. राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 50 वर्ष 2009 में दिनांक 29.8.2009 का आदेश पारित करते हुए विद्वान दंडाधिकारी ने अपना मत दिया है कि जाँच के दौरान परिवादी द्वारा दिए गए साक्ष्य और एस॰ ए॰ पर दर्ज परिवादी के बयान प्रथम दृष्टया, भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 436 के अधीन अपराध गठित करते हैं और इसलिए परिवादी और गवाहों के बयान के पुनर्मूल्यांकन के लिए और समुचित आदेश पारित करने के लिए मामला विद्वान दंडाधिकारी के न्यायालय को वापस भेज दिया गया था।

4. मैंने आक्षेपित आदेशों का परिशीलन किया है। मैं नहीं पाता हूँ कि दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 50 वर्ष 2009 में विद्वान दंडाधिकारी द्वारा पारित दिनांक 29.8.2009 का आदेश समुचित और वैध नहीं है क्योंकि विद्वान दंडाधिकारी ने दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 50 वर्ष 2009 में विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्देश के आधार मात्र पर आक्षेपित आदेश पारित किया है। विद्वान दंडाधिकारी ने एस॰ ए॰ पर दर्ज परिवादी के बयान और जाँच के दौरान दिए गए साक्ष्य पर चर्चा नहीं किया है। अतिरिक्त साक्ष्य देने के लिए परिवादी को, यदि वह इच्छुक था, अवसर नहीं दिया गया था और इसलिए मैं पी॰ सी॰ आर॰ केस सं॰ 650 वर्ष 2008 में पारित दिनांक 12.10.2009 के आक्षेपित आदेश को यह निर्देश देते हुए अपास्त करने का इच्छुक हूँ कि विद्वान दंडाधिकारी मामले में पुनः जाँच करेंगे और एस॰ ए॰ पर दर्ज परिवादी के बयान और जाँच के दौरान दिए गए साक्ष्य के परिशीलन के बाद समुचित आदेश पारित करेंगे।

उक्त संप्रेक्षण और निर्देश के साथ यह रिट याचिका निपटायी जाती है।

---

ekuuh;k iue JhokLro] U;k;efr

लखन लाल साहू उर्फ लखन साहू एवं एक अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (Civil) No. 5819 of 2009. Decided on 28th February, 2012.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन आवेदन के मामले में।

छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम, 1908—धाराएँ 71A एवं 72—भूमि का पुनर्स्थापन–अभ्यर्पण विलेख वर्ष 1949 और 1951 से संबंधित है जबकि प्रत्यावर्तन आवेदन वर्ष 2005 में दाखिल किए गए थे–56 वर्षों का बीतना उपेक्षित नहीं किया जा सकता था–प्रत्यावर्तन की शक्ति का प्रयोग विलंब पर विचार किए बिना नहीं किया जा सकता है–परिसीमा के प्रश्न, विधवा के अधिकार और मामले के अन्य समस्त पहलूओं सहित समस्त प्रश्नों पर अपने निष्कर्षों को दर्ज करने के लिए मामला उप-आयुक्त को वापस भेजा गया।

(पैराएँ 5, 13, 14, 16 से 19)

निर्णयज विधि.–(2000)5 SCC 141; (2004)8 SCC 340—Relied on; **1985 (1) BLJ 557;** 2006 (4) JLJR 118—Referred.

अधिवक्तागण.–M/s. P. K. Prasad, Ayush Aditya, For the Petitioners; M/s Shamim Akhtar, A. K. Mehta, B. K. Prasad, For the Respondents No. 1 to 3; M/s Niranjan Kumar, J.J. Sanga. For the Respondents No. 4 & 5.

पूनम श्रीवास्तव, न्यायमूर्ति.–वर्तमान रिट याचिका छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम, 1908 (इसमें इसके बाद ''अधिनियम'' के रूप में निर्दिष्ट) की धारा 71A के अधीन दाखिल प्रत्यावर्तन आवेदन अनुज्ञात करते हैं और एस॰ ए॰ आर॰ अपील सं॰ 110R15 वर्ष 2008-09 में उप–आयुक्त, राँची द्वारा पारित दिनांक 29 जुलाई, 2009 के अपीलीय आदेश (परिशिष्ट–3) को अभिपुष्ट करते हुए एस॰ ए॰ आर॰ पुनरीक्षण सं॰ 75 वर्ष 2009 में आयुक्त, दक्षिण छोटानागपुर डिविजन राँची (प्रत्यर्थी सं॰ 2) द्वारा पारित दिनांक 30 नवम्बर, 2009 के आदेश (परिशिष्ट–5) को चुनौती देते हुए दाखिल की गयी है।

2. विवाद को उद्भूत करने वाले तथ्य ये हैं कि प्रश्नगत भूमि चूटिया गाँव में खाता सं॰ 103 के अधीन भूखंड सं॰ 1161, 1162 और 1163 से गठित है जिसे आरंभ में बिरसा मुंडा और झिरगा मुंडा, दोनों लगवा मुंडा के पुत्र, के नाम में पुनरीक्षण सर्वे अधिकार अभिलेख में दर्ज किया गया था। इन मूल अभिधारियों ने भूतपूर्व जमीन्दार महाराज उदय प्रताप नाथ सहदेव के पक्ष में तीन अभ्यर्पण विलेख द्वारा प्रश्नगत भूमि को अभ्यर्पित कर दिया: प्रथम विलेख सं॰ 2644 दिनांक 23 मई, 1949; द्वितीय विलेख सं॰ 2329 दिनांक 10 मई, 1949 और तृतीय विलेख सं॰ 541 दिनांक 24 जनवरी, 1951। पूर्वोक्त विलेखों के निष्पादन के परिणामस्वरुप भूस्वामी काबिज हुआ। हित पूर्वाधिकारी अर्थात् हरकू साहू ने 31 डिसमिल माप वाली भू–खंड सं॰ 1163 और 77 डिसमिल माप वाली भूखंड सं॰ 1162 के संबंध में प्रश्नगत भूमि को व्यवस्थापित करते हुए विलेख सं॰ 3862 दिनांक 9 जुलाई, 1949 और विलेख सं॰ 4347 दिनांक 15 जून, 1951 वाले दो रजिस्टर्ड कबूलियत को निष्पादित किया और दिनांक 30 अगस्त, 1949 के रजिस्टर्ड व्यवस्थापन विलेख के फलस्वरूप भूमि व्यवस्थापित की गयी थी। भूखंड सं॰ 1161 में 49 डिसमिल और एक अन्य भूखंड सं॰ 1162 के 59 डिसमिल को व्यवस्थापित करते हुए दिनांक 18 दिसंबर, 1951 को दूसरा रजिस्टर्ड विलेख निष्पादित किया गया था। इस प्रकार, याची का हित पूर्वाधिकारी हरकू साहू काबिज हुआ और बिहार भूमि सुधार अधिनियम, 1950 के प्रावधानों के अधीन जमींदारी हित निहित किए जाने पर रैयत के रूप में बना रहा।

3. विद्वान अधिवक्ता का निवेदन यह है कि तत्कालीन बिहार राज्य द्वारा हरकू साहू को रैयत के रूप में मान्यता दी गयी थी और निहित किए जाने के बाद बिहार राज्य द्वारा किराया रसीदों को जारी किया गया था। याची सं॰ 1 हरकू साहू का पुत्र है और यहाँ पहले उल्लिखित व्यवस्थापन विलेखों के आधार पर अपने रैयती अधिकारों का दावा किया है।

4. प्रत्यर्थी सं॰ 4 नंदिया देवी बिरसा मुंडा की बहु है और प्रत्यर्थी सं॰ 5 मंटू मुंडा बिरसा मुंडा का पुत्र है। उन दोनों ने अपनी निजी हैसियत में अपने अधिकारों का दावा किया और क्रमश: एस॰ ए॰ आर॰ केस सं॰ 975 वर्ष 2005-06 और एस॰ ए॰ आर॰ केस सं॰ 694 वर्ष 2005-06 के तहत दो प्रत्यावर्तन आवेदनों को संस्थापित किया। नोटिस दिए जाने के बाद याचीगण ने अपना कारण बताओ दाखिल किया और प्रतिवाद कर रहे प्रत्यर्थीगण के दावा को विवादित किया।

5. प्रथम आपत्ति यह है कि अभ्यर्पण विलेख क्रमश: वर्ष 1949 और 1951 से संबंधित हैं जबकि प्रत्यावर्तन आवेदन वर्ष 2005 में दाखिल किए गए हैं और, इसलिए, परिसीमा द्वारा निराशाजनक रूप से वर्जित हैं।

द्वितीय आपत्ति यह है कि किराया रसीद तत्कालीन बिहार राज्य द्वारा निहित किए जाने के बाद भूतपूर्व भू–स्वामी द्वारा जारी किए गए थे और कि बिरसा मुंडा के दो पुत्र अर्थात् डोमका मुंडा और मंटू मुंडा थे। प्रत्यर्थी सं॰ 4 नंदिया देवी डोमका मुंडा, जिसकी मृत्यु वर्ष 2002 में हो गयी, की विधवा है।

6. विद्वान अधिवक्ता कथन करते हैं कि वर्तमान कार्यवाहियों में दावा किए गए बहु के अधिकार को प्रत्यर्थीगण द्वारा अनुमति नहीं दी जा सकती थी और, इसलिए, आक्षेपित आदेश अभिखंडित किए जाने का दायी है।

7. विशेष अधिकारी, अनुसूचित क्षेत्र विनियमन, राँची ने **जयमंगल ओराँव बनाम मीरा नायक एवं अन्य, (2000)5 Supreme Court Cases 141;** और **सीतू साहू एवं अन्य बनाम झारखंड**

राज्य एवं अन्य, (2004)8 Supreme Court Cases 340 मामलों में सर्वोच्च न्यायालय के दो निर्णयों पर विश्वास किया, प्रत्यर्थी का दावा अस्वीकार किया, अभिनिर्धारित किया कि अंतरण की तिथि 1949 थी; वर्ष 1980 में 30 वर्षों का अवसान हो गया था जबकि प्रत्यावर्तन आवेदन वर्ष 2005 में दाखिल किया गया है। अत:, दिनांक 5 सितंबर, 2008 के आदेश (रिट याचिका का परिशिष्ट–2) के तहत दोनों प्रत्यावर्तन आवेदनों को खारिज कर दिया गया था। केवल प्रत्यर्थी सं॰ 4 नंदिया देवी ने एस॰ ए॰ आर॰ अपील सं॰ 110R50 वर्ष 2008-09 दाखिल किया किंतु प्रत्यर्थी सं॰ 5 ने कोई अपील दाखिल नहीं किया था।

8. विद्वान अधिवक्ता का प्रतिवाद यह है कि वस्तुत: मुंडारी रुढिजन्य विधि के अनुसार केवल प्रत्यर्थी सं॰ 5 अपना दावा कर सकता था और दिनांक 5.9.2008 के आदेश को चुनौती दे सकता था और न कि प्रत्यर्थी सं॰ 4 जो स्त्री वंशज होने के नाते विधिक उत्तराधिकारी की कोटि में नहीं आती थी। किंतु, उपायुक्त, राँची ने अपील अनुज्ञात किया और दिनांक 5 सितंबर, 2008 का विशेष अधिकारी, अनुसूचित क्षेत्र विनियमन, राँची द्वारा पारित आदेश अपास्त कर दिया। अपील अनुज्ञात करते हुए, अपीलीय प्राधिकारी का दृष्टिकोण था कि भूमि अभ्यर्पण अधिनियम के उल्लंघन में था किंतु परिसीमा के प्रश्न पर उपायुक्त, राँची द्वारा कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया था। अपीलीय प्राधिकारी ने यह भी अभिनिर्धारित करते हुए कि वर्ष 1969 के पहले मुख्य संरचना अस्तित्व में नहीं आयी थी, मुआवजा के प्रश्न पर निष्कर्ष दर्ज किया। याचीगण ने आयुक्त, दक्षिण छोटानागपुर डिविजन, राँची (प्रत्यर्थी सं॰ 2) के समक्ष एस॰ ए॰ आर॰ पुनरीक्षण सं॰ 79 वर्ष 2009 दाखिल किया जिसे ग्रहण के बिंदु पर ही खारिज कर दिया गया था।

9. विद्वान राज्य के अधिवक्ता ने अपीलीय और पुनरीक्षण न्यायालयों के निर्णयों का समर्थन किया है और उनका निवेदन है कि भूमि का अभ्यर्पण अधिनियम की धारा 72 के अधीन उपायुक्त की अनुमति के बिना किया गया था और इसलिए निर्णयों में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

10. याचीगण की ओर से उपस्थित होने वाले श्री आयुष आदित्य की सहायता से विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री पी॰ के॰ प्रसाद ने जोरदार निवेदन किया है कि अपीलीय और पुनरीक्षण प्राधिकारी **जयमंगल ओराँव (ऊपर)** और **सीटू साहू (ऊपर)** में सर्वोच्च न्यायालय के दो निर्णयों को विचार में लेने में विफल रहे हैं। इन दोनों निर्णयों को पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा न तो ध्यान में लिया गया था और न ही इन पर विचार भी किया गया था।

11. दिए गए तर्कों और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और याचीगण तथा राज्य की ओर से उठाए गए विधिक प्रश्नों पर सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद मैं पाती हूँ कि विवाद मुख्यत: इस आधार के इर्द–गिर्द घूमता है कि विशेष अधिकारी, अनुसूचित क्षेत्र विनियमन, राँची ने विलंब के कारण प्रत्यर्थीगण का दावा अस्वीकार कर दिया और उनका मत था कि प्रत्यावर्तन परिसीमा द्वारा वर्जित था और **जयमंगल ओराँव** और **सीटू साहू (ऊपर)** में सर्वोच्च न्यायालय के दो निर्णयों पर विश्वास किया गया था। अपीलीय प्राधिकारी ने और पुनरीक्षण प्राधिकारी ने भी इस पहलू को विचार में नहीं लिया था कि प्रत्यावर्तन आवेदन वर्ष 2005 में दाखिल किया गया था जब सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित परिसीमा की अवधि 30 वर्ष है। वर्ष 1980 में इस अवधि का अवसान हो गया। अपीलीय न्यायालय यह विचार करने में विफल रहा कि प्रत्यावर्तन आवेदन केवल 56 वर्ष बीत जाने के बाद ही दाखिल किया गया था। दोनों न्यायालयों ने विनिर्दिष्टत: स्वीकार किया है कि उल्लंघन वर्ष 1949 में हुआ था। अपीलीय न्यायालय ने 1969 के पश्चात प्रश्नगत भूमि पर संरचना/निर्माण को लेते हुए मुआवजा के संबंध में निष्कर्ष भी दर्ज किया। पुनरीक्षण न्यायालय ने गुणागुण पर निष्कर्ष के बिना स्वयं ग्रहण के चरण पर पुनरीक्षण खारिज कर दिया है।

12. विद्वान अधिवक्ता ने यह प्रदर्शित करने के लिए ऑर्डरशीट प्रस्तुत किया है कि कतिपय निष्कर्षों को इस प्रभाव की उपधारणाओं पर दर्ज किया गया है कि प्रत्यावर्तन आवेदन अपने प्रतिवाद का समर्थन करने के लिए किसी सार के बिना निश्चयात्मक सुलह प्रतीत होता है। इस प्रकार, दोनों आदेशों को चुनौती देने वाला विद्वान अधिवक्ता का तर्क प्रथमत: परिसीमा के आधार पर है और द्वितीयत: इस आधार पर कि प्रत्यर्थी सं॰ 5 द्वारा कोई अपील दाखिल नहीं की गयी थी और केवल प्रत्यर्थी सं॰ 4 ने विशेष अधिकारी, अनुसूचित क्षेत्र विनियमन, राँची के आदेश को चुनौती दिया जो न तो विधिक उत्तराधिकारी है और न ही अधिकार अथवा हक का दावा कर सकती है।

13. प्रत्यर्थी सं॰ 5 के अधिवक्ता का तर्क यह है कि विधि ने परिसीमा की अवधि नियत नहीं किया है और इसलिए कोई अवैधता विद्यमान नहीं है चूँकि प्रावधान इन शब्दों ''.....यदि किसी समय .....'' के साथ शुरू होता है। **जय मंगल ओराँव (ऊपर)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इन पंक्तियों की व्याख्या की गयी थी। परिस्थितियों में प्रत्यर्थी द्वारा दिया गया तर्क कि कोई समय सीमा नहीं है, स्वीकार्य नहीं है। मेरे मत में 56 वर्ष के अवसान की उपेक्षा नहीं की जा सकती है।

14. सर्वोच्च न्यायालय ने दृष्टिकोण अपनाया है कि अधिनियम के प्रावधान वर्ष 1942 में रजिस्टर्ड विलेख द्वारा प्रभाव में लाये गए अभ्यर्पण के मामले में आकृष्ट नहीं होंगे। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की दृष्टि में प्रत्यावर्तन की शक्तियों द्वारा पहुँचे गए निष्कर्ष का प्रयोग विलंब पर विचार किए बिना नहीं किया जा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष उक्त मामले में 40 वर्षों की अवधि को काफी लंबी अवधि माना गया था और इस प्रकार उच्च न्यायालय का निर्णय, जहाँ 30 वर्षों की अवधि के परे प्रत्यावर्तन का दावा अस्वीकार कर दिया गया था, मान्य ठहराया गया था। इस प्रकार, सर्वोच्च न्यायालय ने 40 वर्ष बीतने के बाद प्रत्यावर्तन से इनकार कर दिया था जबकि वर्तमान मामले में अभ्यर्पण रजिस्टर्ड विलेख के माध्यम से किया गया था और 56 वर्ष बीतने के बाद प्रत्यावर्तन का दावा किया गया है। अत:, मेरा दृष्टिकोण है कि अपीलीय न्यायालय ने और पुनरीक्षण न्यायालय ने भी इन दोनों निर्णयों को पूरी तरह अनदेखा कर दिया जबकि पहला आदेश विनिर्दिष्टत: दोनों निर्णयों अर्थात् **जयमंगल ओराँव** और **सीटू साहू (ऊपर)** को विचार में लेते हुए पारित किया गया था। यह प्रश्न कि प्रत्यर्थी सं॰ 5 जो बिरसा मुंडा का वास्तविक विधिक उत्तराधिकारी था, द्वारा अपील दाखिल नहीं किया गया था, को भी दोनों अवर न्यायालयों द्वारा विचार में नहीं लिया गया था और निर्णय पूर्णत: अंतर्ग्रस्त विधिक प्रश्न पर कोई विचार किए बिना हैं।

15. प्रत्यर्थी सं॰ 4 और 5 की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने **बिपटा साहू एवं अन्य बनाम आयुक्त, दक्षिण छोटानागपुर डिविजन, राँची एवं अन्य,** 2006 (4) JLJR 118; और **श्रीमती बीना राय घोष बनाम आयुक्त, दक्षिण छोटानागपुर डिविजन एवं अन्य, 1985 (1) BLJ 557,** मामलों पर विश्वास किया।

16. याचीगण की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री पी॰ के॰ प्रसाद ने प्रत्यर्थीगण की ओर से किए गए तर्कों को विवादित करते हुए मूल तर्क को दोहराया है और इस तर्क पर जोर दिया है कि विधवाओं को कोई अधिकार नहीं है और ओराँव रुढ़िजन्य विधि विधवा को प्रत्यावर्तन का दावा करने की हकदार नहीं बनाती है विशेषत: जब बिरसा मुंडा के विधिक उत्तराधिकारी अर्थात् मंटू मुंडा द्वारा कोई दावा नहीं किया गया है। मैं विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों से सहमत हूँ कि अपीलीय न्यायालय और पुनरीक्षण न्यायालय विशेषत: सर्वोच्च न्यायालय के दो निर्णयों के आलोक में परिसीमा के प्रश्न को विचार

में लेने में विफल रहे हैं और कि वस्तुतः पुनरीक्षण न्यायालय ने समुचित सुनवाई का अवसर दिए बिना स्वयं ग्रहण के चरण पर पुनरीक्षण खारिज कर दिया। वस्तुतः पुनरीक्षण आदेश अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश को नए सिरे से सजाता मात्र है।

17. इन परिस्थितियों में, दोनों अवर न्यायालय ने विधिक प्रश्नों पर विनिर्दिष्ट निष्कर्ष दर्ज करने में विफल रहे और विशेष अधिकारी, अनुसूचित क्षेत्र विनियमन, राँची के आदेश को किसी कारण के बिना अपास्त कर दिया और इसलिए वे यहाँ ऊपर उल्लिखित महत्वपूर्ण पहलूओं पर पुनर्विचार करने के दायी हैं। परिसीमा के प्रश्न सहित समस्त प्रश्नों अर्थात् विधवा का अधिकार और परिसीमा, आदि जैसे मामले के अन्य पहलूओं पर अपना निष्कर्ष दर्ज करने के लिए मामला अपीलीय चरण पर उपायुक्त राँची के पास वापस भेजा जाता है।

18. ऊपर चर्चा किए गए कारणों से, मेरा मत है कि अपीलीय न्यायालय अपने निर्णय पर पुनर्विचार करने और याचीगण तथा प्रत्यर्थी सं॰ 4 और 5 को सुनवाई का अवसर देने के बाद मामले को नए सिरे से विनिश्चित करने का दायी है। अपीलीय न्यायालय मामले को नहीं टालेगा और यथासंभव शीघ्र अपील विनिश्चित करेगा। वर्तमान रिट याचिका में दोनों आक्षेपित आदेशों (परिशिष्टि-3 और 5) को अभिखंडित किया जाता है।

19. रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है और यहाँ पहले उल्लिखित बिंदुओं पर अपना निष्कर्ष दर्ज करने के लिए मामला अपीलीय प्राधिकारी, उपायुक्त राँची को वापस भेजा जाता है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k ,o vij'k dekj flg] U;k;efr

अनिमेष त्रिवेदी (139, 133 में)

किरण बगाई (184 में)

cuke

किरण बगाई (139, 133 में)

अनिमेष त्रिवेदी (184 में)

F.A. Nos. 139 of 2010 with 133, 184 of 2008. Decided on 27th March, 2012.

हिंदू विवाह अधिनियम, 1955—धारा 13 (1A)(i)—तलाक–पति द्वारा क्रूरता एवं अभित्यजन–अपीलार्थी पति ने अनेक अवसरों पर प्रत्यर्थी को तमाचा मारा और उसे गंदी गालियाँ दी–प्रत्यर्थी शिक्षित पिता और परिवार के सदस्यों वाली शिक्षित महिला है–प्रत्यर्थी ने अपने पति के विरुद्ध क्रूरता का मामला बनाया है–साहचर्य का पुनरारंभ नहीं है–अपील खारिज। (पैराएँ 12 से 15)

अधिवक्तागण.–Mr. Jay Shankar Pandey (in 139), Mr. A.K. Mehta (in 133), Mr. Dilip Jerth (in 184), For the Appellant; M/s A. Kumar, Vineet Vashistha (in 139), M/s Vivek Kr. Singh, Rajesh Kumar (in 133), Mr. A.K. Mehta (in 184), For the Respondents.

अपरेश कुमार सिंह, न्यायमूर्ति.–ये अपीलें प्रतिवाद कर रहे एक ही पक्षों के बीच वैवाहिक वादों से उद्‌भूत हो रही हैं, इसलिए इन अपीलों को इस एक ही आदेश द्वारा निपटाया जा रहा है।

2. प्रथम अपील सं॰ 139 वर्ष 2010 अपीलार्थी पति द्वारा याची पत्नी द्वारा दाखिल वैवाहिक हक वाद सं॰ 178 वर्ष 2009 में श्री पंकज श्रीवास्तव, प्रधान न्यायाधीश, कटुंब न्यायालय, राँची द्वारा पारित दिनांक 20 मार्च, 2010 के निर्णय (डिक्री दिनांक 30 मार्च, 2010 को मुहरबंद और हस्ताक्षरित) के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा और जिसके अधीन उक्त न्यायालय ने पति के विरुद्ध हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13(1A) (i) के अधीन तलाक का डिक्री पारित किया।

3. पहले, प्रत्यर्थी पत्नी ने कुटुंब न्यायालय के समक्ष क्रूरता और अभित्यजन के आधार पर हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(ia) और (ib) के अधीन तलाक की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन के लिए वैवाहिक हक वाद सं॰ 53 वर्ष 2006 दाखिल किया था। वैवाहिक हकवाद श्री मुश्ताक अहमद, प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, राँची द्वारा पारित दिनांक 19.5.2008 के निर्णय (डिक्री दिनांक 29.5.2008 को मुहरबंद और हस्ताक्षरित) के तहत निपटाया गया था जिसके द्वारा वाद अंशत: अनुज्ञात किया गया था और वर्तमान याची पत्नी/प्रत्यर्थी के पक्ष में न्यायिक पृथक्करण के लिए डिक्री प्रदान किया गया था। उक्त न्यायालय ने यह भी आदेश दिया था कि पति/वर्तमान अपीलार्थी को माह के अंतिम रविवार पर अपने पुत्र से मुलाकात करने का अधिकार होगा।

4. दो अन्य अपीलों को वैवाहिक हक वाद सं॰ 53 वर्ष 2006 में दिनांक 19.5.2008 के निर्णय (डिक्री दिनांक 29.5.2008 को मुहरबंद और हस्ताक्षरित) के विरुद्ध दाखिल किया गया है। अपीलों में से एक एफ॰ ए॰ सं॰ 133 वर्ष 2008 अपीलार्थी द्वारा न्यायिक पृथक्करण के आदेश को चुनौती देते हुए दाखिल की गयी है और दूसरी अपील एफ॰ ए॰ सं॰ 184 वर्ष 2008 याची पत्नी द्वारा वैवाहिक हक वाद सं॰ 53 वर्ष 2006 में दिनांक 19.5.2008 के उसी निर्णय के विरुद्ध दाखिल की गयी है जो तलाक की डिक्री प्रदान करने से इनकार करने वाले और इसके बजाए हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 (1A) (i) के अधीन न्यायिक पृथक्करण की डिक्री प्रदान करने वाले निर्णय से व्यथित है। इस न्यायालय के समक्ष इन दोनों अपीलों अर्थात् एफ॰ ए॰ सं॰ 133 वर्ष 2008 और एफ॰ ए॰ सं॰ 184 वर्ष 2004 के लंबित रहने के दौरान प्रत्यर्थी पत्नी ने प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, राँची के न्यायालय के समक्ष हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 (1A) (i) के अधीन वैवाहिक हक वाद सं॰ 178 वर्ष 2009 दाखिल किया और अभिकथन किया कि वैवाहिक हक वाद सं॰ 53 वर्ष 2006 में क्रमश: दिनांक 19.5.2008 और दिनांक 29.5.2008 में निर्णय और डिक्री पारित किए जाने के बाद न्यायिक पृथक्करण के लिए डिक्री पारित किए जाने के बाद विगत एक वर्ष से अधिक के लिए पक्षों के बीच साहचर्य का पुनरारंभ नहीं हुआ है और इसलिए, दिनांक 18.2.2001 को पक्षों के बीच संपन्न विवाह विघटित किया जाय अथवा तलाक की डिक्री प्रदान की जाय। दिनांक 20 मार्च, 2010 के आक्षेपित निर्णय द्वारा विद्वान प्रमुख न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, राँची ने यह अभिनिर्धारित करते हुए कि वह हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 (1A) (i) के अधीन तलाक की डिक्री की हकदार है, प्रत्यर्थी पत्नी का वाद डिक्री किया।

5. वर्तमान अपीलार्थी पति ने हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13 (1A) (i) के अधीन तलाक की उक्त डिक्री के विरुद्ध वैवाहिक हक वाद सं॰ 178 वर्ष 2009 में पारित दिनांक 20 मार्च, 2010 के आक्षेपित निर्णय के विरुद्ध प्रथम अपील सं॰ 139 वर्ष 2010 दाखिल किया है।

6. अपीलार्थी पति का मामला यह है कि उसके विरुद्ध क्रूरता एवं अभित्यजन का अभिकथन नहीं किया गया था और उसने प्रत्यर्थी पत्नी के साथ सौहार्दपूर्ण वैवाहिक वातावरण बनाए रखने का समस्त प्रयास किया था। वह भारतीय सेना में नियोजित होने के कारण विभिन्न स्थानों पर पदस्थापित था और सुखी विवाहित जीवन का आनन्द लेने के लिए अपनी पत्नी और पुत्र को अपने साथ रखने का भरपुर प्रयास

किया था। अपीलार्थी ने आगे मानसिक और शारीरिक क्रूरता के अभिकथन से इनकार किया है और कथन किया है कि दावा सिद्ध करने के लिए कुछ भी नहीं है। प्रत्यर्थी पत्नी सैन्यकर्मियों की पत्नीयों के कल्याण संघ की सक्रिय सदस्या थी किंतु उसने समय के किसी बिंदु पर शारीरिक और/अथवा मानसिक क्रूरता का परिवाद अपीलार्थी के विरुद्ध नहीं किया था। अपीलार्थी आगे कथन करता है कि वह अपने पुत्र आर्यमान के जन्म के एक सप्ताह पहले दिनांक 14.12.2002 को हृदय आघात से पीड़ित हुआ था और उसे सैन्य अस्पताल, जम्मू में भर्ती किया गया था। अपीलार्थी ने इन अभिकथनों से भी इनकार किया कि प्रत्यर्थी को उसके दांपत्य गृह से निकाल दिया गया था। अपीलार्थी ने इन अभिकथनों से भी इनकार किया कि प्रत्यर्थी को उसके दांपत्य गृह से निकाल दिया गया था अथवा उसे पुत्र को भेजने के लिए मजबूर किया गया था अथवा इस तथ्य से भी कि उसने उसको गंभीर परिणामों की धमकी दी थी। अपीलार्थी ने कथन किया कि उसके सहित चार गवाहों का परीक्षण किया गया था और प्रदर्श A से प्रदर्श M श्रृंखला के रूप में चिन्हित दस्तावेजों को प्रदर्शित किया गया था जबकि प्रत्यर्थी-पत्नी की ओर से नौ गवाहों का परीक्षण किया गया था और प्रदर्शित दस्तावेजों को प्रदर्श 1 से प्रदर्श 3 श्रृंखला के रूप में चिन्हित किया गया था। किंतु, विद्वान न्यायालय ने प्रत्यर्थी पत्नी को मामले के अभिवचनों से परे साक्ष्य देने की अनुमति दी थी यद्यपि, क्रूरता का दावा सिद्ध करने के लिए किसी साक्ष्य को प्रस्तुत करने में प्रत्यर्थी पत्नी सक्षम नहीं हुई थी। दूसरी ओर, अपीलार्थी ने निवेदन किया है कि उसने यह सिद्ध करने के लिए तर्कपूर्ण गवाहों को प्रस्तुत किया कि अभित्यजन का अभिकथन बिल्कुल झूठा है क्योंकि उन दोनों ने दिनांक 8.2.2004 के परे भी सहवास किया था। इन परिस्थितियों में अपीलार्थी पति ने अभिकथित किया है कि विद्वान कुटुंब न्यायालय ने आरंभ में तलाक का डिक्री पारित नहीं किया था बल्कि न्यायिक पृथक्करण का डिक्री पारित किया था और अवकाश एवं अन्य छुट्टियों के दौरान पुत्र से मुलाकात करने अथवा उसे ले जाने के किसी अतिरिक्त अधिकार के बिना केवल माह के अंतिम रविवार को अपने पुत्र से मुलाकात करने की अनुमति दी थी। अपीलार्थी पति द्वारा दाखिल प्रथम अपील सं॰ 133 वर्ष 2008 के लंबित रहने के दौरान प्रत्यर्थी पत्नी ने वैवाहिक हक वाद सं॰ 178 वर्ष 2009 दाखिल किया है जिस पर विद्वान कुटुंब न्यायालय द्वारा तलाक का डिक्री प्रदान किया गया है यद्यपि, अपीलार्थी उपस्थित हुआ था और वाद को समयपूर्व और इस चरण पर अपोषणीय बताते हुए प्रतिवाद किया था। अपीलार्थी ने निवेदन किया कि वह प्रत्यर्थी पत्नी से न्यायिक पृथक्करण अथवा तलाक नहीं चाहता है और अपनी पत्नी के साथ सुखी विवाहित जीवन बिताना चाहता है। किंतु, विद्वान कुटुंब न्यायालय ने प्रत्यर्थी पत्नी के पक्ष में आक्षेपित निर्णय द्वारा तलाक का डिक्री पारित किया है।

7. दोनों पक्षों को सुनने के बाद और आक्षेपित निर्णय समेत मामले के तथ्यों का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने से, यह प्रतीत होता है कि दिनांक 18.2.2001 को नयी दिल्ली में हिंदू रीति-रिवाजों के अनुसार अपीलार्थी का विवाह प्रत्यर्थी पत्नी के साथ हुआ था। प्रत्यर्थी पत्नी ने क्रूरता एवं अभित्यजन के आधार पर तलाक की डिक्री के लिए अपने पति/वर्तमान अपीलार्थी के विरुद्ध दिनांक 24.3.2006 को हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13(1) (ia) और (ib) के अधीन प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, राँची के समक्ष वैवाहिक हकवाद सं॰ 53 वर्ष 2006 दाखिल किया। प्रत्यर्थी पत्नी ने अभिवचन किया कि उसके विवाह के आरंभ से ही उसे मानसिक और शारीरिक क्रूरता के अध्यधीन किया गया था। प्रत्यर्थी पत्नी द्वारा आगे अभिकथित किया गया था कि उसके विरुद्ध दहेज नहीं लाने का अभिकथन किया गया था और अपीलार्थी पति प्रत्येक छोटे बहाने पर उसके साथ दुर्व्यवहार करता था और उसने बार-बार उसके मस्तक और चेहरे पर प्रहार किया था और अभिकथित किया था कि उसे प्रत्यर्थी पत्नी के साथ विवाह करने का अफसोस था और वह उसका गर्भपात कराना चाहता था क्योंकि वह अपने संतान के लिए मूढ़ माता का इच्छुक नहीं था। उसके पति ने उसके पेट पर भी वार किया किंतु भाग्यवश कुछ नहीं हुआ। याची को वैवाहिक संबंध से संतान उत्पन्न हुआ था। उस पर पति द्वारा निरंतर व्यंग्य किया जाता

था, जिसने उसकी आवश्यक आवश्यकताओं पर खर्च करने से इनकार किया। अपीलार्थी पति अक्सर उसे अपनी पत्नी (sic घर ?) छोड़ने के लिए कहता था किंतु उसने घर नहीं छोड़ा बल्कि अपनी मर्यादा की रक्षा के लिए उसने समस्त अत्याचारों को सहा क्योंकि उसके माता–पिता वृद्ध थे और उसका पिता कैंसर के चौथे चरण का पीड़ित था। दिनांक 7.2.2004 को उस पर वार किया गया था जिसके परिणामस्वरुप उसका चश्मा टूट गया क्योंकि अपीलार्थी ने उसकी गर्दन पकड़ ली थी और उसे कपबोर्ड की ओर धकेल दिया था। इस बारे में जानकारी मिलने पर, प्रत्यर्थी पत्नी को उसके नवजात पुत्र के साथ उसके पिता द्वारा ले जाया गया था और तब से वह अपने माता–पिता के साथ दिल्ली में रह रही है। अपीलार्थी पति ने दिनांक 8.2.2004 से प्रत्यर्थी पत्नी और पुत्र के जीवनयापन के लिए एक पैसा भी नहीं दिया था। तत्पश्चात, प्रत्यर्थी पत्नी प्रेमसंस मारुति उद्योग प्राईवेट लिमिटेड, राँची में मानव संसाधन प्रबंधक के रूप में कार्यरत है। पूर्वोक्त तथ्यों और कारणों के आधार पर, प्रत्यर्थी पत्नी ने क्रूरता और अभित्यजन के आधार पर अपीलार्थी पति के साथ अपने विवाह का विघटन इप्सित करते हुए वैवाहिक हक वाद सं॰ 53 वर्ष 2006 दाखिल किया। प्रत्यर्थी/वर्तमान अपीलार्थी उपस्थित हुआ और याची/वर्तमान प्रत्यर्थी के साथ विवाह करने और पति–पत्नी के रूप में उसके साथ रहने और वैवाहिक संबंध से संतान के जन्म होने को स्वीकार करते हुए लिखित कथन दाखिल किया किंतु कुटुंब न्यायालय, राँची की अधिकारिता को चुनौती दिया। प्रत्यर्थी/वर्तमान अपीलार्थी ने क्रूरता अभित्यजन और प्रहार के अभिकथन से इनकार किया और निवेदन किया कि वह सदैव अपनी पत्नी और अपने पुत्र का समुचित ख्याल रखता है। पति ने विस्तृत लिखित कथन दाखिल करके अपनी पत्नी को मानसिक और शारीरिक क्रूरता कारित करने से स्पष्टतः इनकार किया।

8. तत्पश्चात, विद्वान कुटुंब न्यायालय ने विचारार्थ निम्नलिखित पाँच विवाद्यकों को विरचित किया:–

(i) D;k okn] t lk fojfpr fd;k x;k g] ik"k.kh; g

(ii) D;k ;kph d ikl okn d fy, okn grd g

(iii) D;k çR;Fkh }kjk ;kph dk ekufld vkj 'kkjhfjd Øjrk d vè;èkhu fd;k x;k g

(iv) D;k çR;Fkh u ;kph vkj mld vo;Ld i= dk vfHkR;tu dj fn;k g

(v) D;k ;kph nkok fd, x, vurk"kk dh gdnkj g

9. दोनों पक्षों के अभिवचन के आधार पर प्रत्यर्थी पत्नी ने स्वयं सहित नौ गवाहों का परीक्षण किया और प्रदर्श 1 से प्रदर्श 3 श्रृंखला के रूप में चिन्हित दस्तावेजों को प्रदर्शित किया और अपीलार्थी की ओर से स्वयं सहित चार गवाहों का परीक्षण किया गया था और प्रदर्श A से प्रदर्श M श्रृंखला के रूप में चिन्हित दस्तावेजों को प्रदर्शित किया गया।

10. तत्पश्चात, विद्वान कुटुंब न्यायालय उसके पति द्वारा मानसिक और शारीरिक क्रूरता के अभिकथन से और अपनी प्रत्यर्थी पत्नी और अवयस्क पुत्र के अभित्यजन के अभिकथन से भी संबंधित विवाद्यक को विनिश्चित करने के लिए अग्रसर हुआ। विद्वान कुटुंब न्यायालय ने विचार में लिया कि दिनांक 8.2.2004 को प्रत्यर्थी पत्नी को उसके दांपत्य गृह से बाहर निकाल दिया गया था और उसका पिता उसे दिल्ली ले गया और दिनांक 25.5.2004 को यह उपदर्शित करते हुए कि याची/वर्तमान प्रत्यर्थी ने अपने साथ किए जा रहे अत्याचारों के संबंध में संयुक्त पुलिस आयुक्त कार्यालय, दिल्ली के महिला प्रकोष्ठ प्राधिकारी को सूचित किया, संयुक्त पुलिस आयुक्त को सूचना दी गयी थी। याची (अ॰ सा॰ 2) ने स्वयं अभिसाक्ष्य दिया कि जब वे विवाह के बाद तीन चार माह के लिए आर्मी मेस में रूके हुए थे, प्रत्यर्थी/वर्तमान अपीलार्थी उसे रसोइ घर से केवल एकबार भोजन देता था और इंगित किया करता था

कि वह अत्यधिक बिस्कुट खाती है और उसकी गर्भावस्था के दौरान भी उसका पति उसके मस्तक और मुख पर वार करता था क्योंकि वह सही तरीके से गाड़ी नहीं चला सकती थी और उसने उसके साथ विवाह होने पर अफसोस किया और उसको बुद्धिहीन माता होने का व्यंग्य करते हुए उसको गर्भपात करवाने के लिए कहता था। उसने यह अभिसाक्ष्य भी दिया कि प्रत्यर्थी/वर्तमान अपीलार्थी ने उसको कपबोर्ड की ओर धकेला था और उसकी गर्दन पकड़ लिया था, उसका चश्मा तोड़ दिया था और उसको पीटने वाला था। उसने अपने प्रति परीक्षण में आगे अभिसाक्ष्य दिया कि उसका पति व्यंग्य करता था कि उसके माता-पिता ने फ्रिज नहीं दिया है। उसने यह भी स्पष्ट किया कि चूँकि उसका पति उसका और उसकी संतान की समुचित देखभाल नहीं कर रहा था, उसने दूसरी संतान के लिए अपनी पति की इच्छा पूरी करने से इनकार कर दिया। अपने प्रति परीक्षण में उसने आगे कथन किया है कि आखिर में वह अलवर में अपने पति के साथ रही और दिनांक 8.2.2004 के बाद वह उसके साथ कभी नहीं रही यद्यपि वह बार-बार राँची आता था किंतु उसके साथ नहीं रहता था। उसने अपने प्रति-परीक्षण में यह कथन भी किया कि उसका पति उसके साथ उचित व्यवहार नहीं करता था और सदैव उस पर प्रहार किया करता था और उसके साथ दुर्व्यवहार करता था। अ॰ सा॰ 1 डॉ॰ ललित कपूर है जो याची/वर्तमान प्रत्यर्थी का साला है जिसने भी उसके अभिकथन का समर्थन किया था और कथन किया था कि उसका पति उसे फटकारता था और उसे बेवकूफ और आलसी कहता था। याची/वर्तमान प्रत्यर्थी की माता अ॰ सा॰ 3 रक्षा बगाई ने भी अभिसाक्ष्य दिया है कि विवाह के तुरन्त बाद उसकी पुत्री ने उसको सूचित किया कि उसके पति ने उसके साथ दुर्व्यवहार किया और उसको हृदयाघात कारित करने का दोषी बताया। उसने याची/वर्तमान प्रत्यर्थी के अभिकथन का भी समर्थन किया कि उसके पति ने उसका गला दबाया था और उसे कपबोर्ड की ओर धकेला था जिससे लगे खरोंच अभी भी उसकी गर्दन और बाहों पर दृश्यमान थे। अ॰ सा॰ 4 मधु गुप्ता है जिसने अभिसाक्ष्य दिया कि उसने अनेक अवसरों पर आर्यमान के पिता (वर्तमान अपीलार्थी) को याची/वर्तमान प्रत्यर्थी पर चिल्लाते सुना था। अ॰ सा॰ 5 गुलशन राय बगाई याची का संबंधी है जिसने भी अभिसाक्ष्य दिया है कि सितंबर, 2002 में किरण/वर्तमान प्रत्यर्थी ने जम्मू से एस॰ टी॰ डी॰ बूथ से उसकी छोटी बेटी को परीक्षा के लिए शुभकामना देने के लिए फोन किया। जब उसने उससे उसका हाल पूछा, वह रोने लगी थी। यद्यपि वह कोई विवरण देने से हिचकिचा रही थी, उसके दबाव देने पर उसने बताया कि उसका पति उसके साथ दुव्यर्वहार कर रहा था और वह उसे पीटता भी था। उसने मुझसे उसके माता-पिता को यह सब नहीं बताने की याचना की क्योंकि वे परेशान होंगे। उसने आगे अभिसाक्ष्य दिया है कि एक अन्य अवसर पर वह उनके घर दिल्ली गया था, उसने पाया कि उसके पति ने यह कहकर दुर्व्यवहार किया कि वह मेहनत से काम नहीं करती थी और अधिकारी की पत्नी की तरह कपड़े पहनना अथवा व्यवहार करना नहीं जानती थी। उसने आगे कहा कि उसकी जिंदगी की सबसे बड़ी गलती उसके साथ विवाह करना था क्योंकि उसने उसका स्वास्थ्य और सामाजिक प्रतिष्ठा बर्बाद कर दिया। प्रति परीक्षण में, उसने यह अभिसाक्ष्य भी दिया कि याची/वर्तमान प्रत्यर्थी ने उससे कहा था कि उसके पति ने उस पर प्रहार किया था। अ॰ सा॰ 6 पुनीत कुमार पोद्दार, याची/वर्तमान प्रत्यर्थी का सहयोगी, ने भी अभिसाक्ष्य दिया है कि एक अवसर पर उसने पाया कि उसका पति अचानक उसके घर आया और संतान तथा उसकी माता जो सो रहे थे, को जगाने का प्रयास किया और उसको तमाचा भी मारा। अ॰ सा॰ 8 संदीप कौर याची/वर्तमान प्रत्यर्थी की सहयोगी, ने भी याची/वर्तमान प्रत्यर्थी के मामले का समर्थन किया है कि वह बार-बार उस पर व्यंग्य करता था और उसको बेवकूफ कहता था। अ॰ सा॰ 9, याची/वर्तमान प्रत्यर्थी की बड़ी बहन, ने कथन किया है कि उसकी राँची यात्रा के दौरान याची/वर्तमान प्रत्यर्थी अपने पति से मुलाकात करने उसके पास गयी और उस अवसर पर उसके पति ने इस गवाह के सामने टिप्पणी की कि बगाई की पारिवारिक पृष्ठभूमि उसकी तुलना में कुसंस्कृत थी क्योंकि बगाई देश के बँटवारा के बाद शरणार्थी के रूप में आए थे और इसी कारण से वह याची और उसके परिवार के साथ समय गुजारना नहीं चाहता था और उसने कामना किया कि उसे किसी अन्य के साथ विवाह करना चाहिए था। उसने यह अभिसाक्ष्य भी दिया कि दूसरे अवसर पर उसका पति नाराज हो गया था और झगड़ा के बाद अपनी पत्नी को तमाचा मारा था और उसको पीटने जा रहा था। उसने यह अभिसाक्ष्य भी दिया कि उसकी उपस्थिति में

प्रत्यर्थी/वर्तमान अपीलार्थी ने अपनी पत्नी को चरित्रहीन महिला कहा था और बेवकूफ, बेईमान और कुरुप भी कहा था।

11. दूसरी ओर, पति/वर्तमान अपीलार्थी ने चार गवाहों का परीक्षण किया और दस्तावेजी साक्ष्यों को भी दाखिल किया, जिसे चश्मा पहनने के लिए याची पर व्यंग्य करने के अभिकथन का खंडन करने के लिए अभिलेख पर लाया गया है, और विवाह के समय और विवाहोपरांत का फोटोग्राफ भी दाखिल किया। प्रत्यर्थी/वर्तमान अपीलार्थी की माता श्रीमती उमा देवी, आर॰ डब्ल्यू॰ 1 ने अभिसाक्ष्य दिया कि उसकी जानकारी के मुताबिक प्रत्यर्थी/वर्तमान अपीलार्थी और याची/वर्तमान प्रत्यर्थी के बीच अच्छा संबंध था। उसने यह कथन भी किया कि दोनों परिवार के अच्छे संबंध थे और वह अपनी बहु को पसंद करती थी और उसके पुत्र प्रत्यर्थी/वर्तमान अपीलार्थी ने उसकी बहु पर कभी नहीं प्रहार किया था। प्रत्यर्थी/वर्तमान अपीलार्थी के भाई अनुराग त्रिवेदी, आर॰ डब्ल्यू॰ 2 ने भी अभिसाक्ष्य दिया है कि उसके भाई और याची/वर्तमान प्रत्यर्थी के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध था और वस्तुतः फरवरी, 2005 में प्रत्यर्थी के पिता की मृत्यु के बाद वह अपने भाई और माता के साथ परिवार को सांत्वना देने राँची गया था और उस अवसर पर उसका भाई याची/वर्तमान प्रत्यर्थी के साथ बरियातू हाऊसिंग कॉलोनी अवस्थित उसकी बड़ी बहन के घर में अलग कमरे में रूका था। आर॰ डब्ल्यू॰ 3 ले॰ कर्नल सुनील कुमार गुप्ता जो प्रत्यर्थी/वर्तमान अपीलार्थी का मित्र है ने अभिसाक्ष्य दिया कि वह प्रत्यर्थी/वर्तमान अपीलार्थी के परिवार को जानता था और उसने यह अभिसाक्ष्य भी दिया कि पक्षों के बीच अच्छा और सौहार्दपूर्ण संबंध था। आर॰ डब्ल्यू॰ 4 प्रत्यर्थी/वर्तमान अपीलार्थी है जिसने प्रहार, व्यंग्य अथवा याची/वर्तमान प्रत्यर्थी को आलसी कहने के तथ्य और उसके द्वारा अभिकथित दिनांक 8.2.2004 को उसका अभित्यजन करने के तथ्य से इनकार किया था। उसने यह कथन भी किया है कि दिनांक 8.2.2004 के बाद भी वह अपनी पत्नी से बार-बार मिला था और उसके साथ पति-पत्नी के रूप में रहा था और अपने अस्थायी ड्यूटी के दौरान वह उसके साथ घूमने भी गया था और उसने सितंबर, 2004, जब वह अपने पुत्र आर्यमान के साथ नयी दिल्ली में था, के फोटोग्राफों सहित प्रदर्श E/1 से E/2 और इसकी श्रृंखलाओं को भी प्रस्तुत किया। अपीलार्थी ने आगे अभिसाक्ष्य दिया है कि उसकी पिता की मृत्यु के बाद वह अपने परिवार के सदस्यों के साथ उसके परिवार को सांत्वना देने आया था और बाद में सितंबर, 2005 में वह राँची भी गया था और उसके साथ आनंद लिया था। प्रदर्श E/6 सितंबर, 2005 का फोटोग्राफ है और इसमें यह दिखाया गया है कि उसका पुत्र आर्यमान विद्यालय जा रहा है और उसके माता-पिता उसके साथ थे। प्रति परीक्षण के दौरान उसने कथन किया कि वह किसी भी कीमत पर अपनी पत्नी से तलाक नहीं चाहता है और उसके साथ रहना चाहता है।

12. आक्षेपित निर्णय के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि विद्वान कुटुंब न्यायालय ने क्रूरता और अभित्यजन के प्रश्न पर याची पत्नी/वर्तमान प्रत्यर्थी की ओर से और उसके पति की ओर से दिए गए साक्ष्यों पर सावधानीपूर्वक चर्चा किया है। कुटुंब न्यायालय ने याची/वर्तमान प्रत्यर्थी द्वारा और उसके पति द्वारा भी दिए गए साक्ष्यों का अधिमूल्यन किया है और इस निष्कर्ष पर आया है कि अपीलार्थी पति ने अनेक अवसरों पर याची/वर्तमान प्रत्यर्थी को तमाचा मारा था और उसके साथ अभद्र भाषा का प्रयोग किया था। कार चलाना सीखने के दौरान उसने उसके मुँह पर तमाचा मारा और उसके पेट पर वार किया जब वह गर्भवती थी। विद्वान कुटुंब न्यायालय इस निष्कर्ष पर आया था कि प्रत्यर्थी पत्नी की ओर से प्रस्तुत साक्ष्यों द्वारा क्रूरता और अभित्यजन का अभिकथन सिद्ध किया गया है। किंतु, विद्वान कुटुंब न्यायालय आश्वस्त नहीं था कि प्रत्यर्थी पत्नी उसके पति की ओर से अभित्यजन का मामला बनाने में सक्षम नहीं हुई थी क्योंकि स्वीकृत रूप से पति किसी भी कीमत पर प्रत्यर्थी पत्नी को रखने को तैयार था और उसको तलाक देने का इच्छुक नहीं था। तत्पश्चात, विद्वान कुटुंब न्यायालय ने पक्षों की शैक्षणिक अर्हताओं,

पारिवारिक पृष्ठभूमि को विचार में लिया है और इस निश्चित निष्कर्ष पर आया है कि अपीलार्थी के विरुद्ध तमाचा मारने का ऐसा कृत्य और निरंतर व्यंगोक्ति वैवाहिक संबंध में क्रूरता की घटना है क्योंकि याची शिक्षित पिता और परिवार के सदस्यों वाली सुशिक्षित महिला है और ऐसे वातावरण में रह रही है जिसमें उसके और उसके परिवार के सदस्यों के प्रति अभद्र भाषा का प्रयोग क्रूरता का मामला बनाने के लिए पर्याप्त है। ऐसे कृत्यों ने परिवार के सदस्यों को पीड़ा पहुँचाया है क्योंकि वातावरण जिसमें पत्नी का लालन पालन हुआ था और तमाचा मारने, व्यंग्य करने, क्रूरता, आलसी और झूठा कहने और परिवार के सदस्यों की उपस्थिति में तमाचा मारने और अभद्र भाषा का प्रयोग करने के कृत्य ऐसे प्रभाव की ओर ले गए कि प्रत्यर्थी पत्नी अपने ऊपर पड़े मानसिक और मनोवैज्ञानिक प्रभाव के कारण प्रत्यर्थी/वर्तमान अपीलार्थी के साथ आगे रहने को तैयार नहीं हो सकती है। अत: विद्वान कुटुंब न्यायालय संतुष्ट था कि याची पत्नी की ओर से क्रूरता का मामला बनाया गया है जिसके लिए वह न्यायिक पृथक्करण के लिए डिक्री की हकदार थी। विद्वान कुटुंब न्यायालय तलाक की डिक्री अनुज्ञात करने के बजाय पति जो वर्तमान अपीलार्थी है के विरुद्ध वाद अंशत: अनुज्ञात करके न्यायिक पृथक्करण की डिक्री प्रदान करने के लिए अग्रसर हुआ।

13. अपीलार्थी का मामले अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों के साथ सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद और आक्षेपित निर्णय का परिशीलन करने के बाद हम निश्चित निष्कर्ष पर आए हैं कि प्रत्यर्थी पत्नी अपने पति के विरुद्ध क्रूरता का मामला बनाने में सक्षम हुई है जो दिनांक 19.5.2008 को आक्षेपित निर्णय पारित करने और उसके पक्ष में न्यायिक पृथक्करण के लिए डिक्री द्वारा प्रत्यर्थी पत्नी के वाद को अंशत: अनुज्ञात करने की ओर ले गया। अपीलार्थी विद्वान कुटुंब न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय में कोई दुर्बलता निकालने में विफल रहा है। तत्पश्चात, प्रत्यर्थी पत्नी ने इस आधार पर कि वैवाहिक हक वाद सं॰ 53 वर्ष 2006 में दिनांक 19.5.2008 के आदेश के तहत कुटुंब न्यायालय द्वारा न्यायिक पृथक्करण के लिए डिक्री पारित करने के बाद विगत एक वर्ष से अधिक के लिए पक्षों के बीच साहचर्य का पुनरारंभ नहीं हुआ है, तलाक की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन के लिए कुटुंब न्यायालय, राँची के समक्ष वाद अर्थात् वैवाहिक हक वाद सं॰ 178 वर्ष 2009 दाखिल किया। विद्वान कुटुंब न्यायालय ने मामले के तथ्यों का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने के बाद और यह विचार में लेते हुए कि साहचर्य का पुनरारंभ नहीं हुआ है, हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 (1A) (i) के अधीन तलाक की डिक्री पारित करके वर्तमान वैवाहिक हक वाद सं॰ 178 वर्ष 2009 अनुज्ञात किया। विद्वान कुटुंब न्यायालय ने आगे घोषणा किया कि दिनांक 20 मार्च, 2010 के आदेश के अनुसरण में तलाक की डिक्री द्वारा पक्षों के बीच विवाह विघटित कर दिया गया है।

14. मामले के पूर्वोक्त तथ्यों और परिस्थितियों में हम पाते हैं कि वैवाहिक हक वाद सं॰ 178 वर्ष 2009 में दिनांक 20 मार्च, 2010 को विद्वान कुटुंब न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और डिक्री किसी दुर्बलता से पीड़ित नहीं है और अपीलार्थी द्वारा दाखिल वर्तमान अपील खारिज किए जाने योग्य है। अत:, प्रथम अपील सं॰ 139 वर्ष 2010 खारिज किया जाता है।

15. तद्नुसार, ऊपर उपदर्शित समान कारणों से प्रथम अपील सं॰ 133 वर्ष 2008 भी खारिज किया जाता है।

16. किंतु जैसा एफ॰ ए॰ सं॰ 133 वर्ष 2008 में पारित दिनांक 21.11.2008 के आदेश में उपदर्शित किया गया है, हम इसे समुचित समझते हैं कि अपीलार्थी को माह में कम से कम दो दिन अर्थात् शनिवार और रविवार को अपने पुत्र से मुलाकात करने का अधिकार होगा। इसके अतिरिक्त, उसे उस तिथि, जिस पर उसके अपने पुत्र से मुलाकात करने के लिए के आने की संभावना है, के बारे में प्रत्यर्थी को पूर्व सूचना देने के बाद अपने पुत्र के जन्मदिन और होली एवं दीपावली के अवसर पर अपने पुत्र से मुलाकात करने का अधिकार भी होगा।

17. किंतु, प्रत्यर्थी पत्नी द्वारा दाखिल प्रथम अपील सं॰ 184 वर्ष 2008 निष्फल बन जाती है क्योंकि तलाक की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन के लिए उसकी प्रार्थना पहले ही वैवाहिक हक वाद सं॰ 178 वर्ष 2009 में पारित दिनांक 20 मार्च, 2010 के निर्णय द्वारा अनुज्ञात की जा चुकी है और तद्नुसार इसे निष्फल के रूप में खारिज किया जाता है।

18. पक्षों को अपना व्यय स्वयं सहन करना होगा।

प्रकाश तातिया, मुख्य न्यायाधीश.–मैं सहमत हूँ।

---

ekuuh;k iue JhokLro] U;k;efr

बीर स्टील (प्रा॰) लिमिटेड, गिरीडीह, अपने निदेशक के माध्यम से

cuke

झारखंड राज्य, सचिव के माध्यम से एवं अन्य

W.P. (C) No. 3359 of 2011. Decided on 23rd March, 2012.

झारखंड औद्योगिक नीति, 2001—खंड 29.5—झारखंड औद्योगिक प्रोत्साहन नियमावली, 2003—खंड 4.3 (घ) 1 एवं 2—ब्याज साहायिकी–परिसीमा के आधार पर दावा अस्वीकार किया जाना–राज्य सरकार द्वारा प्रावधानित परिसीमा के प्रावधान नीति के आशय के परे हैं और शून्यकृत किए जाने के दायी हैं–नीति का आशय नवस्थापित उद्योगों को कुछ लाभ प्रदान करना था–ऐसे आशयों पर नियम 4.3 (घ) 1 और 2 द्वारा लगाम नहीं लगाया जा सकता था–परिसीमा विहित करने वाला नियम अधिकार को निर्वापित करता है और नीति की विरचना द्वारा याची को प्रोद्भूत मुख्य अधिकार को प्रभावित करता है–राज्य सरकार द्वारा विहित परिसीमा की अवधि विधान के तुल्य है जो सरकार द्वारा विरचित औद्योगिक नीति को निरर्थक बनाता है–आक्षेपित मेमों अभिखंडित–2003 नियमावली का खंड 4.3 (घ) 1 और 2 भी शून्यकृत किया गया–याचिका अनुज्ञात। (पैराएँ 15, 17 से 20)

निर्णयज विधि.–(1971)2 SCC 860; (1999)1 SCC 31; (2009) 15 SCC 570—Relied on; (1974) 3 SCC 251; 70 STC 240—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. Sumeet Gododia, For the Petitioner; Mr. Ajit Kumar, For the Respondent-State.

आदेश

याची की ओर से उपस्थित अधिवक्ता श्री एस॰ गडोडिया और राज्य-प्रत्यर्थी की ओर से अपर महाधिवक्ता श्री अजित कुमार को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका में विवाद दिनांक 24.12.2010 के मेमो सं॰ 2869 (रिट याचिका का परिशिष्ट-2) के संबंध में है, जिसके द्वारा झारखंड औद्योगिक नीति, 2001 के अधीन ब्याज साहायिकी प्रदान करने के लिए याची का दावा परिसीमा के आधार पर वित्तीय वर्षों 2006-07 और 2007-08 के लिए अस्वीकार कर दिया गया है। याची ने झारखंड औद्योगिक प्रोत्साहन नियमावली, 2003 (इसमें इसके बाद 'नियमावली' के रूप में निर्दिष्ट) के खंड 4.3 (घ) 1 और 2 की वैधता को भी चुनौती दिया है।

3. याची की ओर से विनिर्दिष्ट प्राख्यान यह है कि यह नियमावली नीति अर्थात् झारखंड औद्योगिक नीति, 2001 की आत्मा और वास्तविक अर्थ की कटौती करने तुल्य है और इसलिए अत्यधिक शक्ति के प्रयोग के तुल्य है और स्वयं औद्योगिक नीति, 2001 के आशय की अवज्ञा करता है। प्रत्यर्थीगण ने

प्रत्यर्थी सं॰ 3 द्वारा जारी दिनांक 24.12.2010 के आक्षेपित मेमो सं॰ 2869 द्वारा याची का वर्ष 2006-07 के लिए दावा 1 वर्ष 13 दिन द्वारा और वर्ष 2007-08 के लिए दावा 13 दिनों द्वारा वर्जित होने के कारण अस्वीकार कर दिया गया। मामले के तथ्य निम्नलिखित हैं:–

;kph >kj[kM vk|kfxd uhfr] 2001 d vuqj.k e LFkkfir u;h vk|kfxd bdkbZ g vkj ,e0 ,l0 ok;j vkj ,e0 ,l0 uy d fuekZ.k e yxh gbZ gA ;kph bdkbZ d okf.kfT;d mRiknu dh frfFk fnukad 7.2.2004 gA

vk|kfxd uhfr] 2001, fo'ks"kr% [kM 29.5 d erkfcd ;kph ikp o"kZ dh vofèk d fy, C;kt lkgkf;dh dk gdnkj FkkA

*^^29.5 **C;kt lkgkf;dh&***

bl lkgkf;dh dk çnku dju dk mí'; ml vofèk d fy, m|kx d C;kt dh er dk uhp ykuk g tc m|kx vkjfHkd pj.k ij vR;Ur ncko d vèkhu gA bl lkgkf;dh dk y{; m|kx d fujrj fodkl dk mRlkfgr djuk vkj u fd bl èkhek djuk g vkj jkT; dh lef) e bld fgLl dk ;kxnku djuk gA

u, m|kxk d fy, Lohdk; C;kt lkgkf;dh ,l u, m|kx }kjk fy, x, dt ij foÙkh; lLFkkuk@cdk okLrfod :i l Hkxrku fd, x, C;kt ij fuEufyf[kr rjhd l Lohdk; gkxhA&

Øekd	*çkRlkgu*	*J.kh %*	*egÙke çkRlkgu*	*foÙkh; lhek (yk[k e)*
1	*C;kt lkgkf;dh*	*A*	*25*	*lkgkf;dh 100 yk[k #i;k çfro"k dh jkf'k rd lhfer gkxh ijUr ;g fd dy C;kt lkgkf;dh >kj[kM jkT; e vkj@vFkok vrjkT;h; foØ; d Øe e dh x;h dy foØ; jkf'k d 2% d vkfèkD; e ugh gkxh tlk okf.kT; dj çkfèkdkj }kjk tkjh çek.k i=@nLrkot l lefFkr fd;k x;k gA ;g lkgkf;dh okf.kfT;d mRiknu dh frfFk l m|kxk dh leLr Jf.k;k d fy, ikp o"kZ dh vofèk d fy, Lohdk; gkxhA*
		B	*50*	
		C	*60*	

4. याची वित्तीय वर्षों 2004-05 से 2008-09 (वर्तमान मामले में वित्तीय वर्ष 2006-07 और 2007-08) के लिए ब्याज साहायिकी का हकदार था। याची द्वारा महाप्रबंधक, जिला उद्योग केंद्र, गिरीडीह के समक्ष आवेदनों को दाखिल किया गया था और इसके दावा रिट याचिका का परिशिष्ट 1 के तहत, सम्यक रूप से परीक्षण किया गया था और पूर्वोक्त दो वर्षों के लिए याची के पक्ष में 2,77,217/- रुपयों की ब्याज साहायिकी के भुगतान के लिए अनुशंसा की गयी थी।

5. ब्याज साहायिकी का दावा इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया था कि झारखंड औद्योगिक प्रोत्साहन नियमावली, 2003, विशेषत: खंड 4.3 (घ) 1 और 2 के मुताबिक यह समय वर्जित था और वर्ष 2006-07 और वर्ष 2007-08 के लिए क्रमश: 1 वर्ष 13 दिन और 13 दिन का विलंब हुआ था।

6. झारखंड राज्य ने झारखंड औद्योगिक प्रोत्साहन नियमावली, 2003 विरचित किया। उक्त नियमावली में, विशेषत: 4.3 (घ) और 2 में, दावा आवेदन देने के लिए परिसीमा का प्रावधान प्रावधानित किया गया था। नियम 4.3 (घ) 1 और 2 को नीचे उद्धृत किया जाता है–

^?k le; lhek*

1. bPNd bdkb;k dk lHkh nf"Vdk.k l i.k okfNr dkxtkrk d lkFk viu nko fdlh foÙkh; lky dh lifÙk d Ng ekg d Hkhrj lefir djuk vfuok;; gkxkA

2. 6. (Ng) ekg l vfèkd dh vofèk dk {kkr dju dh 'kfDr m|kx fun'kd e fufgr gkxhA bl l vfèkd dh le; lhek dk {kkr dju dh 'kfDr lfpo m|kx e fufgr gkxhA

7. पूर्वोक्त नियम प्रावधानित करता है कि साहायिकी का दावा करने वाली इकाईयों को साहायिकी लेने के लिए अपने दस्तावेजों और आवेदन को वित्तीय वर्ष की समाप्ति की तिथि से छह माह की अवधि के भीतर प्रस्तुत करना होगा। आगे, निदेशक, उद्योग विलंब माफ करने का हकदार था यदि दावा परिसीमा के अवसान के छह माह के भीतर प्रस्तुत किया जाता है और उद्योग सचिव को परिसीमा की अवधि माफ करने का प्राधिकार था यदि दावा पूर्वोक्त छह माह की अवधि के परे प्रस्तुत किया जाता है। प्रत्यर्थीगण ने उक्त नियम के प्रयोग में परिसीमा के आधार पर याची का दावा अस्वीकार कर दिया।

8. पूर्वोक्त आदेश को चुनौती देते हुए विद्वान अधिवक्ता का निवेदन है कि प्रथमत: नियमावली के अधीन विहित परिसीमा की अवधि झारखंड औद्योगिक नीति के अधीन याची के पक्ष में पहले से ही प्रोद्भूत मुख्य अधिकार की कटौती नहीं कर सकती है। ब्याज साहायिकी के दावा के लिए शर्त विहित करने वाले खंड 29.5 पर जोर दिया गया है। झारखंड औद्योगिक नीति, 2001 के खंड 29.5 के अधीन ब्याज साहायिकी का दावा करने के लिए शर्तों को नीचे उद्धृत किया जाता है:

(i) m|kx u;k m|kx gkuk pkfg,A

(ii) m|kx dh J.kh d erkfcd Hkxrku ;kX; egÙke lkgkf;dh m|kx }kjk viu cdj dk Hkxrku fd, tku oky dy C;kt dk Øe'kh 25%, 50% vkj 60% gkxhA

(iii) lkgkf;dh 100 yk[k #i;k dh egÙke jkf'k rd lhfer gkxhA

(iv) dy lkgkf;dh >kj[kM jkT; e vkj@vFkok vrjkT;h; foØ; d Øe e dh x;h dy foØ; jkf'k d 2% d vkfèkD; e ugh gkxhA

(v) 2% dh iokDr foØ; jkf'k d voèkkj.k d ç;ktu l l{ke okf.kT; dj çkfèkdkjh }kjk tkjh çek.k i=@nLrkot çLrr fd;k tkuk pkfg,A

(vi) m|kx d okf.kfT;d mRiknu dh frfFk l ikp o"kk dh vofèk d fy, lkgkf;dh Lohdk; gkxhA

9. विद्वान अधिवक्ता श्री एस॰ गडोडिया ने जोरदार तर्क किया है कि पूर्वोक्त खंड के परिशीलन से स्पष्ट होगा कि स्वयं नीति के अधीन ब्याज साहायिकी की राशि का दावा करने के लिए परिसीमा की अवधि विहित नहीं की गयी थी। झारखंड औद्योगिक नीति, 2001 का खंड 36.2 मेरे समक्ष यह जोर देने के लिए प्रस्तुत किया गया था कि यद्यपि राज्य सरकार के संबंधित विभागों और संस्थानों को केवल अनुवर्ती

कार्रवाई के रूप में शक्ति प्रदत्त की गयी थी और न कि नीति के आशय पर पाबंदी लगाने के लिए। झारखंड औद्योगिक नीति, 2001 के खंड 36.2 का पठन निम्नलिखित है:–

*^^ leLr lcfèkr foHkkx vkj lLFkku bu uhfr dh ?kks"k.kk d 30 fnuk d Hkhrj bl uhfr d çkoèkkuk dk çHkko nu d fy, vuorh vfèklpuk, tkjh djxA***

10. पूर्वोक्त प्रावधानों की दृष्टि में विद्वान अधिवक्ता ने तर्क किया है कि नीति ने अनेक विभागों को ऐसी नियमावली विरचित करने का हकदार नहीं बनाया था जो नीति को प्रभावहीन बना दे। आगे निवेदन है कि सरकार द्वारा विरचित ''औद्योगिक नीति'' उद्योग की मदद करने वाला लाभदायी विधान है न कि उद्योग को ''निर्जीव'' बनाने वाला। इस प्रकार, परिसीमा की अवधि नियत करते हुए राज्य सरकार द्वारा विरचित प्रावधान औद्योगिक विकास को निर्बंधित करता है। नीति के उद्देश्य को ही विफल कर दिया गया है और, इसलिए, निवेदन यह है कि नियमावली के नियम 4.3 (घ) 1 और 2 द्वारा विहित परिसीमा की अवधि नीति को निरर्थक बनाती है और औद्योगिक नीति 2001 के विस्तार के परे है।

11. याची की ओर से वैकल्पिक तर्क यह है कि नियम प्रावधानित करता है कि परिसीमा की अवधि प्रत्येक वित्तीय वर्ष की समाप्ति से अर्थात् अधिकाधिक 30 सितंबर तक संगणित की जाय। यह जोर दिया गया है कि उस तिथि से, जब कोई वित्तीय वर्ष समाप्त होता है, छह माह की अवधि की संगणना के लिए ब्याज साहायिकी का दावा आवश्यकत: विशेष वित्तीय वर्ष की समाप्ति के बाद नहीं किया जाय और इसलिए, एक अथवा अधिक वित्तीय वर्ष के संबंध में समेकित आवेदनों को अंतिम वित्तीय वर्ष की समाप्ति के छह माह के भीतर साथ-साथ दिया जा सकता है। इस प्रकार, विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि किसी विशेष वर्ष के लिए परिसीमा की अवधि को जैसे वर्ष 2006-07 के लिए आवेदन, 1 वर्ष 13 दिनों द्वारा वर्जित मानना अमान्य और अवैध है। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार विलंब, यदि है, केवल 13 दिनों का है क्योंकि वित्तीय वर्ष 2007-08 के अंत में समेकित दावा प्रस्तुत किया गया था।

12. प्रत्यर्थी राज्य की ओर से अधिवक्ता ने याची की ओर से दिए गए तर्कों का विरोध किया है। निवेदन यह है कि औद्योगिक नीति और नियमावली एक ही आधार पर खड़े हैं। नीति ने यह सुनिश्चित करने की दृष्टि से नियमावली विरचित करने के लिए प्रत्यर्थीगण को प्राधिकृत किया कि ब्याज साहायिकी के दावा के लिए स्वतंत्रता का अनादर नहीं किया जाना चाहिए जैसा वर्तमान मामले में किया गया है और इसलिए नियमावली द्वारा प्रावधानित प्रक्रिया पूर्णत: वैध है और नीतिगत निर्णय के तुल्य है जिसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन अधिकारिता के प्रयोग में अभिखंडित नहीं किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, राज्य के अधिवक्ता ने यह भी तर्क किया है कि विलंब को स्पष्ट करने के लिए कोई कारण नहीं दिया गया है और प्रत्यर्थीगण ने सही प्रकार से याची का दावा अस्वीकार कर दिया है क्योंकि दिया गया एकमात्र कारण यह था कि 'अपरिहार्य परिस्थितियों' के कारण विलंब हुआ था। विलंब की माफी का मामला बनाने के लिए विनिर्दिष्ट अभिवचन आवश्यक है।

13. मैंने अधिवक्ताओं द्वारा किए गए निवेदनों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है और अभिलेख एवं याची तथा प्रत्यर्थीगण द्वारा विश्वास किए गए उद्धरणों का भी परिशीलन किया है। विवाद मूलत: इस प्रश्न के इर्द-गिर्द घूमता है कि क्या प्रत्यर्थीगण केवल परिसीमा, जो बाद में झारखंड औद्योगिक नीति, 2001 के खंड 36.2 के अधीन शक्तियों के प्रयोग में विरचित नियमावली द्वारा अधिकथित की गयी शर्त है, के एकमात्र आधार पर ब्याज साहायिकी प्रदान करने से याची को वंचित कर सकते थे। संक्षेप में,

नीति अनुध्यात करती है कि उद्योग नया उद्योग होना चाहिए और ब्याज साहायिकी केवल सक्षम वाणिज्य कर प्राधिकारी द्वारा जारी प्रमाणपत्र/दस्तावेज के आधार पर प्रदान की जा सकती है और इसे झारखंड राज्य में कुल विक्रय राशि के 2% के आधिक्य में नहीं होना होगा। अंतर्राज्यीय विक्रय के क्रम में महत्तम भुगतान योग्य प्रोत्साहन उद्योग द्वारा अपने बैंक को भुगतान की गयी कुल ब्याज का क्रमशः 25%, 50% और 60% था और साहायिकी 100 लाख रुपयों की महत्तम राशि तक सीमित थी। यह केवल पाँच वर्षों के लिए स्वीकार्य थी तद्द्वारा जिसका अर्थ है कि नीति का आशय केवल पाँच वर्षों की अवधि के लिए ब्याज साहायिकी प्रदान करना था और वह भी तब यदि उद्योग औद्योगिक नीति, 2001 के खंड 29.5 के अधीन संगणित शर्तों को परिपूर्ण करता है। आवश्यक निष्कर्ष यह है कि साहायिकी प्रोत्साहन के रूप में केवल कारगर/जीवनक्षम उद्योग के लिए थी और न कि उनके लिए जिन्होंने प्रगति का कोई संकेत नहीं दिया था। वर्तमान मामले में, याची को परिसीमा के आधार पर वंचित कर दिया गया है जो खंड 36.2 के अधीन विरचित अपनी नियमावली में राज्य सरकार द्वारा अधिरोपित अतिरिक्त शर्त है।

14. मैं यह परीक्षण करने के लिए अग्रसर होती हूँ कि क्या राज्य सरकार द्वारा ऐसी वर्जना अधिरोपित की जा सकती थी? सर्वोच्च न्यायालय ने अन्य रिट याचिकाओं के साथ विनिश्चित **बिहार राज्य एवं अन्य बनाम सुप्रभात स्टील लि॰ एवं अन्य, (1999)1 SCC 31,** में अभिनिर्धारित किया कि बिहार औद्योगिक प्रोत्साहन नीति, 1993 के क्रियान्वयन को निर्बंधित करते हुए राज्य सरकार द्वारा अधिरोपित कतिपय शर्त अधिकारातीत थे। न्यायालय का दृष्टिकोण था कि भले ही राज्य सरकार प्रोत्साहनों और लाभों का लाभ लेने के लिए औद्योगिक इकाईयों पर शर्तों को अधिकथित करते हुए ऐसी अधिसूचना जारी करने का हकदार है, तब भी राज्य सरकार शर्तों को अधिरोपित करके किसी लाभ से इनकार नहीं कर सकती है जो अन्यथा प्रोत्साहन नीति के अधीन औद्योगिक इकाईयों को उपलब्ध हैं। वर्तमान मामले में, प्रोत्साहन नीति, 2001 साहायिकी का दावा करने के लिए परिसीमा की किसी अवधि के बारे में नहीं कहती है, खंड 29.5 के अधीन संगणित ब्याज साहायिकी प्रदान किए जाने के शर्त उद्योगों द्वारा अपने बैंकरों को भुगतान किए गए 100 लाख रुपयों की महत्तम सीमा तक कुल ब्याज राज्य में किए गए कुल विक्रय राशि के 2% से अधिक नहीं होगा। इस वर्जना का अधिरोपण कि वित्तीय वर्ष की समाप्ति की तिथि से छह माह की अवधि के परे किया गया दावा ऐसी शर्त है जो याची को निःसहाय छोड़ देता है। राज्य सरकार द्वारा इसको परिसीमा की अवधि के परे मानते हुए याची के दावे की अंतिम अस्वीकृति औद्योगिक नीति के आशय से कटौती किए जाने के तुल्य है। अस्वीकृति केवल इस आधार पर है कि विलंब स्पष्ट करने वाला कारण 'अपरिहार्य परिस्थितियाँ' है जो सचिव उद्योग को पर्याप्त प्रतीत नहीं हुआ था। सचिव, उद्योग का आदेश दिनांक 24.12.2010 के पत्र/आदेश (रिट याचिका का परिशिष्ट-2) के साथ संलग्न नहीं है। यह सूचना मात्र है, परिसीमा की अवधि को माफ करने की अनुमति नहीं देने का कारण वर्तमान रिट याचिका में उत्तर देने के क्रम में स्पष्ट किया गया है। **मेसर्स भारत बैरल एण्ड ड्रम मैन्यूफैक्चरिंग कं॰ लि॰ एवं एक अन्य बनाम कर्मचारी राज्य बीमा निगम, (1971)2 SCC 860,** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय का परिसीमा की विधि पर विचार करते हुए दृष्टिकोण था कि परिसीमा उपचार से संबंधित है क्योंकि नियम यह है कि अधिकारों के संबंध में दावों को ग्रहण नहीं किया जा सकता है यदि यह उस अधिकार के संबंध में संविधि द्वारा विहित परिसीमा के भीतर आरंभ नहीं होता है। समय विहित करने वाली विधायी कार्रवाई के अतिरिक्त सामान्य विधि के अधीन मान्यता प्राप्त परिसीमा की कोई अवधि नहीं है और इसलिए संविधि द्वारा नियत कोई समय आवश्यकतः मनमाना होगा। वर्तमान मामले में,

खंड 36.2 केवल ''नीति के प्रावधानों को प्रभाव देने के लिए'' अनुवर्ती कार्रवाई के रूप में अधिसूचना जारी करने के लिए संबंधित विभागों और संस्थानों को सशक्त बनाता है किंतु उस आत्मा और प्रयोजन को वापस नहीं लेता है जिसके लिए नीति विरचित की गयी है। ब्याज साहायिकी याची की तरह नवजात उद्योगों को प्रोत्साहन के रूप में है और केवल इसी कारण से इस प्रोत्साहन को पाँच वर्षों की सीमित अवधि के लिए प्रावधानित किया गया था। राज्य सरकार को केवल अनुवर्ती कार्रवाई के रूप में ऐसी अधिसूचनाओं को विरचित करने का निर्देश दिया गया था और न कि प्रोत्साहन की कटौती करने के लिए जो अन्यथा याची को आवश्यकत: उपलब्ध थी।

15. अत:, मेरे दृष्टिकोण में, राज्य सरकार द्वारा प्रावधानित परिसीमा का प्रावधान नीति के आशय के परे है और, इसलिए, शून्यकृत किए जाने का दायी है। प्रकटत:, नीति का आशय नवजात उद्योगों को कुछ लाभ प्रदान करना था, अत: ऐसे आशयों को नियम 4.3 (घ)1 और 2 द्वारा नियंत्रित नहीं किया जा सकता था। वर्तमान मामले में, प्रकटत:, परिसीमा विहित करने वाला नियम अधिकार को निर्वापित करता है और नीति की विरचना द्वारा याची को प्रोद्भूत मुख्य अधिकार को प्रभावित करता है।

16. अधिवक्ता श्री गडोडिया ने अनेक निर्णयों को उद्धृत किया है, **मैसूर राज्य एवं अन्य बनाम मल्लिक हाशिम एण्ड कं॰, (1974)3 SCC 251; जी॰ बी॰ कुमार एण्ड संस बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, 70 STC 240** और **ग्लोबल एनर्जी लिमिटेड एवं एक अन्य बनाम केंद्रीय विद्युत विनियामक आयोग, (2009)15 SCC 570. ग्लोबल एनर्जी लिमिटेड (ऊपर)** के मामले के पैराओं 25, 26 और 27 को नीचे उद्धृत किया जा रहा है:–

> *25. vc ;g fofèk dk lfuf'pr fl)kr g fd ^^vfèkfu;e d ç;ktu dk fØ;kfUor dju d fy,** fu;e cuku dh 'kfDr lkekU; çR;k;ktu gA ,l lkekU; çR;k;ktu dk fdlh ekxn'kd fl)krk dk vfèkdfFkr djrk gvk vfHkfuèkkfjr ugh fd;k tk ldrk gA bl çdkj] doy ,l çkoèkku d dkj.k l fofu;e cuku dh 'kfDr dk ç;kx e[; vfèkdkjk vFkok ckè;rkvk vFkok fu%'kDrrkvk dk vfLrRo e yku d fy, ugh fd;k tk ldrk g ftUg mDr vfèkfu;e d çkoèkkuk d fucèkukulkj vuè;kr ugh fd;k x;k gA*
>
> *26. bl lcèk e ge dt fcgkjh yky cVy cuke fgekpy çn'k jkT;] (2000)3 SCC 40, e bl U;k;ky; d fu.k; dk fufn"V dj ldr g ftle bl U;k;ky; dh f=&U;k;kèkh'k ihB u fuEufyf[kr vfHkfuèkkfjr fd;k%&*
>
> *^^gekjk er ;g Hkh g fd ^^vfèkfu;e d ç;ktuk dk fØ;kfUor dju d fy,** fu;ek dk cukdj fofèk cuku dh çR;k;kftr 'kfDr fdlh ekxn'kd fl)kr dk vfèkdfFkr fd, fcuk lkekU; çR;k;ktu g(bldk ç;kx e[; vfèkdkjk vFkok ckè;rkvk vFkok fu%'kDrrkvk dk vfLrRo e yku d fy, ugh fd;k tk ldrk g ftUg Lo; vfèkfu;e d çkoèkkuk }kjk vuè;kr ugh fd;k x;k gA***
>
> *27. fofu;e cuku oky çkfèkdkj dh 'kfDr dh 0;k[;k vfèkfu;e d çkoèkkuk dk nf"V e j[kr g, djuh gkxhA vfèkfu;e vuKflr çnku dju d fy, 'krk d lcèk e eku gA ;g mld fy, dkb io vgrk vfèkdfFkr ugh djrk gA vuKflr dh lkekU; 'krk d vfèkjki.k d fy, çkoèkkuk dk vFkok mld fy, io vgrkvk dk vfèkdfFkr djr g, 'krk dk vkj@vFkok vuKflr çnku dju vFkok çfrlgr dju d fy, 'krk@vgrkvk dk] ,l Li"V çkoèkku dh vuifLFkfr e] vko';d foo{kk }kjk vuKflr çnku dju d fy, 'krk@vgrkvk dk çkoèkkfur djr g, ekxn'kd fl)krk dk vfèkdfFkr djrk vfHkfuèkkfjr fd;k tk ldrk gA*

17. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित सिद्धांतों की दृष्टि में और यहाँ ऊपर संगणित कारणों से मेरा सुविचारित दृष्टिकोण है कि राज्य सरकार द्वारा विहित परिसीमा की अवधि उस विधान के तुल्य है जो सरकार द्वारा विरचित औद्योगिक नीति को अनावश्यक बना देती है। अत:, यह स्पष्ट है कि परिसीमा की अवधि का अधिरोपण और निदेशक, उद्योग द्वारा परिसीमा की अवधि को माफ करने से पश्चातवर्ती इनकार औद्योगिक नीति को पंगु बनाता है। योजना और नीति के प्रयोजन और आशय के परीक्षण पर, जो उद्योगों के विकास को प्रभावित करती है, इन्हें भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन असाधारण अधिकारिता के प्रयोग में आवश्यकत: नियंत्रित करना होगा। यदि सरकार द्वारा प्रदान किए गए प्रोत्साहनों पर तुच्छ कारणों से पाबंदी लगायी जाती है, परिणाम यह होगा कि उद्योग बीमार और नि:शक्त बन जाएँगे।

18. किंतु, मैं श्री गडोडिया के वैकल्पिक तर्कों से आश्वस्त नहीं हूँ। यदि विद्वान अधिवक्ता का इस प्रभाव का निवेदन कि नियम दावेदार को अंतिम वित्तीय वर्ष की समाप्ति के बाद दो लगातार वर्षों के लिए ब्याज साहायिकी के लिए आवेदन देने की अनुमति देता है और अंतिम वित्तीय वर्ष की समाप्ति पर दो वर्षों के लिए आवेदन साथ-साथ दिया जा सकता था, तब छह माह की परिसीमा की अवधि अधिरोपित करने का कोई प्रयोजन नहीं था। इस प्रकार, विद्वान अधिवक्ता का यह निवेदन कारणहीन है। वैकल्पिक तर्क को नकारा जाता है।

19. फिर भी, मेरा दृष्टिकोण है कि परिसीमा की अवधि अधिरोपित करने और ब्याज साहायिकी के दावा की अंतिम अस्वीकृति का परिणाम स्वयं औद्योगिक नीति को अकृत करने में हुआ है। मैंने पहले ही निष्कर्षित किया है कि परिसीमा अधिरोपित करते हुए और परिणामस्वरुप याची के दावा को अस्वीकार करते हुए राज्य सरकार द्वारा विरचित नियम विशेषकर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित सिद्धांतों की दृष्टि में शक्ति का अत्यधिक प्रयोग है।

20. इस प्रकार, मेरे दृष्टिकोण में और जैसा ऊपर कहा गया है, राज्य सरकार द्वारा छह माह की परिसीमा अधिरोपित करने वाला नियम प्रकटत: अत्यधिक विधान प्रतीत होता है और विशेषत: वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी सं॰ 3 द्वारा जारी दिनांक 24.12.2010 के मेमो सं॰ 2869 द्वारा परिसीमा की अवधि माफ करने से इनकार को अभिखंडित किया जाता है। झारखंड औद्योगिक प्रोत्साहन नियमावली, 2003 के खंड 4.3 (घ)1 और 2 को भी शून्यकृत किया जाता है क्योंकि यह झारखंड औद्योगिक नीति के विस्तार, आशय और कार्यक्षेत्र के परे है और याची के पक्ष में प्रोद्भूत मुख्य अधिकारों की कटौती करने के तुल्य है। प्रत्यर्थी सं॰ 3 को परिसीमा की अवधि के निरपेक्ष। ब्याज साहायिकी के प्रदान के लिए उसके समक्ष इस निर्णय की प्रमाणित प्रति की तिथि से छह माह की अवधि के भीतर ब्याज साहायिकी प्रदान करने के लिए याची के मामले का परीक्षण करने का निर्देश दिया जाता है।

तद्नुसार, रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है।

(FULL BENCH)

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k] vkjñ vkjñ çlkn ,o Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efrx.k

झारखंड राज्य, जिला भविष्य निधि अधिकारी, पलामू के माध्यम से

cuke

जिला उपभोक्ता फोरम, पलामू एवं एक अन्य

Writ Petition (Civil) No. 4075 of 2003. Decided on 17th February, 2012.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन एक आवेदन के मामले में।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986—धारा 2 (1) (o)—सामान्य भविष्य निधि नियमावली, 1948—नियम 4 एवं 11—जी॰ पी॰ एफ॰ नियमावली, 1948 के अधीन आच्छादित कर्मचारीगण उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 का सहारा नहीं ले सकते हैं–राज्य का कर्मचारी जो जी॰ पी॰ एफ॰ नियमावली, 1948 का लाभार्थी है, सी॰ पी॰ एक्ट की धारा 2(1) (0) के अर्थ के अंतर्गत विचार किए जाने के लिए सेवा नहीं पा रहा है। (पैरा 15)

निर्णयज विधि.–AIR 1996 SC 2519—Applied; AIR 2000 SC 331—Referred; (2010) 5 SCC 388—Relied.

अधिवक्तागण.–M/s A. Allam, Shrawan Kumar, For the Petitioner; M/s Rajeev Ranjan Tiwary, Saket Upadhyay, Amit Kumar Tiwary, For the Respondents.

न्यायालय द्वारा.–संक्षेप में तथ्य ये हैं कि प्रत्यर्थी सं॰ 2 मुखराज दूबे (इसके बाद कर्मचारी के रूप में निर्दिष्ट) राज्य सरकार के उत्पाद शुल्क विभाग से काँस्टेबल के रूप में सेवानिवृत्त हुआ। उसने जिला भविष्य निधि अधिकारी, पलामू के विरुद्ध जिला उपभोक्ता फोरम, डालटेनगंज, पलामू के समक्ष मामला दाखिल किया जिसे केस सं॰ 112 वर्ष 2000 के रूप में दर्ज किया गया था। उसका प्रतिवाद था कि सत्यापन पर उसने पाया कि वर्ष 1975-76 में 1462/- रुपयों का आरंभिक अतिशेष पर विवरण तैयार करने के लिए विचार नहीं किया गया था जिसने उसको 16,000/- रुपयों की हानि कारित किया। अतः, उसने आवश्यक शुद्धि और उक्त राशि के भुगतान के लिए प्रार्थना किया। दिनांक 27.8.2002 के आदेश द्वारा फोरम ने कर्मचारी की उक्त प्रार्थना को अनुज्ञात किया।

2. उपभोक्ता फोरम की अधिकारिता का प्रश्न फोरम के समक्ष नहीं उठाया गया था। किंतु, इस रिट याचिका को दाखिल करके ऐसा प्रश्न झारखंड राज्य (इसके बाद नियोक्ता के रूप में निर्दिष्ट) की ओर से उठाया गया था। यह रिट याचिका खंडपीठ द्वारा दिनांक 6.11.2003 को ग्रहण की गयी थी और अगले आदेशों तक उपभोक्ता फोरम का उक्त आदेश का प्रवर्तन स्थगित कर दिया गया था।

3. वर्तमान रिट याचिका खंडपीठ द्वारा सुनी गयी थी। नियोक्ता ने विधि के प्रावधानों और **उड़ीसा राज्य बनाम डिविजनल मैनेजर, एल॰ आई॰ सी॰ एवं एक अन्य, AIR 1996 SC 2519,** में निर्णय पर विश्वास करते हुए प्रतिवाद किया कि उपभोक्ता फोरम को प्रश्नगत विवाद ग्रहण और विनिश्चित करने की अधिकारिता नहीं थी।

4. दूसरी ओर, कर्मचारी ने प्रतिवाद किया कि उपभोक्ता फोरम के पास अधिकारिता थी। **क्षेत्रीय भविष्य निधि आयुक्त बनाम शिव कुमार जोशी, AIR 2000 SC 331,** में प्रकाशित निर्णय पर विश्वास किया था। **झारखंड राज्य बनाम जिला उपभोक्ता फोरम, डब्ल्यू॰ पी॰ एस॰ सं॰ 3144 वर्ष 2003,** में खंडपीठ द्वारा पारित दिनांक 18.11.2010 के आदेश पर भी विश्वास किया गया था जिसका पठन निम्नलिखित है:–

^^ekeyk iujhf{kr lph e luokb d fy, cyk;k x;k FkkA ;kph d fo}ku vfèkoDrk nlj jkmM e Hkh vuifLFkr jgA

geu çR;Fkh lO 3d fy, mifLFkr fo}ku vfèkoDrk Jh lrh'k dekj no dk luk gA

bl ekey e ijkxkQ 3e fojfpr ç'u eyr% ;g g fd D;k Hkfo"; fufèk d Hkxrku@xj Hkxrku d lcèk e nkok xg.k dju dh vfèkdkfjrk miHkkDrk Qkje dk FkhA

*{k=h; Hkfo"; fufèk dfe'uj cuke f'ko dekj tk'kh] AIR 2000 SC 331, d fu.k; e depkjh Hkfo"; fufèk ,o çdh.k micèk vfèkfu;e] 1952 d vèkhu ;g vfHkfuèkkfjr djr g, fd depkjh Hkfo"; fufèk ;k tuk d lcèk e ^^miHkkDrk** g vkj ;k tuk }kjk çnku lfoèkk, ^^lok,** g] çR;Fkh l0 3 d i{k e vkj ;kph jkT; d fo#) bl ç'u dk mÙkj fn;k x;k gA**

*'k"k mBk, x, ç'u rF;k d ç'u gA rnulkj] bl fjV ;kfpdk dk [kkfjt fd;k tkrk gA***

5. पक्षों द्वारा किए गए ऐसे निवेदनों की दृष्टि में और दिनांक 17.11.2011 के आदेश में दर्ज कारणों से निम्नलिखित प्रश्न पूर्णपीठ को निर्दिष्ट किया गया है:–

*^^D;k jkT; dk depkjh] tk fcgkj lkekU; Hkfo"; fufèk fu;ekoyh] 1948 (tls >kj[kM jkT; }kjk viuk;k x;k g) çfrQy d fy, lok ik jgk g vkj miHkkDrk lj{k.k vfèkfu;e dh èkkjk 2(1)(o) dh ifjHkk"kk d vrxr dku lok vkrh gA**

6. <u>निवेदन:</u>

नियोक्ता के लिए उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री अल्लम ने निवेदन किया कि कोई विवाद नहीं है कि पक्षगण भविष्य निधि अधिनियम और बिहार सामान्य भविष्य निधि नियमावली, 1948 (जैसा झारखंड राज्य द्वारा अपनाया गया है) (इसमें इसके बाद संक्षेप में जी॰ पी॰ एफ॰ नियमावली के रूप में निर्दिष्ट), जिसे भारत सरकार अधिनियम, 1935 जैसा भारत (अनंतिम संविधान) आदेश, 1947 द्वारा अपनाया गया है, की धारा 241 की उपधारा (2) के खंड (b) द्वारा प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में विरचित किया गया है, द्वारा मार्गदर्शित होते हैं।

भविष्य निधि स्थापन कर्मचारियों के लाभ के लिए राज्य सरकार द्वारा पोषित किया जा रहा है जिसमें उनको अपनी मासिक वेतन का निश्चित न्यूनतम योगदान करना होता है जो ब्याज के साथ वापस लौटा दी जाती है। कर्मचारी के कल्याण के लिए स्थापित ऐसा स्थापन चलाने के लिए कर्मचारियों पर कोई प्रभार/प्रतिफल उद्ग्रहित नहीं किया जाता है या उन्हें इसका भुगतान नहीं किया जाता है। उन्होंने निवेदन किया कि दोनों निर्णय अर्थात् **डिविजनल मैनेजर, एल॰ आई॰ सी॰ (ऊपर)** और **शिव कुमार जोशी (ऊपर)** को सही रूप से विनिश्चित किया गया है किंतु वर्तमान मामले में **''डिविजनल मैनेजर एल॰ आई॰ सी॰ (उपर)** का निर्णय प्रयोज्य है जबकि **शिव कुमार जोशी (उपर)** का निर्णय प्रयोज्य नहीं है। उन्होंने आगे निवेदन किया कि उक्त रिट याचिका अर्थात् **डब्ल्यू॰ पी॰ एस॰ सं॰ 3144/2003** में राज्य की ओर से कोई उपस्थित नहीं हो सका था और इस रिट याचिका में उठाए गए प्रतिवादों को प्रचारित नहीं किया जा सका था और इसके अतिरिक्त **डिविजनल मैनेजर एल॰ आई॰ सी॰ (उपर)** का निर्णय प्रस्तुत नहीं किया जा सका था। उन्होंने आगे निवेदन किया कि उक्त रिट याचिका अर्थात् डब्ल्यू॰ पी॰ एस॰ सं॰ 3144/2003 में पारित उक्त आदेश अनवधानता के कारण था। उन्होंने यह भी निवेदन किया कि सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों का पठन अंतर्ग्रस्त तथ्यों के संदर्भ में करना होगा।

7. दूसरी ओर, कर्मचारी के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री आर॰ आर॰ तिवारी ने **शिव कुमार जोशी (ऊपर)** के निर्णय पर विश्वास करते हुए निवेदन किया कि भविष्य निधि नियमावली के अधीन भविष्य निधि स्थापन को पोषित करने में राज्य सरकार द्वारा उपगत व्यय प्रतिफल समझा जाएगा और, इसलिए, भविष्य निधि के संबंध में विवाद विनिश्चित करने की अधिकारिता उपभोक्ता फोरम को थी/है।

8. उत्तर में, श्री अल्लम ने निवेदन किया कि यदि श्री तिवारी के निवेदन को स्वीकार किया जाता है, तब पेंशन, उपदान, अवकाश नगदीकरण, भविष्य निधि, आदि के लिए समस्त विवादों के लिए सरकारी विभागों को पोषित करने में राज्य सरकार द्वारा उपगत व्यय प्रतिफल समझा जाएगा, जो विधानमंडल का आशय नहीं है। उन्होंने उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 की धारा 2(1)(o) को निर्दिष्ट किया जिसमें प्रावधानित किया गया है कि निःशुल्क अथवा निजी सेवा की संविदा के अधीन सेवा दिया जाना सेवा से अपवर्जित किया गया है जैसा उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम में परिभाषित किया गया है।

9. विधि के प्रासंगिक प्रावधान–

पक्षों के बीच विवाद नहीं है कि भविष्य निधि अधिनियम, 1925 और सामान्य भविष्य निधि नियमावली, 1948 इस मामले में नियोक्ता राज्य और इसके कर्मचारियों पर प्रयोज्य हैं।

miHkkDrk lj{k.k vfèkfu;e] 1986

*"2.(1)(d). ^^miHkkDrk** l , lk dkb 0;fDr vfHkir g tk&*

(i) .....

*(ii) fdlh , l i;ktu ;k mi;kx d fy, ftldk lnk; fd;k x;k g opu fd;k x;k g ;k Hkkxr% lnk; fd;k x;k g vkj Hkkxr% opu fn;k x;k g] ;k fdlh vkLFkfxr lnk; dh i)fr d vèkhu lokvk dk HkkM ij yrk g vkj bld vUrxr , l fdlh 0;fDr l fHkUu tk , l fdlh ifrQy ;k mi;kx d fy, ftldk lnk; fd;k x;k g vkj opu fn;k x;k g vkj Hkkxr% lnk; fd;k x;k g vkj Hkkxr% opu fn;k x;k g ;k fdlh vkLFkfxr lnk; dh i)fr d vèkhu lokvk dk HkkM ij yrk g , lh lokvk dk dkb fgrkfèkdkjh Hkh g tc , lh lokvk dk mi;kx iFke of.kr 0;fDr d vueknu l fd;k tkrk gA ijUr fdlh 0;fDr dk 'kkfey ugh djrk tk , lh lokvk dk fdlh okf.kfT;d i;ktu d fy; yrk gA**

.....

*(o) ^^lok** l fdlh Hkh idkj dh dkb lok vfHkir g tk mld lHkkfor i;kxdÙkkvk dk miyCèk djkb tkrh g ijUr lhfer u gkxh vkj bld vrxr cddkjh] foÙkik"k.k] chek] ifjogu] ilLdj.k] fo|r ;k vU; Åtk d ink;] ckM ;k fuokl vFkok nkuk xg fuek.k eukjtu] vkekn&iekn ;k lekpkj ;k vU; tkudkjh igpku d lcèk e lfoèkkvk dk icèk Hkh g fdUr bld vUrxr fu%'kYd ;k 0;fDrxr lok lfonk d vèkhu lok dk fd;k tkuk ugh gA** (tkj fn;k x;k)*

fcgkj lkekU; Hkfo"; fufèk fu;ekoyh] 1948

jkT; ljdkj vfèklpuk %

Hkkjr d lfoèkku d vuPNn] 309 }kjk çnÙk 'kfDr;k d ç;kx e fcgkj d jkT;iky fcgkj Hkfo"; fufèk fu;ekoyh e fuEufyf[kr l'kkèkuk dk djr g vFkkr

(2) fu;ek 4, 11 (1) (b) vkj 11 (4) d oreku çkoèkkuk dk fuEufyf[kr }kjk Øe'k% çfrLFkkfir fd;k tk jgk g%

(i) fu;e 4.—LFkk;h i'ku ;kX; vkj xj i'ku ;kX; lok (ifjoh{kd lfgr) e leLr ljdkjh lodk vkj mu vLFkk;h ljdkjh lodk (iufu;kftr i'kuèkkjdk lfgr)] ftUgku , d o"k dh lok ijh dj yh g vkj ftudh lok dh 'krk dk voèkkfjr dju d fy, jkT; ljdkj l{ke g] dk U;ure çfrJfr djuk gkxkA

leLr ljdkjh lodk dk vodk'k] çfrLFkkiu vkj fon'k lok d nkjku U;ure fofgr nj çfrJr djuk gkxkA

(ii) fu;e 11 (1)(b).— leLr xj&jkt if=r ljdkjh lodk dk viu ekfld ikfjJfed dk 10% dh nj ij U;ure ekfld çfrJfr dk"k d fy, çfrJr dju dh vkj leLr jkt if=r ljdkjh lod dk viu ikfjJfed d 12% dh nj ij çfrJr dju dh vko';drk gkxhA çfrJfr dh mijh lhek ugh gkxhA

*(iii) fu;e 11(4).—bl çdkj fu;r çfrJfr dh jkf'k ij o"k rd vifjofrr cuh jgxhA vfHknkrk o"k d chp e vfHknk; dh jkf'k dk viu fodYi ij c<k ldrk g fdr ml o"k d chp e vfHknk; dh jkf'k dk ?kVku dk fodYi ugh gkxkA***

10. चर्चा :

हम नियोक्ता की ओर से किए गए प्रतिवादों में बल पाते हैं। कर्मचारी की ओर से किया गया निवेदन कि भविष्य निधि स्थापन को पोषित करने में राज्य सरकार द्वारा उपगत व्यय प्रतिफल समझा जाएगा, स्वीकार्य नहीं है। प्रथमत:, प्रश्नगत जी॰ पी॰ एफ॰ नियमावली में कोई प्रभार/प्रतिफल प्रभारित करने का प्रावधान नहीं है। द्वितीयत:, यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि राज्य सरकार कर्मचारियों द्वारा जमा किए गए योगदानों में से कोई प्रतिफल प्रभारित, प्राप्त कर रही थी। जबकि कर्मचारी भविष्य निधि एवं प्रकीर्ण उपबंध अधिनियम, 1952 और उसके अधीन विरचित योजना (संक्षेप में ई॰ पी॰ एफ॰ अधिनियम और योजना) के अधीन आच्छादित कर्मचारियों के मामले में भविष्य निधि स्थापन पोषित करने के लिए उपगत प्रशासनिक व्यय की पूर्ति के लिए प्रशासनिक प्रभारों को प्रभारित करने का स्पष्ट प्रावधान है। (कृपया कर्मचारी भविष्य निधि योजना, 1952 के पैराग्राफों 30 और 38 को देखें)

11. डिविजनल मैनेजर, एल॰ आई॰ सी॰ (उपर) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अन्य बातों के साथ निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया:–

*^^ifjHkk"kk dk iBu n'kk,xk fd ml vèkhu vuè;kr lok, ml vèkhu mfYyf[kr vioftr lokvk d flok; vfèkfu;e d vFk d vrxr lok, gA vioftr lok, ^^fuh'kYd lok vFkok lfonk d vèkhu futh lok** gA futh lok dh lfonk dh voèkkj.kk ij bfM;u efMdy , lkfl,'ku cuke ih0 lFkk] (1995)6 SCC 651, e bl U;k;ky; d gky d fu.k; e fopkj fd;k x;k FkkA ml le bl U;k;ky; u vfHkfuèkkfjr fd;k Fkk fd vfHk0;fDr ^^futh lok** dk lKkr fofèkd y{k.kkFk g vkj fofufn"V vurk"k vfèkfu;e d vèkhu , lh lfonk dk çoru bfllr dju d vfèkdkj d lnHk e bldk vFk yxk;k x;k gA ml ç;ktu l futh lok dh lfonk dk flfoy lod] diuh d euftx , tVk vkj fo'ofo|ky; d 0;k[;krkvk dk vkPNkfnr djr g, vfHkfuèkkfjr fd;k x;k gA futh lok dh lfonk gk ldrh g ;fn MkDVj vkj mldh lokvk dk ykHk yu d chp ekfyd vkj ukdj dk lcèk g vkj ml fLFkfr e MkDVj }kjk viu depkjh dk nh x;h lok mDr ifjHkk"kk d viotudkjh [kM I d QyLo#i vfèkfu;e dh èkkjk 2(1)(o) d vèkhu vfHk0;fDr d dk;{k= l vioftr dh tk,xhA vU; vioftr lok fuh'kYd nh x;h lok gA*

*7. ;g fookfnr ugh g fd çR;Fkh ljdkjh lod Fkk vkj bl fy, og lok 'krk l ckè; Fkk vkj jkT; çfrokn dj jg çR;Fkh dk fu"kYd lok, n jgk FkkA mu ifjfLFkfr;k d vèkhu ljdkjh lod dk vfèkfu;e d vèkhu jkT; d fo#) fdlh udlkuh dk nkok dju d fy, vfèkfu;e d dk; {k= e vioftr fd;k x;k gA vr%] ;fn çfrokn dj jg çR;Fkh dk dkb nkok mnHkr gkrk g] ml fdlh vU; Qkje e] fdr vfèkfu;e d vèkhu ugh] nkok dju dh NV gkxhA ;fn nkok ifjlhek }kjk oftr g] li.k dk;okgh d nkjku yx le; dk vioftr dj fn;k tk,xkA*** *(tkj fn;k x;k)*

12. डिविजनल मैनेजर, एल॰ आई॰ सी॰ (उपर) के निर्णय पर **शिव कुमार जोशी (उपर)** मामले में गौर किया गया था। किंतु **शिव कुमार जोशी (उपर)** के मामले में यह पाया गया था कि नियोक्ता प्रशासनिक प्रभार का भुगतान कर रहा था जैसा कर्मचारी भविष्य निधि एवं प्रकीर्ण उपबंध अधिनियम, 1952 की योजना के पैराग्राफ 30 के अधीन प्रावधानित किया गया है और, इसलिए, अभिनिर्धारित किया गया था कि ई॰ पी॰ एफ॰ अधिनियम और योजना के अधीन संबंधित कर्मचारी द्वारा उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के प्रावधानों का अवलंब लिया जा सकता है। 'उपभोक्ता' की परिभाषा की दृष्टि में यह भी अभिनिर्धारित किया गया था कि भले ही नियोक्ता द्वारा प्रशासनिक प्रभार/प्रतिफल का भुगतान किया जाता है, इसे कर्मचारी को दी गयी सेवा के विरुद्ध प्रतिफल समझा जाएगा और इसलिए ऐसा विवाद विनिश्चित करने की अधिकारिता उपभोक्ता फोरम को थी। (कृपया पैराग्राफों 9 और 12 देखें)। यह सुनिश्चित अवस्था है कि निर्णयों का पठन मामले में सामने आने वाले तथ्यों और परिस्थितियों के संदर्भ में करना होगा और उनका पठन संविधियों के रूप में नहीं करना होगा। **(कृपया गोअन रियल एस्टेट एण्ड कंस्ट्रक्शन लिमिटेड बनाम भारत संघ, (2010)5 SCC 388**, को पैराग्राफ 30 देखें)

13. <u>निष्कर्ष</u>

मामले का सावधानीपूर्वक परीक्षण करने और पक्षों को सुनने के बाद हमारे दृष्टिकोण में **डिविजनल मैनेजर, एल॰ आई॰ सी॰ (उपर)** का मामला वर्तमान मामले पर पूरी तरह लागू होता है और न कि **शिव कुमार जोशी (उपर)** का मामला और इसलिए सम्मानपूर्वक हम अभिनिर्धारित करते हैं कि **डब्ल्यू॰ पी॰ एस॰ सं॰ 3144/2003** में पारित दिनांक 11.11.2010 के आदेश का बाध्यकारी प्रभाव नहीं है।

14. हम उस तरीके पर अपनी अप्रसन्नता जाहिर करते हैं जिस प्रकार राज्य ऐसे महत्वपूर्ण मामले में न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं होने में **डब्ल्यू॰ पी॰ एस॰ सं॰ 3144/2003** का संचालन किया और तद्द्वारा न्यायालय का बहुमूल्य समय नष्ट किया।

15. परिणामस्वरुप, इस पीठ को निर्दिष्ट उक्त प्रश्न का नकारात्मक उत्तर दिया जाता है अर्थात राज्य का कर्मचारी, जो बिहार सामान्य भविष्य निधि नियमावली, 1948 (जैसा झारखंड राज्य ने अपनाया है) का लाभार्थी है, उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 की धारा 2(1)(o) के अधीन 'सेवा' के अर्थ के अंतर्गत प्रतिफल के लिए सेवा नहीं पा रहा है। दूसरे शब्दों में, अभिनिर्धारित किया जाता है कि जी॰ पी॰ एफ॰ नियमावली, 1948 के अधीन आच्छादित कर्मचारी उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 का सहारा नहीं ले सकते हैं।

16. श्री आल्लम और श्री तिवारी सहमत हुए कि इस मामले को खंडपीठ को वापस भेजना आवश्यक नहीं है।

17. परिणामस्वरुप, यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है। दिनांक 27.8.2002 का उपभोक्ता फोरम का आक्षेपित निर्णय अपास्त किया जाता है।

ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k ,o vij'k dekj flg] U;k;efr

फादर मुरगुनी मिशन, फादर क्लॉडियस टाओरो के माध्यम से एवं एक अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

L.P.A. No. 61 of 2012. Decided on 19th March, 2012.

बिहार एवं उड़ीसा लोक मांग वसूली अधिनियम, 1914—धारा 9—भारत का संविधान–अनुच्छेद 226—प्रमाणपत्र कार्यवाही–प्रमाणपत्र अधिकारी की आपत्ति अस्वीकार किया जाना–अपील करने के वैकल्पिक उपचार की उपलब्धता की दृष्टि में एकल न्यायाधीश द्वारा रिट याचिका खारिज–वैकल्पिक उपचार की उपलब्धता न्यायालय के विरुद्ध वर्जना नहीं है किंतु यह स्व-निर्बंधन का सिद्धांत है–भले ही रिट याची की रिट याचिका पोषणीय है, न्यायालय रिट याचिका ग्रहण नहीं कर सकता है–अपील खारिज। (पैराएँ 2, 4 एवं 5)

अधिवक्तागण.–Mr. Bijay Kishore Prasad, For the Appellants; Mr. Ajit Kumar, For the Respondents.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. दिनांक 13.9.2011 को नोटिस जारी करके वर्ष 1999 में प्रमाण पत्र कार्यवाही आरंभ की गयी थी। याची ने उपायुक्त, दुमका के न्यायालय में पुनरीक्षण आर॰ एम॰ आर॰ सं॰ 21/07-08 दाखिल करके प्रमाणपत्र कार्यवाही को चुनौती दिया जिसे दिनांक 9.9.2009 के आदेश के तहत उपायुक्त, दुमका द्वारा खारिज कर दिया गया था। तब याची ने पुनः इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका डब्ल्यू॰ पी॰ (एल॰) सं॰ 1172 वर्ष 2010 दाखिल करके उसी प्रमाण पत्र कार्यवाही को चुनौती दिया जिसे यह संप्रेक्षित करने के बाद कि इस तथ्य की दृष्टि में कि प्रमाणपत्र अधिकारी याची द्वारा की गयी आपत्ति को विनिश्चित कर सकता है, न्यायालय रिट अधिकारिता में मामले में हस्तक्षेप करने का इच्छुक नहीं है, दिनांक 14.5.2010 के आदेश के तहत निपटाया गया था। इस न्यायालय ने यह भी संप्रेक्षित किया कि याची को रिट याचिका डब्ल्यू॰ पी॰ (एल॰) सं॰ 1172 वर्ष 2010 में किए गए अभिवचन को करते हुए प्रमाण पत्र अधिकारी के समक्ष लोक मांग वसूली अधिनियम की धारा 9 के अधीन आपत्ति दाखिल करने की स्वतंत्रता होगी। यह आदेश भी दिया गया था कि प्रमाण पत्र अधिकारी याची की उक्त आपत्ति पर इसके गुणागुण पर विचार करेगा और तत्पश्चात विधि के अनुरूप समुचित तार्किक आदेश पारित करेगा। दिनांक 23.9.2011 को प्रमाण पत्र अधिकारी ने याची की आपत्ति अस्वीकार करते हुए आदेश पारित किया। उस आदेश से व्यथित होकर याची ने इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका डब्ल्यू॰ पी॰ (एल॰) सं॰ 6818 वर्ष 2011 दाखिल किया जिसे विद्वान एकल न्यायाधीश ने दिनांक 18.1.2012 के आदेश के तहत यह अभिनिर्धारित करते हुए कि आदेश अपील करने योग्य है, खारिज कर दिया था और इसलिए, रिट याचिका को ग्रहण करने से इनकार कर दिया।

3. याची के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि इस न्यायालय की खंडपीठ ने एक अन्य मामले में अभिनिर्धारित किया कि प्रमाणपत्र कार्यवाही में पारित आदेश को चुनौती देने वाली रिट याचिका पोषणीय है।

4. प्रमाण पत्र कार्यवाही और इसके आरंभ किए जाने को चुनौती देने के लिए रिट याची की याचिका को इस न्यायालय द्वारा डब्ल्यू॰ पी॰ (एल॰) सं॰ 1172 वर्ष 2010 में पारित दिनांक 14.5.2010 के आदेश के तहत ग्रहण नहीं किया गया था और विद्वान एकल न्यायाधीश के उस आदेश को रिट याची द्वारा चुनौती

नहीं दी गयी थी जिसने अंतिमता प्राप्त कर लिया। अत:, उस आदेश की दृष्टि में, याची का यह कहना सही नहीं है कि अपील के प्रभावशाली वैकल्पिक उपचार के बावजूद याची की रिट याचिका पोषणीय है। यह सुनिश्चित विधि है कि वैकल्पिक उपचार की उपलब्धता न्यायालय के विरुद्ध वर्जना नहीं है किंतु यह स्व-निर्बंधन का सिद्धांत है और इसलिए, भले ही याची की रिट याचिका पोषणीय हो, न्यायालय मामले के तथ्यों में और इस मामले में, विशेषत: विद्वान एकल न्यायाधीश के दिनांक 14.5.2010 के आदेश की दृष्टि में रिट याचिका ग्रहण नहीं कर सकता है।

5. उक्त कारणों की दृष्टि में, हम अभिनिर्धारित करते हैं कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने विधि की कोई गलती नहीं की है और इस एल॰ पी॰ ए॰ में गुणागुण नहीं है जिसे तद्नुसार खारिज किया जाता है।

6. किंतु, यदि याची प्रावधानों के अधीन अपील दाखिल करना चाहता है, वह विलंब माफ करने के लिए आवेदन के साथ अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष अपील दाखिल कर सकता है जिस पर अपीलीय प्राधिकारी द्वारा सहानुभूतिपूर्वक विचार किया जा सकता है।

---

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efrx.k

पंचू मरांडी

cuke

बिहार राज्य (अब झारखंड)

Cr. Appeal D.B. No. 525 of 2000. Decided on 1st March, 2012.

सत्र विचारण सं॰ 148/98/16/98 में अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, पाकुड़ द्वारा पारित क्रमश: दिनांक 24.8.2000 और 25.8.2000 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 302—हत्या–आजीवन कारावास अधिनिर्णीत–घटना भूमि विवाद से संबंधित–मृतक को अपीलार्थी के घर में पाया गया था और घटना के तुरन्त पहले जीवित देखा गया था–अभियोजन साक्षियों ने घटना के तुरन्त बाद अपीलार्थी को घटना स्थल से भागते हुए देखा था और उन्होंने मृतक को खून बहने की उपहति के साथ मृत पाया था–मात्र इसलिए कि कुछ अन्य व्यक्ति भी मदिरा सेवन के लिए कुछ अवसरों पर अपीलार्थी के घर आया करते थे, यह विश्वास नहीं किया जा सकता है अपीलार्थी से भिन्न कुछ अन्य व्यक्ति मृतक की हत्या कर सकते थे–केवल इस आधार पर कि प्रहार के हथियार को न्यायालयिक परीक्षण के लिए नहीं भेजा गया था, अभियोजन मामले की उपेक्षा नहीं की जा सकती है–आक्षेपित निर्णय अभिपुष्ट–अपील खारिज। (पैराएँ 5 एवं 6)

अधिवक्तागण.–Mr. Ashish Verma, For the Appellant; Mr. Amaresh Kumar, For the State.

न्यायालय द्वारा.–यह अपील सत्र विचारण सं॰ 148/98/16/98 में अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध करते हुए और उसको कठोर आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश देते हुए अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, पाकुड़ द्वारा पारित क्रमश: 24.8.2000 और 25.8.2000 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध निर्देशित है।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि होपना मरांडी (अ॰ सा॰ 11) ने दिनांक 13.10.1997 को दोपहर लगभग 1 बजे पुलिस के समक्ष फर्दबयान दिया कि प्रात: लगभग 10 बजे उसका बड़ा भाई

बाबूराम मरांडी (मृतक) बाबूलाल मरांडी के साथ सूचक पक्ष और अपीलार्थी के बीच भूमि विवाद के बारे में बात करने अपीलार्थी के घर गया। कुछ समय बाद, अ॰ सा॰ 5 वापस लौट आया। बाबूराम मरांडी (मृतक) अपीलार्थी के घर में रुका रहा। प्रातः लगभग 11 बजे सूचक ने अपीलार्थी के घर से ''बचाओ, बचाओ'' का शोर सुना। तब सूचक अ॰ सा॰ 8 और 9 के साथ अपीलार्थी की घर की ओर दौड़ा। उन्होंने अपीलार्थी को भागते देखा। जब सूचक पक्ष घर के अंदर गया, उन्होंने बाबूराम मरांडी को गर्दन सहित खून बहने की उपहति के साथ मृत पाया। सूचक ने अन्य के साथ अपीलार्थी का पीछा किया किंतु वह भाग गया। चौकीदार को मामला रिपोर्ट किया गया था। अभिकथित किया गया था कि चल रहे भूमि विवाद के कारण अपीलार्थी ने मृतक की हत्या कर दी थी।

3. अपीलार्थी के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री आशीष वर्मा ने आक्षेपित निर्णय का विरोध करते हुए निम्नलिखित निवेदन किया।

किसी ने वास्तविक प्रहार नहीं देखा है। प्रहार के हथियार को रासायनिक विश्लेषण अथवा उस पर उंगली के निशान के परीक्षण के लिए नहीं भेजा गया था। साक्ष्यों में तात्विक विरोधाभास हैं। अपीलार्थी लगभग 14 वर्षों से कारावास में रह रहा है और अब तक उसकी आयु लगभग 60 वर्ष की हो चुकी होगी।

4. दूसरी ओर, राज्य के अधिवक्ता ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया।

5. अभियोजन ने 12 गवाहों का परीक्षण किया है। अ॰ सा॰ 1, 2, 4, 5, 6 और 7 को पक्षद्रोही घोषित किया गया है। अ॰ सा॰ 3 डॉक्टर है जिन्होंने मृतक के शरीर पर तेजधार वाले हथियार द्वारा कारित छह तेज कटने की उपहतियाँ पायी और मृत्यु का कारण उक्त उपहतियों से हुआ आघात और हेमरेज था। अ॰ सा॰ 8 और 9 प्राथमिकी में नामित गवाह हैं जो सूचक अ॰ सा॰ 11 के साथ अपीलार्थी के घर गए थे। उन्होंने अभियोजन मामले का पूरा समर्थन किया। सूचक ने फर्दबयान में कहा कि मृतक अ॰ सा॰ 5 के साथ भूमि विवाद के बारे में बात करने गया था। मृतक को अपीलार्थी द्वारा बुलाया गया था अथवा वह स्वयं अपीलार्थी के घर गया था, प्रासंगिक नहीं है। अ॰ सा॰ 8, 9, 10 और 11 ने विनिर्दिष्टतः कहा कि उन्होंने अपीलार्थी को घटना के तुरन्त बाद घटना स्थल से भागते देखा और मृतक को खून बहने की उपहति के साथ मृत पाया। केवल इसलिए कि कुछ अन्य व्यक्ति भी मदिरा सेवन के लिए कुछ अवसरों पर अपीलार्थी के घर जाते थे, यह विश्वास नहीं किया जा सकता है कि अपीलार्थी से भिन्न कुछ अन्य व्यक्तियों ने मृतक की हत्या की थी। झूठा आलिप्त किया जाना दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है। मृतक को अपीलार्थी के घर में पाया गया था। उसे घटना के तुरन्त पहले जीवित देखा गया था। मृतक के शोर मचाने पर, गवाहों में से कुछ घटनास्थल पर पहुँचे जहाँ से अपीलार्थी भाग रहा था। ऐसी परिस्थितियों में, यदि प्रहार का हथियार न्यायालयिक परीक्षण के लिए नहीं भेजा गया था, तो भी अभियोजन मामले की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। किसी भी स्थिति में इस मामले में अन्वेषण की ऐसी कमी के लिए अभियोजन मामले पर अविश्वास नहीं किया जा सकता है।

6. पक्षों को विस्तारपूर्वक सुनने और अभिलेख का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने के बाद हमारे मत में अभियोजन समस्त युक्ति-युक्त संदेहों के परे अपीलार्थी के विरुद्ध अपना मामला सिद्ध करने में समक्ष हुआ है।

आक्षेपित निर्णय में हस्तक्षेप के लिए कोई आधार नहीं बनाया गया है। तद्नुसार, इस अपील को खारिज किया जाता है।

ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k ,o vij'k dekj flg] U;k;efr

शिव शंकर यादव उर्फ लक्ष्मण जी उर्फ विकास जी उर्फ शिवशंकर कुमार यादव उर्फ लक्ष्मण यादव

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (HB)(Cr.) No. 368 of 2011. Decided on 12th March, 2012.

झारखंड अपराध नियंत्रण अधिनियम, 2002—धाराएँ 12 (1) तथा 12A—निरोध–निरोध आदेश दंड का आदेश नहीं है और इसे व्यक्ति विशेष के तथ्यों की संपूर्णता से हुई आशंका के आधार पर पारित किया जाता है–याची को निरोध आदेश पारित करने के कारणों की आपूर्ति की गयी थी–आदेश पारित करने के ताथ्यिक आधार प्राधिकारी के समक्ष थे–भले ही अनेक हत्याओं का अभिकथन अविद्यमान है, ऐसे आदेश को मात्र इसलिए अवैध और अप्रवर्तनीय नहीं समझा जाएगा क्योंकि एक अथवा कुछ आधार अस्पष्ट अथवा अविद्यमान है–धारा 12A में विनिर्दिष्ट आधारों की अनुपस्थिति में भी निष्कर्ष निकालने के लिए युक्तियुक्त कारण अस्तित्व में थे–अभिलेख पर उपलब्ध कोई सामग्री नहीं दर्शाती है कि याची प्रासंगिक समय पर अवयस्क था–याचिका खारिज। (पैराएँ 7 से 11)

निर्णयज विधि.–2012(1) JLJ 193 (SC) : 2012(1) JLJR (SC) 271—Distinguished.

अधिवक्तागण.–M/s. J.S. Singh, A.K. Pandey, For the Appellant; Mr. A. Kumar, For the Respondent.

आदेश

पक्षों को सुना गया।

2. दिनांक 3 मई, 2011 के निरोध आदेश और दिनांक 12 मई, 2011 के संपुष्टि आदेश को चुनौती देते हुए याची ने निवेदन किया कि उसे कोई कारण बताए बिना दिनांक 3 मई, 2011 के आदेश, परिशिष्ट–1 द्वारा निरुद्ध किया गया था और आदेश से प्रकट है कि प्राधिकारी जिसने आक्षेपित आदेश पारित किया था के समक्ष तात्विक तथ्य नहीं थे। यह भी निवेदन किया गया है कि केवल परिशिष्ट–1 की प्रति की आपूर्ति रिट याची को की गयी थी और इसलिए आधार, जैसा प्रत्यर्थीगण द्वारा रिट याचिका के उत्तर के साथ संलग्न आदेश में प्रकट किया गया है, रिट याची को ज्ञात नहीं थे और झारखंड अपराध नियंत्रण अधिनियम, 2002 की धारा 27 के आज्ञापक प्रावधान के मुताबिक निरोध के आधारों को बन्दी पर तामील करने की आवश्यकता है और पूर्वोक्त कारणों की दृष्टि में निरोध आदेश, परिशिष्ट–1 और संपुष्टि आदेश जिसे यांत्रिक रूप से दिनांक 12 मई, 2011 को पारित किया गया है, दोनों अपास्त किए जाने योग्य है। यह भी निवेदन किया गया है कि निरोध आदेश से भी, जिसे प्रत्यर्थीगण द्वारा प्रतिशपथ पत्र के साथ अभिलेख पर प्रस्तुत किया गया है, यह स्पष्ट है कि प्राधिकारी, जिसने झारखंड अपराध नियंत्रण अधिनियम, 2002 की धारा 12 (1) और 12 (A) के अधीन निरोध आदेश पारित किया था, ने पूर्णत: अविद्यमान और अप्रासंगिक तथ्यों को विचार में लिया और इस आशंका पर आदेश पारित किया कि याची, जो पाँच दांडिक मामलों के संबंध में पहले से ही कारा में है, को जमानत पर निर्मुक्त किया जा सकता है और तब वह उसी अपराध को कर सकता है और प्राधिकारी द्वारा निकाला गया–ऐसा निष्कर्ष आधारहीन है।

3. याची के विद्वान अधिवक्ता ने **युम्मन ओंगबी लेंबी लाइमा बनाम मणिपुर राज्य एवं अन्य,** 2012 (1) JLJR (SC) 271 **[: 2012 (1) JLJ 193 (SC)],** मामले में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास करते हुए निवेदन किया कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उसमें अभिनिर्धारित किया कि इस बात की आशंका कि बंदी पहले रजिस्टर्ड किए गए मामले में जमानत पर निर्मुक्त किया जा सकता है, स्वयं में निरोध आदेश पारित करने का आधार नहीं हो सकता है।

4. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों पर विचार किया और मामले के तथ्यों का परिशीलन किया। हमने रिट याची द्वारा किए गए अपराध के बारे में उपायुक्त, लातेहार को सब-डिविजनल पुलिस अधिकारी द्वारा दिनांक 15 नवंबर, 2010 को भेजी गयी अनुशंसा का भी परिशीलन किया। सब-डिविजनल पुलिस अधिकारी ने मामलों जो रिट याची के विरुद्ध लंबित थे, का विवरण दिया और वे हैं–(i) पनकी पी॰ एस॰ केस सं॰ 120/08 जिसे भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 147/148/149/341/342/435/427/379/120 (b) के अधीन और आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन और सी॰ एल॰ ए॰ अधिनियम की धारा 17 के अधीन दिनांक 23 अक्टूबर, 2008 को दर्ज किया गया था; (ii) लातेहार पी॰ एस॰ केस सं॰ 62/09 जिसे भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 435/34 के अधीन और सी॰ एल॰ ए॰ अधिनियम की धारा 17 के अधीन दिनांक 12 मई, 2009 को दर्ज किया गया था; (iii) पनकी पी॰ एस॰ केस सं॰ 94/09 जिसे भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 395 के अधीन दिनांक 31 अगस्त, 2009 को दर्ज किया गया था; (iv) पनकी पी॰ एस॰ केस सं॰ 95/09 जिसे भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 147/148/149/353/364 (A)/379 के अधीन और सी॰ एल॰ ए॰ अधिनियम की धारा 17 के अधीन दिनांक 31 अगस्त, 2009 को दर्ज किया गया था और (v) लातेहार पी॰ एस॰ केस सं॰ 129/09 जिसे आयुध अधिनियम की धाराओं 25 (1-b)A/26/26 (2) के अधीन और सी॰ एल॰ ए॰ अधिनियम की धारा 17 के अधीन और यू॰ ए॰ अधिनियम की धारा 13 के अधीन दिनांक 19 सितंबर 2009 को दर्ज किया गया था। तब आरक्षी अधीक्षक ने दिनांक 20 नवंबर, 2010 के पत्र के तहत उपायुक्त, लातेहार से अनुरोध किया और तत्पश्चात् दिनांक 15 नवंबर, 2010 के रिपोर्ट पर विचार करने के बाद उपायुक्त, लातेहार द्वारा आक्षेपित आदेश पारित किया गया था। निरोध प्राधिकारी ने संप्रेक्षित किया कि याची प्रतिबंधित संगठन पी॰ एल॰ एफ॰ आई॰ का कुख्यात सब-जोनल कमांडर है जो लेवी के लिए क्षेत्र के लोगों को आतंकित कर रहा है और पी॰ एल॰ एफ॰ आई॰ के अवैध शक्ति प्रभुता को स्थापित करने और देश के कानून को चुनौती देने में लगा हुआ क्षेत्र में हुई अनेक हत्याओं का जिम्मेदार है। प्राधिकारी ने यह भी संप्रेक्षित किया कि याची असामाजिक तत्व है और इस तथ्य पर गौर किया कि वह लातेहार कारा में न्यायिक अभिरक्षा में है और तत्पश्चात, आशंका की गयी है कि यदि याची को जमानत पर रिहा किया जाता है, वह क्षेत्र में उन्हीं आपराधिक गतिविधियों को दोहराएगा।

5. इस प्रकार, आदेश पारित करने के लिए ताथ्यिक नींव प्राधिकारी के समक्ष बिल्कुल थी। किंतु, याची के विद्वान अधिवक्ता की आपत्ति यह है कि चूँकि प्राधिकारी ने पूर्णत: अप्रासंगिक और गलत तथ्यों को विचार में लिया क्योंकि इसने संप्रेक्षित किया कि याची अनेक हत्याओं का जिम्मेदार था जबकि मामलों के तथ्य प्रकट करते हैं कि वह किसी हत्या के मामले में कभी नहीं अंतर्ग्रस्त था। यह निवेदन भी किया गया है कि प्राधिकारी ने तुच्छ आधार पर आशंका जताया कि याची जमानत पर रिहा करने पर क्षेत्र में इन्हीं आपराधिक गतिविधियों को दोहराएगा।

6. जहाँ तक प्राधिकारी के इस संप्रेक्षण कि याची अनेक हत्याओं का जिम्मेदार था, का संबंध है, प्राधिकारी ने नहीं कहा है कि याची अनेक हत्याओं में अंतर्ग्रस्त था। अन्यथा भी, भले ही यह आधार अविद्यमान प्रतीत होता है, तब स्वयं झारखंड अपराध नियंत्रण अधिनियम, 2002 में सांविधिक प्रावधान अर्थात् धारा 12A है जिसमें धारा 12A (1) के उपखंड (a) के अधीन प्रावधानित किया गया है कि ऐसा

आदेश केवल इसलिए अवैध अथवा अप्रवर्तित नहीं समझा जाएगा क्योंकि आधारों में से एक अथवा कुछ (i) अस्पष्ट, (ii) अविद्यमान, (iii) अप्रासंगिक, (iv) ऐसे व्यक्ति के साथ संबंधित नहीं अथवा निकट रूप से संबंधित नहीं अथवा किसी भी अन्य कारण से अवैध है और तब यह प्रावधानित किया गया है कि इन आधारों पर यह अभिनिर्धारित करना संभव नहीं है कि ऐसे आदेश को पारित करने वाली सरकार अथवा अधिकारी शेष आधार अथवा आधारों, जैसा धारा 12 में प्रावधानित है के प्रति निर्देश में संतुष्ट नहीं था और निरोध आदेश पारित किया।

7. चाहे जो भी हो, धारा 12A में विनिर्दिष्ट आधारों की अनुपस्थिति में हमारा सुविचारित मत है कि ऐसा निष्कर्ष निकालने के लिए युक्तियुक्त कारणों का अस्तित्व बिल्कुल था। इस मोड़ पर, हम संप्रेक्षित कर सकते हैं कि निरोध आदेश दंड का आदेश नहीं है और इसे आशंका के आधार पर पारित किया जाता है और आशंका का निष्कर्ष व्यक्ति विशेष के तथ्यों की संपूर्णता से निकाला जाता है, जो उपदर्शित कर सकते हैं कि ऐसा निरोध उसको लोक व्यवस्था बनाए रखने के प्रतिकूल किसी तरीके से उसको रोकने के लिए आवश्यक है और यह भय करने का कारण है कि असामाजिक तत्वों की गतिविधियों को ऐसे व्यक्तियों की तुरन्त गिरफ्तारी के सिवाय अन्यथा रोका नहीं जा सकता है। अत:, स्वयं अधिनियम आशंका पर व्यक्ति को निरुद्ध करने के लिए अधिनियमित किया गया है और न कि दंडनीय अपराध के कारण।

8. जहाँ तक याची द्वारा दिए गए इस आधार का संबंध है कि उसे दिनांक 3 मई, 2011 के निरोध आदेश की प्रति की आपूर्ति नहीं की गयी है, जिसकी प्रति को प्रति शपथ पत्र के साथ परिशिष्ट–A के रूप में अभिलेख पर प्रस्तुत किया गया है, हम याची के निवेदन से संतुष्ट नहीं हैं कि उक्त प्रति की आपूर्ति नहीं की गयी थी। स्वयं रिट याची द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत परिशिष्ट–3 से प्रतीत होता है कि उसने न केवल निरोध के आधारों का उत्तर दिया बल्कि अभिव्यक्त रूप से उल्लिखित भी किया कि वह किसी आतंकवादी संगठन का सदस्य नहीं है और यह तथ्य दिनांक 3 मई, 2011 के पारिणामिक आदेश, परिशिष्ट–1 में नहीं है जिसे चुनौती देना इप्सित किया गया है बल्कि यह दिनांक 3.5.2011 को प्राधिकारी द्वारा पारित तार्किक आदेश में दिया गया कारण है। अत:, यह प्रतीत होता है कि निरोध आदेश, परिशिष्ट–3 पारित करने के लिए याची को कारणों की आपूर्ति की गयी थी। उक्त कारणों की दृष्टि में और तथ्यों पर याची किसी अनुतोष का हकदार नहीं है।

9. जहाँ तक **यूम्मन ओंगबी लेंबी लाइमा बनाम मणिपुर राज्य एवं अन्य (ऊपर)** के मामले में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का संबंध है, उस मामले के तथ्य पूर्णत: भिन्न हैं। उस मामले में, निरोध आदेश पारित करने के लिए 12 वर्ष पहले किए गए अपराध को विचार में लिया गया था और उस तथ्यपरक स्थिति में जमानत पर बंदी की निर्मुक्ति की आशंका पर भी विचार किया गया था। वर्तमान मामले में अपराध, जिन्हें रिट याची द्वारा किया गया है, वर्ष 2008 और 2009 से संबंधित है और स्वयं 2010 में निरोध अनुरोध किया गया था। अत:, वर्तमान मामले के तथ्य पूर्वोक्त मामले के तथ्य से पूर्णत: भिन्न हैं।

10. याची के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी निवेदन किया कि याची उस तिथि पर अवयस्क था जब अभिकथित अपराध किया गया था और अपराध की अभिकथित घटना के समय पर उसकी आयु विनिश्चित करने के लिए याची का मामला विचाराधीन है। यह निवेदन किया गया है कि निरोध आदेश जानबूझकर विलंब के बाद पारित किया गया है।

11. हम याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्क से आश्वस्त नहीं है कि याची प्रासंगिक समय पर जब अभिकथित घटना घटित हुई थी, अवयस्क था क्योंकि उस विवाद्यक को अभी भी विनिश्चित किया जाना है और द्वितीयत: यह गौर करना महत्वपूर्ण है कि रिट याची द्वारा प्रस्तुत प्रमाण पत्र के सिवाय

अभिलेख पर कोई सामग्री नहीं है कि वह प्रासंगिक समय पर अवयस्क था और यह झारखंड एकेडमिक काउन्सिल द्वारा प्रदान किया गया परीक्षा में उत्तीर्ण होने का प्रमाण पत्र है। इस विवाद्यक को रिट अधिकारिता में यहाँ विनिश्चित नहीं किया जा सकता है क्योंकि मामला समुचित प्राधिकारी के समक्ष लंबित है और इसलिए हम याची के विद्वान अधिवक्ता के निवेदन से संतुष्ट नहीं हैं कि निरोध आदेश विलंब के बाद केवल इसलिए पारित किया गया था क्योंकि आदेश पारित किए जाने के समय तक याची वयस्क हो जाएगा।

उक्त कारणों की दृष्टि में, याचिका में गुणागुण नहीं है और इसे खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; çkr dekj] U;k;efr

रवि रंजन चौधरी उर्फ डबिया

cuke

झारखंड राज्य

Cr. Revision No. 138 of 2012. Decided on 16th March, 2012.

किशोर न्याय (बालकों की देखरेख एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000—धारा 12—विधि के साथ संघर्षरत किशोर को जमानत–सत्र न्यायाधीश द्वारा जमानत देने से इनकार–जिला परिवीक्षा अधिकारी ने रिपोर्ट दिया है कि याची का दांडिक पूर्ववृत्त नहीं है और समाज में उसके परिवार की प्रतिष्ठा है–इस प्रकार, अपील की खारिजी धारा 12 के प्रावधान के विरुद्ध है–आक्षेपित निर्णय अपास्त और शर्तों के विरुद्ध जमानत प्रदान किया गया। (पैराएँ 2 से 4)

अधिवक्तागण.–Mr. Ajit Kumar Dubey, For the Petitioner; Mr. Ravi Prakash, For the State.

आदेश

यह पुनरीक्षण दांडिक अपील सं॰ 3 वर्ष 2012 में प्रधान सत्र न्यायाधीश, गढ़वा द्वारा पारित दिनांक 16.2.2012 के निर्णय के विरुद्ध निर्देशित है जिसके द्वारा उन्होंने अपील खारिज कर दिया और याची की जमानत की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया।

2. आक्षेपित निर्णय के परिशीलन से मैं पाता हूँ कि याची को प्राथमिकी में नामित नहीं किया गया था। आगे प्रतीत होता है कि जिला परिवीक्षा अधिकारी ने रिपोर्ट दिया है और उक्त रिपोर्ट में यह उल्लेख किया गया है कि याची का दांडिक पूर्ववृत्त नहीं है और समाज में उसके परिवार की अच्छी प्रतिष्ठा है। इसके बावजूद विद्वान अवर न्यायालय ने अपील खारिज कर दिया है जो मेरी दृष्टि में किशोर न्याय (बालकों की देखरेख एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000 की धारा 12 के प्रावधान के विरुद्ध है। अतः, उक्त निर्णय संपोषित नहीं किया जा सकता है।

3. तद्नुसार, मैं इस पुनरीक्षण आवेदन को अनुज्ञात करता हूँ और विद्वान प्रधान सत्र न्यायाधीश, गढ़वा द्वारा और किशोर न्याय बोर्ड, गढ़वा द्वारा भी पारित आक्षेपित निर्णय को अपास्त करता हूँ।

4. मैं अवर न्यायालय को मेरल पी॰ एस॰ केस सं॰ 50 वर्ष 2011, जी॰ आर॰ केस सं॰ 808 वर्ष 2011 के संबंध में किशोर न्याय बोर्ड, गढ़वा के संतुष्टि हेतु 10,000/- (दस हजार) रुपयों का जमानत बंध पत्र समान राशि की दो प्रतिभूतियों के साथ प्रस्तुत करने पर उक्त नामित याची को जमानत पर रिहा करने का निर्देश देता हूँ।

---

ekuuh; ihñ ihñ HkVV] U;k;efr

राजेश्वर प्रसाद

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 1932 of 2005. Decided on 5th March, 2012.

झारखंड सेवा संहिता, 2000—नियम 58 सह-पठित झारखंड वित्तीय नियमावली, 2000 का नियम 74—भूतलक्षी प्रभाव से प्रोन्नत कर्मचारी को प्रोन्नति से प्रोद्भूत होने वाले तात्विक लाभों से इनकार नहीं किया जा सकता है–याची स्थानापन्न आधार पर प्रभारी अधीक्षण अभियंता के रूप में अपनी पदस्थापना की तिथि से प्रोन्नत पद के लाभों का दावा कर रहा है–याची द्वारा किये गये वित्तीय लाभ के दावे को संपोषित किया जा सकता है–याचिका अनुज्ञात। (पैराएँ 8 से 11)

निर्णयज विधि.–1999 (1) PLJR 272; 2003 (2) PLJR 44—Relied on; (1998) 5 SCC 87—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. Manoj Tandon, For the Petitioner; Mr. Sunil Singh, For the Respondent Nos. 1 to 3; Mr. Ranjit Kumar, For the Respondent No.4.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता की सहमति से इस रिट याचिका को स्वयं ग्रहण करने के चरण पर ही निपटाया जा रहा है।

3. याची ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस रिट याचिका को दाखिल करके याची को दिनांक 26.9.1998 की अधिसूचना की दृष्टि में नियमित आधार पर अधीक्षण अभियंता के पद पर प्रोन्नत करने के लिए और दिनांक 6.10.98 के प्रभाव के साथ अर्थात् तिथि जब याची को प्रभारी अधीक्षक अभियंता, लोक स्वास्थ्य अभियांत्रिकी विभाग (अब पेयजल एवं सफाई विभाग के रूप में ज्ञात) के रूप में पदस्थापित किया गया था और उसने पदग्रहण किया था, उसके वेतनमान का भुगतान करने के लिए और दिनांक 6.10.98 के प्रभाव से अधीक्षण अभियंता के वेतनमान, जिसे वस्तुतः केवल दिनांक जनवरी, 2003 के प्रभाव के साथ याची को दिया गया है जबकि याची को अधिसूचना सं॰ 1/P-2101/ 2000-22 के फलस्वरुप दिनांक 1.7.1999 के प्रभाव के साथ नियमित प्रोन्नति दी गयी है जैसा दिनांक 4.1.2003 के मेमो सं॰ 24 में अंतर्विष्ट है, में याची को मानते हुए समस्त पारिणामिक लाभों के लिए भी प्रत्यर्थीगण को आदेश देते हुए परमादेश रिट जारी करने के लिए प्रार्थना किया है।

4. याची के विद्वान अधिवक्ता ने याचिका के परिशिष्ट-1 को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन किया कि याची को दिनांक 26.9.1998 के आदेश द्वारा प्रभारी अधीक्षण अभियंता के रूप में पदस्थापित किया गया था और उसके अनुसरण में उसने दिनांक 6.10.1998 को पदग्रहण किया था। आगे निवेदन किया गया है कि तत्पश्चात दिनांक 4 जनवरी, 2003 के आदेश द्वारा यद्यपि याची को इस याचिका के परिशिष्ट-4 के तहत दिनांक 1.7.1999 के प्रभाव के साथ नियमित प्रोन्नति दी गयी थी, याची को दिनांक 1.7.1999 के प्रभाव के साथ वेतन के वित्तीय लाभ नहीं दिया गया था। जहाँ तक प्रोन्नत पद के वित्तीय लाभ का संबंध है, इसे दिनांक 4 जनवरी, 2003 के प्रभाव के साथ भविष्यलक्षी रूप में प्रदान किया गया था। याची के विद्वान अधिवक्ता ने **सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 6167 वर्ष 1992** में **भीम सेन सिंह बनाम बिहार राज्य एवं एक अन्य** के मामले में दिए गए निर्णय पर विश्वास किया और इसे निर्दिष्ट किया और निवेदन

किया कि उक्त मामले में याची दिनांक 27.4.1989 के प्रभाव के साथ प्रभारी कार्यपालक अभियंता के रूप में कार्यरत था और उक्त मामले पर विचार करते हुए पटना उच्च न्यायालय ने संप्रेक्षित किया कि ''चूँकि समस्थित व्यक्तियों को सरकारी आदेश, जैसा परिशिष्ट–17 में अंतर्विष्ट है, के अधीन उस तिथि से जबसे वे प्रभारी के रूप में कार्यपालक अभियन्ता के कार्यों का निर्वहन कर रहे थे नियमित प्रोन्नति प्रदान की गयी है, हम कोई कारण नहीं पाते हैं कि याची को समरुप अनुतोष क्यों नहीं प्रदान किया जाना चाहिए।'' आगे निवेदन किया गया है कि **सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 596 वर्ष 1999 (R) (सज्जाद हसन एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य)** में भी उक्त निर्णय का अनुसरण किया गया था जिसमें राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने निष्पक्षत: स्वीकार किया कि यह मामला सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 6167 वर्ष 1992 में इस न्यायालय की खंडपीठ के दिनांक 28.3.1993 के निर्णय द्वारा पूर्णत: आच्छादित है और तद्नुसार इस रिट आवेदन को पूर्वोक्त निर्णय के निबंधनानुसार निपटाया गया था। याची के विद्वान अधिवक्ता ने परिशिष्ट–9 अर्थात् दिनांक 8/9.5.2003 की अधिसूचना को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन किया कि **सज्जाद हसन (ऊपर)** के मामले में किसी सज्जाद हसन, जिसे दिनांक 27.4.89 के प्रभाव के साथ प्रभारी कार्यपालक अभियन्ता के रूप में नियुक्त किया गया था, को दिनांक 4.12.1992 को नियमित प्रोन्नति दी गयी थी किंतु बाद में, सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 596/1999 में पारित आदेश के आलोक में दिनांक 27.4.1989 से उसको वित्तीय लाभ के साथ प्रोन्नति का वास्तविक प्रभाव दिया गया था। अर्थात् अधिष्ठायी पद पर प्रभारी के रूप में उसकी आरंभिक नियुक्ति की तिथि से। आगे निवेदन किया गया है कि वर्तमान मामले में, याची का मामला सज्जाद हसन के मामले के समरुप है और इसलिए, याची लाभ का पात्र और हकदार है जिसे सज्जाद हसन के मामले में दिया गया है। याची के विद्वान अधिवक्ता ने प्रत्यर्थी सं॰ 1 द्वारा दाखिल प्रतिशपथ पत्र के पैरा 5 को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन किया कि प्रत्यर्थी प्राधिकारीगण ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है कि याची को प्रभारी अधीक्षण अभियंता के रूप में पदस्थापित किया गया था और उसने दिनांक 6.10.98 को उक्त पद ग्रहण किया था और इसलिए, याची के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार दिनांक 6.10.1998 के प्रभाव से प्रभारी अधीक्षण अभियन्ता के रूप में पदग्रहण करने की तिथि के बारे में कोई विवाद नहीं है। उक्त शपथ पत्र के पैरा 6 को निर्दिष्ट करते हुए, याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि प्रत्यर्थी प्राधिकारीगण ने झारखंड सेवा संहिता के नियम 58 सहपठित झारखंड वित्तीय नियमावली के नियम 74 का आश्रय लिया है ताकि याची के दावा अस्वीकार किया जा सके किंतु प्रत्यर्थी राज्य का यह अभिवचन **रंजीत सहाय जमुआर एवं एक अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य,** 1999(1) PLJR 272, मामले में दिए गए निर्णय की दृष्टि में संपोषणीय नहीं है और याची के विद्वान अधिवक्ता ने उक्त निर्णय के पैराग्राफों 6, 7 और 8 को इंगित किया है। माननीय पटना उच्च न्यायालय ने याचिका को अनुज्ञात किया था और प्रत्यर्थीगण को याचीगण को समस्त वेतन बकाया आदि का भुगतान करने का निर्देश दिया गया था। याची के विद्वान अधिवक्ता ने **1998 (5) SCC पृष्ठ 87 (सचिव–सह–मुख्य अभियंता, चंडीगढ़ बनाम हरिओम शर्मा एवं अन्य)** में प्रकाशित निर्णय को भी निर्दिष्ट किया और इस पर विश्वास किया और उक्त निर्णय के पैरा 8 को इंगित करते हुए निवेदन किया गया है कि यदि किसी व्यक्ति को उच्चतर पद पर प्रोन्नत किया जाता है अथवा उस पद पर कार्यवहन के लिए रखा जाता है, जैसा वर्तमान मामले में है, अथवा उच्चतर पद पर उसे स्थापित करने के लिए अंतरिम व्यवस्था की जाती है, वह उच्चतर वेतन अथवा अन्य आनुषंगिक लाभों का दावा नहीं करेगा ऐसा विधि के विपरीत और लोकनीति के विरुद्ध भी होगा। याची के विद्वान अधिवक्ता ने 2003 (2) PLJR 44 **(मो॰ हाफिज बनाम बिहार राज्य)** में प्रकाशित निर्णय को भी निर्दिष्ट किया और इस पर विश्वास किया जिसमें बिहार सेवा संहिता का नियम 58 सह–पठित वित्तीय नियमावली का नियम 74 की प्रयोज्यता पर चर्चा की गयी थी और प्रत्यर्थी राज्य के अभिवचन को अस्वीकार कर दिया गया था और रिट याचिका अनुज्ञात करते हुए प्रत्यर्थी प्राधिकारीगण को याची को दी गयी प्रोन्नति के कारण पारिणामिक धनीय लाभों का भुगतान करने का निर्देश दिया गया था।

5. इसके विरुद्ध, राज्य के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रत्यर्थी सं॰ 1 द्वारा दाखिल प्रति शपथपत्र को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन किया कि याची को दिनांक 4.1.2003 के मेमो के तहत दिनांक 1.7.99 के प्रभाव से नियमित आधार पर अधीक्षण अभियंता के पद पर प्रोन्नति दी गयी थी और मेमो विनिर्दिष्टत: उल्लिखित करता है कि वह इस अधिसूचना को जारी किए जाने के बाद अधीक्षण अभियंता का पद ग्रहण करने के बाद ही उसके वित्तीय लाभों का हकदार होगा और इसलिए, अधीक्षण अभियंता के वेतनमान में दिनांक 1.7.99 के प्रभाव से वेतन के बकाया के संबंध में याची का दावा पोषणीय नहीं है। आगे निवेदन किया गया है कि प्रशासनिक व्यवस्था के रूप में याची को कार्यपालक अभियंता के अपने अधिष्ठायी पद में अधीक्षण अभियंता, पी॰ एच॰ ई॰ डी॰, सर्किल हजारीबाग के पद का कार्यवहन करने के लिए कहा गया था और याची ने किसी शिकायत के बिना पद ग्रहण किया। किंतु दो वर्षों से अधिक समय के अवसान के बाद उसने वित्तीय लाभों का दावा किया है जो विधि में दोषपूर्ण है। उक्त प्रति शपथ पत्र के पैरा 8 को निर्दिष्ट करते हुए प्रत्यर्थी प्राधिकारीगण के विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि दिनांक 4.4.85 का वित्त विभाग का मेमो प्रावधानित करता है कि उच्चतर पद पर कार्यवहन करने वाला कर्मचारी उस उच्चतर पद से संबंधित प्रोन्नति के लाभों का हकदार नहीं होगा। नियमित प्रोन्नति की अधिसूचना, जिसे केवल सम्यक औपचारिकताओं और प्रक्रियाओं को पूरा करने के बाद अधिसूचित किया जा सकता है, की अनुपस्थिति में उच्चतर पद के लाभों को नहीं दिया जा सकता है और इसलिए, इस परिपत्र की दृष्टि में याची दिनांक 4.1.2003 की अधिसूचना की तिथि के पहले, जब उसने उक्त अधिसूचना के अनुसरण में उच्चतर पद पर पदग्रहण किया था, के पहले उच्चतर पद के किसी लाभ को पाने का हकदार नहीं है। राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने उक्त शपथ पत्र के पैरा 10 को भी निर्दिष्ट किया और निवेदन किया कि याची ने अधिसूचना की तिथि से लगभग दो वर्षों के अवसान पर अभ्यावेदन दाखिल किया है जो राज्य वित्तीय नियमावली के नियम 104 के अधीन समय वर्जित दावा है और इस आधार पर भी वर्तमान मामले में याची का दावा पोषणीय नहीं है।

6. झारखंड राज्य के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने याची के मामले से सज्जाद हसन के मामले को सुभिन्न करने का प्रयास किया और निवेदन किया कि उक्त मामले में दिनांक 27.4.89 से प्रोन्नति को प्रभाव दिया गया था तिथि जिस पर भीम सेन सिंह को सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 6167 वर्ष 1992 में पारित पटना उच्च न्यायालय के आदेश के अनुपालन में और सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 596 वर्ष 1999 (R) में पारित दिनांक 25.1.2001 के आदेश के अनुपालन में भी प्रोन्नत किया गया था और निवेदन किया गया है कि यह मामला परस्पर वरीयता से संबंधित है और इसलिए, वर्तमान मामले के तथ्य सज्जाद हसन के मामले से भिन्न है।

7. बिहार राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने प्रत्यर्थी सं॰ 4 द्वारा दाखिल प्रतिशपथ पत्र के पैरा 6 को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन किया कि याची को दिनांक 26.9.98 की विभागीय अधिसूचना के तहत अधीक्षण अभियंता, पी॰ एच॰ ई॰ डी॰ सर्किल, हजारीबाग के कार्यालय में प्रभारी अधीक्षण अभियंता बनाया गया था और उसने श्री सुरेश प्रसाद, अधीक्षण अभियंता, पी॰ एच॰ ई॰ डी॰ सर्किल, हजारीबाग, जिनको दिनांक 13.8.98 की विभागीय अधिसूचना के तहत पी॰ एच॰ ई॰ डी॰, पटना, बिहार में प्रभारी मुख्य अभियंता (ग्रामीण) बनाया गया है, से दिनांक 6.10.98 को सर्किल पर प्रभार लिया और इसलिए स्पष्ट है कि अधीक्षण अभियंता (सिविल) का पद उस तिथि से याची की नियमित प्रोन्नति के लिए रिक्त नहीं था जैसा उसने रिट याचिका में दावा किया है। आगे निवेदन किया गया है कि वरीयता सूची में याची, क्रमांक 34 पर है, जबकि उनके वरिष्ठ श्री द्वारिका प्रसाद सिंह उक्त वरीयता सूची में क्रमांक 33 पर है जिन्हें विभाग में उपलब्ध कराए गए रिक्त पद के विरुद्ध दिनांक 1.7.1999 के प्रभाव से नियमित आधार पर अधीक्षण अभियन्ता (सिविल) के पद पर प्रोन्नत किया गया है और तद्नुसार, श्री प्रसाद को भी उपलब्ध कराए गए

पद के विरुद्ध दिनांक 1.7.1999 के प्रभाव के साथ नियमित आधार पर अधीक्षण अभियंता (सिविल) के पद पर प्रोन्नत किया गया था।

8. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के परस्पर विरोधी निवेदनों पर विचार करते हुए और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि वर्तमान याची को दिनांक 26.9.1998 की अधिसूचना द्वारा प्रभारी अधीक्षण अभियन्ता के रूप में नियुक्त किया गया था जिसके अनुसरण में उसने दिनांक 6.10.98 को उक्त पद ग्रहण किया और तत्पश्चात, परिशिष्ट–4 के तहत दिनांक 4 जनवरी, 2003 के कार्यालय आदेश द्वारा दिनांक 1.7.99 के प्रभाव से याची को नियमित प्रोन्नति दी गयी थी। एकमात्र प्रश्न जो वर्तमान रिट याचिका में उद्‌भूत होता है, यह है कि क्या याची भूतलक्षी प्रभाव से प्रोन्नत पद के वित्तीय लाभ को पाने का पात्र और हकदार है। रिट याचिका के परिशिष्ट–4 के तहत अर्थात दिनांक 4.1.2003 के आदेश द्वारा याची को नियमित प्रोन्नति दी गयी थी और उस आदेश की तिथि से प्रोन्नत पद के वेतनमान को भी भविष्यलक्षी प्रभाव से प्रभाव दिया गया था, जबकि याची दिनांक 6.10.98 के प्रभाव के साथ अर्थात स्थानापन्न कर्तव्य पर प्रभारी अधीक्षण अभियन्ता के रूप में अपने पदग्रहण की तिथि से प्रोन्नत पद के लाभ का दावा कर रहा है। इस संदर्भ में मैंने 1999 (1) PLJR 272 में प्रकाशित और याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय का भी परिशीलन किया है और उक्त निर्णय के पैरा 6 से प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी प्राधिकारीगण द्वारा दाखिल प्रति शपथपत्र में बिहार सेवा संहिता के नियम 58 और बिहार वित्तीय नियमावली के नियम 74 पर भूतलक्षी प्रभाव से प्रोन्नति द्वारा अनुसरित लाभों से इनकार करने के लिए विश्वास किया गया था। उक्त निर्णय के पैराओं 7 और 8 का पठन निम्नलिखित है:–

> *"7. çR;Fkh çkfèkdkjh x.k }kjk viuk;k x;k nf"Vdk.k vkj iokDr fu;ek ij fd;k x;k fo'ok l e> Lohdk; ugh gA ej nf"Vdk.k e lok lfgrk d fu;e 58 vkj fcgkj foÙkh; fu;ekoyh d fu;e 74 d çkoèkku ;kphx.k d ekey ij bl ljy dkj.k l ç;kT; ugh g D;kfd o fu;e ç'kklu d lkekU;Øe e vkj lE;d le; ij tc çkUufr dk vfèkdkj lcfèkr depkjh dk çknHkr gvk] fn, x, çkUufr dk ifjdfYir djr gA dYiuk dh fdl h Hkh lhek }kjk ; nkuk fu;e , l ekeyk ij fopkj ugh djr g tgk çkUufr lE;d le; ij ugh cfYd Hkry{kh çHkko l nh x;h Fkh] lcfèkr depkjh dh vkj l fdl h xyrh d fy, ugh cfYd foHkkx }kjk dh x;h f<ykb;k vkj xyfr;k d dkj.kA*
>
> *8. vud fu.k;k e] bl U;k;ky; u lçf{kr fd;k fd Hkry{kh çHkko l fdl h depkjh dk çkUufr fn, tku ij ml çkUufr l çknHkr gku oky rkfRod ykHkk dk nu l budkj ugh fd;k tk ldrk g vkj ;g voLFkk vc lfuf'pr gA ;fn bl fcn ij fdl h ikekf.kd fu.k; dh vko';drk g] 1990(2) PLJR 258 (MkO ikj l ukFk çl kn cuke fcgkj jkT; ,o vU;) dk n[kk tk ldrk gA***

पूर्वोक्त निर्णय के आलोक में प्रतीत होता है कि भूतलक्षी प्रभाव से प्रोन्नत किए गए कर्मचारी को प्रोन्नति से प्रोद्‌भूत तात्विक लाभों को देने से इनकार नहीं किया जा सकता है और यह अवस्था अब सुनिश्चित है। इस संदर्भ में मैंने समरुप विवाद्यक वाले 2003 (2) PLJR 44 **(मो॰ हाफिज बनाम बिहार राज्य एवं अन्य)** में प्रकाशित निर्णय का परिशीलन भी किया है।

9. जहाँ तक प्रति शपथपत्र में झारखंड राज्य द्वारा और बिहार राज्य द्वारा भी अपनाए गए दृष्टिकोण का संबंध है कि दिनांक 4.1.2003 का कार्यालय आदेश विनिर्दिष्टत: प्रावधानित करता है कि याची केवल अधिसूचना जारी किए जाने के बाद अधीक्षण अभियन्ता का पद ग्रहण करने के बाद ही इसके वित्तीय लाभ का हकदार होगा और चूँकि याची ने इस आदेश को स्वीकार किया और किसी शिकायत के बिना

पद ग्रहण किया, अब दो वर्षों के अवसान के बाद उसे ऐसा विवाद्यक उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। यह तर्क याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत **1998 (5) SCC 87** में प्रकाशित निर्णय की दृष्टि में स्वीकार नहीं किया जा सकता है जिस निर्णय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 8 में उक्त मामले पर विचार करते हुए निम्नलिखित संप्रेक्षित किया:–

> *"8. vihykFkh d fo}ku vfèkoDrk u ;g çfrokn dju dk ç;kl fd;k fd tc vrfje 0;oLFkk d :i e çR;Fkh dk duh; vfHk;Urk d :i e çkUur fd;k x;k Fkk] mlu vihykFkh dk opucèk fn;k Fkk fd vrfje 0;oLFkk d vkèkkj ij og vfèkdkj d :i e çkUufr dk nkok ugh djxk vkj u gh mlu in l lcfèkr fdlh ykHk dk nkok djxkA ;g rd fcYdy vuxy gA bl rF; d vfrfjDr fd ljdkj ekMy dk fu;kDrk d :i e viuh gfl;r e ,lk rd dju dh vuefr ugh nh tk ldrh g] opucèk] ftl i{kk d chp djkj xfBr djrk dgk tkrk g] dk fofèk e çcfyr ugh fd;k tk ldrk gA çR;Fkh dk vihykFkh dk fu;kDrk gku d ukr mldh #)rk dh vofèk dk rkMuk Fkk ;|fi] tlk geu igy ik;k g] og duh; vfHk;rk ıd in ij çkUufr d fy, miyCèk xj&fMlykek èkkjdk e l ,dek= 0;fDr Fkk vkj blfy,] mld viu vfèkdkj e çkUufr d fy, ml ij fopkj fd, tku dh lHkkouk FkhA dkb djkj fd ;fn dkb 0;fDr mPprj in ij çkUur fd;k tkrk g vFkok ml in ij dk;ogu dju d fy, j[kk tkrk g vFkok] tlk oreku ekey e g] mPprj in ij mldk LFkkfir dju d fy, vrfje 0;oLFkk dh tkrh g] og mPprj oru vFkok vU; vku"kfxd ykHkk dk nkok ugh djxk] fofèk d foijhr vkj ykd uhfr d fo#) gkxkA vr% ;g lfonk vfèkfu;e] 1872 dh èkkjk 23 dh nf"V e vçoruh; gkxkA**

यह प्रतीत होता है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह संप्रेक्षित करते हुए कि सरकार को मॉडल नियोक्ता के रूप में अपनी हैसियत में ऐसा तर्क करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, राज्य द्वारा अपनायी गयी प्रथा की निंदा की है। अब जहाँ तक रिक्त पद के संबंध में ताथ्यिक पहलू का संबंध है, प्रत्यर्थी सं॰ 4 द्वारा दाखिल प्रति शपथपत्र से, यह प्रतीत होता है कि याची वरीयता सूची में क्रमांक 34 पर था जबकि उसके वरिष्ठ श्री द्वारिका प्रसाद सिंह वरीयता सूची के क्रमांक 33 पर थे जिन्हें विभाग में उपलब्ध कराए गए रिक्त पद के विरुद्ध दिनांक 1.7.99 के प्रभाव के साथ नियमित आधार पर अधीक्षक अभियन्ता के पद पर प्रोन्नत किया गया है और तद्नुसार, दिनांक 1.7.1999 के प्रभाव के साथ उपलब्ध कराए गए पद के विरुद्ध नियमित आधार पर अधीक्षण अभियन्ता के पद पर श्री सिंह को प्रोन्नत किया गया था और इसलिए, यह प्रतीत होता है कि याची की प्रोन्नति को उक्त पद के विरुद्ध दिनांक 1.7.99 से प्रभाव दिया गया है और इसलिए, उस तिथि से प्रत्यर्थी प्राधिकारीगण ने भूतलक्षी प्रभाव के साथ वित्तीय लाभ के बिना याची को आदेश की तिथि अर्थात् दिनांक 4 जनवरी, 2003 से भविष्यलक्षी प्रभाव से प्रोन्नति प्रदान किया। अत:, मेरे दृष्टिकोण में, याची द्वारा किए गए भूतलक्षी प्रभाव के साथ वित्तीय लाभ के दावा के संबंध में 1999 (1) PLJR 272 और 2003 (2) PLJR 44 में प्रकाशित उक्त निर्दिष्ट निर्णयों के आलोक में और सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 6167/1992 में निर्दिष्ट निर्णय जिसका अनुसरण सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 596/1999 (R) में किया गया था, की दृष्टि में भी संपोषित किया जा सकता है, किंतु समय के इसी बिन्दु पर, जहाँ तक दिनांक 6.10.98 से भूतलक्षी प्रभाव के साथ वित्तीय लाभ पाने से सम्बन्धित दावे का संबंध है, इसे ताथ्यिक अवस्था कि प्रश्नगत पद दिनांक 1.7.99 के प्रभाव के साथ रिक्त हुआ था, जैसा अभिलेख से सामने आता है, की दृष्टि में स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

10. उक्त चर्चा की दृष्टि में और विधि के सुनिश्चित सिद्धांतों के आलोक में याची दिनांक 1.7.1999 के प्रभाव के साथ धनीय लाभ पाने का हकदार है और तद्नुसार, झारखंड राज्य को इस आदेश की प्रति की प्राप्ति की तिथि से चार सप्ताह की अवधि के भीतर दिनांक 1.7.1999 के प्रभाव के साथ धनीय लाभ के संबंध में प्रोन्नति को प्रभाव देने का निर्देश दिया जाता है।

11. उक्त संप्रेक्षणों के साथ, व्यय के आदेश के बिना, यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है।

---

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k] U;k;efr

रामजी लाल सारदा

cuke

गोपाल शरण नाथ सहदेव एवं अन्य

Election Petition No. 05 of 2010. Decided on 24th February, 2012.

जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951—धाराएँ 80A एवं 81—चुनाव याचिका–वर्ष 2009 के पूर्व परिणाम को वर्ष 2011 में की गयी पुनर्गणना के परिणाम के तुल्य बनाने के लिए प्राधिकारीगण द्वारा अभिकथित छल साधन–पुनर्गणना का परिणाम पूर्विक गणना को संपुष्ट करता है–फॉर्म 17C के साथ इ॰ वी॰ एम॰ में दर्ज गणना में किसी अंतर का अभिकथन नहीं है–पुनर्गणना परिणाम के प्रति आपत्ति नहीं होना संपोषणीय है–चुनाव याचिका निपटायी गयी। (पैराएँ 7 से 9, 13 एवं 14)

निर्णयज विधि.–(2009)10 SCC 541—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s S. L. Barnwal, Vikas Kishore, Shiv Prasad, For the Petitioner; M/s A. Allam, Shekhar Jamuar, For the State; M/s Shailesh, L.C.N. Shahdeo, For the Respondent No. 1; Mr. Ashok Kumar, For the Respondent No. 3; M/s V. Shivnath, Piyush Poddar, For the Respondent No. 9.

आदेश

यह चुनाव याचिका दिनांक 25.11.2009 को किए गए चुनाव, जिसमें प्रत्यर्थी सं॰ 1 गोपाल शरण नाथ सहदेव (अब मृत) को झारखंड राज्य में 64 हटिया विधान सभा क्षेत्र से निर्वाचित उम्मीदवार घोषित किया गया था, को चुनौती देते हुए जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धाराओं 80A और 81 के अधीन दाखिल की गयी है।

2. दिनांक 14.7.2011 के आदेश द्वारा, प्रथम दृष्टया संतुष्टि पर, इस न्यायालय ने पुनर्गणना के लिए और रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निर्देश दिया। दिनांक 6.1.2012 को मुहरबंद लिफाफे में उप–आयुक्त द्वारा भेजी गयी रिपोर्ट को पक्षों की उपस्थिति में न्यायालय में खोला गया था और इसका निरीक्षण एवं परीक्षण करने की स्वतंत्रता उन्हें दी गयी थी। याची के लिए उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री बर्णवाल को उक्त रिपोर्ट के प्रति आपत्ति दाखिल करने की स्वतंत्रता दी गयी थी। राज्य को भी इसका उत्तर दाखिल करने की स्वतंत्रता दी गयी थी।

3. याची द्वारा आपत्ति के रूप में आई॰ ए॰ सं॰ 241 वर्ष 2012 दाखिल किया गया है। प्रथम आपत्ति यह है कि रिपोर्ट अधिप्रमाणित प्रति नहीं है और यह ज्ञात नहीं है कि यह मूल की सत्य प्रति है या नहीं; और इसे शपथ पत्र पर दाखिल नहीं किया गया है।

4. शपथ पत्र पर रिपोर्ट दाखिल करने का आदेश नहीं था। किंतु, जैसा राज्य के लिए उपस्थित श्री आल्लम द्वारा प्रार्थना किया गया है, विद्वान अनुमंडलाधिकारी, श्री शेखर जमुआर को न्यायालय में रिपोर्ट अधिप्रमाणित करने की अनुमति दी जाती है।

5. तब श्री बर्णवाल ने निवेदन किया कि वर्ष 2011 में की गयी पुनर्गणना के परिणाम को वर्ष 2009 के पूर्व परिणाम के साथ मेल कराने के लिए प्राधिकारीगण द्वारा छल साधन किया गया है। उन्होंने निवेदन किया कि अनेक उदाहरण हैं। उन्होंने यह भी निवेदन किया कि रिपोर्ट में बैलट यूनिट ब्लैन्क है। उन्होंने आगे निवेदन किया कि लिपिकीय त्रुटि की गुंजाइश नहीं है और छल साधन को छुपाने के लिए ऐसा छल साधन किया गया है।

6. दूसरी ओर, श्री जमुआर की सहायता से श्री अल्लम ने श्री बर्णवाल द्वारा की गयी आपत्तियों को स्पष्ट करने का प्रयास किया। यह निवेदन किया गया था कि फॉर्म 17C, जिसे गणना समाप्त होने के बाद दलों के पोलिंग एजेंन्टों को दिया गया है, और इ० वी० एम० (नियंत्रण इकाई) में दर्ज संगणना ही केवल प्रासंगिक है और न कि मतदाता उपस्थिति (turnout) जो कच्चे मूल्यांकन पर आधारित है और जिसे केवल मतदाताओं की उपस्थिति का प्रतिशत दर्शाने के लिए समय-समय पर निर्वाचन आयुक्त को भेजे जाने की आवश्यकता है। चुनाव संचालन नियमावली, 1961 के नियम 66A को निर्दिष्ट किया गया था। आगे निवेदन किया गया है कि ई० वी० एम० और फॉर्म 17C में दर्ज गणना में कोई भिन्नता नहीं है। आगे निवेदन किया गया है कि पुनर्गणना में निर्वाचित उम्मीदवार और याची के मतों की गणना बिल्कुल एक है। यह भी निवेदन किया गया है कि निर्वाचित उम्मीदवार और याची के परिणाम को प्रभावित नहीं कर रही इक्का-दुक्का मानवीय त्रुटि प्रासंगिक नहीं है और इसे अनदेखा किया जाना चाहिए।

7. मैंने श्री बर्णवाल द्वारा अपनी आपत्ति में दर्शाए गए उदाहरणों का परीक्षण किया है। रिपोर्ट के पृष्ठ 505 के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि बूथ सं० 359 में समस्त तीनों कॉलमों अर्थात् ''मतदाता उपस्थिति रिपोर्ट'' ''पी० ओ० डायरी के मुताबिक कुल मत'' और ''ई० वी० एम० एवं फॉर्म 17C में कुल वोट'' में 461 उल्लिखित किया गया है। 'कुल' कॉलम में 76 मतों की अभिकथित भिन्नता परिणामहीन हैं।

तब यह कहा गया है कि प्रत्यर्थी सं० 9 नवीन जायसवाल और प्रत्यर्थी सं० 10 रिजवान अहमद के मामले में वर्ष 2009 और वर्ष 2011 में की गयी गणना में + - 100 मतों की भिन्नता है। इसी प्रकार, प्रत्यर्थी सं० 20 राम प्रकाश तिवारी और प्रत्यर्थी सं० 21 वशिष्ठ तिवारी के मामले में + - 01 मत की भिन्नता है। ऐसी भिन्नता परिणाम हीन है और इसे छल साधन नहीं कहा जा सकता है। प्रथमत: ऐसी भिन्नता निर्वाचित उम्मीदवार और याची के परिणाम को प्रभावित नहीं कर रही है और द्वितीयत: ये भिन्नताएँ मानवीय त्रुटि के कारण प्रतीत होती हैं।

इस आपत्ति के संबंध में कि रिपोर्ट में बैलट यूनिट ब्लैन्क है, मैं राज्य की ओर से किए गए निवेदन से संतुष्ट हूँ कि इसे पुनर्गणना रिपोर्ट में उल्लिखित करने की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि रिपोर्ट में ई० वी० एम० और फॉर्म 17C में संगणना को उल्लिखित किया गया है, जो केवल प्रासंगिक है।

यह आपत्ति कि बूथ सं० 276 में, पीठासीन अधिकारी की डायरी में (आपत्ति याचिका का परिशिष्ट-1) भिन्नता है, स्वीकार्य नहीं है। यदि 217 पुरुषों और 159 स्त्रियों की संगणना जोड़ी जाती है, यह 376 होती है जिस अंक को पुनर्गणना रिपोर्ट के पृष्ठ 476 में उल्लिखित किया गया है किंतु यह प्रतीत होता है कि गलती से 376 अंक के स्थान पर 367 अंक लिखा गया है। आगे, परिशिष्ट-1 के कॉलम 10 (ii) और (iii) के विरुद्ध उल्लिखित संख्या परिणामहीन गलती है और अनदेखा किए जाने की दायी है। केवल ई० वी० एम० में दर्ज गणना और फॉर्म 17C में दर्ज गणना ही प्रासंगिक है। ई० वी० एम० और फॉर्म 17C में दर्ज गणना में किसी भिन्नता का अभिकथन नहीं है।

इस आपत्ति के संबंध में कि बूथ सं॰ 332 में पीठासीन अधिकारी की डायरी उपदर्शित करती है कि नियंत्रण इकाई (ई॰ वी॰ एम॰) का उपयोग नहीं किया गया था क्योंकि यह खराब था, विद्वान एस॰ डी॰ ओ॰ ने मूल अभिलेख को प्रस्तुत किया है जो दर्शाते हैं कि एक अन्य नियंत्रण ईकाई (इ॰ वी॰ एम॰) की आपूर्त्ति रिजर्व से की गयी थी और बूथ सं॰ 332 में इसका उपयोग वास्तविक रूप से किया गया था।

8. पक्षों को विस्तारपूर्वक सुनने और मेरे समक्ष प्रस्तुत पुनर्गणना रिपोर्ट और मूल अभिलेखों और अभिलेखों के सावधानीपूर्वक परिशीलन के बाद, मैं संतुष्ट हूँ कि पुनर्गणना परिणाम के प्रति आपत्ति संपोषणीय नहीं है। पुनर्गणना का परिणाम पूर्व गणना अर्थात् निर्वाचित उम्मीदवार और याची के बीच 25 मतों की भिन्नता को संपुष्ट करता है।

9. ऐसे निष्कर्ष की दृष्टि में, निर्वाचित उम्मीदवार के पिता की ओर से और प्रत्यर्थी सं॰ 9 नवीन जायसवाल की ओर से दाखिल अंतर्वर्ती आवेदनों पर आदेशों को पारित करना आवश्यक नहीं है।

10. याची की ओर से कोई अन्य विवाद्यक नहीं उठाया गया था।

11. उक्त आदेश लिखाए जाने के बाद याची के लिए उपस्थित श्री बर्णवाल ने निवेदन किया कि विवाद्यकों को दाखिल करने, साक्ष्यों को दर्ज करने, आदि के लिए मामला स्थगित किया जा सकता है।

12. दूसरी ओर, राज्य और अन्य प्रत्यर्थीगण की ओर से निवेदन किया गया था कि अब इस चुनाव याचिका में कुछ भी शेष नहीं रह जाता है और निर्वाचित उम्मीदवार की मृत्यु के कारण नया चुनाव शेष है जिसे अब और विलंबित नहीं किया जा सकता है।

13. मेरी दृष्टि में, इस मामले को आगे सुनवाई के लिए लंबित रखना अर्थहीन मुकदमा जारी रखना होगा। अभिलेखों के आधार पर, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि वर्ष 2011 में की गयी पुनर्गणना का परिणाम वर्ष 2009 के परिणाम अर्थात् निर्वाचित उम्मीदवार और याची के बीच 25 मतों की भिन्नता एक ही है; और कि पुनर्गणना रिपोर्ट के प्रति आपत्ति संपोषणीय नहीं है।

प्रश्नगत चुनाव दिनांक 25.11.2009 को किया गया था। दिनांक 28.6.2010 को निर्वाचित उम्मीदवार की मृत्यु के बाद राज्य विधान सभा सीट खाली पड़ी है। **रामसुख बनाम दिनेश अग्रवाल, (2009)10 Supreme Court Cases 541,** में निम्नलिखित संप्रेक्षित किया गया है:–

> *"18. fu%lng] vfèkfu;e dh èkkjk 87 d QyLo#i lfgrk d çkoèkku puko ;kfpdk d fopkj.k ij ykx gkr g vkj] blfy,] vfèkfu;e e fdlh foijhr pht dh vuifLFkfr e puko ;kfpdk dk fopkj.k dju okyk U;k;ky; lfgrk d vkn'k 6 fu;e 16 vkj vkn'k 7 fu;e 11 lfgr lfgrk d vèkhu viuh 'kfDr dk ç;kx dj ldrk gA nkuk çkoèkkuk dk mí'; ;g lfuf'pr djuk g fd vFkghu ednek] tk vU;Fkk vlQy gku d fy, ckè; g] dk U;k;ky;k d U;kf;d le; dk 0;Fk dju dh vuefr ugh nh tkuh pkfg,A ;fn ,lk g] lekU; flfoy ednek l lcfèkr ekeyk e] bl puko ekeyk ij vkj Hkh tkj&'kkj l ykx djuk gkxk tgk puko ;kfpdk d yfcr jgu l fuokfpr çfrfufèk dk viu ykd dr0;k dk fuogu dju l jkdu dh lHkkouk g ft ld fy, fuokpdk u mle viuk fo'okl 0;Dr fd;k gA vr% fuonu foQy gkxkA***

14. परिणामस्वरुप, पूर्वोक्त निष्कर्षों के साथ यह चुनाव याचिका निपटायी जाती है। परिणामस्वरुप, समस्त अंतर्वर्ती आवेदनों को भी निपटाया जाता है।

ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k

दीपक कुमार सनवरिया उर्फ डब्बू सनवरिया

cuke

झारखंड राज्य

W.P. (Cr.) No. 241 of 2010. Decided on 3rd February, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 379/411—चोरी–भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 379/411 और अवैध उत्खनन अधिनियम की धाराओं 2/3 के अधीन अभिकथित अपराधों का संज्ञान लिया गया–अवैध उत्खनन अधिनियम नामक कोई अधिनियम नहीं है–भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 379/411 के अधीन अपराध के लिए भी विचारण न्यायालय ने विवेक का इस्तेमाल नहीं किया है–आक्षेपित आदेश यांत्रिक रूप से पारित किया गया और तद्नुसार अपास्त किया गया–यह देखने के लिए कि क्या भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 379/411 के अधीन अपराध करने के लिए संज्ञान लेने की आवश्यकता है, विचारण न्यायालय को निर्देश के साथ रिट याचिका अंशतः अनुज्ञात की गयी। (पैराएँ 2 से 5)

अधिवक्तागण.–Mr. Rajesh Kumar, For the Petitioner; J.C. to S.C. III, For the Respondent.

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि दिनांक 22.12.2009 का संज्ञान लेने वाला आदेश विवेक का इस्तेमाल किए बिना और मामले के तथ्य पर विचार किए बिना यांत्रिक रूप से पारित किया गया है। आगे निवेदन किया गया है कि अवैध उत्खनन अधिनियम जो अस्तित्व में नहीं है, की धाराओं 2/3 के अधीन अपराध करने के लिए भी संज्ञान लिया गया है।

2. इस न्यायालय ने राज्य को यह स्पष्ट करने का निर्देश दिया कि क्या 'अवैध उत्खनन अधिनियम' नामक कोई अधिनियम है या नहीं और राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि ऐसा कोई अधिनियम नहीं है।

3. याची के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी निवेदन किया कि भारतीय दंड संहिता की धाराओं 379/411 के अधीन अपराध के लिए भी विचारण न्यायालय ने अपने विवेक का इस्तेमाल नहीं किया है जहाँ तक इस रिट याचिका के मामले का संबंध है।

4. चूँकि आदेश विवेक का इस्तेमाल किए बिना यांत्रिक रूप से पारित किया गया है जो एक प्रकट त्रुटि है, अतः दिनांक 22.12.2009 का आदेश अपास्त किया जाता है। किंतु, यह स्पष्ट किया जाता है कि इस न्यायालय ने कुछ भी संप्रेक्षित नहीं किया है कि क्या भारतीय दंड संहिता की धाराओं 379/411 के अधीन अपराध करने के लिए संज्ञान लेने की आवश्यकता है या नहीं और वह भी रिट याची के विरुद्ध जिसे विचारण न्यायालय द्वारा पक्षों को सुनने के बाद विधि के अनुरूप स्वतंत्र रूप से लिए जाने की आवश्यकता है।

5. उक्त कारणों से, अवैध उत्खनन अधिनियम, जो अस्तित्व में नहीं है कि धाराओं 2/3 के अधीन अपराध के लिए विचारण समाप्त किया जाता है। उस सीमा तक रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है। याची अगली तिथि पर विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित हो सकता है।

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efrx.k

बोयो बारी एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य

Criminal Appeal (DB) No. 1116 of 2003. Decided on 24th January, 2012.

चक्रधरपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 40 वर्ष 1995, जी॰ आर॰ केस सं॰ 112 वर्ष 1995 के तत्सम, से उद्भूत होने वाले सत्र विचारण सं॰ 436 वर्ष 1995/एस॰ टी॰ आर॰ सं॰ 76 वर्ष 2003, में विद्वान अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट-III, चाईबासा द्वारा पारित दिनांक 30.7.2003 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302/149 एवं 376/149—बलात्संग एवं हत्या–दोषसिद्धि–अपीलार्थीगण ने सूचक के संबंधियों की भी हत्या की–अपीलार्थीगण ने अपने सहयोगियों के साथ रात के दौरान घातक हथियारों से लैस होकर गृह अतिचार किया और सूचक एवं उसके परिवार के सदस्यों का जबरन अपहरण किया–एकमात्र परिसाक्ष्य पर दोषसिद्धि का निर्णय पारित किया जा सकता है यदि ऐसे गवाह का साक्ष्य विश्वसनीय, अकलंकित और अप्रभावित है–अपीलार्थीगण इस आधार पर कि अभियुक्तगण में से दो को विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया था, दोषमुक्ति का दावा नहीं कर सकते हैं–अपील खारिज। (पैराएँ 12 एवं 13)

अधिवक्तागण.–Mr. R. C. Khatri, For the Appellants; Mrs. Niki Sinha, For the State.

न्यायालय द्वारा.–यह अपील दिनांक 30 जुलाई, 2003 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है जिसके द्वारा और जिसके अधीन अपीलार्थीगण को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 147, 148, 302/149, 452 और 201 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दोषी अभिनिर्धारित किया गया है और उनमें से प्रत्येक को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302/149 के अधीन आजीवन कठोर कारावास, भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 147 के अधीन 1 वर्ष का कठोर कारावास, भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 148 के अधीन दो वर्षों का कठोर कारावास, भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 452 के अधीन तीन वर्षों का कठोर कारावास और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 201 के अधीन दो वर्षों का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया था। अपीलार्थीगण अर्थात् कुंडिया बारी उर्फ टोपंडी और विष्णु कुर्ली को आगे भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 376/149 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषी अभिनिर्धारित किया गया है और उन दोनों को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 376/149 के अधीन 7 वर्षों का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया था। अपीलार्थीगण के विरुद्ध पारित समस्त दंडादेशों को साथ चलने का निर्देश दिया गया था।

2. दिनांक 5.4.1995 को किसी चंदू बंदिया द्वारा दर्ज प्राथमिकी ने इस तथ्य को प्रकट किया कि दिनांक 3.4.1995 को वह अपने माता-पिता, भाइयों और बहनों के साथ अपने घर में उपस्थित थी। रात्रि लगभग 8 बजे 15-16 व्यक्ति घटनास्थल पर आए और उनको दरवाजा खोलने के लिए मजबूर किया और घर में घुस गए। सूचक प्राथमिकी में नामित दुष्टों में से छह की पहचान करने में सक्षम हो सकी थी। अभिकथित किया गया है कि अभियुक्तगण ने सूचक के माता-पिता को डायन बताया और लाठी, तलवार, आदि जैसे घातक हथियारों जिनसे वे लैस थे के नोक पर समस्त पारिवारिक सदस्यों को नदी की ओर जबरन ले गए। सूचक को अभियुक्तगण किंक्री हो, कुंडिया बारी उर्फ टोपंडी और विष्णु कुर्ली द्वारा झाड़ी में ले जाया गया था जहाँ उन सबों ने उसका बारी-बारी से बलात्कार किया। बलात्कार किए जाने पर सूचक बेहोश हो गयी और होश में आने पर वह पासिंग सोई के घर गयी और उसकी पत्नी को घटना के बारे में बताया। सुबह में सूचक पासिंग सोई की पत्नी के साथ घर लौटी किंतु रास्ते में नदी के किनारे

के निकट उन्होंने कुछ स्थानों पर खून के धब्बों को पाया। खून देखने के बाद उसने मत निर्मित किया कि अभियुक्तगण जिन्होंने उनका अपहरण किया था, द्वारा निश्चय ही उसके माता-पिता, भाईयों और बहनों की हत्या कर दी गयी थी। घटना गाँववालों, मुंडा और सरपंच के ध्यान में लायी गयी थी जिन्होंने तलाश किया किंतु मृत शरीरों का पता लगाने में सफल नहीं हो सके थे और मामला पुलिस को रिपोर्ट किया गया था। तत्पश्चात, छह मृतकों अर्थात् सूचक की माता श्रीमतू बंदिया (45 वर्षीय), सिकरा बंदिया (8 वर्षीय), हरि बंदिया (छह वर्षीय) जितेन बंदिया (आठ वर्षीय), जिनेम बंदिया (बारह वर्षीय) और जोंगा बंदिया (सोलह वर्षीय) के मृत शरीरों को बालू में दफनाए गए नदी के तल से बरामद किया गया था। पांडु बंदिया (सूचक का पिता) का मृत शरीर नदी किनारे से 3 कि॰ मी॰ की दूरी पर अवस्थित स्थान से बरामद किया गया था।

3. अन्वेषण किया गया था और इसके समापन के बाद अपीलार्थीगण और अन्य अभियुक्तगण के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया गया था।

4. आरोप विरचित करने के बाद कुल मिलाकर आठ अभियुक्तगण अर्थात् श्याम जोजो, बोयो बारी, दिनू उर्फ टपू, साउ बारी उर्फ रणचढ़ा, कुंडिया उर्फ टोपंडी, किंक्री उर्फ गोविन्द उर्फ टपू, मंगरु बंदिया और विष्णु कुर्ली का विचारण किया गया था।

5. विचारण के क्रम में अभियुक्तगण में से एक अर्थात् किंक्री उर्फ गोविंद उर्फ टपू फरार हो गया था और इसलिए, दिनांक 5.1.1998 को शेष अभियुक्तगण में से उक्त अभियुक्त का मामला पृथक कर दिया गया था। विचारण की समाप्ति पर पूर्वोक्तानुसार समस्त अपीलार्थीगण को दोषी अभिनिर्धारित किया गया था किंतु अभियुक्तगण में से दो अर्थात् मंगरु बंदिया और दिनू उर्फ टपू हो को दोषमुक्त कर दिया गया था।

6. आरोपों को सिद्ध करने के लिए अभियोजन ने कुल मिलाकर छह गवाहों का परीक्षण किया है जबकि गिरधारी तांती का दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 311 के अधीन सी॰ डब्ल्यू॰ 1 के रूप में परीक्षण किया गया है और उसने मृतकों से संबंधित सात मृत्यु समीक्षा की कार्बन कॉपी और औपचारिक प्राथमिकी को सिद्ध किया है।

7. अ॰ सा॰ 1 डॉ॰ बी॰ दयाल ने दिनांक 7.4.1995 को समस्त सातों मृतकों के मृत शरीरों का शव परीक्षण किया था और मृतकों के शरीरों पर हुए शवपूर्व उपहतियों का वर्णन किया था। समस्त सातों मृतकों की मृत्यु मानव वध थी जिसे चुनौती नहीं दी गयी है।

8. अ॰ सा॰ 2 चंदू बंदिया सूचक और मुख्य गवाह है। उसने कथन किया है कि दिनांक 3 जुलाई, 1995 को वह अपने माता-पिता, भाईयों और बहनों के साथ गाँव पोदैया, पी॰ एस॰ चक्रधरपुर के भीतर गाँव के टोला कोलागुतु में अपने घर पर थी। रात्रि लगभग 8 बजे 15-16 दुष्ट घटनास्थल पर आए और दरवाजा खटखटाया। धमकी देने पर सूचक की माता ने दरवाजा खोल दिया। जैसे ही दरवाजा खुला, बारह व्यक्ति घर में घुस गए जिनमें से अपीलार्थीगण को और उनके सहयोगियों में से कुछ को पहचाना गया था। उन्होंने सूचक के माता और पिता को डायन बताया और घर में उपस्थित परिवार के प्रत्येक सदस्य को पकड़ लिया और अपने हथियारों की नोक पर उन्हें नदी के किनारे की ओर ले गए। कुंडिया बारी उर्फ टोपंडी, किंक्री उर्फ गोविन्द और विष्णु कुर्ली ने सूचक को पकड़ा और जबरन उसे नदी के किनारे अवस्थित झाड़ी में ले गए और बारी-बारी से उसका बलात्कार किया। बलात्कार किए जाने के बाद वह बेहोश हो गयी। होश में आने के बाद वह पिरुकोंचा गाँव में अवस्थित पासिंग सोई के घर गयी और उसकी पत्नी को घटना के बारे में बताया। अगले दिन सुबह सूचक पासिंग सोई की पत्नी के साथ अपने घर लौटी और गाँव वालों को घटना के बारे में बताया। घर जाते हुए उसने नदी के किनारे वाले स्थानों पर खून

के धब्बों को देखा था। गाँववालों ने सरपंच के साथ सूचक के माता-पिता, भाईयों और बहनों को खोजा किंतु वे उस दिन सफल नहीं हो सके थे। अगले दिन अर्थात् दिनांक 5.4.1995 को नदी के किनारे में दफनाए गए छह मृतकों के मृत शरीर को बरामद किया गया था और सूचक के पिता के मृत शरीर को उस स्थान, जहाँ से छह मृतकों के मृत शरीरों को बरामद किया गया था, से तीन किलोमीटर की दूरी पर बरामद किया गया था। सूचक ने न्यायालय के समक्ष अपने अभिसाक्ष्य में अभियोजन मामले का पूर्ण समर्थन किया है। प्रति परीक्षण के दौरान उसने निष्पक्षत: स्वीकार किया कि प्राथमिकी में मंगरु बंदिया का नाम प्रकट नहीं किया गया था और अभियुक्त दिनू उर्फ टपू को न्यायालय में नहीं पहचाना गया था। उसने इस तथ्य को भी स्वीकार किया है कि उसके माता-पिता और भाइयों-बहनों पर कारित वास्तविक प्रहार उसके द्वारा नहीं देखा गया था।

9. अ॰ सा॰ 3 हरिचरण बंदिया, अ॰ सा॰ 4 पंतर गगराय और अ॰ सा॰ 6 अमर सिंह गगराय अनुश्रुत गवाह हैं और उन्होंने उस घटना जिसके बारे में उन्होंने सुना था को संपुष्ट किया है। अ॰ सा॰ 5 पासिंग सोई वह गवाह है जिसके घर में सूचक ने अभियुक्तगण की पकड़ से छूटने के बाद आश्रय लिया था। इस गवाह ने इस तथ्य को संपुष्ट किया है कि उसकी पत्नी ने उसे बताया कि चंदू बंदिया (सूचक) रात में उसके घर आयी थी और उसे कपड़ा दिया गया था।

10. अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित निर्णय को इस आधार पर चुनौती दिया है कि अभियोजन मामले का समर्थन करने कोई चश्मदीद गवाह सामने नहीं आया है। अपीलार्थीगण को केवल अ॰ सा॰ 2 के साक्ष्य पर हत्या जैसे अपराध का दोषी अभिनिर्धारित किया गया है और आजीवन कारावास का दंडादेश दिया गया है जिसके परिसाक्ष्य को पूर्णत: सत्य और विश्वसनीय नहीं माना जा सकता है। उसने प्राथमिकी में दिए गए पूर्वतर बयान से विपथन किया है। वह न्यायालय में अभियुक्तगण में से एक को पहचानाने में विफल रही है यद्यपि उसने उसे प्राथमिकी में नामित किया है। केवल यही नहीं उसने पहली बार न्यायालय में एक अन्य अभियुक्त मंगरु बंदिया का नाम लिया था। सूचक ने विरोधाभासी बयान दिया है जिस पर विश्वास नहीं किया जा सकता था और केवल उसके परिसाक्ष्य पर अपीलार्थीगण के विरुद्ध पारित दोषसिद्धि और दंडादेश को मान्य नहीं ठहराया जा सकता है। यह कल्पना के परे है कि सूचक के परिवार के समस्त सदस्यों की हत्या कर दी गयी थी किंतु उसे ऐसा बयान देने के लिए छोड़ दिया गया था। इसके अतिरिक्त, अ॰ सा॰ 5 पासिंग सोई की पत्नी, जिसको सूचक ने सबसे पहले घटना के बारे में बताया, ने सूचक के विवरण का समर्थन करने की परवाह नहीं की थी और वह न्यायालय नहीं आयी थी। पुलिस ने भी अभियुक्त श्याम जोजो का न्यायिकेतर संस्वीकृति दर्ज किया है किंतु यह सूचक द्वारा बतायी गयी घटना की संपुष्टि नहीं करता है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे बिंदु उठाया है कि अभियुक्तगण में से दो, जिन्हें इन अपीलार्थीगण के साथ संयुक्त रूप से अभियोजित किया गया था, को दोषमुक्त कर दिया गया है और इसलिए, अपीलार्थीगण भी इसी लाभ के हकदार हैं। अन्वेषण अधिकारी का परीक्षण नहीं किया गया है और इसलिए, घटनास्थलों को स्थापित नहीं किया गया है। आई॰ ओ॰ के गैर-परीक्षण ने अपीलार्थीगण पर प्रतिकूलता कारित किया है और इसलिए आक्षेपित निर्णय अपास्त किए जाने का दायी है।

11. दूसरी ओर, राज्य के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने अपीलार्थीगण की ओर से किए गए तर्कों को जोरदार विरोध किया है और आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया है।

12. हमने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य और विचारण के दौरान सिद्ध किए गए दस्तावेजों का सावधानीपूर्वक परिशीलन किया है। अभियोजन मामले का सार यह है कि अपीलार्थीगण ने अपने सहयोगियों के साथ तलवार, लाठी, आदि जैसे घातक हथियारों से लैस होकर रात में गृह अतिचार किया

और सूचक और उसके परिवार के सदस्यों, जो घर में उपस्थित थे, का जबरन अपहरण कर लिया। उन्हें गाँव से एक कि० मी० दूर अवस्थित नदी की ओर ले जाया गया था। तीन अभियुक्तगण अर्थात् किंक्री उर्फ गोविन्द, उर्फ टपू, विष्णु कुर्ली और कुंडिया उर्फ टोपंडी द्वारा सूचक को उसके परिवार के सदस्यों से अलग कर दिया गया था और उसका सामूहिक बलात्कार किया गया था। बलात्कार के बाद वह बेहोश हो गयी और होश में आने पर उसने रात के दौरान पासिंग सोई के घर में आश्रय लिया। अगले दिन सुबह सूचक पासिंग सोई की पत्नी के साथ घर लौटी और रास्ते में नदी के निकट उसने खून के धब्बों को देखा जिसे देखकर उसे विश्वास हुआ कि दुष्टों ने निश्चय ही उसके माता-पिता, भाईयों-बहनों की हत्या कर दी थी। घर में भी खून के धब्बों को पाया गया था। हम इस बिंदु पर सूचक के बयान में कोई विरोधाभास नहीं पाते हैं और यह संगत बना रहा है। हम इस दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं कि चूँकि अभियुक्तगण में से दो को दोषमुक्त कर दिया गया था, शेष अभियुक्तगण भी इस लाभ के हकदार हैं यदि भा० दं० सं० की धारा 149 की मदद से आरोप विरचित किया जाता है। यह सुनिश्चित विधि है कि प्रत्येक मामले को इसके अपने गुणागुणों पर और तथ्यों और परिस्थितियों पर विनिश्चित करना होगा। यहाँ, वर्तमान मामले में अभियुक्तगण में से दो को इस आधार पर दोषमुक्त कर दिया गया है कि उनमें से एक को पहली बार न्यायालय में नामित किया गया था और एक अन्य अभियुक्त को सूचक द्वारा नहीं पहचाना गया था। इन दो अभियुक्तगण की दोषमुक्ति का आधार यह नहीं था कि सूचक के बयान को अविश्वसनीय अथवा विरोधाभासी पाया गया था। हमारा सुविचारित मत है कि दोषसिद्धि का निर्णय एकमात्र परिसाक्ष्य पर पारित किया जा सकता है यदि ऐसे गवाह का साक्ष्य विश्वसनीय, अकलंकित और अप्रभावित है। सूचक निर्दोष युवती है जिसकी उपस्थिति में उसके माता-पिता सहित उसके परिवार के प्रत्येक सदस्य का अपीलार्थीगण और उसके सहयोगियों द्वारा अपहरण कर लिया गया था और उनके द्वारा उसको भी नहीं बख्शा गया था। उनके घर से एक किलोमीटर की दूरी तय करने के बाद तीन अभियुक्तगण अर्थात् किंक्री उर्फ गोविन्द उर्फ टपू, विष्णु कुर्ली और कुंडिया उर्फ टोपंडी द्वारा सूचक को अलग कर दिया गया था जिसमें से विष्णु कुर्ली और कुंडिया उर्फ टोपंडी इस अपील में अपीलार्थीगण हैं और अभियुक्त किंक्री उर्फ गोविंद उर्फ टपू विचारण के दौरान फरार हो गया। सूचक को झाड़ी में ले जाया गया था और उन तीन अभियुक्तगण द्वारा उसे बलात्कार के अध्यधीन किया गया था। घटना के बाद सूचक पासिंग सोई के घर गयी जिस तथ्य को पासिंग सोई अ० सा० 5 के साक्ष्य द्वारा संपुष्ट किया गया है और यदि उक्त गवाह की पत्नी का परीक्षण नहीं किया गया है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा। नदी के किनारे खून के धब्बों को पाया गया था और बालू के भीतर दफन नदी के तल से मृत शरीरों को बरामद भी किया गया था। डॉक्टर ने समस्त सातों मृतकों के शरीर पर शवपूर्व उपहति पाया है और मृत्यु समीक्षा रिपोर्टों को भी सिद्ध किया गया है। हम अ० सा० 2 सूचक के बयान पर अविश्वास करने का कारण नहीं पाते हैं। चूँकि कोई तात्विक विरोधाभास नहीं निकाला गया था, आई० ओ० का गैर-परीक्षण घातक नहीं माना जा सकता है।

13. ऊपर की गयी चर्चा और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य की दृष्टि में, हम इस अपील में गुणागुण नहीं पाते हैं। तद्नुसार, इस अपील को खारिज किया जाता है। अपीलार्थीगण के विरुद्ध पारित दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश को मान्य ठहराया जाता है।

ekuuh; vkjñ vkjñ çlkn] U;k;efr

कुतुबुद्दीन मोमिन

cuke

झारखंड राज्य

Cr. M. P. No. 1831 of 2011. Decided on 13th February, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 409—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—लोक सेवक द्वारा न्यास का दांडिक भंग—खातों में अभिकथित गबन—ग्यारह वर्षों के बाद आरोप-पत्र दाखिल किया गया जिस पर यह अभिनिर्धारित करते हुए कि प्रथम दृष्टया सामग्रियाँ हैं जो भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 409 के अधीन अपराध गठित करती हैं, याची के विरुद्ध अपराध का संज्ञान लिया गया था—सी॰ जे॰ एम॰ द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में अवैधता नहीं है—उन्मोचन के समय समस्त बिंदुओं को उठाने की स्वतंत्रता याची को देते हुए आवेदन खारिज किया गया।

(पैराएँ 6 से 8)

अधिवक्तागण.—Mr. S. S. Choudhary, For the Petitioners; APP., For the State.

आदेश

पक्षों को सुना गया।

2. यह आवेदन महेशपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 86 वर्ष 2002 (जी॰ आर॰ सं॰ 405 वर्ष 2002) में विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, पाकुड़ द्वारा पारित दिनांक 23.8.2011 के आदेश, जिसके द्वारा और जिसके अधीन भारतीय दंड संहिता की धारा 409 के अधीन याची और अन्य के विरुद्ध संज्ञान लिया गया है, के अभिखंडन के लिए दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 482 के अधीन दाखिल किया गया है।

3. याची के विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि जब महेशपुर प्रखंड के खाता की लेखा परीक्षा की गयी थी, संदेह किया गया था कि अभियुक्तगण द्वारा कुछ गबन किया गया है जिस पर वर्ष 2002 में भारतीय दंड संहिता की धारा 409 के अधीन अपराध के लिए महेशपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 86 वर्ष 2002 दर्ज किया गया था। जब नौ वर्षों के अवसान के बाद भी आरोप-पत्र दाखिल नहीं किया गया था, अभियुक्तगण में से एक दांडिक विविध सं॰ 507 वर्ष 2011 में इस न्यायालय के पास आया जिसमें महेशपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 86 वर्ष 2002 की संपूर्ण दांडिक कार्यवाही को उसने चुनौती दिया था। निम्नलिखित संप्रेक्षित करने के बाद उस आवेदन को निपटाया गया था:—

> *^^rF;k vkj ifjfLFkfr;k vkj ;kph ek0 'kdhj teky] vU; ch0 Mh0 vk0 vkj dk;ky; LVkQ] ftUg fofHkUu LFkkuk l LFkkukrfjr fd;k x;k g] d fo#) xcu d vfHkdfFkr lngkLin ekey dk è;ku e j[ku ij vkj fd ekey dk vUo"k.k vHkh Hkh tkjh g] e bl pj.k ij vUo"k.k d Øe e gLr{ki djuk lefpr ugh ikrk gA fQj Hkh ;g okNuh; g fd vkb0 vk0 ;Fkk lHko 'kh?kkfr'kh?k vUo"k.k dk ijk djxk vkj ifyl fjikV nkf[ky djxkA***

4. इस पर, पुलिस ने ग्यारह वर्षों बाद आरोप-पत्र दाखिल किया है जिस पर संज्ञान लिया गया है जो चुनौती के अधीन है।

5. याची के विद्वान अधिवक्ता श्री चौधरी निवेदन करते हैं कि अन्वेषण के दौरान पर्यवेक्षण प्राधिकारियों में से एक ने अभिनिर्धारित किया था कि पुनर्लेखा परीक्षा आवश्यक है किंतु अन्वेषण अधिकारी ने प्रखंड कार्यालय के खाता का पुनः लेखा परीक्षा कराए बिना आरोप-पत्र दाखिल किया जिस पर संज्ञान लिया गया है और इसलिए संज्ञान लेने वाला आदेश बिल्कुल दोषपूर्ण है।

6. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर और अभिलेख के परिशीलन पर, यह वस्तुतः प्रतीत होता है कि ग्यारह वर्षों बाद आरोप-पत्र दाखिल किया गया था जिस पर यह अभिनिर्धारित करते हुए कि प्रथम दृष्टया सामग्रियाँ है जो भारतीय दंड संहिता की धारा 409 के अधीन अपराध गठित करती है, याची के विरुद्ध अपराध का संज्ञान लिया गया था।

7. अतः मैं महेशपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 86 वर्ष 2002 (जी॰ आर॰ सं॰ 405 वर्ष 2002) में मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी द्वारा पारित दिनांक 23.8.2011 के आदेश में अवैधता नहीं पाता हूँ। इसलिए इस आवेदन को खारिज किया जाता है।

8. किंतु, उन्मोचन के समय भारतीय दंड संहिता की धारा 409 के अधीन अपराध गठित करने वाली सामग्रियों की अपर्याप्तता की ओर समस्त बिंदुओं को उठाने की छूट याची को होगी।

---

ekuuh; Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efr

जोसेफ एक्का

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (Cr.) No. 366 of 2011. Decided on 13th February, 2012.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 167(2)(b)—रिमांड–अभियुक्त की व्यक्तिगत उपस्थिति–कोई व्यक्ति, जो किसी मामले के संबंध में न्यायिक अभिरक्षा में है, को किसी अन्य मामले में जिसमें किसी अन्य जिला में उसकी उपस्थिति आवश्यक है, उस मामला विशेष में आगे प्रगति के लिए विडियो वार्तालाप के माध्यम से रिमांड किया जा सकता है–विडियो वार्तालाप के माध्यम से याची को रिमांड करने का निर्देश सी॰ जे॰ एम॰ को दिया गया–याचिका अनुज्ञात। (पैराएँ 6 से 8)

अधिवक्तागण.–Mr. J. S. Singh, For the Petitioner; JC to AAG., For the Respondent.

आदेश

यह दांडिक रिट याचिका महुआटाँड पी॰ एस॰ केस सं॰ 36 वर्ष 2009 से उद्भूत होने वाले जी॰ आर॰ सं॰ 591 वर्ष 2009 में विद्वान सी॰ जे॰ एम॰, लातेहार द्वारा पारित दिनांक 10.9.2010 के आदेश को अपास्त करने की प्रार्थना के साथ दाखिल किया गया है। आगे प्रार्थना की गयी है कि जब तक याची उस मामला विशेष में रिमांड नहीं किया जाता है, वह जमानत आवेदन दाखिल करने में सक्षम नहीं हो सकता है अथवा मामला आगे अग्रसर नहीं होगा।

2. वर्तमान में, इस मामले में याची डुमरी पुलिस थाना में दर्ज मामले के संबंध में गुमला कारा में बंद है जिस मामले में उसे जमानत प्रदान किया गया है किंतु महुआटांड पी॰ एस॰ केस सं॰ 36 वर्ष 2009 के संबंध में जारी प्रोड्क्शन वारंट के बूते पर उसे अभिरक्षा में निरुद्ध किया गया है।

3. राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना का विरोध किया है।

4. मैंने जी॰ आर॰ सं॰ 591 वर्ष 2009 के संबंध में विद्वान सी॰ जे॰ एम॰ द्वारा पारित दिनांक 19.1.2010 और दिनांक 10.9.2010 के आदेशों का परिशीलन किया है। केवल प्रोड्क्शन वारंट के आधार पर किसी व्यक्ति को अभिरक्षा में निरुद्ध नहीं किया जा सकता है और उसे प्रथम उपलब्ध अवसर पर संबंधित न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए जाने की आवश्यकता होती है ताकि मामला जिसमें उसकी उपस्थिति की आवश्यकता है, आगे अग्रसर किया जा सके।

5. दिनांक 19.1.2010 का आदेश स्पष्टत: उपदर्शित करता है कि महुआटांड पी॰ एस॰ केस सं॰ 36 वर्ष 2009 के संबंधित अन्वेषण अधिकारी ने इस मामले में याची के रिमांड के लिए अध्यपेक्षा दाखिल किया है और विद्वान सी॰ जे॰ एम॰ ने प्रसन्नतापूर्वक प्रार्थना अनुज्ञात किया है और गुमला उपकारा को प्रोड्क्शन वारन्ट भेजा है। विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ के निवेदनों पर आधारित सी॰ जे॰ एम॰ द्वारा कथित आधार सही प्रतीत नहीं होते हैं क्योंकि स्वयं अन्वेषण अधिकारी ने उस विशेष महुआटांड़ पी॰ एस॰ केस सं॰ 36 वर्ष 2009 में याची के रिमांड के लिए अध्यपेक्षा दाखिल किया है। याची भी जॉन एक्का के पुत्र जोसेफ एक्का के रूप में अपनी पहचान से इनकार नहीं करता है।

6. अब प्रश्न उद्भूत होता है कि जब किसी मामले के संबंध में किसी व्यक्ति को किसी दंडाधिकारी द्वारा न्यायिक अभिरक्षा में रिमांड किया जाता है और किसी अन्य जिला में लंबित किसी अन्य मामले में उसकी उपस्थिति आवश्यक है, तो क्या उस मामले में उसके पहले रिमांड के लिए उसकी व्यक्तिगत उपस्थिति आवश्यक है?

इस संदर्भ में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2)(b) के प्रावधान में हाल का संशोधन, जिसे दिनांक 31.12.2009 से प्रभाव दिया गया है, निम्नलिखित है:–

> *^^dkb Hkh eftLVV bl èkkjk d vèkhu ifyl dh vfHkj{kk e vfHk;Dr dk fujkèk rc rd çkfèkÑr ugh djxk] tc rd fd vfHk;Dr dk mud le{k igyh ckj 0;fDrxr :i l çLrr ugh fd;k tk; vkj ckn e çR;d ckj vfHk;Dr ifyl dh vfHkj{kk e jgrk gk] yfdu eftLVV ;k rk 0;fDrxr :i l ;k byDVkfud] ohfM;k lEid d ekè;e l vfHk;Dr dk çLrr dju ij U;kf;d vfHkj{kk e fujkèk vkx c<k ldrk gA***

7. वर्तमान मामले में यह विवादित नहीं है कि याची डुमरी पी॰ एस॰ केस सं॰ 48 वर्ष 2009 के संबंध में गुमला कारा के न्यायिक अभिरक्षा में है और महुआटांड़ पी॰ एस॰ केस सं॰ 36 वर्ष 2009 के अन्वेषण अधिकारी ने लातेहार में उस मामले में उसके रिमांड के लिए प्रार्थना किया है। यदि ऐसा है, दो विकल्प होंगे : प्रथमत: कि अभियुक्त, जिसके रिमांड की किसी अन्य जिला में किसी अन्य मामले के संबंध में आवश्यकता है, उसे संबंधित न्यायालय के समक्ष समुचित निगरानी के अधीन प्रस्तुत किया जाना चाहिए अथवा उस मामला विशेष में उसे विडियो वार्तालाप के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है, किंतु किसी भी स्थिति में उक्त अभियुक्त को मामले, जिसमें उसकी उपस्थिति की आवश्यकता है, में संबंधित न्यायालय के समक्ष उसको उपस्थित करने के लिए अन्वेषण अधिकारी को सौंपा जाना होगा। इसके अतिरिक्त, पूर्वोक्त संशोधन, जिसे इलेक्ट्रॉनिक यंत्र का उपयोग करके विचारण में तेजी लाने के लिए प्रभाव दिया गया है, निष्फल हो जाएगा यदि इसे समुचित रूप से लागू नहीं किया जाता है। अत:, मैं महसूस करता हूँ कि किसी व्यक्ति, जो किसी मामले के संबंध में न्यायिक अभिरक्षा में है, को एक अन्य मामले में, जिसमें एक अन्य जिला में उसकी उपस्थिति की आवश्यकता है, उस मामला विशेष में आगे प्रगति के लिए विडियो वार्तालाप के माध्यम से रिमांड किया जा सकता है।

8. उक्त चर्चा की दृष्टि में, या तो एस॰ पी॰ गुमला को महुआटांड पी॰ एस॰ केस सं॰ 36 वर्ष 2009 के संबंध में याची को सी॰ जे॰ एम॰, लातेहार के समक्ष पेश करने के लिए समुचित निगरानी प्रदान करना चाहिए या फिर संबंधित सी॰ जे॰ एम॰ को महुआटांड़ पी॰ एस॰ केस सं॰ 36 वर्ष 2009 के संबंध में याची को विडियो वार्तालाप के माध्यम से रिमांड करने के लिए समुचित कदम उठाना होगा।

उक्त संप्रेक्षणों और निर्देश के साथ यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है और दिनांक 10.9.2010 का आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है।

---

ekuuh; vkjñ vkjñ çlkn] U;k;efr

बापी दास रॉय उर्फ बापी

cuke

झारखंड राज्य

Cr. Rev. No. 92 of 2004. Decided on 24th January, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 406 एवं 420—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 239—न्यास का दांडिक भंग एवं छल–उन्मोचन याचिका अस्वीकार किया जाना–याची और सूचक फर्म के पार्टनर हैं–याची ने अभिकथित रूप से बैंक एवं अन्य लेनदारों से फर्म के नाम से कर्ज लिया–कोई अभिकथन नहीं है कि याची ने कपटपूर्ण एवं गैरईमानदार कृत्य द्वारा कोई संपत्ति डिलीवर करने के लिए सूचक को उत्प्रेरित किया बल्कि अभिकथन मात्र यह है कि याची ने इस तथ्य से सूचक को अवगत कराए बिना बैंक से फर्म के नाम पर कर्ज लिया था और इस प्रकार कोई अपराध नहीं बनता है–सूचक द्वारा संपत्ति न्यस्त किए जाने पर याची ने अभिकथित रूप से राशि का दुर्विनियोग नहीं किया–आक्षेपित आदेश अपास्त–याची को अभियोगों से उन्मोचित किया गया। (पैराएँ 7, 10 से 13)

निर्णयज विधि.–(2000)4 SCC 168—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s Delip Jerath, Abhinash Kumar, For the Petitioner; M/s. Moti Gope, For the Respondent-State.

आदेश

दिनांक 2.5.2011 के आदेश के अधीन अभिलिखित किया गया है कि सामान्य आदेशिका के माध्यम से भेजी गयी नोटिस को सुरक्षा प्रहरी टुन्नु दास द्वारा प्राप्त किया गया था और उपस्थिति की प्रतीक्षा करते हुए मामला पोस्ट किया गया था, तद्द्वारा जिसका अर्थ है कि नोटिस को विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 पर तामील किया गया माना गया था। इसके बावजूद विपक्षी पक्षकार ने इस मामले में उपस्थित होना नहीं चुना।

2. तद्नुसार, याची के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

3. यह पुनरीक्षण आवेदन जी॰ आर॰ सं॰ 1165 वर्ष 2002 (लालपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 50 वर्ष 2002) में तत्कालीन सी॰ जे॰ एम॰, राँची द्वारा पारित दिनांक 1.12.2003 के आदेश के विरुद्ध निर्देशित है जिसके द्वारा भारतीय दंड संहिता की धाराओं 460 और 420 के अधीन दंडनीय अभियोग से उन्मोचन के लिए दाखिल आवेदन अस्वीकार कर दिया गया था।

4. प्राथमिकी में बनाया गया अभियोजन का मामला यह है कि सूचक ''ऐट ग्लेंस'' नामक फर्म का पार्टनर है जिसका याची दूसरा पार्टनर है जिसने सूचक की जानकारी के बिना फर्म के नाम पर सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, लालपुर शाखा, राँची से कर्ज लिया।

5. आगे अभिकथित किया गया है कि याची ने अन्य उधार लेने वालों से भी कर्ज लिया था। ऐसे अभिकथन पर भारतीय दंड संहिता की धाराओं 426 और 420 के अधीन लालपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 50 वर्ष 2002 के रूप में मामला दर्ज किया गया था।

6. मामले का अन्वेषण आरंभ किया गया था। अन्वेषण पूरा होने पर आरोप-पत्र दाखिल किया गया था जिस पर भारतीय दंड संहिता की धाराओं 406 और 420 के अधीन अपराधों का संज्ञान लिया

गया था। बाद में, भारतीय दंड संहिता की धाराओं 406 और 420 के अधीन दंडनीय अभियोगों से याची को उन्मोचित करने के लिए आवेदन इस आधार पर दाखिल किया गया था कि भारतीय दंड संहिता की धारा 406 अथवा धारा 420 के अधीन अपराध गठित करने के लिए कोई सामग्री नहीं है, किंतु दिनांक 1.12.2003 के आदेश के तहत यह अभिनिर्धारित करते हुए मामला अस्वीकार कर दिया गया था कि भारतीय दंड संहिता की धाराओं 406 और 420 के अधीन आरोप विरचित करने के लिए पर्याप्त सामग्री है और कि अपराध करने के बारे में मजबूत संदेह का निष्कर्ष निकालने के लिए सक्षम अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर भी आरोप विरचित किया जा सकता है। वह आदेश इस आवेदन में चुनौती के अधीन है।

7. याची के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर मैं पाता हूँ कि याची ने फर्म के पार्टनरों में से एक होने के नाते बैंक से और अन्य लेनदारो से फर्म के नाम में कर्ज लिया और उसे भारतीय दंड संहिता की धाराओं 406 और 420 के अधीन अपराध के लिए अभियोजित किया जा रहा है किंतु ऐसा कोई अपराध नहीं बनता है यदि याची के विरुद्ध किए गए अभिकथनों को सत्य मान भी लिया है। भारतीय दंड संहिता की धारा 415 के अधीन छल की परिभाषा दी गयी है जिसका पठन निम्नलिखित है:–

*"415. **Ny-&**tks dksbZ fdlh O;fDr ls çopuk dj mls O;fDr dks] ftls bls çdkj çofpr fd;k x;k g] diViwoZd ;k cbekuh ls mRçfjr djrk g fd og dksbZ lEifÙk fdlh O;fDr dks ifjnÙk dj ns] ;k ;g lEefr ns fd dksbZ O;fDr fdlh lEifÙk dks j[ks ;k lk'k; mls O;fDr dks] ftls bls çdkj çofpr fd;k x;k g] mRçfjr djrk g fd og ,slk dksbZ dk;Z djs] ;k djus dk yksi djs] ftls og ;fn mls gj çdkj çofpr u fd;k x;k gksrk rks] u djrk ;k djus dk yksi u djrk] vkSj ftl dk;Z ;k yksi ls mls O;fDr dks 'kkjhfjd] ekufld] [;kfr lEca/kh ;k lkEifÙkd uqdlku ;k vigkfu dkfjr gksrh g] ;k dkfjr gksuh lEHkkO; g] og ^^Ny** djrk g] ;g dgk tkrk gA**"*

8. पूर्वोक्त प्रावधान के कोरे परिशीलन पर, यह प्रतीत होता है कि छल का अपराध गठित करने के लिए निम्नलिखित अवयव होने चाहिए:

(I) >Bk vFkok Hkzked O;inZ'ku djds vFkok fdlh vU; dkjokbZ vFkok yksi }kjk fdlh O;fDr dk çofpr djukA

(II) fdlh lEifÙk dk nsus ds fy, vFkok fdlh vU; O;fDr }kjk bls viuh ikl j[kus ds fy, lgefr nsus ds fy, mls O;fDr dk diViw.kZ vFkok xjbekunkj mRçsj.kk vFkok vk'k;iwoZd mls O;fDr dk dksbZ pht djus vFkok ugha djus ds fy, çfjr djuk tks og ugha djrk vFkok djus dk yksi ugha djrk ;fn mls bls rjg çofpr ugha fd;k tkrk vkSj tks ÑR; vFkok yksi mls O;fDr ds 'kkjhfjd] ekufld] çfr"Bk vFkok lEifÙk dks uqdlku vFkok gkfu dkfjr djrk g vFkok dkfjr fd, tkus dh lEHkkouk gA

9. ''इस चरण पर, मैं **हृदय रंजन प्रसाद वर्मा बनाम बिहार राज्य, (2000)4 SCC 168,** मामले में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट कर सकता हूँ जिसमें निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है:–

"14. bl èkkjk ds iBu ij Li"V g fd ifjHkk"kk esa ÑR;ksa ds nks iFkd oxksZ dks fn;k x;k g ftUgsa çofpr O;fDr dks djus ds fy, mRçfjr fd;k tk ldrk gA çFker% mls fdlh O;fDr dks dksbZ lEifÙk nsus ds fy, diViwoZd vFkok xjbekunkj :i ls mRçfjr fd;k tk ldrk gA èkkjk esa fn, x, ÑR;ksa dk nljk oxZ fdlh pht dk djuk vFkok djus dk yksi djuk g tks çofpr O;fDr djrk vFkok ugha djrk ;fn mls bls çdkj çofpr ugha fd;k tkrkA ekeys ds çFke oxZ esa mRçsj.kk diViw.kZ vFkok xjbekunkj gksuk pkfg,A ÑR;ksa ds nljs oxZ esa mRçsj.kk vk'k;iw.kZ gksuk pkfg, fdUrq diViw.kZ vFkok xjbekunkj ughaA

*15. ;g ç'u fofuf'pr djr g, è;ku e j[kuk gkxk fd lfonk d Hkx ek= vkj Ny d vijkèk d chp lfHkUurk l{e gA ;g mRçj.k d le; vfHk;Dr d vk'k; ij fuHkj djrk g ftldk fu.k; mld ckn d i'pkrorh vkpj.k }kjk fd;k tk ldrk g fdr ;g i'pkrorh vkpj.k ,dek= ijh{kk ugh gA lfonk dk Hkx ek= Ny d fy, nkfMd vfHk;ktu dk tUe ugh n ldrk g tc rd l0;ogkj d vkjHk e gh vFkkr tc vijkèk fd;k x;k crk;k x;k g] diVi.k vFkok xj&bekunkj vk'k; n'kk;k ugh tkrk gA vr% vk'k; vijkèk dk lkj gA fdlh 0;fDr dk Ny dk nk"kh vfHkfuèkkfjr dju d fy, ;g n'kkuk vko';d g fd oknk djr le; mldk diVi.k vFkok xjbekunkj vk'k; FkkA ckn e viuk oknk ijk dju e mldh foQyrk ek= dk vkjHk e gh vFkkr tc mlu oknk fd;k Fkk] mldk ,lk lg&vkijkfèkd vk'k; mièkkfjr ugh fd;k tk ldrk gA***

10. इस मामले में ऐसा अभिकथन बिल्कुल नहीं है कि सूचक ने कपटपूर्ण और गैरईमानदार कृत्य द्वारा सूचक को किसी संपत्ति को डिलीवर करने के लिए उत्प्रेरित किया बल्कि अभिकथन मात्र यह है कि याची ने सूचक को इस तथ्य से अवगत कराए बिना बैंक से फर्म के नाम में कर्ज लिया था और इस प्रकार कोई अपराध नहीं बनता है। इसी प्रकार से, न्यास के भंग, जिसे भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 405 में निम्नलिखित रूप से परिभाषित किया गया है, के अपराध को आकृष्ट करने के लिए कोई तत्व सामने नहीं आता है:–

*"405. **vkijkfèkd U;kl Hkx-**&tk dkbZ lEifÙk ;k lEifÙk ij dkbZ Hkh v[kR;kj fdlh idkj viu dk U;Lr fd, tkus ij ml lEifÙk dk cbekuh l nfofu;kx dj yrk g ;k ml viu mi;kx e lifjofrr dj yrk g ;k ftl idkj ,lk U;kl fuogu fd;k tkuk g] mldk fofgr dju okyh fofèk l fdlh fun'k dk] ;k ,l U;kl d fuogu d ckj e mld }kjk dh xbZ fdlh vfHk0;Dr ;k foof{kr oèk lfonk dk vfrØe.k djd cbekuh l ml lEifÙk dk mi;kx ;k 0;;u djrk g] ;k tkuc>dj fdlh vU; 0;fDr dk ,lk djuk lgu djrk g] og ^^vkijkfèkd U;kl Hkx** djrk gA***

11. स्वीकृत रूप से यह मामला कभी नहीं है कि याची ने सूचक द्वारा संपत्ति न्यस्त किए जाने पर राशि का दुर्विनियोग किया था।

12. इस प्रकार, धारा 405 के अधीन अपराध आकृष्ट नहीं होता है, किंतु अवर न्यायालय ने उन्मोचन के समय मामले के इन समस्त पहलुओं पर विचार नहीं किया था और इसलिए, विद्वान सी॰ जे॰ एम॰, राँची द्वारा पारित लालपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 50 वर्ष 2002, जी॰ आर॰ सं॰ 1165 वर्ष 2002 के तत्सम, में दिनांक 1.12.2003 का आदेश अवैधता से ग्रस्त है और तद्नुसार अपास्त किया जाता है।

13. परिणामस्वरुप, याची को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 406 और 420 के अधीन दंडनीय अभियोग से उन्मोचित किया जाता है।

परिणामस्वरुप, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o vij'k dekj flg] U;k;efrx.k

कमल नाथ सिंह एवं एक अन्य

cuke

झारखंड राज्य

Cr. Appeal No. 329 of 2001. Decided on 1st February, 2012.

यह अपील सत्र विचारण सं॰ 126 वर्ष 1998 में अष्टम अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, पलामू, डाल्टेनगंज द्वारा पारित दिनांक 21 जून, 2001 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 25 जून 2001 के दंडादेश के विरुद्ध निर्देशित है।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 304B/34—दहेज मृत्यु–आजीवन कारावास–मृत्यु श्वासावरोध के कारण हुई थी–यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि स्त्री की मृत्यु के ठीक पहले दहेज के लिए यातना दी गयी थी–घटना का चश्मदीद गवाह नहीं है–शव कुँआ में पाया गया–अपीलार्थी-पति के दोषसिद्धि के निर्णय में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है–अन्य अपीलार्थी को संदेह का लाभ दिया जाना चाहिए क्योंकि उसके विरुद्ध अस्पष्ट और सामान्य अभिकथन हैं–दोषसिद्धि अभिपुष्ट की गयी किंतु दंडादेश को पहले ही भुगत ली गयी अवधि (14½ वर्ष) तक के लिए घटा दिया गया। (पैराएँ 3, 4, 7 से 9)

निर्णयज विधि.–AIR 1995 SC 120—Referred.

अधिवक्तागण.–M/s A. K. Kashyap, Ravi Prakash, Lina Shakti, For the Appellant; Mr. Amaresh Kumar, For the State.

न्यायालय द्वारा.–यह अपील सत्र विचारण सं॰ 126 वर्ष 1998 में अपीलार्थीगण कमल नाथ सिंह और बिंदेश्वर सिंह उर्फ नन्हक सिंह को भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 304B/34 के अधीन दोषसिद्ध करते हुए और उनको आजीवन कठोर कारावास का दंडादेश देते हुए अष्टम अपर सत्र एवं जिला न्यायाधीश डाल्टेनगंज, पलामू द्वारा पारित दिनांक 21 जून 2001 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 25 जून, 2001 के दंडादेश के विरुद्ध निर्देशित है।

2. संक्षेप में, अभियोजन मामला यह है कि सूचक महाबीर सिंह (अ॰ सा॰ 1) ने दिनांक 12.10.1997 को पुलिस के समक्ष फर्दबयान दर्ज किया कि उसकी पुत्री शोभा देवी (मृतका) का विवाह लगभग तीन वर्ष पहले बिंदेश्वर सिंह उर्फ नन्हक सिंह के साथ हुआ था। अपीलार्थीगण साइकिल और रेडियो मांगा करते थे और उस कारण मृतका को यातना दिया करते थे जिस कारण सूचक अपनी पुत्री को लगभग पाँच माह पहले वापस ले गया था। उसकी मृत्यु के आठ दिन पहले अपीलार्थी बिंदेश्वर सिंह उर्फ नन्हक सिंह आया और उसे वापस ले गया। इसके पहले जब उसकी पत्नी किशुनमणि देवी (अ॰ सा॰ 2) खेत में थी, शोभा देवी की सास ने उसे सूचित किया कि उसकी पुत्री रात में कहीं भाग गयी थी। सूचक को उसकी पत्नी द्वारा सूचित किया गया था, तब वह अपने पुत्र के साथ शोभा देवी को खोजने गया था। प्रातः लगभग 9 बजे उन्होंने अफवाह सुना कि कुँआ में मृत शरीर पड़ा हुआ था। तत्पश्चात, शोभा देवी का मृत शरीर बरामद किया गया। सूचक ने अभिकथित किया कि अपीलार्थीगण ने दहेज की मांग पूरी न किए जाने के कारण उसकी पुत्री की हत्या कर दी है।

3. डॉक्टर (अ॰ सा॰ 6) ने सामने की गर्दन पर अनेक नाखून से काटे जाने के निशानों और सामने की छाती पर खरोंच पाया। चीर-फाड़ करने पर उन्होंने हायोराइड हड्डी का फ्रैक्चर पाया। डॉक्टर ने मत दिया कि मृत्यु का कारण श्वासवरोध था।

4. अपीलार्थीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री ए॰ के॰ कश्यप ने निवेदन किया कि यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि शोभा देवी की मृत्यु के ठीक पहले दहेज के लिए यातना दी गयी थी क्योंकि स्वीकृत रूप से उसके पैतृक गृह, जहाँ वह लगभग चार माह तक रही थी, से दहेज की किसी मांग के बिना उसे वापस ले जाया गया था। उन्होंने आगे निवेदन किया कि घटना का चश्मदीद गवाह नहीं है और मृत शरीर कुँआ में पाया गया था जो सूचक के खेत में अवस्थित है।

5. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया है।

6. श्री कश्यप ने तब निवेदन किया कि कम से कम दंडादेश के प्रश्न पर बिंदेश्वर सिंह के मामले पर विचार किया जा सकता है क्योंकि वह 14½ वर्षों से कारा में रह रहा है। उन्होंने दंडादेश के प्रश्न पर **AIR 1995 SC 120** में प्रकाशित निर्णय पर विश्वास किया। अपीलार्थी कमलनाथ सिंह के संबंध में उन्होंने निवेदन किया कि अस्पष्ट और सामान्य अभिकथन हैं।

7. अभिलेखों का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने के बाद और दोनों पक्षों को विस्तारपूर्वक सुनने के बाद हम संतुष्ट हैं कि अपीलार्थी सं० 1 कमल नाथ सिंह को संदेह का लाभ दिया जाना चाहिए क्योंकि उसके विरुद्ध अस्पष्ट और सामान्य अभिकथन हैं।

8. जहाँ तक अपीलार्थी सं० 2 बिंदेश्वर सिंह उर्फ नन्हक सिंह का संबंध है, हम दोषसिद्धि के निर्णय में हस्तक्षेप करने का कारण नहीं पाते हैं। किंतु जहाँ तक दंडादेश का संबंध है, हमारे मत में, न्याय का उद्देश्य पूरा होगा यदि उसे कारा में उसके द्वारा पहले ही भुगत ली गयी अवधि अर्थात् 14½, वर्ष, जो न्यूनतम दंडादेश का दोगुना है, के लिए दंडादेशित किया जाता है।

9. परिणामस्वरुप, यह अपील अंशतः अनुज्ञात की जाती है। अपीलार्थी कमल नाथ सिंह जमानत पर है। उसे उसके जमानत बंधपत्रों के दायित्व से उन्मोचित किया जाता है। अपीलार्थी बिंदेश्वर सिंह उर्फ नन्हक सिंह, जो कारा अभिरक्षा में है, को तुरन्त निर्मुक्त किए जाने का निर्देश दिया जाता है यदि किसी अन्य मामले में उसकी आवश्यकता नहीं है।

---

ekuuh; ,pñ lhñ feJk] U;k;efr

भरत भूषण अग्रवाल

cuke

बिहार राज्य (अब झारखंड) एवं अन्य

Cr.W.J.C. No. 137 of 2000 (R). Decided on 17th February, 2012.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन एक आवेदन के मामले में।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 406 एवं 120B—भारत का संविधान–अनुच्छेद 226—न्यास का दांडिक भंग एवं षड्यंत्र–प्राथमिकी–आडमानित मोटरों और विद्युत उपकरणों को कारखाना से हटाया गया–कर्ज के पुनर्भुगतान में व्यतिक्रम–निगम के विरुद्ध संपूर्ण देयों को याची द्वारा चुका दिया गया है–चूँकि कोई बकाया नहीं है और पक्षों के बीच कोई विवाद नहीं है, याची के विरुद्ध दांडिक कार्यवाही जारी रखकर कोई लाभदायी प्रयोजन पूरा नहीं किया जा सकता है और यह याची के विरुद्ध दर्ज प्राथमिकी को अभिखंडित करने के लिए सुयोग्य मामला है–प्राथमिकी अभिखंडित–रिट याचिका अनुज्ञात। (पैराएँ 4, 5, 8 एवं 9)

निर्णयज विधि.–(2011)10 SCC 705 : **2012 (1) BLJ & JLJ 33 (SC)**—Applied.

अधिवक्तागण.–Mr. A. K. Das, For the Petitioner; Sri Sri Ashok Kumar Yadav, For the Respondent No. 2.

न्यायालय द्वारा.–याची के विद्वान अधिवक्ता और प्रत्यर्थी राज्य के विद्वान अधिवक्ता और प्रत्यर्थी बिहार राज्य वित्त निगम की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. यह रिट याचिका याची के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 406, 120B के अधीन दर्ज गिरिडीह (एम॰) पी॰ एस॰ केस सं॰ 373 वर्ष 1999 में प्राथमिकी और अन्वेषण के अभिखंडन के लिए दाखिल की गयी है।

3. याची ने मेसर्स त्रिवेणी पॉलिटेक्स लि॰ दानीडीह, टुंडीरोड, गिरिडीह का निदेशक होने के नाते बिहार राज्य वित्त निगम (इसके बाद 'निगम' के रूप में निर्दिष्ट) से 21.78 लाख रुपयों का कर्ज लिया था। याची द्वारा कर्ज का लाभ लिया गया था जिसका पुनर्भुगतान नहीं किया जा सका था और अंततः निगम के अधिकारियों ने राज्य वित्त निगम अधिनियम, 1951 की धाराओं 29 और 30 के प्रावधानों के अधीन कार्यपालक दंडाधिकारी और पुलिस की उपस्थिति में उक्त कारखाना का कब्जा लिया था। वस्तु सूची बनाते हुए पाया गया था कि लगभग 92 मोटरों और लगभग समस्त विद्युत उपकरणों को कारखाना से हटा दिया गया था और इस प्रकार बिहार राज्य वित्त निगम, गिरिडीह के शाखा प्रबंधक द्वारा प्राथमिकी दर्ज की गयी थी जिसके आधार पर गिरिडीह (एम॰) पी॰ एस॰ केस सं॰ 373 वर्ष 1999 संस्थापित किया गया था और अन्वेषण आरंभ किया गया था। याची ने उक्त प्राथमिकी को दर्ज किए जाने को चुनौती दिया है और इसके अभिखंडन के लिए प्रार्थना किया है।

4. याची के विद्वान अधिवक्ता ने इंगित किया है कि याची ने निगम के समस्त देयों का पुनर्भुगतान कर दिया है और शेष राशि निगम द्वारा अधित्यक्त कर दी गयी थी और तद्नुसार निगम द्वारा कोई नो ड्यूज प्रमाण पत्र जारी किया गया था जैसा दिनांक 14.5.2007 के मेमो सं॰ 74/07-08 में अंतर्विष्ट है जिसे पूरक शपथ पत्र के परिशिष्ट 9 के रूप में अभिलेख पर लाया गया है। निगम ने पूरक शपथ पत्र का उत्तर दाखिल किया है जिसमें निगम द्वारा स्वीकार किया गया है कि वर्ष 2006 की एकमुश्त व्यवस्थापन योजना के अधीन निगम के विरुद्ध संपूर्ण देयों का भुगतान याची द्वारा कर दिया गया है। उत्तर में यह कथन भी किया गया है कि चूँकि उक्त योजना के अधीन याची द्वारा संपूर्ण देयों का भुगतान कर दिया गया है, अब कोई बकाया नहीं है और पक्षों के बीच कोई विवाद नहीं है और इसलिए इस प्रभाव का समुचित आदेश पारित किया जा सकता है।

5. शिजी उर्फ पप्पू एवं अन्य बनाम राधिका एवं एक अन्य, (2011)10 SCC 705 [: 2012 (1) BLJ & JLJ 33 (SC)], में भारत के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास करते हुए याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि समुचित मामलों में जहाँ दांडिक कार्यवाही को जारी रखकर किसी लाभदायी प्रयोजन को पूरा करने की संभावना नहीं है, सर्वोच्च न्यायालय ने कार्यवाही का अभिखंडन किया जाना अनुज्ञात किया है भले ही अपराध शमनीय नहीं हो। याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि चूँकि पक्षों के बीच समझौता हो गया था, अतः दांडिक कार्यवाही को जारी रखकर कोई लाभदायी प्रयोजन पूरा नहीं किया जा सकता है, और यह सुयोग्य मामला है जिसमें दांडिक कार्यवाही को अभिखंडित कर दिया जाए।

6. निगम के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को इस पर कोई आपत्ति नहीं है।

7. शिजी उर्फ पप्पू (उपर) के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित विधि अधिकथित किया है:–

> *^^17. ;g Li"V g fd ek= blfy, fd vijkèk n0 ç0 lO dh èkkjk 320 d vèkhu 'keuh; ugh Fkk] Lo; e mPp U;k;ky; }kjk n0 ç0 lO dh èkkjk 482 d vèkhu viuh 'kfDr d ç;kx l budkj dju dk dkj.k ugh gA gekj er e ml 'kfDr dk ç;kx mu ekeyk e fd;k tk ldrk g tgk vfHk;Dr d fo#) nk"kflf) nt dju dk volj ugh g vkj li.k fopkj.k fu"Qy gkuk gh gA ,d vkj*

*fopkj.k U;k;ky; d le{k vFkok vihy e i{kk }kjk vijkèkk d 'keu vkj nljh vkj n0 ç0 l0 dh èkkjk 482 d vèkhu vfHk;ktu vfHk[kfMr dju d fy, mPp U;k;ky; }kjk 'kfDr d ç;kx d chp l{e lfHkUurk gA tcfd fdlh vfHk;Dr dk fopkj.k djr g, vFkok nk"kflf) d fo#) vihy lur g, U;k;ky; mu ekeyk] tgk vijkèk èkkjk 320 d vèkhu 'keuh; ugh g] e i{kk d chp g, lyg ij vkèkkfjr fdlh vijkèk dk 'kefur dju dh vuefr nu e l{ke ugh gk ldrk g] fQj Hkh mPp U;k;ky; mu ekeyk e Hkh dk;okgh vfHk[kfMr dj ldrk g tgk vijkèk] ftul vfHk;Dr dk vkjkfir fd;k x;k g] v'keuh; gA n0 ç0 l0 dh èkkjk 482 d vèkhu mPp U;k;ky; dh vrfufgr 'kfDr ml ç;ktu l n0 ç0 l0 dh èkkjk 320 }kjk fu;f=r ugh gA** ¼tkj Mkyk x;k½*

8. इस तथ्य की दृष्टि में कि याची ने निगम के देयों का पुनर्भुगतान कर दिया है और निगम ने भी यह कथन करते हुए कि याची द्वारा निगम के संपूर्ण देयों का भुगतान कर दिया है, इसे अभिस्वीकृत भी किया है और अब कोई बकाया नहीं है और पक्षों के बीच कोई विवाद नहीं है, मेरे सुविचारित दृष्टिकोण में याची के विरुद्ध दांडिक कार्यवाही जारी रखकर कोई लाभदायी प्रयोजन पूरा नहीं किया जा सकता है और यह सुयोग्य मामला है जिसमें याची के विरुद्ध दर्ज प्राथमिकी अभिखंडित कर दी जाए। **शिजी उर्फ पप्पू (उपर)** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि इस मामले के तथ्यों पर पूरी तरह लागू होती है।

9. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, गिरिडीह (एम॰) पी॰ एस॰ केस सं॰ 373 वर्ष 1999 में प्राथमिकी और अन्वेषण एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है। तद्नुसार, यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है।

---

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efrx.k

मोरल मुर्मू एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य

Cr. Appeal D.B. No. 877 of 2003. Decided on 22nd February, 2012.

सत्र विचारण सं॰ 278 वर्ष 2000 में विद्वान सत्र न्यायाधीश, दुमका द्वारा पारित दिनांक 30.4.2003 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302/34—हत्या–सामान्य आशय–आजीवन कारावास अधिनिर्णीत–चश्मदीद गवाह मृतक का संबंधी है–अभियोजन याक्षियों के साक्ष्य विश्वास उत्पन्न नहीं करते हैं–उनके साक्ष्यों में महत्वपूर्ण विरोधाभास है–उनका आचरण भी संदेहास्पद प्रतीत होता है–घटना का समय भी संगति में नहीं है–पक्षों के बीच भूमि विवाद स्वीकार किया गया–पुलिस को युक्तियुक्त समय के भीतर सूचित नहीं किया गया था–जब पुलिस हत्या के बारे में सुनकर पहुँची, फर्दबयान दिया गया था–तथ्यों में तोड़-मरोड़ करने का अवसर था–अपीलार्थीगण संदेह के लाभ के योग्य हैं–दोषसिद्धि और दंडादेश अपास्त। (पैराएँ 5 से 9)

अधिवक्तागण.–Mr. S. P. Roy, For the Appellants; Mr. Amaresh Kumar, For the State.

न्यायालय द्वारा.–यह अपील सत्र केस सं॰ 278/2000 में अपीलार्थीगण को भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 302/34 के अधीन दोषसिद्ध करते हुए और उनको आजीवन कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश देते हुए विद्वान सत्र न्यायाधीश, दुमका द्वारा पारित दिनांक 30.4.2003 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध निर्देशित है।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि पुलिस ने दिनांक 18.1.2000 को दोपहर लगभग 1 बजे लूखी बास्की (अ॰ सा॰ 3) का फर्दबयान दर्ज किया जिसमें उसने कहा कि पिछले दिन अर्थात् दिनांक 17.1.2000 को उसका पति शिबू मरांडी (मृतक) कुछ काम से प्रात: 9-10 बजे के बीच घर से बाहर गया था। उस दिन सायं लगभग 4 बजे अ॰ सा॰ 4 गुदुज सोरेन ने उसको सूचित किया अपीलार्थीगण ने संयुक्त रूप से पत्थर और टांगी से प्रहार करके शिबू मरांडी की हत्या कर दी थी। जब सूचक घटना स्थल पर पहुँची, अपीलार्थीगण ने उसको गाली दी और कहा कि शिबू मरांडी अपीलार्थीगण में से एक के घर के सामने जा रहा था और उन्होंने उसकी हत्या इसलिए कर दी है ताकि भूमि जिसके लिए विवाद चल रहा है, उनकी हो जाएगी। आगे अभिकथित किया गया है कि कुछ अन्य गाँववालों ने भी घटना देखा है।

3. अपीलार्थीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री एस॰ पी॰ रॉय ने अनेक आधारों पर आक्षेपित निर्णय का विरोध किया। अपीलार्थी सं॰ 1 और 3 जो अब तक 11 वर्षों से अधिक तक कारा में रहे हैं और अपीलार्थी सं॰ 2 जो 8 वर्षों से अधिक कारा में बना हुआ है, संदेह के लाभ के हकदार हैं।

4. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया है।

5. हम निम्नलिखित कारणों से अपीलार्थीगण को संदेह का लाभ देने के इच्छुक हैं।

अ॰ सा॰ 1 चंदन किस्कू को चश्मदीद गवाह के रूप में प्रक्षेपित किया गया है। उसने अन्य बातों के साथ कहा कि उसने घटना देखा था। उसने आगे कहा कि शिबू की हत्या के बाद उसे अपीलार्थी मोरल मुर्मू के दरवाजा के निकट रखा गया था और तब वह अपने घर लौट आया। एक स्थान पर उसने कहा कि वह सूचक की बहन का पति होने के नाते उसका संबंधी है किंतु दूसरे स्थान पर उसने कहा कि मृतक उसका 'साढू' नहीं था। उसने कहा कि मोरल ने कुल्हाड़ी के पिछले हिस्से से दो-तीन बार प्रहार किया था और लसकर और शिवचरण ने मृतक की पीठ पर पत्थर से दो-तीन बार प्रहार किया था।

अ॰ सा॰ 2 सोम मरांडी को भी चश्मदीद गवाह के रूप में प्रक्षेपित किया गया है। उसने अन्य बातों के साथ साथ कहा कि उसने घटना देखा था किंतु उसने यह भी कहा कि अपीलार्थी मोरल के अपने सगे भाई दुर्गा मुर्मू ने घटना के पहले उस पर और अ॰ सा॰ 4 पर फसल की चोरी का मामला संस्थापित किया था जो चल रहा है। उसने यह भी कहा कि अपीलार्थीगण एक-दूसरे के संबंधी हैं।

अ॰ सा॰ 3 लखी बास्की सूचक है। उसने कहा कि मृतक प्रात: लगभग 7 बजे घर से बाहर गया था किंतु फर्दबयान में उसने कहा कि वह प्रात: 9-10 बजे के बीच घर से बाहर गया था। उसने आगे कहा कि अ॰ सा॰ 4 ने उसको सायं लगभग 4 बजे सूचित किया था।

अ॰ सा॰ 4 गुदुज सोरेन भी अभियोजन के मुताबिक चश्मदीद गवाह है किंतु उसने पैराग्राफ 5 में कहा कि उसने आरंभ से घटना नहीं देखा था और जब वह पहुँचा उसने देखा कि शिबू मस्तक से खून बहने की उपहति के साथ जमीन पर पड़ा हुआ था। तत्पश्चात्, वह अपने घर लौट गया और गाँववालों को सूचित किया। गवाह मृतक का संबंधी है।

अ॰ सा॰ 5, 6, 7 और 8 अनुश्रुत गवाह हैं।

अ॰ सा॰ 9 धर्मदेव शर्मा अन्वेषण अधिकारी है। अ॰ सा॰ 10 बिनय शरण डॉक्टर है। डॉक्टर ने पाया कि उपहति सं॰ 3 अर्थात् विदीर्ण जख्म प्रकृति के सामान्य क्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त है;

कि समस्त उपहतियाँ कड़े और भोथरे पदार्थ द्वारा कारित की गयी थी; कि उपहति सं॰ 1, 2 और 3 मृतक पर पत्थर मारकर या पत्थर फेककर कारित की गयी थी; और उपहति सं॰ 4 कड़े पदार्थ पर गिरने से कारित हो सकती थी।

6. यह विश्वास करना संभव नहीं है कि अ॰ सा॰ 1, 2 और 4 ने वास्तव में घटना देखा है। जैसा ऊपर गौर किया गया है, उनके साक्ष्य में महत्वपूर्ण विरोधाभास हैं। उनका आचरण भी संदेहास्पद प्रतीत होता है। घटना का समय भी संगति में नहीं है। यदि यह उपधारित भी किया जाता है कि घटना प्रातः लगभग 10 बजे अथवा इसके पहले हुई थी, यह ज्ञात नहीं है कि क्यों सूचक को सायं लगभग 4 बजे सूचित किया गया था और पुलिस को सूचना नहीं दी गयी थी। अगले दिन, जब पुलिस हत्या के बारे में सुनकर आयी, अ॰ सा॰ 3 द्वारा फर्दबयान दिया गया था। अ॰ सा॰ 1, जो सूचक का संबंधी है, ने कहा कि वह घटना देखने के बाद घर लौट गया। उसने सूचक को घटना के बारे में सूचित नहीं किया। घटना के पहले अपीलार्थी मोरल के भाई द्वारा अ॰ सा॰ 2 और 4 के विरुद्ध दाखिल फसल की चोरी का मामला चल रहा था। अ॰ सा॰ 4 ने कहा कि उसने आरंभ से घटना नहीं देखा था और जब वह पहुँचा, शिबू खून बहने की उपहति के साथ पड़ा हुआ था और तब वह घर लौट गया।

7. पक्षों के बीच भूमि विवाद स्वीकार किया गया है। पुलिस को युक्तियुक्त समय के भीतर सूचित नहीं किया गया था। केवल जब पुलिस हत्या के बारे में सुनकर आयी, फर्दबयान दिया गया था। कहानी तथ्यों में तोड़-मरोड़ करने का अवसर है।

8. अभिलेख का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने के बाद और पक्षों को विस्तारपूर्वक सुनने के बाद हमारे मत में अपीलार्थीगण संदेह का लाभ पाने योग्य हैं।

9. परिणामस्वरुप, सत्र केस सं॰ 278/2000 में अपीलार्थीगण के विरुद्ध विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 30.4.2003 का दोषसिद्धि का आक्षेपित निर्णय और दंडादेश अपास्त किया जाता है। अपीलार्थीगण को तुरन्त निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है, यदि किसी अन्य मामले में उनकी आवश्यकता नहीं है।

---

ekuuh; Mhñ ,uñ iVy ,o vkjñ vkjñ çlkn] U;k;efrx.k

इंद्रदेव विश्वकर्मा एवं एक अन्य

cuke

झारखंड राज्य

I.A. (Cr.) No. 1965 of 2011 In Cr. Appeal (DB) No. 1125 of 2005. Decided on 9th February, 2012.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 389—भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 395 एवं 364A—डकैती और अपहरण–दंडादेश का निलंबन–अपीलार्थी को पहचान परीक्षा परेड में पहचाना गया–तीन अवसरों पर दंडादेश के निलंबन के लिए आवेदनों को उच्च न्यायालय द्वारा पहले स्वीकार नहीं किया गया है–अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों, अपराध की गंभीरता, दंड की मात्रा और तरीका जिसमें आवेदक अपराध में अंतर्ग्रस्त है को देखते हुए न्यायालय दंडादेश निलंबित करने का इच्छुक नहीं है–आवेदन खारिज। (पैराएँ 2 एवं 3)

अधिवक्तागण.–Mr. Prabhat Kumar Sinha, For the Appellants; APP, For the Respondent.

आदेश

वर्तमान अंतर्वर्ती आवेदन अपीलार्थी सं॰ 2 अर्थात् राम चंद राय द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 389 के अधीन सत्र विचारण सं॰ 24 वर्ष 2004 में विचारण न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत दंडादेश के निलंबन

के लिए दाखिल किया गया है जिसके द्वारा वर्तमान आवेदक (मूल अपीलार्थी सं॰ 2) को भारतीय दंड संहिता की धारा 395 सह-पठित धारा 364A के अधीन दंडनीय अपराध के लिए आजीवन कारावास का दंडादेश देते हुए दोषसिद्ध किया गया है।

2. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों को देखते हुए, यह प्रतीत होता है कि वर्तमान आवेदक के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला है। चूँकि दांडिक अपील लंबित है, हम अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का विश्लेषण नहीं कर रहे हैं किंतु इतना कहना पर्याप्त है कि अ॰ सा॰ 3 और अन्य अभियोजन गवाहों के साक्ष्यों को देखते हुए वर्तमान आवेदक अर्थात् रामचंद्र राय ने प्रथम दृष्टया अपराध किया है जैसा अभियोजन ने अभिकथित किया है। इसके अतिरिक्त, अ॰ सा॰ 7 द्वारा दिए गए अभिसाक्ष्य सह-पठित अ॰ सा॰ 6 द्वारा दिए गए अभिसाक्ष्य के मुताबिक वर्तमान आवेदक के कब्जा से लूटी गयी वस्तुओं को बरामद किया गया है। इसके अतिरिक्त, वर्तमान आवेदक को पहचान परीक्षा परेड में पहचाना भी गया है। इसके अतिरिक्त, दंडादेश के निलंबन के लिए पहले तीन बार दाखिल आवेदनों को इस न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं किया गया है। यह चौथा प्रयास है।

3. पूर्वोक्त तथ्यों की दृष्टि में और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों को देखते हुए और अपराध की गंभीरता, दंड की मात्रा और तरीका जिसमें वर्तमान आवेदक अपराध में अंतर्ग्रस्त है जैसा अभियोजन द्वारा अभिकथित किया गया है को भी देखते हुए हम विचारण न्यायालय द्वारा वर्तमान आवेदक को अधिनिर्णीत दंडादेश को निलंबित करने के इच्छुक नहीं हैं। इस अंतर्वर्ती आवेदन में कोई सार नहीं है और इसलिए इसे एतद् द्वारा खारिज किया जाता है।

4. तद्नुसार, आई॰ ए॰ (दांडिक) सं॰ 1965 वर्ष 2011 को निपटाया जाता है।

---

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o vij'k dekj flg] U;k;efrx.k

सिल्बेस्टर डुंगडुंग एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Criminal Appeal (D.B.) No. 29 of 1995 (R). Decided on 2nd February, 2012.

सत्र विचारण सं॰ 139 वर्ष 1993 में श्री प्रदीप कुमार प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, गुमला द्वारा पारित दिनांक 17.2.1995 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 18.2.1995 के दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 302/34—हत्या—सामान्य आशय—आजीवन कारावास—अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य विश्वास उत्पन्न नहीं करते हैं—अन्वेषण अधिकारी का साक्ष्य भी अभियोजन मामले का समर्थन नहीं करता है—दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 164 के अधीन उनके द्वारा दिए गए बयान और न्यायालय में दिए गए बयान में अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य में महत्वपूर्ण विरोधाभास है—जहाँ तक अपीलार्थीगण का संबंध है, अभियोजन समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अपना मामला सिद्ध नहीं कर सका और वे संदेह का लाभ पाने योग्य हैं—दोषसिद्धि एवं दंडादेश अपास्त किया गया—अपील अनुज्ञात। (पैराएँ 5 से 7)

अधिवक्तागण.—M/s A. K. Kashyap, Lina Shakti, For the Appellants; Mr. D. K. Chakraverty, For the State.

आर॰ के॰ मेराठिया एवं अपरेश कुमार सिंह, न्यायमूर्तिगण.—यह अपील सत्र विचारण सं॰ 139 वर्ष 1993 में अपीलार्थीगण को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302/34 के अधीन दोषसिद्ध करते हुए और उनको आजीवन कारावास का दंडादेश देते हुए विद्वान प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, गुमला द्वारा पारित दिनांक 17.2.1995 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 18.2.1995 के दंडादेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि सूचक खुदी साव (अ॰ सा॰ 4) ने दिनांक 15.5.1992 को प्रात: लगभग 9 बजे इस प्रभाव का फर्दबयान दिया कि दिनांक 13.5.1992 को उसका भाई बुधु साहू बाजार गया किंतु शाम में वापस नहीं आया था। सुबह में तलाश करने पर सूचक ने किसी सबन सिंह से जाना कि बुधु साहू किसी गोकुल सिंह के साथ साइकिल पर आया था। गोकुल सिंह साइकिल से अपने घर की ओर चला गया। बुधु साहू उतर गया और कुछ देर बात करने के बाद चला गया। सूचक ने उसे खोजा। अभिकथित किया गया है कि लगभग 10 दिन पहले एक ओर बुधु साहू और दूसरी ओर अजित सोरेन एवं सिल्वेस्टर सोरेन के बीच किसी कुल्हाड़ी के संबंध में विवाद था और उन्होंने बुधु साहू को गंभीर परिणामों की चेतावनी दी थी, और इसलिए, सूचक ने संदेह किया कि उन्होंने बुधु साहू की हत्या करके उसके मृत शरीर को छुपा दिया था।

बुधु साहू का मृत शरीर अजित सोरेन और सिलवेस्टर सोरेन की संस्वीकृति पर बरामद किया गया था जिन्होंने दिनांक 15.5.1992 को अपना दोष संस्वीकार किया। तत्पश्चात्, अभियोजन मामले के मुताबिक, समस्त वर्तमान अपीलार्थीगण अर्थात् सिल्वेस्टर डुंगडुंग, घूरन लोहरा, जॉर्ज सोरेंग ने भी दिनांक 20.5.1992 को पुलिस के समक्ष अपना दोष संस्वीकार किया। डॉक्टर ने बुधु साव के मृत शरीर पर तेजधार वाले नुकीले हथियार द्वारा कारित लगभग छह पंचर जख्मों को पाया है। डॉक्टर के मुताबिक, उपहति सं॰ 3 प्रकृति के सामान्य क्रम में मृत्यु के लिए जिम्मेदार थी।

3. अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री ए॰ के॰ कश्यप ने निवेदन किया कि अजित सोरेन और सिल्वेस्टर सोरेन का विचारण इस आधार पर पृथक कर दिया गया था कि उन्होंने किशोर होने का दावा किया था। उन्होंने आगे निवेदन किया कि मुख्य अभिकथन उनके विरुद्ध था। किंतु, वह इस न्यायालय को यह सूचित करने की अवस्था में नहीं है कि उनके मामले में क्या हुआ। किंतु उन्होंने निवेदन किया कि जहाँ तक इन अपीलार्थीगण का संबंध है, अभियोजन समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अपना मामला सिद्ध करने में सक्षम नहीं हुआ है। वह हमें अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों की ओर ले गए। उन्होंने यह निवेदन भी किया कि अपीलार्थीगण को मई, 1992 अर्थात् लगभग 19 वर्ष पहले अभिरक्षा में लिया गया था। उन्हें इस मामले में जमानत प्रदान नहीं किया गया था। यह ज्ञात नहीं है कि उन्हें कारा से निर्मुक्त किया गया है या नहीं।

4. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया।

5. अभियोजन ने अ॰ सा॰ 8 और 9 को चश्मदीद गवाह के रूप में प्रक्षेपित किया है। अ॰ सा॰ 9 बासुदेव सिंह ने इन अपीलार्थीगण को नामित नहीं किया था, बल्कि उसने विनिर्दिष्टत: अजित सोरेन और सिल्वेस्टर सोरेन को नामित किया था। उसने पुलिस के समक्ष यह कथन किए जाने से इनकार किया कि अपीलार्थीगण ने अजित सोरेन और सिल्वेस्टर सोरेन के साथ बुधु साहू पर प्रहार किया था। इस गवाह ने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 164 के अधीन अपना बयान दिया जिसमें उसने सामान्यत: कहा कि किसी मार्शल के आंगन में झगड़ा हुआ था जहाँ उसने देखा कि अजित सोरेन और सिल्वेस्टर सोरेन बुधु साहू पर प्रहार कर रहे थे; तब उसने विनिर्दिष्टत: कहा कि अजित सोरेन साइकिल की चेन से बुधु साहू पर प्रहार कर रहा था जिस पर बुधु साहू भागा किन्तु अभियुक्तगण ने उसे पकड़ लिया और लाठी, छुरा आदि से उस

पर प्रहार करके उसकी हत्या कर दी; अभियुक्तगण ने इस गवाह को धमकाया और, इसलिए, उसने घटना के बारे में किसी को नहीं बताया। इस प्रकार, जहाँ तक अपीलार्थीगण का संबंध है, अ॰ सा॰ 9 के साक्ष्य और दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 164 के अधीन उसके बयान में महत्वपूर्ण विरोधाभास है।

अ॰ सा॰ 8 अलेक्जेंडर बिलंग ने विनिर्दिष्टत: कथन किया कि अजित सोरेन और सिलवेस्टर सोरेन ने बुधु साहू के साथ झगड़ा किया जिसके बाद उन्होंने अपीलार्थी सं॰ 3 जॉर्ज सोरेन के साथ मृतक का पीछा किया। तत्पश्चात, अजित सोरेन साइकिल की चेन से बुधु साहू पर प्रहार करने लगा जिस पर उसने भागने का प्रयास किया। अपीलार्थी सं॰ 3 की पत्नी ने अभियुक्तगण को बुधु साहू की हत्या करने के लिए उकसाया जिस पर अजित सोरेन और सिल्वेस्टर सोरेन ने अपीलार्थीगण के साथ बुधु साहू का पीछा किया। बुधु साहू गिर गया। तत्पश्चात, अजित सोरेन और सिल्वेस्टर सोरेन ने साइकिल की चेन से और सिलवेस्टर सोरेन ने छुरा से बुधु साहू पर प्रहार किया। अपीलार्थी सं॰ 2 घूरन लोहरा और अपीलार्थी सं॰ 3 जॉर्ज सोरेंग ने लातों-मुक्कों से मृतक पर प्रहार किया। बुधु साहू की मृत्यु घटनास्थल पर हो गयी। उसने आगे कथन किया कि धमकी और डर के कारण उसने किसी को घटना के बारे में नहीं बताया था। इस गवाह ने भी दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 164 के अधीन बयान दिया जिसमें उसने सामान्यत: कथन किया कि अजित और सिलवेस्टर सोरेन ने अपीलार्थीगण के साथ बुधु साहू की हत्या कर दी; अभियुक्तगण मृतक को मार्शल के आंगन में ले गए जहाँ उनके बीच झगड़ा हुआ; दो व्यक्तियों ने मामला शांत कराने का प्रयास किया किंतु अजित सोरेन ने साइकिल चेन से मृतक पर प्रहार किया; मृतक ने भागने का प्रयास किया; अपीलार्थी जॉर्ज सोरेन की पत्नी ने उसकी हत्या करने के लिए उकसाया; तब समस्त अभियुक्तगण ने बुधु साहू की हत्या कर दी। इस प्रकार, दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 164 के अधीन इस गवाह द्वारा दिए गए बयान और न्यायालय के समक्ष दिए गए बयान में महत्वपूर्ण विरोधाभास प्रतीत होता है।

अ॰ सा॰ 10, जो अन्वेषण अधिकारी है, ने पैरा 14 में विनिर्दिष्टत: कथन किया कि अ॰ सा॰ 8 ने उसके समक्ष उक्त कथन नहीं किया था।

6. अभिलेख का सावधानीपूर्वक परीक्षण करने के बाद और पक्षों को विस्तारपूर्वक सुनने पर हम संतुष्ट हैं कि जहाँ तक अपीलार्थीगण का संबंध है, अभियोजन समस्त युक्तियुक्त संदेह के परे अपना मामला सिद्ध करने में सक्षम नहीं हुआ है और वे संदेह का लाभ पाने के हकदार हैं।

7. इन तथ्यों और परिस्थितियों में, यह अपील अनुज्ञात की जाती है और दिनांक 17.2.1995 का दोषसिद्धि का निर्णय और दिनांक 18.2.1995 का दंडादेश अपास्त किया जाता है। अपीलार्थीगण को दोषमुक्त किया जाता है।

यदि अपीलार्थीगण कारा में हैं और किसी अन्य मामले में उनकी आवश्यकता नहीं है, उन्हें तुरन्त कारा से निर्मुक्त किया जाना चाहिए।

---

ekuuh; Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efr

मधुसूदन मुखर्जी उर्फ मधु मुखर्जी

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W. P. (Cr.) No. 179 of 2010. Decided on 13th February, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 399/402 सह-पठित आयुध अधिनियम, 1959 की धाराएँ 25 (1B)/26/34 और विस्फोटक पदार्थ अधिनियम, 1908 की धाराएँ 4/5—याची ने इस अभिवचन पर कि पुलिस द्वारा अन्वेषण समुचित नहीं था, सी॰ आई॰ डी॰ द्वारा अन्वेषण के लिए

अनुरोध किया–अभियुक्त अन्वेषण एजेंसी के लिए अपनी पसंद अभिव्यक्त नहीं कर सकता है–याचिका खारिज। (पैराएँ 2 से 5)

अधिवक्तागण.–Mr. Shekhar Prasad Sinha, For the Petitioner; JC to G.P. III, For the Respondents.

आदेश

यह रिट याचिका केंदुआडीह पी॰ एस॰ केस सं॰ 98 वर्ष 2009 जी॰ आर॰ सं॰ 3844/2009 के तत्सम, से संबंधित अन्वेषण को सी॰ आई॰ डी॰ को सौंपने के लिए प्रार्थना के साथ दाखिल की गयी है।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य ये हैं कि याची को गिरफ्तार किया गया था और तलाशी पर अभियुक्तगण में से कुछ से अस्त्रों और कारतूसों को बरामद किया गया था जिसके लिए भारतीय दंड संहिता की धाराओं 399/402 और आयुध अधिनियम की धाराओं 25(1-B), 26/34 तथा विस्फोटक पदार्थ अधिनियम की धारा 4/5 के अधीन केंदुआडीह पी॰ एस॰ केस सं॰ 98 वर्ष 2009 दर्ज किया गया था।

3. निवेदन किया गया है कि पुलिस का अन्वेषण समुचित नहीं था और इसलिए याची ने सी॰ आई॰ डी॰ को अन्वेषण सौंपने के लिए प्रार्थना किया है।

4. प्रत्यर्थी राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि अन्वेषण के दौरान याची के विरुद्ध मामला सत्य पाया गया था।

5. मैं इस रिट याचिका में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ और अभियुक्त अन्वेषण एजेंसी के लिए अपनी पसंद अभिव्यक्त नहीं कर सकता है। पूर्वोक्त परिस्थितियों में, इस रिट याचिका को खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; vkjî vkjî çlkn] U;k;efr

आर॰ के॰ राणा उर्फ रबिन्द्र कुमार राणा उर्फ डॉ॰ रबिन्द्र कुमार राणा

cuke

झारखंड राज्य, सी॰ बी॰ आई॰ के माध्यम से

Cr. Misc. No. 1500 of 2011. Decided on 12th March, 2012.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 300 एवं 311—दोहरा परिसंकट–आधार, जिस पर गवाहों को उनके प्रति-परीक्षण के लिए वापस बुलाना इप्सित किया जा रहा है, मान्य नहीं है क्योंकि प्रावधान जैसा धारा 300 में अंतर्विष्ट है से संबंधित मामले का उन अभियोगों से कुछ लेना-देना नहीं है जिसके लिए याची का विचारण किया जा रहा है–अवर न्यायालय ने सही प्रकार से गवाहों को वापस बुलाने की प्रार्थना अस्वीकार किया। (पैराएँ 6 से 8)

अधिवक्तागण.–M/s Chittaranjan Sinha, Prabhat Kumar, For the Petitioner; Mr. M. Khan, For the C.B.I.

आदेश

याची की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता और सी॰ बी॰ आई॰ की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि आर॰ सी॰ सं॰ 33(A) वर्ष 1996 के अभियुक्तगण को पहले सप्तम ए॰ जे॰ सी॰, दुमका, राँची के रूप में पदनामित न्यायालय द्वारा विचारण किया जा रहा था जहाँ अभियोजन की ओर से 35 गवाहों का परीक्षण किया गया था। सप्तम ए॰ जे॰ सी॰ के स्थानांतरण के परिणामस्वरुप मामला पंचम ए॰ जे॰ सी॰ के न्यायालय को अंतरित कर दिया गया था जहाँ अभियोजन की ओर से गवाह सं॰ 36 से 61 तक का परीक्षण किया गया था। तब यह विवाद्यक

उठाते हुए मामला दांडिक विविध याचिका सं॰ 865 वर्ष 2010 दाखिल किया गया था कि पंचम ए॰ जे॰ सी॰ को मामले का विचारण करने की क्षेत्रीय अधिकारिता नहीं है। उस मामले को दिनांक 22.2.2011 के आदेश के तहत निपटाया गया था जिसका पठन निम्नलिखित है:-

^^;kph d fo}ku vfèkoDrk Jh fpUkjtu flUgk vkj lh0 ch0 vkb0 d fo}ku vfèkoDrk ek0 ek[rkj [kku dk luk x;kA

;kph d fo}ku vfèkoDrk dh ey vkifUk ;g g fd jkph d U;k;ky; dk {k=h; vfèkdkfjrk ugh gA

fo}ku vfèkoDrk dk çLrko fn;k x;k fd ç'kkfud :i l e[; U;k;kèkh'k jkph U;k;ky; dk vfèkdkfjrk çnku dj ldr g ftl ij lgefr gb FkhA vr% jkph U;k;ky; dh vfèkdkfjrk d fy, vkn'k çnku dju d fy, e[; U;k;kèkh'k d le{k Qkby çLrr fd;k tk ldrk gA bl ekey e vrxLr vfèkdkfjrk d fook|d d dkj.k jkph fLFkr U;k;ky; d le{k dk;okgh nf"kr ugh gkxhA

*;fn vfHk;Dr fdlh fo'k"k xokg dk okil cykuk pkgrk g] rc mldh ;kfpdk e dkj.kk dk nt fd;k tk; vkj U;k;ky; vuefr nA U;k;ky; dk vkonu vLohdkj dju dk vfèkdkj Hkh gkxk] ;fn ;g fopkj djrk g fd xokg dk ijh{k.k dju dh vko';drk ugh gA***

3. पूर्वोक्त आदेशों के साथ इस याचिका को निपटाया जाता है। उस आदेश को अपील के लिए विशेष अनुमति (दांडिक) सं॰ 2409 वर्ष 2011 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गयी थी किंतु, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया। किंतु, यह संप्रेक्षित किया गया था कि दिनांक 22 फरवरी, 2011 के आदेश और प्रशासनिक पक्ष पर पारित माननीय मुख्य न्यायाधीश के पारिणामिक आदेश के संबंध में आवश्यकता उद्भूत होने पर याची स्पष्टीकरण इप्सित करने के लिए स्वतंत्र है। उस पर, इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 22.2.2011 के आदेश का कोई स्पष्टीकरण इप्सित किए बिना अवर न्यायालय के समक्ष आवेदन दाखिल किया गया था और उसमें उनके प्रति-परीक्षण के लिए गवाह सं॰ 37, 43, 49 एवं 62 को वापस बुलाने की प्रार्थना की गयी थी। उस आवेदन को दिनांक 29.7.2011 के आदेश के तहत उसमें यह अभिनिर्धारित करते हुए कि याची को पहले ही गवाह सं॰ 37, 43 एवं 49 का प्रति-परीक्षण करने का पूरा अवसर प्रदान किया गया था और इस प्रकार, प्रति-परीक्षण के लिए उनको वापस बुलाने की आवश्यकता नहीं है, खारिज कर दिया गया था।

4. जहाँ तक गवाह सं॰ 62 का संबंध है, यह दर्ज किया गया था कि उसे भी बुलाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि बचाव पक्ष ने उसका प्रति-परीक्षण करने से इनकार कर दिया था। उस आदेश को चुनौती दी गयी है।

5. याची की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री सिन्हा निवेदन करते हैं कि उन चार गवाहों में से गवाह सं॰ 37, 43 और 49 को याची के अभियोजन के बिंदु पर दोहरे परिसंकट, जैसा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 300 के अधीन अनुध्यात किया गया है, द्वारा बाधित होने के कारण उनके प्रति परीक्षण के लिए उनको बुलाया जाना आवश्यक है क्योंकि उन तीन गवाहों के साक्ष्य पर याची को एक अन्य मामले आर॰ सी॰ सं॰ 22 (A) वर्ष 1996 में दोषसिद्ध किया गया है और जहाँ तक गवाह सं॰ 62 का संबंध है, उसका प्रति परीक्षण इस कारण से नहीं किया गया था क्योंकि न्यायालय, जहाँ उसका परीक्षण किया गया था, को मामले का विचारण करने की क्षेत्रीय अधिकारिता नहीं थी।

6. किंतु, सी॰ बी॰ आई॰ की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री खान निवेदन करते हैं कि उनके प्रति परीक्षण के लिए उन चार गवाहों को वापस बुलाने की प्रार्थना अस्वीकार करने के लिए अवर न्यायालय द्वारा पर्याप्त कारण दिया गया है और इसलिए, उस आदेश में इस न्यायालय के किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

7. पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर और अभिलेख का परिशीलन करने पर, मैं वस्तुत: पाता हूँ कि उन तीन गवाहों अर्थात् गवाह सं० 37, 43 और 49 को वापस बुलाने से संबंधित मामले का संबंध है, आधार जिस पर उनके प्रति–परीक्षण के लिए गवाहों को वापस बुलाना इप्सित किया जा रहा है बिल्कुल मान्य नहीं है क्योंकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 300 में अंतर्विष्ट प्रावधान से संबंधित मामले का अभियोग से कुछ लेना–देना नहीं है जिसके लिए याची का विचारण किया जा रहा है। तद्नुसार, अवर न्यायालय ने सही प्रकार से तीन गवाहों को वापस बुलाने के लिए प्रार्थना को अस्वीकार किया है।

8. जहाँ तक गवाह सं० 62 को वापस बुलाए जाने के मामले का सम्बन्ध है, उस गवाह को वापस बुलाने के लिए युक्तियुक्त आधार प्रतीत होता है क्योंकि याची ने इस धारणा के अधीन कि न्यायालय को क्षेत्रीय अधिकारिता नहीं है, गवाह का पहले प्रति परीक्षण करने से इनकार कर दिया होगा। तद्नुसार, आदेश का वह भाग जिसके द्वारा न्यायालय ने गवाह सं० 62 को वापस बुलाने की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया, एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है। परिणामस्वरुप, अवर न्यायालय को याची द्वारा उसका प्रति परीक्षण करने के लिए गवाह सं० 62 को वापस बुलाने का निर्देश दिया जाता है।

9. पूर्वोक्त संप्रेक्षण के साथ यह आवेदन निपटाया जाता है।

10. इस आदेश की प्रति फैक्स के माध्यम से याची द्वारा सहन किए गए व्यय पर संबंधित न्यायालय को संसूचित की जाय।

---

ekuuh; ç'kkr dekj] U;k;efr

अनवर प्रसाद जायसवाल एवं एक अन्य

cuke

बिहार राज्य एवं एक अन्य

Cr. Misc. No. 926 of 2000(R). Decided on 2nd March, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 409, 419, 420 एवं 120-B—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 197 एवं 482—लोक सेवकों द्वारा न्यास का दांडिक भंग एवं छल–उनके विरुद्ध अभिकथन ये हैं कि उन्होंने राजकीय कोष को हानि कारित करते हुए सरकारी परिपत्रों और मार्गदर्शक सिद्धांतों के उल्लंघन में अपनी पदीय हैसियत में कपड़ा खरीदा–याचीगण कल्याण विभाग के राजपत्रित अधिकारी हैं और उन्हें राज्य सरकार द्वारा हटाया जा सकता है–राज्य सरकार द्वारा जारी मंजूरी के आदेश की अनुपस्थिति में सी० जे० एम० संज्ञान नहीं ले सकता है–संपूर्ण कार्यवाही अभिखंडित। (पैराएँ 4, 7 एवं 8)

अधिवक्तागण.–M/s Delip Jerath, Rajesh Kumar, Abhinesh Kumar, Vineet Kr. Vashistha, Veer Vijay Pradhan, For the Petitioners; Mr. Amaresh Kumar, For the Opp Party.

प्रशांत कुमार, न्यायमूर्ति.–यह आवेदन भा० दं० सं० की धाराओं 409/419/420 एवं 120B के अधीन हजारीबाग सदर पी० एस० केस सं० 379/99; टी० आर० सं० 258/99 के तत्सम, के संबंध में एस० डी० जे० एम० हजारीबाग के न्यायालय में लंबित संपूर्ण दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन के लिए दाखिल किया गया है।

2. यह अभिकथित किया गया है कि याची सं० 2 अर्थात् शमशेर प्रसाद सिंह ने राज्य सरकार द्वारा जारी अनेक परिपत्रों और सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी मार्गदर्शक सिद्धांतों के उल्लंघन में मेसर्स एस० पी०

गुप्ता एण्ड कंपनी, राँची से कपड़ा खरीदा। आगे अभिकथित किया गया है कि याची सं० 1 ने कल्याण विभाग के उपनिदेशक होने के नाते याची सं० 2 के पूर्वोक्त कृत्यों और लोपों को अनुमोदित किया और तद्द्वारा राजकीय कोष को हानि कारित किया।

3. यह प्रतीत होता है कि पूर्वोक्त अभिकथन पर हजारीबाग पी० एस० केस सं० 379/99 संस्थापित किया गया था और पुलिस ने अन्वेषण के बाद भा० दं० सं० की धाराओं 409/419/420 और 120B के अधीन आरोप पत्र दाखिल किया। यह प्रतीत होता है कि विद्वान सी० जे० एम०, हजारीबाग ने दिनांक 30.5.1995 के आदेश के तहत अपराधों का संज्ञान लिया और मामला विचारण के लिए एस० डी० जे० एम०, हजारीबाग के फाइल में अंतरित कर दिया।

4. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता, श्री दिलीप जेराथ निवेदन करते हैं कि यह स्वीकृत अवस्था है कि याचीगण कल्याण विभाग के राजपत्रित अधिकारी हैं और उन्हें राज्य सरकार द्वारा हटाया जा सकता है। निवेदन किया गया है कि अभियोजन करने वाली एजेंसी ने याचीगण का अभियोजन करने के पहले राज्य सरकार की पूर्व मंजूरी प्राप्त नहीं किया था जैसा दं० प्र० सं० की धारा 197 के अधीन अनुध्यात किया गया है। अत:, संज्ञान का आदेश दोषपूर्ण है। अत:, याचीगण के विरुद्ध संपूर्ण पश्चातवर्ती कार्यवाही भी अभिखंडित किए जाने की दायी है।

5. निवेदनों को सुनने पर मैंने अवर न्यायालय के अभिलेखों और मामले की केस डायरी का परिशीलन किया है।

6. आरोप-पत्र के कॉलम सं० 7 के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि आरोप दाखिल करने के पहले अन्वेषण अधिकारी ने याचीगण, जो राज्य सरकार के राजपत्रित अधिकारी थे, के अभियोजन के लिए राज्य सरकार की मंजूरी प्राप्त नहीं किया है। केस डायरी के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि अन्वेषण अधिकारी ने मंजूरी प्राप्त नहीं किया था। इस प्रकार, यह प्रकट है कि विद्वान सी० जे० एम० ने राज्य सरकार की पूर्व मंजूरी के बिना याचीगण के विरुद्ध संज्ञान लिया। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197(1) निम्नलिखित है:-

> *197. **U;k;kèkh'kksa vkj ykd lodksa dk vfHk;kstu-**&(1) tc fdlh 0;fDr ij] tks U;k;kèkh'k ;k eftLVV ;k ,slk ykd lodd ;k Fkk ftl ljdkj }kjk ;k mldh etjh l gh mld in l gVk;k tk ldrk g@Fkk vU;Fkk ugh] fdlh ,l vijkèk dk vfHk;kx g ftld ckj e ;g vfHkdfFkr g fd og mld }kjk rc fd;k x;k Fkk tc og viu inh; dr0; d fuogu e dk; dj jgk Fkk tc mldk ,l dk; djuk rkRif;r Fkk] rc dkb Hkh U;k;ky; ,l vijkèk dk lKku&*
>
> *(a) ,l 0;fDr dh n'kk e] tks l?k d dk;dyki d lcèk e] ;FkkfLFkfr] fu;kftr g ;k vfHkdfFkr vijkèk fd, tku d le; fu;kftr Fkk] dUnh; ljdkj dh(*
>
> *(b) ,l 0;fDr dh n'kk e] tk fdlh jkT; d dk;&dyki d lcèk e] ;FkkfLFkfr] fu;kftr g ;k vfHkdfFkr vijkèk fd, tku d le; fu;kftr Fkk] ml jkT; ljdkj dh] io etjh l gh djxk] vU;Fkk ugh(*
>
> *[ijUr tgk vfHkdfFkr vijkèk [kM (b) e fufn"V fdlh 0;fDr }kjk ml vofèk d nkjku fd;k x;k Fkk tc jkT; e lfoèkku d vuPNn 356 d [kM (1) d vèkhu dh xb mn?kk"k.kk çoÙk Fkh] ogk [kM (b) bl çdkj ykx gkxk] ekuk mle vku oky ^^jkT; ljdkj** in d LFkku ij ^^dUnh; ljdkj** in ij j[kk x;k gA]*

7. पूर्वोक्त प्रावधान के सादे पठन से, यह स्पष्ट है कि धारा अधिकारियों, जो राज्य सरकार द्वारा हटाए जाने योग्य है, के विरुद्ध राज्य सरकार की पूर्व मंजूरी के बिना संज्ञान लेने के लिए न्यायालय की शक्ति पर वर्जना लगाती है। स्वीकृत रूप से, उनके विरुद्ध अभिकथन यह है कि उन्होंने सरकारी परिपत्रों

और मार्गदर्शक सिद्धांतों के उल्लंघन में अपनी पदीय हैसियत से कपड़ा खरीदा। उक्त परिस्थिति के अधीन, विद्वान सी॰ जे॰ एम॰ को राज्य सरकार द्वारा जारी मंजूरी आदेश की अनुपस्थिति में संज्ञान लेने से रोका गया है। इस प्रकार, मैं पाता हूँ कि संज्ञान लेने वाला आदेश विधि में दोषपूर्ण है। तद्नुसार, मैं पाता हूँ कि हजारीबाग सदर पी॰ एस॰ केस सं॰ 379/99, टी॰ आर॰ सं॰ 258/99 के तत्सम, के संबंध में एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, हजारीबाग के न्यायालय में लंबित याचीगण के विरुद्ध संपूर्ण पश्चातवर्ती कार्यवाही दोषपूर्ण है।

8. अत:, हजारीबाग सदर पी॰ एस॰ केस सं॰ 379/99, टी॰ आर॰ सं॰ 258/99 के तत्सम, के संबंध में एस॰ डी॰ जे॰ एम॰ हजारीबाग के न्यायालय में लंबित संपूर्ण कार्यवाही अभिखंडित की जाती है।

---

ekuuh; ihñ ihñ HkVV] U;k;efr

देबव्रत शित

cuke

भारत संघ पुलिस महानिरीक्षक के माध्यम से एवं अन्य

W.P. (S) No. 2916 of 2006. Decided on 2nd March, 2012.

केंद्रीय सिविल सेवा (अस्थायी सेवा) नियमावली, 1965—नियम 5(1)(a)—सेवा से समाप्ति–प्राधिकारी जिसने सेवा समाप्ति का आदेश पारित किया, नियुक्ति करने वाला प्राधिकारी नहीं है–समस्थित कर्मचारी, जिसकी सेवाएँ भी समरुप आधार पर समाप्त कर दी गयी थी किंतु बाद में उसे प्रत्यर्थीगण द्वारा सेवा में पुन: बहाल किया गया था जबकि याची के मामले पर तद्नुसार विचार नहीं किया गया था–याची भी समस्थित कर्मचारी के संबंध में पारित निर्णय का लाभ पाने का हकदार है–सेवा समाप्ति आदेश अपास्त–याचिका अनुज्ञात।

(पैराएँ 10 से 12)

निर्णयज विधि.–2011 (4) JLJR 215—Relied on; (1994)4 SCC 460; (1995) 6 SCC 720; 2001 (3) PLJR 167—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. Manoj Tandon, For the Petitioner; Mr. Faiz ur Rahman, For the Respondents.

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता और प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता को सुना और कागजातों का परिशीलन किया।

2. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता की सहमति से अंतिम निपटारे के लिए मामला सुना जाता है।

3. याची ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन वर्तमान रिट याचिका दाखिल करके प्रत्यर्थी–प्राधिकारीगण द्वारा जारी दिनांक 4.4.2006 के कार्यालय आदेश सं॰ आर॰–II-1 (a)/2006-118-ESTT-III के अभिखंडन के लिए समुचित रिट/आदेश/निर्देश जारी करने के लिए प्रार्थना किया जिसके द्वारा केंद्रीय सिविल सेवा (अस्थायी सेवा) नियमावली, 1965 के नियम 5(1)(a) के अधीन याची की सेवा समाप्त कर दी गयी थी। आगे प्रार्थना की गयी है कि याची को पारिणामिक लाभों के साथ पुनर्बहाल किया जाय।

4. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि दिनांक 11.3.2003 को याची को सी॰ आर॰ पी॰ एफ॰ के कांस्टेबुल के रूप में नियुक्त किया गया था। तत्पश्चात, दिनांक 9.3.2006 को उसे सेवा

समाप्ति का नोटिस दिया गया था और दिनांक 4.4.2006 के आदेश (परिशिष्ट–3) के तहत याची की सेवाओं को समाप्त करने का आदेश दिया गया था। याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि सेवा समाप्ति के संबंध में आदेश केंद्रीय सिविल सेवा (अस्थायी सेवा) नियमावली, 1965 के नियम 5 के उप–नियम (1) के स्पष्ट उल्लंघन में पारित किया गया है क्योंकि अधिकारी, जिसने आदेश पारित किया है, नियुक्ति करने वाला प्राधिकारी नहीं है।

5. प्रत्यर्थीगण द्वारा दाखिल प्रति शपथपत्र को निर्दिष्ट करते हुए, याची के विद्वान अधिवक्ता ने इंगित किया कि इस इकाई के चार कर्मियों की सेवाओं को समाप्त करने का आदेश दिया गया था क्योंकि उन्हें अगस्त/सितंबर, 2005 के दौरान कंपोजिट अस्पताल, सी॰ आर॰ पी॰ एफ॰, बनतालाब (जम्मू) में संचालित नए चिकित्सीय परीक्षण के दौरान चिकित्सीय रूप से अयोग्य पाया गया था। यह निवेदन किया गया है कि इन चार कार्मिकों में से तीन कार्मिकों ने इस न्यायालय के समक्ष डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 3482 वर्ष 2006 के रूप में रिट याचिका दाखिल करके प्रत्यर्थीगण द्वारा पारित सेवा समाप्ति के आदेश को चुनौती दिया। उक्त मामले में अंतर्ग्रस्त तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद इस न्यायालय ने सेवा समाप्ति के आदेश को अभिखंडित और अपास्त कर दिया और उस याचिका के याचीगण को मध्यवर्ती अवधि के लिए 50% वेतन के साथ सेवा में पुनर्बहाल करने का आदेश दिया गया था।

6. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि याची का मामला डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) केस सं॰ 3482 वर्ष 2006 में याचीगण के मामले के समरुप है। यह निवेदन किया गया है कि डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) केस सं॰ 3482 वर्ष 2006 में दिया गया निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर प्रयोज्य है और इसलिए याची के सेवा को समाप्त करते हुए प्रत्यर्थीगण द्वारा पारित आदेश अपास्त और अभिखंडित किया जाए और याची को समस्त पारिणामिक लाभों के साथ सेवा में पुनर्बहाल किया जा सकता है।

7. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने प्रत्यर्थीगण द्वारा दाखिल प्रति शपथपत्र को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन किया कि याचीगण की सेवाएँ इसलिए समाप्त की गयी थी क्योंकि उन्हें मेडिकल परीक्षण बोर्ड द्वारा चिकित्सीय रूप से अयोग्य घोषित किया गया था। आगे निवेदन किया गया है कि याचीगण को कमजोर दृष्टि की विशेष परीक्षा अथवा परीक्षण के लिए दिनांक 3.9.2005 के पत्र के तहत कंपोजिट अस्पताल, सी॰ आर॰ पी॰ एफ॰, नयी दिल्ली निर्दिष्ट किया गया था और चिकित्सीय परीक्षण के बाद उन्हें अयोग्य घोषित किया गया था और इसलिए इस इकाई के चार कर्मियों की सेवा समाप्त करने का निर्देश देते हुए दिनांक 16.2.2006 के आदेश के तहत निर्णय लिया गया था क्योंकि नए चिकित्सीय परीक्षण के क्रम में उन्हें चिकित्सीय रूप से अयोग्य पाया गया था।

8. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि प्रासंगिक नियमों के अधीन याची की सेवा संपुष्ट नहीं की गयी थी और, इसलिए, केंद्रीय सिविल सेवा (अस्थायी सेवा) नियमावली, 1965 के नियम 5 के उप–नियम (1) के अधीन एक माह का नोटिस देने के बाद उसकी सेवा समाप्त कर दी गयी थी। आगे निवेदन किया गया है कि सी॰ आर॰ पी॰ एफ॰ नियमावली, 1955 के नियम 7B के मुताबिक कमांडेंट बल में कांस्टेबल श्रेणी के लिए नियुक्ति करने वाला प्राधिकारी है और, इसलिए, निवेदन किया गया है कि याची द्वारा किया गया प्रतिवाद कि कमांडेंट नियुक्ति करने वाला प्राधिकारी नहीं है, सही नहीं है।

9. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि पद के लिए अधिकथित पात्रता शर्त के मुताबिक मेडिकल फिटनेस के बारे में संदेह एस॰ पी॰, सी॰ बी॰ आई॰ द्वारा दिनांक 28.9.2004 के अपने परिवाद पत्र के तहत उठाया गया था और एस॰ पी॰, सी॰ बी॰ आई॰ द्वारा किए गए संदेह पर दिनांक 29.8.2005

से दिनांक 31.8.2005 तक कंपोजिट अस्पताल, सी॰ आर॰ पी॰ एफ॰, बनतालाब (जम्मू) में नयी चिकित्सीय परीक्षा संचालित की गयी थी और दिनांक 8.9.2005 को विशेष चक्षु दृष्टि परीक्षा संचालित की गयी थी और याची को अयोग्य पाया गया था और, इसलिए, केंद्रीय सिविल सेवा (अस्थायी सेवा) नियमावली, 1965 के नियम 5 के उपनियम (1) के अधीन एक माह का नोटिस देकर उसकी सेवा को समाप्त करने का निर्णय प्रत्यर्थीगण द्वारा लिया गया था क्योंकि याची अस्थायी सरकारी सेवक था।

10. पूर्वोक्त परस्पर विरोधी निवेदनों पर विचार करते हुए और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों के परिशीलन पर, यह प्रतीत होता है कि वर्तमान याची को दिनांक 11.3.2003 को सी॰ आर॰ पी॰ एफ॰ कांस्टेबल के रूप में नियुक्त किया गया था। बाद में, दिनांक 9.3.2006 के नोटिस के तहत सेवा समाप्ति का नोटिस उस पर तामील किया गया था और तत्पश्चात याची की सेवा दिनांक 4.4.2006 के सेवा समाप्ति आदेश के तहत समाप्त कर दी गयी है। याची ने अपनी सेवा समाप्ति के संबंध में प्रत्यर्थी-प्राधिकारीगण द्वारा पारित आदेश को मुख्यत: इस आधार पर चुनौती दिया है कि प्रत्यर्थी-प्राधिकारी, जिसने सेवा समाप्ति का आदेश पारित किया, नियुक्ति करने वाला प्राधिकारी नहीं है, और इसलिए, सेवा समाप्ति का आदेश विधि के प्राधिकार के बिना है। याची द्वारा दिया गया दूसरा आधार प्रत्यर्थीगण द्वारा किए गए भेदभाव के संबंध में है क्योंकि समस्थित एक कर्मचारी अभय कुमार सिंह, जिसकी सेवा भी समरुप आधार पर समाप्त कर दी गयी थी किंतु बाद में प्रत्यर्थीगण द्वारा उसको सेवा में पुनर्बहाल किया गया था जबकि याची के मामले पर तद्नुसार विचार नहीं किया गया था।

11. यह भी प्रतीत होता है कि श्री अभय कुमार सिंह के अतिरिक्त चार अन्य कर्मचारियों की सेवा भी मेडिकल फिटनेस के आधार पर समाप्त कर दी गयी थी। जहाँ तक श्री अभय कुमार सिंह का संबंध है, प्रत्यर्थी ने स्वयं अपने पुनर्विचार पर सेवा समाप्ति का आदेश वापस ले लिया और उसको सेवा में पुनर्बहाल किया। चार में से तीन कर्मचारियों ने इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 3482 वर्ष 2006 दाखिल किया और मामले में अंतर्ग्रस्त तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद इस न्यायालय ने याचिका अनुज्ञात किया और सेवा समाप्ति के आदेश को अभिखंडित और अपास्त कर दिया उस याचिका के याचीगण को मध्यवर्ती अवधि के लिए 50% वेतन के साथ सेवा में पुनर्बहाल करने का आदेश दिया गया था। यह प्रतीत होता है कि डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 3482 वर्ष 2006 में याचीगण के साथ याची की सेवा भी समाप्त कर दी गयी थी और, इसलिए, वर्तमान याची भी उक्त निर्णय का लाभ पाने का हकदार है क्योंकि वर्तमान याची समस्त संबंध में समस्थित व्यक्ति है। प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 3482 वर्ष 2006 में याचीगण के मामले से और अभय कुमार सिंह, जिसके मामले पर पुनर्बहाली के लिए प्रत्यर्थीगण द्वारा विचार किया गया था, के मामले से भी वर्तमान याची का मामला सुभिन्न करने का प्रयास किया। निवेदन किया गया था कि अभय कुमार सिंह संपुष्ट हो चुका कर्मचारी था जबकि वर्तमान याची और डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 3482 वर्ष 2006 में याचीगण अस्थायी कर्मचारी थे। प्रत्यर्थीगण के उक्त प्रतिवाद को इस तथ्य की दृष्टि में स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि इस न्यायालय ने डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 3482 वर्ष 2006 में अनिल कुमार दास के मामले पर विचार करते हुए मामले के समस्त प्रासंगिक पहलूओं पर विचार किया था। उसमें के याचीगण भी अस्थायी कर्मचारी थे और, इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि वर्तमान याची का मामला डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 3482 वर्ष 2006 में याचीगण के मामले से भिन्न है। यह भी प्रतीत होता है कि **डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 3482 वर्ष 2006** पर विचार करते हुए इस न्यायालय ने **(1995)6 SCC 720; (1994)4 SCC 460;** 2001(3) PLJR 167 में प्रकाशित निर्णय पर और भारत संघ द्वारा जारी एक परिपत्र पर विचार और विश्वास किया।

12. वर्तमान मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और 2011(4) JLJR 215 में प्रकाशित निर्णय के आलोक में वर्तमान याची का मामला अनुज्ञात किए जाने योग्य है। दिनांक 4.4.2006 के सेवा समाप्ति आदेश को अभिखंडित और अपास्त करने का आदेश दिया जाता है। इस आदेश की प्रति की प्राप्ति की तिथि से दो माह के भीतर याची को मध्यवर्ती अवधि के लिए 50% वेतन के साथ सेवा में पुनर्बहाल करने का आदेश दिया जाता है। जैसा आदेश डब्ल्यू॰ पी॰ (एस॰) सं॰ 3482 वर्ष 2006 में दिया गया था।

तद्नुसार, इस रिट याचिका को अनुज्ञात किया जाता है।

इस आदेश की प्रति पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को दी जाय।

---

ekuuh; ç'kkr dekj] U;k;efr

झारखंड राज्य उपायुक्त कोडरमा के माध्यम से

cuke

मो॰ नसरुल्ला उर्फ नन्हें

Cr. Revision No. 553 of 2010. Decided on 14th March, 2012.

विस्फोटक पदार्थ अधिनियम, 1908—धाराएँ 4 एवं 5—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—अमोनियम नाइट्रेट की जब्ती–सत्र न्यायाधीश द्वारा वि॰ प॰ उन्मोचित किया गया–दिनांक 13.12.2000 के भारत सरकार के पत्र के मुताबिक अमोनियम नाइट्रेट विस्फोटक पदार्थ नहीं है और विस्फोटक अधिनियम और/अथवा विस्फोटक पदार्थ अधिनियम के अधीन किसी अनुज्ञप्ति की आवश्यकता नहीं है–दिनांक 13.12.2006 को वस्तुएँ जब्त की गयी थी और अभिग्रहण की तिथि पर पूर्वोल्लिखित पत्र अस्तित्व में नहीं था–आक्षेपित आदेश में अवैधता नहीं है–आवेदन खारिज। (पैराएँ 2 से 5)

अधिवक्तागण.–Mr. Krishna Shankar, For the Petitioner; Mr. Nawal Kishore Prasad, For the Opp. Party.

आदेश

यह पुनरीक्षण अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰, कोडरमा द्वारा पारित दिनांक 26.2.2010 के आदेश के विरुद्ध निर्देशित है जिसके द्वारा उन्होंने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 227 के अधीन विपक्षी पक्षकार को यह अभिनिर्धारित करते हुए उन्मोचित कर दिया कि अमोनियम नाइट्रेट विस्फोटक पदार्थ नहीं है और इसलिए विस्फोटक पदार्थ अधिनियम की धाराओं 4 और 5 के अधीन अपराध नहीं बनता है।

2. श्री कृष्ण शंकर द्वारा निवेदन किया गया है कि एस॰ ओ॰ सं॰ 2899(E) दिनांक 15 दिसंबर, 2008 में अंतर्विष्ट अधिसूचना के तहत भारत सरकार ने घोषित किया था कि अमोनियम नाइट्रेट विस्फोटक पदार्थ है। इस प्रकार, अवर न्यायालय का निष्कर्ष गलत है और इसलिए अपास्त किए जाने का दायी है।

3. निवेदनों को सुनने पर मैंने मामले के अभिलेख का परिशीलन किया है। आक्षेपित आदेश के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि अवर न्यायालय ने भारत सरकार का दिनांक 13.12.2000 के पत्र पर विचार करने के बाद निष्कर्षित किया था कि अमोनियम नाइट्रेट विस्फोटक पदार्थ नहीं है और विस्फोटक अधिनियम और/अथवा विस्फोटक पदार्थ अधिनियम के अधीन अनुज्ञप्ति की आवश्यकता नहीं है। यहाँ यह उल्लेख करना अनुपयुक्त नहीं है कि वर्तमान मामले में अभिकथित वस्तुओं को दिनांक 13.12.2006

को जब्त किया गया था, और इस प्रकार वर्तमान मामले में परिशिष्ट-3 की प्रयोज्यता नहीं है क्योंकि यह अभिग्रहण की तिथि पर अस्तित्व में नहीं था।

4. मामले के उस दृष्टि में, मैं अवर न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में अवैधता नहीं पाता हूँ।

5. तद्नुसार, यह पुनरीक्षण आवेदन खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k] U;k;efr

सैयद असकरी हादी अली ऑगस्टीन इमाम एवं एक अन्य

cuke

फैज मुर्तजा अली एवं एक अन्य

Testamentary Suit No. 1 of 2003. Decided on 2nd March, 2012.

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872—धारा 73—हस्ताक्षर का सत्यापन—यदि किसी व्यक्ति ने अपने जीवनकाल के दौरान अनेक दस्तावेजों पर हस्ताक्षर किया है और वे यहाँ-वहाँ पड़े हुए हैं, उन्हें समस्त स्थानों से मंगाने की आवश्यकता नहीं है—दस्तावेजों पर हस्ताक्षर के पक्षों द्वारा विवादित नहीं किया गया है—उन्हें हस्तलेखन विशेषज्ञ के पास भेजा जा सकता है।

(पैराएँ 8 एवं 9)

अधिवक्तागण.—Mr. P.K. Prasad, For the Petitioners; Mr. Bijay Kumar Singh, For the Opp. Party.

आदेश

<u>आई॰ ए॰ सं॰ 669 वर्ष 2012</u>

यह आई॰ ए॰ प्रतिवादी फैज मुर्तजा अली की ओर से दिनांक 15.7.2011 के आदेश को इस सीमा तक उपांतरित करने के लिए दाखिल किया गया है कि 10,000/- रुपयों का व्यय अधिरोपित करने वाला आदेश वापस लिया जाय।

2. दिनांक 6 जनवरी, 2012 के आदेश को निर्दिष्ट किया जा सकता है जिसके अधीन समरुप प्रार्थना अस्वीकार कर दी गयी थी। किंतु, प्रार्थनानुसार ऐसा व्यय जमा करने के लिए तीन सप्ताह का समय दिया गया था। पुनः यह आई॰ ए॰ दाखिल किया गया है।

3. दिनांक 15.7.2011 के आदेश सहित इस मामले में पारित आदेशों से प्रतीत होता है कि प्रतिवादी केवल इस वाद को लंबा खींचने और विलंबित करने की दृष्टि से तुच्छ आवेदनों एवं अन्य मामलों को दाखिल करके विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग कर रहा है।

4. प्रतिवादी को आज के दिन से तीन सप्ताह के भीतर 5000/- रुपयों के अतिरिक्त व्यय के साथ 10,000/- रुपयों का उक्त व्यय जमा करने का निर्देश दिया जाता है जिसमें विफल रहने पर प्रतिवादी फैज मुर्तजा अली समुचित आदेशों को पारित करने के लिए अगली तिथि पर व्यक्तिगत तौर पर उपस्थित होगा।

5. इन परिस्थितियों में, इस आई॰ ए॰ को अस्वीकार किया जाता है।

<u>आई॰ ए॰ सं॰ 544 वर्ष 2012</u>

6. यह आई॰ ए॰ पैरा 1 में वर्णित चार दस्तावेजों पर वसीयतकर्ता के स्वीकृत हस्ताक्षरों को उपदर्शित करते हुए प्रतिवादी फैज मुर्तजा अली की ओर से दाखिल किया गया है।

7. वादी की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री पी॰ के॰ प्रसाद ने निवेदन किया कि पैरा 1 (A) में वर्णित दस्तावेजों के संबंध में प्रार्थना पहले ही दिनांक 15.7.2011 को अस्वीकार कर दी गयी

थी। उन्होंने आगे निवेदन किया कि पैरा 1(C) में वर्णित दस्तावेज पैरा 1(A) में वर्णित दस्तावेजों से संबंधित हैं। उन्होंने यह भी निवेदन किया कि पैरा 1(D) में वर्णित दस्तावेजों को उनके द्वारा स्वीकार नहीं किया जा रहा है। उन्होंने आगे निवेदन किया कि यद्यपि इस न्यायालय ने दिनांक 15.7.2011 के आदेश द्वारा पैरा 1(B) में वर्णित दस्तावेजों को भेजने के लिए प्रार्थना अस्वीकार कर दिया, किंतु चूँकि हस्तलेखन विशेषज्ञ ने समकालीन दस्तावेजों को मांगा है, वह पैरा 1(B) में वर्णित दस्तावेजों को भेजने पर सहमत है।

8. मेरे मत में, यदि किसी व्यक्ति ने अपने जीवन काल के दौरान अनेक दस्तावेजों पर हस्ताक्षर किया है और वे यहाँ-वहाँ पड़े हुए हैं, उन्हें समस्त स्थानों से मंगाए जाने की आवश्यकता नहीं है।

9. पक्षों को सुनने के बाद, मैं संतुष्ट हूँ कि पैरा 1 (B) में वर्णित दस्तावेजों में हस्ताक्षर को पक्षों द्वारा विवादित नहीं किया गया है और उन्हें हस्तलेखन विशेषज्ञ को भेजा जा सकता है।

10. तद्नुसार, विद्वान उप-न्यायाधीश X सिविल न्यायालय, पटना से **हक वाद सं॰ 262 वर्ष 1991 में शमीम आमना इमाम बनाम मुजफ्फरपुर प्रोपर्टीज प्राईवेट लिमिटेड एवं अन्य** में दाखिल मूल वाद पत्र और वकालतनामा को इनकी छाया/सत्य प्रतिलिपि रखने के बाद विशेष संदेशवाहक द्वारा भेजने का अनुरोध किया जाता है जिसका व्यय प्रतिवादी द्वारा वहन किया जाएगा।

11. प्रतिवादी आज के दिन से दो सप्ताह के भीतर अंतरिम अग्रिम व्यय के रूप में 2000/- रुपया जमा करेगा।

12. इस संप्रेक्षण और निर्देश के साथ, यह आई॰ ए॰ निपटाया जाता है।

13. इस आदेश की प्रति पक्षों को दी जाय, जैसी प्रार्थना की गयी है।

---

ekuuh; ujUn ukFk frokjh] U;k;efr

स्कोप एडवर्टाइजमेन्ट एंड पब्लिसिटि प्रा॰ लि॰, धनबाद

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P.(C) No. 4914 of 2011. Decided on 21st March, 2012.

सरकारी संविदा–करार का रद्दकरण–सड़क पर रोशनी व्यवस्था एवं अन्य सिविल सुविधाओं के लिए दिए गए काम को कोई नोटिस दिए बिना और अभ्यावेदन का अवसर दिए बिना रद्द कर दिया गया–आक्षेपित आदेश पूर्णतः मनमाना और अवैध है और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघनकारी है–आक्षेपित आदेश अभिखंडित–याचिका अनुज्ञात।(पैराएँ 4, 6 से 8)

अधिवक्तागण.–M/s. P.K. Prasad, S.K. Dwivedi, For the Petitioner; Mr. Jai Prakash, For the Respondents.

आदेश

इस याचिका में, याची ने दिनांक 11.8.2011 के पत्र सं॰ 1056 के अभिखंडन के लिए प्रार्थना किया है जिसके द्वारा याची का अस्तित्वयुक्त करार मनमाने रूप से और अवैधतापूर्वक रद्द कर दिया गया है।

2. यह कथन किया गया है कि दिनांक 20.8.2008 के करार द्वारा याची को सिंदरी, झरिया, चाटाटाँड और कतरास अंचल के पथ प्रकाश, हाईमास्ट लाइट, चौकों के सौंदर्यीकरण, डिवाइडर के निर्माण, आदि के लिए काम दिया गया था। दिनांक 20.8.2008 से आरंभ होकर करार पाँच वर्षों के लिए

था। दिनांक 11.8.2011 के आक्षेपित आदेश द्वारा मुख्य कार्यपालक अधिकारी, नगर निगम, धनबाद ने अचानक तुरन्त के प्रभाव के साथ दिनांक 20.8.2008 का याची का करार रद्द कर दिया।

3. यह कथन किया गया है कि याची के पक्ष में उसी तिथि के तीन करार थे, किंतु एक करार को कारणों की सूचना दिए बिना और अभ्यावेदन देने का अवसर दिए बिना मनमाने रूप से रद्द कर दिया गया था।

4. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि उक्त आक्षेपित आदेश (परिशिष्ट-11) मनमाना है और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघनकारी है और विधि की दृष्टि में अविद्यमान है।

5. प्रत्यर्थीगण द्वारा इस रिट याचिका का प्रतिवाद किया गया है। अपने प्रति शपथ पत्र में प्रत्यर्थीगण ने कार्रवाई को न्यायोचित ठहराने का प्रयास किया। अन्य बातों के साथ साथ कथन किया गया है कि दिनांक 11.8.2011 का उक्त आक्षेपित आदेश जारी करने के पहले नोटिस जारी किया गया था और याची को अवसर दिया गया था।

6. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों और दस्तावेजों का परिशीलन किया है। दिनांक 11.8.2011 के आक्षेपित आदेश के परिशीलन पर, मैं पाता हूँ कि कोई कारण दिए बिना संक्षिप्त और यांत्रिक आदेश द्वारा याची का करार रद्द कर दिया गया है। उक्त आदेश यह दर्शाने के लिए कुछ भी अंतर्विष्ट नहीं करता है कि अचानक करार रद्द करने के पहले याची को कोई नोटिस दिया गया था और अभ्यावेदन/सुनवाई का अवसर दिया गया था।

7. अत:, मैं याची के प्रतिवाद और दावे में सार पाता हूँ कि आक्षेपित आदेश पूर्णत: मनमाना और अवैध है और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघनकारी है।

8. पूर्वोक्त कारणों से यह रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है। दिनांक 11.8.2011 के पत्र सं॰ 1056 में अंतर्विष्ट आदेश, जहाँ तक यह आइटम सं॰ 2 के संबंध में याची के साथ संबंधित है, अभिखंडित किया जाता है।

9. किंतु, यह आदेश प्रत्यर्थीगण को विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुरुप कदम उठाने से अवरुद्ध नहीं करता है।

---

ekuuh; çkr dekj] U;k;efr

दशरथ शर्मा उर्फ दशरथ मिस्त्री

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. Revision No. 713 of 2010. Decided on 15th March, 2012.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 125—कुटुंब न्यायालय द्वारा याची को अपनी पत्नी को 1,000/- रुपया भरण-पोषण का भुगतान करने का निर्देश दिया गया—पत्नी ने अभिकथित रूप से याची को 26 वर्ष पहले अभित्याग दिया था और जारकर्म में रह रही है—याची ने लिखित कथनों में दिए गए बयानों को सिद्ध नहीं किया है क्योंकि उसकी ओर से किसी गवाह का परीक्षण नहीं किया गया था—जानबूझकर अभित्यजन और जारकर्म का मामला सिद्ध नहीं किया गया—आवेदन खारिज। (पैराएँ 2, 4 एवं 5)

अधिवक्तागण.—Mr. Mahesh Kumar Sinha, For the Petitioners; A.P.P., For the State.

आदेश

यह आवेदन विविध केस सं॰ 72 वर्ष 2006 में प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, डालटेनगंज, पलामू द्वारा पारित दिनांक 15.10.2009 के आदेश के विरुद्ध निर्देशित है जिसके द्वारा उन्होंने याची को विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 को भरण–पोषण के रूप में 1000/- रुपयों का भुगतान करने का निर्देश दिया।

2. याची के विद्वान अधिवक्ता, श्री महेश कुमार सिन्हा द्वारा निवेदन किया गया है कि विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने 26 वर्ष पहले याची का अभित्याग कर दिया था और जारकर्म में रह रही है। इस प्रकार, वह भरण–पोषण पाने की हकदार नहीं है।

3. निवेदनों को सुनने पर मैंने आक्षेपित आदेश का परिशीलन किया है।

4. आक्षेपित आदेश के परिशीलन से, मैं पाता हूँ कि याची ने लिखित कथनों में दिए गए बयानों को सिद्ध नहीं किया गया था। उक्त परिस्थिति के अधीन, यह प्रतीत होता है कि जानबूझकर अभित्यजन और जारकर्म का मामला सिद्ध नहीं किया गया है। अवर न्यायालय ने याची को विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 को भरण–पोषण के रूप में 1000/- रुपयों का भुगतान करने का निर्देश देते हुए न्यायोचित और समुचित कारण दिया है।

5. तद्नुसार, मैं इस आवेदन में गुणागुण नहीं पाता हूँ जिसे खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; vkjî vkjî çlkn] U;k;efr

वीर कृष्ण सहाय

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 389 of 2011. Decided on 6th March, 2012.

(क) भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 417, 418 एवं 406—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—छल एवं न्यास का दांडिक भंग–समन किया जाना–छल का अपराध गठित करने वाले प्रवंचना के तत्व की कमी है चूँकि परिवाद में किए गए अभिकथन किसी भी तरीके से याचीगण द्वारा परिवादी को प्रवंचित किए जाने के बारे में उपदर्शित नहीं करते हैं–जिस आधार पर दांडिक मामला दर्ज किया गया था, को पहले भी उठाया गया था, किंतु जब इसे अनुकूल नहीं पाया गया था, विपक्षी पक्षकार ने दांडिक मामला संस्थापित करवाया–याची से प्रतिशोध लेने के लिए अंतरस्थ हेतु के साथ दांडिक कार्यवाही संस्थापित की गयी–दांडिक कार्यवाही अभिखंडित। (पैराएँ 17, 21, 22, 24 एवं 26)

(ख) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—अभिखंडन–दांडिक अभियोजन के माध्यम से दबाव डालकर सिविल विवादों और दावों, जो कोई दांडिक अपराध अंतर्ग्रस्त नहीं करते हैं, को सुलझाने के प्रयास की निंदा की जानी चाहिए और इसे हतोत्साहित करना चाहिए–किंतु, यदि तथ्य सिविल दायित्व और दांडिक दायित्व गठित करता है, तब सिविल विधि में उपलब्ध उपचार को दांडिक कार्यवाही अभिखंडित करने का अधार नहीं बनाया जा सकता है। (पैरा 25)

निर्णयज विधि.–1992 Supp. (1) SCC 335; (2006) 6 SCC 736—Relied on.

अधिवक्तागण.–Mr. Sumeet Gadodia, For the Petitioner; A.P.P., For the State; Mr. Rajesh Kumar, For the O.P. No.2.

आदेश

यह आवेदन दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन दिनांक 18.12.2010/20.12.2010 के आदेश सहित परिवाद–सह–अभ्यापत्ति केस सं॰ 2763 वर्ष 2008 की संपूर्ण दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन के लिए दाखिल की गयी है जिसके द्वारा विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, राँची ने याची के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 417, 418 एवं 406 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए प्रथम दृष्टया मामला बनता पाए जाने पर याची को विचारण का सामना करने के लिए समन किया।

2. अभियोजन के मामले पर आने से पहले याचिका में प्रकट किए गए कतिपय तथ्यों, जिनका अभियोजन मामले पर प्रभाव पड़ेगा, का कथन करने की आवश्यकता है।

3. याची के अनुसार, 70 एस॰ के॰ सहाय पथ, सर्कुलर पथ, पी॰ एस॰ लालपुर, राँची में वार्ड सं॰ 17 (नया) में अवस्थित होल्डिंग सं॰ 1186B से संबंधित एम॰ एस॰ भूखंड सं॰ 1480 वाली 33 कट्ठा भूमि पारिवारिक बँटवारा में याची और उसकी भाभी श्रीमती मधुर सहाय के हिस्से में आयी। इस पर, याची ने बहुमंजिला भवन के निर्माण के लिए विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के साथ विकास करार किया। जब निर्माण चल रहा था, जिला प्रशासन ने निर्माण पर आपत्ति किया क्योंकि यह उस भूमि पर चल रहा था जो खास महल भूमि है और इसलिए निर्माण रोकने के लिए निर्देश जारी किया गया था। पटना उच्च न्यायालय (राँची पीठ) के समक्ष सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 2795 वर्ष 1999R के तहत याची द्वारा और विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 द्वारा भी संयुक्त रूप से उस आदेश को चुनौती दी गयी थी। उक्त आवेदन को सुनवाई के लिए ग्रहण किया गया था और प्रश्नगत संपत्ति के शांतिपूर्ण उपभोग में हस्तक्षेप नहीं करने का निर्देश प्रत्यर्थी राज्य को देते हुए अंतरिम आदेश पारित किया गया था। समय के क्रम में, जब विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 याची को उसका हिस्सा देने में विफल रहा, याची ने माध्यस्थम खंड का अवलंब लिया और तद्द्वारा इस न्यायालय ने विवाद, जो पक्षों के बीच उद्भूत हुआ है के न्याय निर्णयन के लिए पटना उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश को एकमात्र मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया।

4. विद्वान मध्यस्थ ने दिनांक 31.10.2004 के अपने अधिनिर्णय के तहत विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 को याची को पार्किंग स्थल के साथ प्रश्नगत फ्लैट को सौंपने सहित विकास करार के निबंधनों और शर्तों का कठोरतापूर्वक पालन करने का निर्देश दिया। विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 द्वारा उप–न्यायाधीश, राँची के समक्ष विविध केस सं॰ 1 वर्ष 2005 दाखिल करके उक्त अधिनिर्णय को चुनौती दी गयी थी जिसे दिनांक 7.9.2005 को खारिज कर दिया गया था। किन्तु, उस आदेश को माध्यस्थम अपील सं॰ 15 वर्ष 2005 में इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गयी थी जिसे भी दिनांक 14.6.2007 को खारिज कर दिया गया था। माध्यस्थम अपील में इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश को माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विशेष अनुमति अपील (सी॰) सं॰ 11368 वर्ष 2007 में विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 द्वारा चुनौती दी गयी थी जिसे भी माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 23.7.2007 को खारिज कर दिया गया था।

5. माननीय सर्वोच्च न्यायालय तक मामला हार जाने के बावजूद विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने न तो प्रश्नगत फ्लैटों का कब्जा सौंपा और न ही कतिपय डिक्रीत राशि का भुगतान किया जैसा मध्यस्थ द्वारा आदेश दिया गया था और, इसलिए, याची ने 18,22,400/- रुपयों की राशि, जिसे विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 को अधिनिर्णय के निबंधनानुसार याची भुगतान करना था, की प्राप्ति के लिए उप–न्यायाधीश V, राँची के समक्ष निष्पादन केस सं॰ 3 वर्ष 2005-A दाखिल किया। निष्पादन न्यायालय ने विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 को पूर्वोक्त डिक्रीत बकायों का भुगतान करने का निर्देश दिया गया था। इस पर विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 द्वारा दिनांक 13.9.2007 को आवेदन दाखिल किया गया था जिसमें कथन किया था कि फ्लैटों के

खरीददारों के पक्ष में अंतरण विलेख दर्ज करके उक्त राशि के भुगतान के लिए कोष बनाया जा सकता है जिसके लिए मुख्तारनामा की आवश्यकता है और, इसलिए, याची को उसके पक्ष में मुख्तारनामा विलेख निष्पादित करने के लिए कहा गया था और यदि ऐसा किया जाता है, वह याची को बकाया का भुगतान करने के लिए बैंक गारंटी प्रस्तुत करेगा।

6. उक्त बयान के अनुपालन में याची ने दिनांक 12.12.2007 को निष्पादन न्यायालय के समक्ष मुख्तारनामा का प्रारुप प्रति दाखिल किया। दिनांक 16.2.2008 को विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 की ओर से दो आपत्तियाँ उठायी गयी थी; पहला यह था कि कार पार्किंग का उल्लेख नहीं किया गया है और दूसरा यह था कि फ्लैट सं॰ 607 को मुख्तारनामा में सम्मिलित किया जाना चाहिए। कार पार्किंग के संबंध में एक आपत्ति स्वीकार की गयी थी, जबकि दूसरी आपत्ति अस्वीकार कर दी गयी थी। साथ ही मुख्तारनामा के रजिस्ट्रीकरण के लिए पालन किए जा रहे औपचारिकताओं के संबंध में राजिस्ट्री प्राधिकारी से कतिपय सूचना इप्सित की गयी थी। आवश्यक सूचना प्राप्त करने पर निष्पादन न्यायालय ने दिनांक 1.3.2008 के अपने आदेश के तहत विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 को 18,22,400/- रुपयों की राशि की बैंक गारंटी प्रस्तुत करने का निर्देश दिया।

7. उक्त आदेश से असंतुष्ट होकर, विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने इस न्यायालय के समक्ष डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 1818 वर्ष 2008 में उस आदेश को चुनौती दिया। उस रिट याचिका को दिनांक 25.10.2008 को खारिज कर दिया गया था। उक्त रिट याचिका की खारिजी के बाद विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने सिविल पुनर्विलोकन सं॰ 106 वर्ष 2008 दाखिल किया जिसे न केवल खारिज कर दिया गया था बल्कि विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 पर 25,000/- रुपयों का व्यय भी अधिरोपित किया गया था। तत्पश्चात, विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने रिट याचिका में और सिविल पुनरीक्षण आवेदन में भी पारित आदेशों को माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दिया, किंतु पुनः इसे खारिज कर दिया गया था।

8. बैंक गारंटी प्रस्तुत करने के लिए विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 को निर्देश दिनांक 1.3.2008 का आदेश पारित किए जाने के बाद विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने एक ओर इस न्यायालय के समक्ष उस आदेश को चुनौती दिया और दूसरी ओर दिनांक 15.5.2008 को प्राथमिकी दर्ज किया जिसमें अभिकथित किया गया कि निष्पादन न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुसरण में जब मुख्तारनामा दाखिल किया गया था, यह पता लगाया जा सका था कि प्रश्नगत भूमि केवल याची के नाम पर नहीं है बल्कि छह व्यक्तियों के नाम में है। ऐसे अभिकथन पर भारतीय दंड संहिता की धाराओं 406 और 420 के अधीन लालपुर पी॰ एस॰ केस सं॰ 89 वर्ष 2008 के रूप में मामला दर्ज किया गया था।

9. पुलिस मामले का अन्वेषण करने पर इस निष्कर्ष पर आयी कि जब विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 माननीय सर्वोच्च न्यायालय तक मामला हार गया, उसने दांडिक मामला दाखिल किया जो द्वेष से कलंकित है और इस प्रकार याची को अभियोजन से विमुक्त करते हुए अंतिम फॉर्म दाखिल किया गया था। साथ ही मत दिया गया था कि भारतीय दंड संहिता की धारा 182/211 के अधीन दंडनीय अपराध करने के लिए विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के विरुद्ध परिवाद दर्ज किया जाय। फाइनल फॉर्म दाखिल किए जाने पर विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 द्वारा अभ्यापत्ति याचिका दाखिल किया गया था। किंतु, फाइनल फॉर्म स्वीकार किया गया था किंतु, साथ ही आदेश दिया गया था कि विपक्षी याचिका को परिवाद के रूप में माना जाय।

10. परिवाद में बनाया गया मामला संक्षेप में यह है कि जब निष्पादन न्यायालय ने याची को मुख्तारनामा रजिस्टर्ड कराने का निर्देश दिया, विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने अंचलाधिकारी के कार्यालय में अभिलेख का निरीक्षण किया था और पाया था कि प्रश्नगत भूमि पाँच व्यक्तियों के नाम में है जबकि

याची ने विकास करार करते हुए इस तथ्य को दबाया था। जाँच करने पर याची के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 417, 418 और 406 के अधीन दंडनीय अपराधों का संज्ञान दिनांक 18.12.2010/ 20.12.2010 के आदेश के तहत लिया गया था जो चुनौती के अधीन है।

11. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री सुमित गडोडिया निवेदन करते हैं कि स्वीकृत रूप से परिवाद-विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने याची के साथ 33 कट्ठा भूमि का विकास और इस पर बहुमंजिले भवन का निर्माण करने के लिए विकास करार किया था। तद्नुसार, विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 भवन के निर्माण के लिए अग्रसर हुआ। निर्माण पूरा होने पर, जब विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 याची (स्वामी) के हिस्से में आने वाले फ्लैटों को सौंपने में विफल रहा, विवाद उद्भूत हुआ जिसके परिणामस्वरुप, याची द्वारा माध्यस्थम खंड का अवलंब लिया गया था जिसके द्वारा मध्यस्थम के समक्ष विवाद निर्दिष्ट किया गया था और मध्यस्थ ने विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 को विकास करार के निबंधनों और शर्तों का पालन करने का निर्देश देते हुए अधिनिर्णय दिया।

12. उस आदेश को इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गयी थी जहाँ विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 मामला हार गया और उसने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विशेष अनुमति अपील (सिविल) दाखिल किया, इसे भी खारिज कर दिया गया था।

13. विद्वान अधिवक्ता ने पूर्वोल्लिखित तथ्यों को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन किया कि जब विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 न सिर्फ एक बार बल्कि दो बार माननीय सर्वोच्च न्यायालय तक मामला हार गया, उसने यह अभिवचन करते हुए दांडिक मामला लाया है कि याची ने भूमि का विकास करने के लिए करार किया था जिसका वह एकमात्र स्वामी नहीं है बल्कि अन्य सह-अंशधारी भी स्वामी है किंतु करार करते समय उसने इस तथ्य को प्रकट नहीं किया था। आधार, जिस पर विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 याची का अभियोजन इप्सित कर रहा है, को उक्त निर्दिष्ट मामलों में इस न्यायालय के समक्ष उठाया था जहाँ वह हार गया था और इस प्रकार यह आसानी से कहा जा सकता है कि दांडिक कार्यवाही स्पष्टत: असद्भावपूर्ण है जिसे याची से प्रतिशोध लेने के लिए और निजी दुश्मनी के कारण उसका अपमान करने की दृष्टि से अंतरस्थ हेतु के साथ संस्थापित किया गया है और इसलिए **हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल, {1992 Supp. (1) SCC 335},** के मामले में अधिकथित निर्णय की दृष्टि में संज्ञान लेने वाले आदेश सहित संपूर्ण दांडिक कार्यवाही अपास्त किए जाने योग्य है।

14. इसके विरुद्ध विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री राजेश कुमार निवेदन करते हैं कि विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 द्वारा जो कोई भी मामला सर्वोच्च न्यायालय तक लड़ा गया था, उन मामलों का दांडिक अपराध के साथ कुछ लेना-देना नहीं है क्योंकि दांडिक मामला इस कारण से दर्ज किया गया है कि याची ने विकास करार करते समय यह प्रकट कभी नहीं किया था कि प्रश्नगत भूमि जिसके ऊपर करार के मुताबिक बहुमंजिला भवन निर्मित किया जा रहा था, परिवार के अन्य सदस्यों की भी थी और कि याची भूमि का संपूर्ण स्वामी कभी नहीं है बल्कि यह खासमहल भूमि है और इस तथ्य को भी करार करते समय प्रकट नहीं किया गया है और निष्पादन न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुसरण में याची द्वारा निष्पादित मुख्तारनामा उपायुक्त, राँची द्वारा इस कारण से रद्द कर दिया गया है कि भूमि याची की कभी नहीं है बल्कि यह खासमहल भूमि है और इस स्थिति के अधीन इस तथ्य के बावजूद कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय तक पक्षों द्वारा सिविल कार्यवाही लड़ी गयी थी, मामला जिसके अधीन संज्ञान लिया गया है निश्चय ही बनता है।

15. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने एवं अभिलेखों का परिशीलन करने पर, वस्तुत: यह प्रतीत होता है कि अभिकथन, जिस पर दांडिक मामला दर्ज किया गया है, को पहले भी विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 की ओर से उच्च न्यायालय एवं माननीय सर्वोच्च न्यायालय सहित विभिन्न फोरमों में किए गए थे।

16. यहाँ यह गौर करना सुयोग्य होगा कि जब निर्माण शुरु हुआ, जिला प्रशासन ने इस आधार पर आपत्ति किया कि भूमि खास महल से संबंधित है। जिला प्रशासन द्वारा की गयी कार्रवाई से व्यथित होकर याची और विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 दोनों ने पटना उच्च न्यायालय (राँची पीठ) के समक्ष जिला प्रशासन की कार्रवाई को सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 2795 वर्ष 1999R के तहत चुनौती दिया जिसमें प्रत्यर्थी राज्य को प्रश्नगत संपत्ति के शांतिपूर्ण उपभोग में किसी तरीके से हस्तक्षेप नहीं करने का निर्देश देते हुए अंतरिम आदेश पारित किया गया था। बाद में जब निष्पादन न्यायालय ने अधिनिर्णय निष्पादित करने के लिए विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 को 18,22,400/- रुपयों की राशि की बैंक गारंटी प्रस्तुत करने का निर्देश देते हुए आदेश पारित किया, इसे इस न्यायालय के समक्ष डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 1818 वर्ष 2008 के तहत यह अभिवचन करते हुए चुनौती दी गयी थी कि निष्पादन न्यायालय ने मुख्तारनामा के निष्पादन के संबंध में आपत्तियों को विनिश्चित किए बिना उसे बैंक गारंटी प्रस्तुत करने का निर्देश दिया और, इस प्रकार, उन्होंने घोर अवैधता किया है। उस अभिवचन को इस न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं किया गया था और, तद्नुसार, उक्त रिट याचिका दिनांक 25.10.2008 को खारिज कर दी गयी थी। उसके काफी बाद, उक्त आदेश का पुनर्विलोकन इप्सित करते हुए सिविल पुनरीक्षण सं॰ 106 वर्ष 2008 इस आधार पर दाखिल किया गया था कि उपायुक्त ने मुख्तारनामा रद्द कर दिया है और इस प्रकार, विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 बैंक गारंटी प्रस्तुत करने अथवा डिक्रीत बकायों का भुगतान करने की अवस्था में नहीं है। उक्त आवेदन दिनांक 3.3.2009 के आदेश के तहत पुन: खारिज कर दिया गया था। उक्त आदेश के प्रासंगिक भाग को यहाँ नीचे उद्धृत करने की आवश्यकता है:-

> *"5. fnukd 31.10.2004 d vfèkfu.k; d erkfcd ;kph l foi{kh i{kdkj dk 18, 22,400/- #i;k dk Hkxrku dju dh vko';drk Fkh@gA vfèkfu.k; lokPp U;k;ky; rd i{kk d chp vfre cu x;kA ;kph dk fMØhr cdk;k dk Hkxrku dju dk fun'k fn;k x;k FkkA mlu bldk Hkxrku dju d fy, dN le; çnku dju dh çkFkuk dh fdr ,l Hkxrku dk foyfcr fd;k vkj rc ef'dy vfHkO;Dr djr g, ;g vfHkopu fd;k fd ;g D.Hr. dk cdk;k dk Hkxrku dju d fy, cd xkjVh çLrr dju d fy, r;kj g] ;fn D.Hr e[rkjukek fu"ikfnr djrk g rkfd ;kph QyV [kjhnnkjk d i{k e vrj.k foy[kk dk fu"ikfnr djd vkj jftLVj djd dk"k tek dj ldA foi{kh i{kdkj }kjk ,lk vujkèk 'kkyhurkiod Lohdkj fd;k x;k FkkA rc çrhr gkrk g fd ;kph u foi{kh i{kdkj }kjk e[rkjukek d fu"iknu d lcèk e vU; vkifÙk;k dk mBkuk 'k: fd;kA ,lh vkifÙk;k dk voj U;k;ky; }kjk vkj lcfèkr MCY;O ihO (lhO) lO 1818 o"k 2008 e bl U;k;ky; }kjk vLohdkj dj fn;k x;k FkkA vc ;kph bl cgkuk ij fd mik;Dr u e[rkjukek jí dj fn;k g] cd xkjVh fu"ikfnr dju vFkok fMØhr cdk;k dk Hkxrku dju e rkRif;r ef'dy vfHkO;Dr dj jgk gA ;kph u fu"iknu U;k;ky; e ;g vfHkopu Hkh fd;k fd og cd xkjVh çLrr dju d fy, r;kj g ijUr ;g lfuf'pr fd;k tk; fd bl D.Hr. }kjk rc rd Hkuk;k ugh tk; tcrd e[rkjukek ij ÑR; dju dh vuefr ugh nh tkrh gA fu"iknu U;k;ky; }kjk ,lh çkFkuk vLohdkj dj nh x;h FkhA vrr% fnukd 3.2.2009 dk fu"iknu U;k;ky; u vfHkfuèkkfjr fd;k fd ;kph ml fnu l gh] tc bl ,lk dju dk fun'k fn;k x;k Fkk] cd xkjVh çLrr dju l cpu d fy, ,d ;k nljk vfHkopu dj jgk gA fo}ku voj U;k;ky; u cd xkjVh çLrr dju d fy, vfrfjDr le; nu dh çkFkuk dk vLohdkj dj fn;k vkj ;kph dk vko';d vkn'kk d fy, U;k;ky; e O;fDrxr rkj ij mifLFkr jgu dk fun'k fn;kA*

6. mij xkj fd, x, rF;k vkj ifjfLFkfr;k e ;g i.kr% Li"V g fd ç'uxr vfèkfu.k; d vèkhu ;kph dk foi{kh i{kdkj dk fMØhr jkf'k dk Hkxrku dju dh vko';drk FkhA cd xkjVh çLrr dju vkj e[rkjukek fu"ikfnr dju d ckj e vfèkfu.k; e dN Hkh ugh FkkA ;kph u fMØhr cdk;k dk Hkxrku dju e ef'dy vfHkO;Dr fd;k vkj çLrko fn;k fd og cd xkjVh] vkfn çLrr djxkA doy blfy, fd D.Hr.u 'kkyhurkiod ;kph dk ,lk vkxg Lohdkj dj fy;k Fkk] ;g ugh dgk tk ldrk g fd vfèkfu.k; mDr lhek rd mikUrfjr gk x;kA ;kph vfèkfu.k; d erkfcd foi{kh i{kdkj dk MØhr jkf'k dk Hkxrku dju dk ckè; Fkk] tk dkQh le; igy lokPp U;k;ky; rd i{kk d chp vfre cu x;kA e[rkjukek dk fu"iknu vFkok mik;Dr }kjk mldk jídj.k ;kph d fo#} vfèkfu.k; d vèkhu fMØh d fu"iknu d jkLr e ugh vk ldrk gA e ;g lçf{kr dju dk ckè; g fd ;kph rPN vkj rx dju okyh vkifÙk;k vkj fMØhr cdk;k d foyfcr Hkxrku d fy, vfHkopu djd fofèk dh çfØ;k dk n#i;kx dj jgk gA

7. ifj.kkeLo#i] vkt d fnu l pkj llrkg d Hkhrj fu"iknu U;k;ky; e ;kph }kjk çR;Fkh dk Hkxrku ;kX; 25000/- #i;k d 0;; d lkFk bl flfoy iufoykdu vkonu dk [kkfjt fd;k tkrk gA**

17. इस प्रकार, यह प्रतीत होता है कि आधार, जिस पर दांडिक मामला दर्ज किया गया था, पहले भी उठाया गया था, किंतु जब यह उसके पक्ष में नहीं गया, विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने दांडिक मामला संस्थापित करवाया। अत: इन परिस्थितियों के अधीन, यह आसानी से कहा जा सकता है कि दांडिक कार्यवाही स्पष्टत: असद्भावपूर्ण है जिसे याची से प्रतिशोध लेने के लिए और निजी दुश्मनी के कारण उसका अपमान करने की दृष्टि से अंतरस्थ हेतु के साथ संस्थापित किया गया है जो दांडिक कार्यवाही अभिखंडित करने के लिए **भजन लाल (ऊपर)** के मामले में दिए गए आधारों में से एक है।

18. एक अन्य कोण से मामले को देखने पर, अब यह विचार करना है कि क्या परिवाद में किए गए अभिकथन भारतीय दंड संहिता की धाराओं 406, 417 और 418 के अधीन दंडनीय छल का अपराध गठित करता है।

19. भारतीय दंड संहिता की धारा 415 के अधीन छल का अपराध परिभाषित किया गया है जिसका पठन निम्नलिखित है:-

^^Ny-&tk dkb fdlh 0;fDr l çopuk dj ml 0;fDr dk] ftl bl çdkj çofpr fd;k x;k g] diViod ;k cbekuh l mRçfjr djrk g fd og dkb lifÙk fdlh 0;fDr dk ifjnÙk dj n] ;k ;g lEefr n n fd dkb 0;fDr fdlh lifÙk dk j[k ;k lk'k; ml 0;fDr dk] ftl bl çdkj çofpr fd;k x;k g] mRçfjr djrk g fd og ,lk dkb dk; dj] ;k dju dk yki dj] ftl og ;fn ml gj çdkj çofpr u fd;k x;k gkrk rk] u djrk ;k dju dk yki u djrk] vkj ftl dk; ;k yki l ml 0;fDr dk 'kkjhfjd] ekufld] [;kfr lcèkh ;k lkifÙkd udlku ;k vigkfu dkfjr gkrh g] ;k dkfjr gkuh lHkkO; g] og ^^Ny** djrk g] ;g dgk tkrk gA**

20. इसके पठन से यह प्रतीत होता है कि छल का अपराध गठित करने के लिए निम्नलिखित अवयव आवश्यकत: होने चाहिए:-

(1) çofpr dju oky 0;fDr }kjk çofpr 0;fDr dk diViod vFkok cbekuhiod mRçfjr fd;k x;k gkA

(2) (a) bl çdkj çofpr 0;fDr fdlh 0;fDr dk dkb lifÙk nu d fy, mRçfjr fd;k gk vFkok lgefr fn;k gk fd dkb 0;fDr fdlh lifÙk dk viu ikl j[k ldrk g(vFkok

(b) bl çdkj çofpr fd, x, 0;fDr dk fdlh pht dk dju d fy, vFkok ugh dju d fy,] ftl og djrk vFkok ugh djrk ;fn ml bl çdkj çofpr ugh fd;k x;k gkrk] vk'k;iod mRçfjr fd;k tkuk pkfg,A

(3) mièkkjk 2(b) }kjk vkPNkfnr ekeyk e Ñ R; vFkok yki , lk gkuk pkfg, tk mRçfjr fd, x, 0;fDr dk 'kkjhfjd :i l vFkok mldh çfr"Bk vFkok lifÙk dk udlku vFkok gkfu dkfjr djrk g vFkok dju dh lHkkouk gA

21. इस प्रकार, छल का अपराध गठित करने के लिए आवश्यक पहला तत्व अभियुक्त द्वारा परिवादी को प्रवंचित करना है। जब तक प्रवंचना नहीं है, छल का अपराध बनाया नहीं जा सकता है। प्रवंचना किए जाने के बाद प्रवंचित किए गए व्यक्ति को कुछ करने अथवा नहीं करने के लिए उत्प्रेरित किया जाना चाहिए। तब प्रश्न उद्भूत होता है कि प्रवंचना क्या है? सामान्य अर्थ में प्रवंचना में किसी व्यक्ति को भ्रमित करने अथवा विश्वास करवाने का तत्व है जो झूठा है अथवा किसी को यह विश्वास दिलाना है कि वह झूठ को सत्य, यथार्थ को अस्तित्वयुक्त, नकली को वास्तविक समझे और यह भी आवश्यक है कि संविदा के आरंभ से ही प्रवंचना होनी चाहिए। परिवाद में किए गए अभिकथनों के संदर्भ में उक्त सिद्धांत को लागू करते हुए वस्तुतः यह प्रतीत होता है कि छल का अपराध गठित करने वाले प्रवंचना के प्रथम तत्व की कमी है क्योंकि परिवाद में किए गए अभिकथन किसी भी तरीके से याची द्वारा परिवादी को प्रवंचित किया जाना कहीं नहीं उपदर्शित करते हैं।

22. जहाँ तक भारतीय दंड संहिता की धारा 406 के अधीन अपराध का संबंध है, वह भी याची के विरुद्ध बनाया गया प्रतीत नहीं होता है। भारतीय दंड संहिता की धारा 405 के अधीन न्यास का दांडिक भंग परिभाषित किया गया है जिसका पठन निम्नलिखित है:-

^^vkijkfèkd U;kl Hkx-**&tk dkbZ lEifÙk ;k lEifÙk ij dkbZ Hkh v[kR;kj fdlh idkj viu dk U;Lr fd, tkus ij ml lEifÙk dk cbekuh l nfofu;kx dj yrk g ;k ml viu mi;kx e lifjofrr dj yrk g ;k ftl idkj , lk U;kl fuogu fd;k tkuk g] mldk fofgr dju okyh fofèk l fdlh fun'k dk] ;k , l U;kl d fuogu d ckj e mld }kjk dh xb fdlh vfHk0;Dr ;k foof{kr oèk lfonk dk vfrØe.k djd cbekuh l ml lEifÙk dk mi;kx ;k 0;;u djrk g] ;k tkuc>dj fdlh vU; 0;fDr dk , lk djuk lgu djrk g] og ^^vkijkfèkd U;kl Hkx** djrk gA

23. उक्त प्रावधान के पठन पर, भारतीय दंड संहिता की धारा 405 के अधीन अपराध गठित करने के लिए निम्नलिखित अवयव होने चाहिए।

^^(a) fdlh 0;fDr dk lifÙk vFkok lifÙk d mij v[r;kj U;Lr fd;k x;k Fkk(

(b) fd , l 0;fDr u xj bekunkj :i l ml lifÙk dk viu mi;kx d fy, nfofu;kx vFkok lifjoru dj fy;k Fkk vFkok xj&bekunkj :i l ml lifÙk dk mi;kx fd;k Fkk vFkok bl fBdku yxk;k Fkk vFkok fdlh vU; 0;fDr dk , lk dju d fy, tkuc>dj ihfMr fd;k Fkk(

*(c) fd , lk nfofu;kx] lifjoru] mi;kx vFkok fuiVku <x ftle , l U;kl dk vFkok , l U;kl d mUekpu dk Li'k djr g, fdlh fofèkd lfonk ftl ml 0;fDr u fd;k g] mUekfpr fd;k tkuk gA***

24. अभिकथन की पृष्ठभूमि में, कोई भी अवयव प्रतीत नहीं होता है। अतः, भारतीय दंड संहिता की धारा 406 के अधीन दंडनीय अपराध आकृष्ट नहीं होता है।

25. इस चरण पर यह दर्ज किया जाय कि यदि तथ्य सिविल दायित्व और दांडिक दायित्व दोनों गठित करता है, तब सिविल विधि के अधीन उपलब्ध उपचार को दांडिक कार्यवाही अभिखंडित करने का आधार नहीं बनाया जा सकता है, विधि की इस प्रतिपादना को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **भारतीय तेल निगम बनाम एन॰ ई॰ पी॰ सी॰ इंडिया लिमिटेड एवं अन्य, {(2006)6 SCC 736},** के मामले में अधिकथित किया गया है किंतु साथ ही उक्त मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह भी संप्रेक्षित किया गया है कि व्यवसायिक सर्किल/क्षेत्र में सिविल विवादों को दांडिक मामलों में संपरिवर्तित करने की प्रवृति बढ़ती जा रही है। ऐसा इस प्रचलित धारणा के कारण है कि सिविल विधि के अधीन उपचार समय लेने वाले हैं और देनदारों/लेनदारों के हित को पर्याप्त रूप से सुरक्षित नहीं करते हैं। ऐसी ही प्रवृति अनेक पारिवारिक विवादों में देखी जा रही है जो विवाह/परिवार के असाध्य विघटन की ओर ले जा रही है। यह धारणा भी है कि यदि किसी व्यक्ति को किसी तरह दांडिक अभियोजन में फँसा दिया जाता है, तुरन्त समाधान होने की संभावना है। उक्त निर्णय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जोर देते हुए कहा गया है कि सिविल विवादों और दावों, जो किसी दांडिक अपराध को अंतर्ग्रस्त नहीं करते हैं, को दांडिक अभियोजन के माध्यम से दबाव डाल कर सुलझाने के प्रयास की निंदा की जानी चाहिए और हतोत्साहित किया जाना चाहिए।

26. इस प्रकार, इन तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए वर्तमान दांडिक कार्यवाही स्पष्टत: असद्भावपूर्ण है और, इसलिए, इस आधार पर और ऊपर कथन किए गए आधार पर भी, जहाँ तक याची का संबंध है, भारतीय दंड संहिता की धाराओं 417, 418 और 406 के अधीन अपराध का संज्ञान लेने वाले दिनांक 18.12.2010/20.12.2010 के आदेश सहित परिवाद-सह-अभ्यापत्ति केस सं॰ 2763 वर्ष 2008 की संपूर्ण दांडिक कार्यवाही एतद् द्वारा अभिखंडित की जाती है।

27. परिणामस्वरुप, इस आवेदन को अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efrx.k

अमर चंद्र मंडल एवं एक अन्य

cuke

झारखंड राज्य

Cr. Appeal (DB) No. 782 of 2002. Decided on 1st March, 2012.

सत्र मामला सं॰ 191 वर्ष 1997 में विद्वान चतुर्थ अपर सत्र न्यायाधीश, दुमका द्वारा पारित दिनांक 23.10.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 25.10.2002 के दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302/34 एवं 498A—क्रूरता एवं हत्या–आजीवन कारावास अधिनिर्णीत–अभियोजन साक्षीगण पक्षद्रोही हो गए–संतान उत्पन नहीं करने के कारण यातना के बारे में अपीलार्थीगण के विरुद्ध सामान्य और बहुप्रयोजनीय अभिकथन–अभियोजन साक्षीगण अनुश्रुत गवाह हैं–पक्षों के बीच अच्छा संबंध बताया जाता है–सूचक का विवरण सही प्रतीत नहीं होता है–यह निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता है कि अपीलार्थीगण ने मृतक की हत्या की है–दोषसिद्धि और दंडादेश अपास्त। (पैराएँ 5 से 8, 10 एवं 11)

अधिवक्तागण.–Mr. Jailisur Rahman, For the Appellants; Mr. Krishna Shankar, For the State.

न्यायालय द्वारा.–यह अपील सत्र मामला सं॰ 191 वर्ष 1997 में अपीलार्थीगण को भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 302/34 और 498A के अधीन दोषसिद्ध करते हुए और भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 302/34

के अधीन अपराध के लिए कठोर आजीवन कारावास और भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 498A के अधीन अपराध के लिए दो वर्षों का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश देते हुए विद्वान चतुर्थ अपर सत्र न्यायाधीश, दुमका द्वारा पारित दिनांक 23.10.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 25.10.2002 के दंडादेश से उद्भूत होती है। किंतु दोनों दंडादेशों को साथ-साथ चलने का निर्देश दिया गया था।

2. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि सूचक (अ॰ सा॰ 5) ने दिनांक 9.10.1996 को प्रातः लगभग 11 बजे इस प्रभाव का फर्दबयान दिया कि उसकी पुत्री सुमरी देवी (मृतका) का विवाह सात वर्ष पहले अपीलार्थी सं॰ 1 अमरचंद्र मंडल के साथ हुआ था किंतु उसे संतान नहीं हुई थी जिस कारण अपीलार्थी और उसकी सास उसके साथ झगड़ा करते थे और जिस बारे में वह उनको बताया करती थी। उसने गाँव में उसका इलाज करवाया किंतु कोई लाभ नहीं हुआ। विवाद के पाँच वर्षो बाद अमरचंद्र मंडल एक अन्य लड़की को लाया जिसके बारे में पंचायती हुई थी। तत्पश्चात, लड़की वापस लौट गयी थी किंतु मृतका के ससुराल वालों ने उसके साथ झगड़ा करना जारी रखा। पिछले दिन वह उसकी ''विदाई'' करवाने गया किंतु अपीलार्थीगण और उसकी सास ने उसको अनुमति नहीं दी। इस पर मृतका रोने लगी। अपीलार्थीगण और उसकी सास ने कहा कि वह अपने पिता को देख कर रो रही थी और उसको नहीं रोने के लिए डाँटा अन्यथा उसकी हत्या करके उसे कुआँ में फेंक दिया जाएगा। सूचक ने सोचा कि ऐसी बातें लापरवाह तरीके से कही जा रही थी। वह अपने घर लौट गया। सुबह में लगभग 7 बजे गाँववालों ने उसे सूचित किया कि पिछली रात उसकी पुत्री की हत्या कर दी गयी है और उसका मृत शरीर कुआँ में फेंक दिया गया है। वह वहाँ भागकर गया और अपनी पुत्री के मृत शरीर को चौकी पर पड़ा पाया और उसका पति और ससुराल वाले भाग गए थे। घटना के पीछे बताया गया कारण मृतका द्वारा संतान नहीं पैदा करना था।

3. अपीलार्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, श्री जेलीसुर रहमान ने अनेक आधारों पर आक्षेपित निर्णय का विरोध किया। उन्होंने निवेदन किया कि अभियोजन समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अपना मामला सिद्ध करने में सक्षम नहीं रहा है और परिस्थितियों की श्रृंखला पूर्ण नहीं है। आगे निवेदन किया गया है कि अपीलार्थीगण विचारण के दौरान जमानत पर थे और दोषसिद्धि के बाद वे अक्टूबर, 2002 से कारा में है।

4. राज्य के अधिवक्ता ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया।

5. अभिलेख का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने के बाद और पक्षों को विस्तारपूर्वक सुनने के बाद हम संतुष्ट हैं कि अपीलार्थीगण संदेह का लाभ पाने योग्य हैं।

6. अभियोजन ने 11 गवाहों का परीक्षण किया है। अ॰ सा॰ 4, 6, 7, 8 और 11 को पक्षद्रोही घोषित किया गया है। अ॰ सा॰ 10 डॉक्टर है जिन्होंने शव परीक्षण किया। उनके मत में, डूबने के परिणामस्वरुप दम घुटने के कारण मृत्यु हुई थी। गर्दन पर खरोंच और एचिमोसिस पाया गया था जो गर्दन दबाए जाने से अथवा कठोर एवं भोथरे पदार्थ पर गिरने से कारित हो सकती थी।

7. अ॰ सा॰ 2, 3 और 10 गाँववाले हैं और वे अनुश्रुत गवाह हैं। उन्होंने कहा कि दशहरा पर्व के अवसर पर घर में काम होने के कारण मृतका को सूचक के साथ नहीं भेजा गया था और उन्होंने सुना कि मृतका ने आत्महत्या कर ली थी। उन्होंने यह भी कहा कि पक्षों के बीच का संबंध अच्छा था।

8. अ॰ सा॰ 5 सूचक है। उसने फर्दबयान में दिए गए विवरण का समर्थन किया किंतु उसने यह भी कहा कि अमरचंद्र मंडल का पिता अपीलार्थी परन मंडल पुलिस थाना गया था जहाँ उसे गिरफ्तार किया गया था। अतः, यह प्रतीत होता है कि सूचक का विवरण कि अपीलार्थीगण भाग गए थे, सही नहीं है।

9. अ॰ सा॰ 9 अन्वेषण अधिकारी है।

10. इस प्रकार, यह प्रतीत होता है कि अभियोजन समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अपीलार्थीगण के विरुद्ध अपना मामला सिद्ध करने में सक्षम नहीं हुआ है और परिस्थितियों की श्रृंखला पूर्ण नहीं है। यह निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता है कि अपीलार्थीगण ने मृतका की हत्या की है। इसके अलावा, अपीलार्थीगण के विरुद्ध संतान पैदा नहीं होने के कारण यातना के बारे में सामान्य और बहुप्रयाजनीय अभिकथन है।

11. परिणामस्वरुप, अपीलार्थीगण के विरुद्ध विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि का निर्णय और दंडादेश एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है। अपीलार्थीगण कारा में हैं। उन्हें तुरन्त निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है यदि किसी अन्य मामले में उनकी जरूरत नहीं है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k ,o ihñ ihñ HkVV] U;k;efr

टाटा स्टील लिमिटेड एवं अन्य (सभी में)

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य (सभी में)

W. P. (T) Nos. 5696, 5000, 5450, 5278, 5250, 5304, 5305, 5318, 5578, 5332, 5312, 5315, 5341, 5311, 5880, 5866, 5869, 5871, 5861, 5855, 5823, 5824, 6386, 5526, 5579, 5650, 5712, 5741, 6016, 6094, 6411, 6414, 6437, 6424, 6429, 6500, 6447, 6450, 6195, 6677, 6689, 5934, 5912, 5941, 5940, 5939, 5930, 5919, 5952, 5947, 5943, 6435, 5864, 5868, 6814, 6821, 6822, 7043, 7044, 7045, 6636, 6625, 6517, 6739, 7061, 7156, 6645, 7203, 7505, 7764, 7568, 6328, 6369, 7798/2011 and 337, 99, 111, 380, 521, 453 of 2012. Decided on 3rd April, 2012.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन एक आवेदन के मामले में।

स्थानीय क्षेत्रों में मालों के उपभोग अथवा उपयोग पर झारखंड प्रवेश कर अधिनियम, 2011—धारा 3—भारत का संविधान—अनुच्छेद 301, 304(a) एवं 304(b)—प्रवेश कर अधिनियम की धारा 3 अनुच्छेद 304 द्वारा व्यावृत नहीं होने के कारण अधिकारातीत और असंवैधानिक है और अनुच्छेद 301 के साथ संघर्षरत है—राज्य झारखंड प्रवेश कर अधिनियम, 2011 के प्रावधानों में से किसी को प्रवर्तित नहीं कर सकता है—पहले के अधिनियम और 2011 के वर्तमान अधिनियम के बीच कोई अंतर नहीं है—भारत के संविधान के प्रावधानों का उल्लंघन करने की समस्त अधिसंभाव्यताओं के साथ इसके संवैधानिक रूप से वैध होने का मौका लेते हुए संविधि अधिनियमित नहीं की जा सकती है ताकि करदाताओं और अंततः आम जनता के दायित्व का सृजन किया जा सके। (पैराएँ 21, 22, 25 से 27)

निर्णयज विधि.—[2007]6 VST 587 (Jhr.)—Assented; [2006]145 STC 544; AIR 1962 SC 1406; AIR 1969 SC 147; 1995 Supp. (1) SCC 673; (2003)8 SCC 60; (2010)4 SCC 595; AIR 1961 SC 232; (2006)7 SCC 241—Referred.

अधिवक्तागण.—M/s Dr. D. Prasad, B. Poddar, I. Sinha, S. Gadodia, B. Kumar, P. Poddar, A. K. Sah, P. N. Rai, R. R. Sinha, R. K. Das, A. N. Sen, R. Roy, R. K. Prasad, B. Kumar, For the Appellant; M/s Anil Kumar Sinha, A. Kumar, R. Ranjan, For the Respondents.

प्रकाश तातिया, मुख्य न्यायाधीश.—रिट याचिकाओं का यह गुच्छा मालों के उपभोग अथवा उपयोग पर झारखंड प्रवेश कर अधिनियम, 2011 की धारा 3 के भारत के संविधान के अनुच्छेद 301

सह–पठित अनुच्छेद 304(a) के अधिकारातीत होने और भारत के संविधान के अनुच्छेद 304(b) द्वारा सुरक्षित नहीं किए जाने के कारण धारा इसकी वैधता को चुनौती देने के लिए और झारखंड प्रवेश कर अधिनियम, 2011 के प्रावधानों को प्रवर्तित करने से प्रत्यर्थी झारखंड राज्य के विरुद्ध अवरोध के आदेश के पारिणामिक अनुतोष के लिए दाखिल की गयी है जिसके द्वारा और जिसके अधीन 10,000/- रुपयों के आधिक्य में राज्य के बाहर के किसी स्थान से स्थानीय क्षेत्र में उसके उपभोग अथवा उपयोग के लिए प्रवेश करने वाले अनुसूचित मालों पर प्रवेश–कर उद्ग्रहित एवं संग्रहित करना इप्सित किया गया है।

2. समस्त याचीगण व्यापार अथवा निर्माण के काम में लगे हुए हैं और झारखंड मूल्य वर्धित कर अधिनियम, 2005 और केंद्रीय विक्रय कर अधिनियम, 1956 के अधीन डीलर के रूप में रजिस्टर्ड हैं। याचीगण, अपने–अपने कारोबार के क्रम में, झारखंड राज्य में अनेक स्थानों पर अपने कार्यों के लिए झारखंड राज्य के बाहर से अनुसूचित मालों जैसा मालों के उपभोग अथवा उपयोग पर झारखंड प्रवेश कर अधिनियम, 2011 (इसके बाद 2011 के अधिनियम के रूप में निर्दिष्ट) के अधीन विनिर्दिष्ट किया गया है, का आयात करते हैं। 2011 के अधिनियम की धारा 3 द्वारा याचीगण पर उन अनुसूचित मालों, जिनका वे झारखंड राज्य में आयात कर रहे हैं और जिनका उनके कामों में उपयोग किया जाता है, के मूल्य पर प्रवेश कर का भुगतान करने के लिए दायित्व अधिरोपित किया गया है। याचीगण की आपत्ति यह है कि ऐसे प्रवेश टैक्स का उद्ग्रहण मालों के स्वतंत्र आवागमन में प्रत्यक्षत: हस्तक्षेप करता है और स्वतंत्र व्यापार पर अयुक्तियुक्त निर्बंधन अधिरोपित करता है और इसलिए, यह अनुच्छेद 301 का उल्लंघन करता है जो प्रावधानित करता है कि भारत के संपूर्ण क्षेत्र में व्यापार, वाणिज्य और समागम स्वतंत्र होगा और अनुच्छेद 302 में व्यापार की स्वतंत्रता पर निर्बंधन अधिरोपित करने की शक्ति संसद को दी गयी है। संसद दो राज्यों के बीच अथवा भारत के क्षेत्र के किसी भाग के भीतर व्यापार, वाणिज्य और समागम की स्वतंत्रता पर लोकहित के आवश्यकतानुसार निर्बंधन अधिरोपित कर सकती है और वह शक्ति राज्य में निहित नहीं की गयी है। यह सत्य है कि अनुच्छेद 304 के अधीन, अनुच्छेद 301 और 303 में अंतर्विष्ट किसी चीज के बावजूद, राज्य का विधानमंडल अन्य राज्य अथवा संघीय क्षेत्रों से आयात किए गए मालों पर टैक्स अधिरोपित करने के लिए विधि विरचित कर सकता है, जिनमें राज्य में निर्मित अथवा उत्पादित समरुप माल किसी करके अध्यधीन है। किंतु, इस प्रकार आयात किए गए मालों और इस प्रकार निर्मित अथवा उत्पादित मालों के बीच भेदभावयुक्त कर नहीं होना चाहिए। राज्य के साथ अथवा राज्य के अंतर्गत व्यापार, वाणिज्य और समागम की स्वतंत्रता पर ऐसा युक्तियुक्त निर्बंधन अधिरोपित कर सकता है जैसी आवश्यकता लोकहित में हो।

3. अनुच्छेद 304 के परंतुक के मुताबिक अनुच्छेद 304 के खंड (b) के प्रयोजन से कोई विधेयक अथवा संशोधन राष्ट्रपति की अनुमति के बिना राज्य विधान मंडल में पुर:स्थापित अथवा प्रस्तावित नहीं किया जा सकता है। अत:, याचीगण के अनुसार, अनुच्छेद यह सुनिश्चित करने के लिए कि संपूर्ण भारत में व्यापार, वाणिज्य और समागम मुक्त है, समस्त विधायी शक्ति पर सामान्य परिसीमा अधिरोपित करता है। किंतु केवल संघीय विधान के पक्ष में और वह भी लोकहित में अनुच्छेद 302 के अधीन शक्ति पर ऐसी परिसीमा शिथिल की गयी है। भारत के संविधान का अनुच्छेद 303(2) संसद पर अनुच्छेद 303(1) के अधीन अधिरोपित निर्बंधन का अपवाद है और वह अपवाद केवल संसद पर लागू होता है और संविधान के अनुच्छेद 303(2) में उपदर्शित विनिर्दिष्ट स्थिति में ही इसका सहारा लिया जा सकता है। संविधान का अनुच्छेद 304(a) पड़ोसी राज्य से आयातित मालों पर इस तरीके से सममूल्य पर कर का अधिरोपण करने के लिए प्राधिकृत करता है ताकि आवंटित क्षेत्र के अंतर्गत कराधान के संबंध में राज्य के भीतर निर्मित और उत्पादित समरुप मालों के बीच कोई भेदभाव सृजित नहीं हो। इसी प्रकार से, संविधान का अनुच्छेद 304(b) अनुच्छेद 302 के सदृश्य है क्योंकि यह संविधान के अनुच्छेद 304 के आरंभिक शब्दों की दृष्टि में संविधान के अनुच्छेद 304(b) में अंतर्विष्ट राज्य शक्ति को अनुच्छेद 301 के अधीन अंतर्विष्ट प्रतिषिद्धि

से मुक्त करता है। किंतु, अनुच्छेद 302 के अधीन शक्ति और अनुच्छेद 304 के अधीन शक्ति के बीच भिन्नता भी है और वह भिन्नता यह है कि संविधान के अनुच्छेद 302 के अधीन निर्बंधन युक्तियुक्तता की कसौटी के अध्यधीन नहीं है अथवा राष्ट्रपति से पूर्व मंजूरी की आवश्यकता के साथ संयुक्त है जैसा संविधान के अनुच्छेद 304(b) के परन्तुक में पुर:स्थापित किया गया है। संविधान के अनुच्छेद 304(b) में उल्लिखित विधान इस प्रकार (i) युक्तियुक्त निर्बंधनों की कसौटी और (ii) राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी के अध्यधीन बनाया गया है।

4. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, **टाटा आयरन एण्ड स्टील कंपनी लि॰ बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य, (2007)6 VST 587 (Jhr.),** मामले में समान प्रवेश कर अधिरोपित करने वाला शब्दश: समरुप अधिनियमन विचारार्थ इस न्यायालय के समक्ष आया और इस न्यायालय की खंडपीठ ने **जिंदल स्टेनलेस लि॰ बनाम हरियाणा राज्य, (2006)145 STC 544,** मामले में दिए गए निर्णय पर विश्वास करने के बाद अभिनिर्धारित किया कि उसमें उपभोग, उपयोग अथवा विक्रय के लिए स्थानीय क्षेत्रों में मालों के प्रवेश पर बिहार कर अधिनियम, 1993 जैसा दिनांक 15 दिसंबर, 2000 की अधिसूचना के तहत झारखंड राज्य द्वारा अपनाया गया है और उसके उपभोग, उपयोग अथवा विक्रय पर झारखंड प्रवेश कर अधिनियम (संशोधन) अध्यादेश, 2001 (2002 का झारखंड अध्यादेश 2) के तहत संशोधित किया गया है, के प्रावधान भारत के संविधान के अनुच्छेद 301 सह-पठित अनुच्छेद 304 (b) के अधीन आवश्यकता को संतुष्ट नहीं करते हैं और उक्त अधिनियम की धारा 3 को अधिकारातीत घोषित किया गया था और परिणामस्वरुप यह भी अधिनिर्धारित किया गया था कि झारखंड राज्य पूर्वोक्त अधिनियम के प्रावधानों को प्रवर्तित नहीं कर सकता है। टाटा आयरन एण्ड स्टील कंपनी लि॰ के निर्णय को माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एस॰ एल॰ पी॰ दाखिल करके चुनौती दी गयी है किंतु उसमें निर्णय के प्रवर्तन के विरुद्ध स्थगन इप्सित करने के बावजूद माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्थगन प्रदान नहीं किया है।

5. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि टाटा आयरन एण्ड स्टील कंपनी लि॰ में उक्त घोषणा के बावजूद अब राज्य ने स्थानीय क्षेत्रों में मालों के उपभोग अथवा उपयोग पर झारखंड प्रवेश कर अधिनियम, 2011 के नाम में इसी विधि को शब्दत: अधिनियमित किया है। आगे ऊपर निर्दिष्ट पूर्व अधिनियम जिस पर **टाटा स्टील लि॰** के मामले में विचार किया गया था, इस न्यायालय की खंडपीठ ने दिनांक 29 मार्च, 2008/930/FD के अधिसूचना सं॰ एस॰ ओ॰ 48 जिसके द्वारा झारखंड व्यापार विकास कोष सृजित किया गया था, पर विचार करने के बाद अभिनिर्धारित किया कि झारखंड मूल्य वर्धित कर अधिनियम 2005 की धारा 11 राष्ट्रपति की पूर्वानुमति, जैसा भारत के संविधान के अनुच्छेद 304(b) परन्तुक के अधीन आवश्यक है, प्राप्त किए बिना पुर:स्थापित की गयी थी। उक्त मामले में प्रत्यर्थी राज्य ने यह दर्शाते हुए कि क्षतिपूरणीय कर का भुगतान अपने करदाताओं को दी गयी अथवा दी जानेवाली प्रमाणीकरण योग्य/परिमेय लाभ के लिए प्रतिपूर्ति है, न्यायालय के समक्ष कोई सामग्री प्रस्तुत और स्थापित नहीं किया है। खंडपीठ ने संप्रेक्षित किया कि पथों और पुलों को मुहैया कराना क्षतिपूर्तिकारी प्रकृति को नहीं है जो व्यापार, वाणिज्य और समागम के लिए विशेष लाभ गठित करे और पथों एवं पुलों के रख-रखाव एवं निर्माण के व्यय को राज्य के सामान्य राजस्व से पूरा किया जाता है और पथों और पुलों, आदि जैसी सुविधाएँ मुहैया कराना राज्य की सांविधिक बाध्यता और कर्तव्य है। उद्योगों को विद्युत ऊर्जा और जल मुहैया कराना, विपणन एवं वाणिज्यिक काम्प्लेक्स व्यवसायियों के लिए सुविधाएँ अथवा विशेष सुविधाएँ नहीं है। इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि प्रयोजन, जिसके लिए व्यापार विकास कोष सृजित किया गया है, प्रत्यक्षत: व्यापार और वाणिज्य को सुकर नहीं बनाता है और स्थानीय क्षेत्रों में, जिनसे

ऐसा प्रवेश कर संग्रहित किया जाता है, व्यापारियों को विशेषत: लाभ नहीं पहुँचाता है। उस मामले में, राज्य यह दर्शाने में विफल रहा कि दिनांक 1 अप्रिल, 2006 से अधिसूचना की तिथि तक संग्रहित प्रवेश कर का उपयोग ऊपर निर्दिष्ट प्रयोजनों के लिए किया गया है और तत्पश्चात, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि प्रवेश कर का उद्ग्रहण भारत के संविधान के अनुच्छेद 304(a) का उल्लंघनकारी है।

6. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि इसके बाद भी, जब इस न्यायालय का खंडपीठ पहले ही घोषणा कर चुका था कि झारखंड मूल्य वर्धित कर अधिनियम, 2005 और 2007 के अधिनियम द्वारा उसमें किया गया संशोधन भारत के संविधान के अनुच्छेद 301 के प्रतिकूल होने के कारण अधिकारातीत और असंवैधानिक था और भारत के संविधान के अनुच्छेद 304 द्वारा सुरक्षित नहीं किया गया था, राज्य सरकार ने उसी विधि और आगे व्यय के प्रासंगिक विवरणों का परीक्षण, जो अधिनियम के अधीन उक्त कर के दाताओं की प्रार्थना को विनिर्दिष्ट लाभ देने के लिए आवश्यक है, किए बिना पुन: अधिनियमित किया।

7. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने 2011 के अधिनियम के साथ इसकी तुलना करने के लिए हमारा ध्यान पूर्व अधिनियम 2007 और उसके अधीन जारी दिनांक 29.3.2008 की अधिसूचना की ओर आकृष्ट किया है और एकमात्र अंतर यह है कि पहले एक पृथक अधिसूचना द्वारा विकास कोष सृजित किया गया था जबकि 2011 के अधिनियम के अधीन, विकास कोष के लिए, प्रयोजनो, जैसा 2011 के अधिनियम की धारा 4 (3) के खंडों (a) से (d) में संगणित किया गया है, के लिए झारखंड राज्य में व्यापार, वाणिज्य और उद्योग के विकास के लिए अनन्य रूप से उपयोग करने के लिए ''झारखंड व्यापार विकास कोष'' के शीर्ष के अधीन 2011 के अधिनियम की धारा 4 के अधीन प्रावधान बनाया गया है। ये खंड 2007 के पूर्व अधिनियम के अधीन जारी दिनांक 29.3.2008 की अधिसूचना द्वारा बनाए गए खंडों के शब्दश: समान हैं जो 2007 के अधिनियम को सुरक्षित नहीं कर सका था। याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने जोरदार निवेदन किया कि इस न्यायालय के खंडपीठ के निर्णय के बावजूद, जो राज्य सरकार पर बाध्यकारी है और जिसका प्रवर्तन राज्य द्वारा दाखिल एस॰ एल॰ पी॰ में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्थगित नहीं किया गया है, राज्य सरकार यह उपदर्शित करने के लिए मूल विवरणों का पता लगाने और संगणना के किसी डाटाबेस को प्रस्तुत करने के लिए कुछ भी नहीं किया था कि ऐसा कोष वस्तुत: उन प्रयोजनों के लिए आवश्यक है जिसके लिए इसे 2011 के अधिनियम की धारा 4 में प्रक्षेपित किया गया है और इसका उपयोग किया जाना इप्सित किया गया है और यह पता लगाने के लिए कोई कार्य नहीं किया गया है कि क्या कर मोटे तौर पर आनुपातिक है और न कि प्रगामी और इसके प्रमाणीकरण योग्य लाभ का उपयोग केवल ऐसे करदाताओं को सुविधा/सेवा प्राप्त करने में उपगत व्यय के लिए किया जाएगा। प्रमाणीकरण योग्य डाटा का उपदर्शन ऐसे क्षतिपूर्तिकारी कर के उद्ग्रहण के लिए अनिवार्य है।

8. यह निवेदन किया गया है कि पथों और पुलों के निर्माण और रख-रखाव को सामान्य राजस्व से पूरा किया जाता है और वित्तीय, औद्योगिक और वाणिज्यिक इकाईयों को वित्त, सहायता, अनुदान और साहायिकी प्रावधानित करने वाले खंड, जैसा व्यापार विकास कोष के अधीन प्रावधानित किया गया है, उक्त कोष को क्षतिपूर्तिकारी नहीं बना सकते हैं और उद्योगों, विपणन और अन्य वाणिज्यिक काम्प्लेक्सेज को विद्युत आपूर्ति और जलापूर्ति के लिए आधारभूत संरचना का सृजन आम भार है और कल्याणकारी राज्य का उत्तरदायित्व है और स्थानीय क्षेत्र, जिसमें ऐसा प्रवेश कर उद्ग्रहित और संग्रहित किया गया है, के व्यापारियों को कोई अन्य लाभ प्रदान नहीं किया गया है। आगे निवेदन किया गया है कि विद्युत ऊर्जा की आपूर्ति को व्यापार, वाणिज्य और समागम के विशेष लाभ के लिए उपगत लागत को पूरा करने के लिए क्षतिपूर्तिकारी अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है और जल एवं विद्युत व्यापार के प्रयोजन के लिए सुविधाओं से संबंधित नहीं है और ऐसी सुविधाएँ राज्य के सामान्य विकास के लिए उपलब्ध है और

2011 के अधिनियम के अधीन इनको आवश्यकत: आम जनता को मुहैया कराना है न कि विशेषत: केवल करदाताओं को। संक्षेप और सार में, 2011 के अधिनियम द्वारा उद्ग्रहित कर क्षतिपूर्तिकारी प्रकृति का नहीं है और राज्य राजस्व के संवर्धन के लिए है और यह स्वीकृत अवस्था है कि राष्ट्रपति की मंजूरी प्राप्त नहीं की गयी है और इसलिए आक्षेपित अधिनियम अपने संशोधन के साथ क्षतिपूर्तिकारी प्रकृति का नहीं होने के कारण भारत के संविधान के अनुच्छेद 304(b) द्वारा व्यावृत नहीं किया गया है। यह निवेदन भी किया गया है कि यदि कर को क्षतिपूर्तिकारी प्रकृति वाला अधिनिर्धारित किया जाता है, तब राज्य करदाताओं के लिए इसको प्राप्त करने में विफल रहा।

9. उक्त के अतिरिक्त, प्रवेश कर केवल राज्य के बाहर से आयातित मालों पर उद्ग्रहित किया जाता है और उन मालों पर लागू नहीं होता है जिन्हें एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में ले जाया जाता है। अत: अधिनियम भेदभाव करने वाली प्रकृति का है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 304 (a) का उल्लंघन करता है। यह निवेदन भी किया गया है कि ''उपभोग अथवा उपयोग'' जैसा झारखंड प्रवेश कर अधिनियम, 2011 की धारा 2(t) के अधीन परिभाषित किया गया है, की परिभाषा में झारखंड राज्य में उपभोग अथवा उपयोग के लिए गैर रजिस्टर्ड डीलर के मुकाबले रजिस्टर्ड डीलर द्वारा लाए गए मालों के संबंध में सुभिन्नता किया जाना झारखंड राज्य द्वारा इप्सित किया गया है। उक्त के अतिरिक्त, रजिस्टर्ड डीलर के संबंध में भी, कर योग्य मालों के उपभोग अथवा निर्माण में प्रत्यक्ष उपयोग के लिए स्थानीय क्षेत्र में उनके द्वारा लाए गए मालों को प्रवेश कर का भुगतान करने से छूट दिया गया है; तद्द्वारा कर योग्य मालों के निर्माण में उपभोग अथवा प्रत्यक्ष उपयोग के लिए किसी डीलर द्वारा लाए गए मालों पर प्रवेश कर उद्गृहित नहीं किया जायेगा जबकि गैर-निर्माण गतिविधियों में उपभोग और उपयोग के लिए अथवा अप्रत्यक्ष उपयोग के लिए स्थानीय क्षेत्र में लाए गए मालों पर करदाताओं द्वारा प्रवेश कर का भुगतान करना आवश्यक होगा। पूर्वोक्त सुभिन्नता युक्तियुक्त वर्गीकरण और बोधगम्य डिफरेंशिया पर आधारित नहीं है। यह तथ्य प्रदर्शित करता है कि राजस्व के संवर्धन के लिए झारखंड राज्य द्वारा प्रवेश कर अधिनियमित किया गया है। वस्तुत:, वर्तमान अधिनियमन का आशय **टाटा स्टील लिमिटेड (ऊपर)** में दिए गए इस न्यायालय के खंडपीठ के निर्णय के प्रभाव को अध्यारोही प्रभाव देना और इस पर अभिभावी होना है और वह भी उन त्रुटियों को हटाने और इनका उपचार करने का प्रयास किए बिना जिन्हें ऊपर निर्दिष्ट निर्णय में इंगित किया गया था।

10. राज्य ने प्रति शपथ पत्र प्रस्तुत किया और वर्तमान अधिनियम के अधिनियमन के पृष्ठभूमि इतिहास का वर्णन करने के बाद निवेदन किया कि चुंगी स्थानीय निकायों के लिए सामाजिक राजस्व थी और उसे राज्य के वित्त मंत्रियों की सशक्त कमिटि द्वारा राज्य स्तरीय मूल्य वर्धित कर प्रणाली पर श्वेत पत्र जारी किए जाने के बाद समाप्त कर दिया गया है जो कहता है:-

> *^^tlk igy mfYyf[kr fd;k x;k g] vU; leLr fo|eku djk tll Vu vkoj dj] ljpkt] vfrfjDr ljpkt vkj fo'k"k vfrfjDr dj (,lO ,O VhO) dk lekIr dj fn;k tk,xkA oV foèk;dk e bu djk d çfr dkb fun'k ugh gkxkA jkT;k] ftUgku igy gh ço'k dj ij%LFkkfir dj fn;k g bl dj dk cuk, j[ku dk vk'k; j[kr g] dk bUg oV ;kX; cukuk pkfg,A ;fn oV ;kX; ugh cuk;k tkrk g] ço'k dk lekIr dju dh vko';drk gkxhA fdr] ;g ço'k dj ij ykx ugh gkxk ftl pxh d cny mnxfgr fd;k tk ldrk gA***

अत: अपनाए गए उसमें उपभोग, उपयोग अथवा विक्रय के लिए स्थानीय क्षेत्रों के मालों की प्रविष्टि पर बिहार कर अधिनियम, 1993 झारखंड मूल्य वर्धित कर अधिनियम, 2005 की धारा 96 द्वारा निरसित कर दिया गया था और राज्य के बाहर से स्थानीय क्षेत्र अथवा राज्य में प्रवेश करने वाले 17 मालों पर उनके

उपभोग, उपयोग अथवा विक्रय पर उक्त झारखंड मूल्य वर्धित कर अधिनियम, 2005 की धारा 11 द्वारा पुन: प्रवेश कर उद्गृहित किया गया था। किंतु मूल्य वर्धित कर अधिनियम, 2005 के अधीन उद्ग्रहित प्रवेश कर ऐसे मालों के विक्रय पर भुगतेय टैक्स के विरुद्ध समायोजित होने योग्य था। प्रत्यर्थी राज्य की ओर से दाखिल प्रतिशपथपत्र के पृष्ठ 21 पर विनिर्दिष्टत: निम्नलिखित स्वीकार किया गया है:-

> *^^ekyk d miHkkx vFkok mi;kx ij >kj[kM ço'k dj vf/kfu;e] 2011 : doy miHkkx vFkok mi;kx d fy, jkT; d ckgj l jkT; e ço'k dju oky dN 63 ekyk d ço'k ij {kfrifrdkjh dj vkj tlk jkT; fo/kku eMy }kjk ikfjr fd;k x;k g] LFkkuh; {k=(k) d fy, 0;kikj] vkèkkjHkr ljpuk] okf.kT; vkj m|kx d fodkl d fy, ç[;kfir fd;k x;k FkkA tk bld ckn ^^ço'k dj] 2011" d :i e fufn"V gA***

यह स्वीकार करने के बाद कि 2011 के अधिनियम द्वारा अधिरोपित किए जाने के लिए इप्सित कर क्षतिपूर्तिकारी प्रकृति का है, प्रतिवाद में यह कथन किया गया है कि यह अधिरोपण पूर्विक बिहार 1993 अधिनियम से और झारखंड वैट अधिनियम, 2005 से भी बिल्कुल भिन्न है। राज्य के दृष्टिकोण को न्यायोचित ठहराने के लिए और अपने तर्क के समर्थन में और यह दर्शाने के लिए कि कर क्षतिपूर्तिकारी प्रकृति का है, राज्य ने विनिर्दिष्टत: निवेदन किया कि इस अधिनियम के प्रयोजनों को पूरा करने के लिए राज्य सरकार ने पाँच वर्षों की अवधि के लिए झारखंड व्यापार विकास कोष का सृजन विनिर्दिष्ट करते हुए और आगे तरीकों, शर्तों और प्रक्रियाओं, जिनके द्वारा झारखंड राज्य के स्थानीय क्षेत्रों के व्यापार, आधारभूत संरचना, वाणिज्य और उद्योग के विकास के प्रयोजन से ''कोष'' का आगम विनियोजित किया जाएगा, को विनिर्दिष्ट करते हुए दिनांक 25 अगस्त, 2011 की अधिसूचना सं॰ एस॰ ओ॰ 163 जारी किया। तत्पश्चात्, राज्य ने पुन: दिनांक 25 अगस्त, 2011 की एक अन्य अधिसूचना सं॰ 164 को यह विनिर्दिष्ट करते हुए जारी किया कि अनुसूचित मालों के उपभोग अथवा उपयोग पर प्रवेश कर का भुगतान शीर्ष 0042 टैक्सेज ऑन गुड्स एण्ड पैसेंजर्स-00-106-टैक्स ऑन एंट्री ऑफ गुड्स इनटू लोकल एरियाज-02 झारखंड ट्रेड डेवलपमेंट फंड-01-रसीद-01 (रसीद (004200106020101) के अधीन किया जाएगा। अत:, प्रत्यर्थी राज्य के लिए उपस्थित विद्वान महाधिवक्ता के अनुसार राज्य ने विशेष शीर्ष के अधीन राजकीय कोष में कोष रखने के लिए विनिर्दिष्ट प्रावधान बनाया है ताकि अधिनियम, 2011 के अधीन इस प्रकार संग्रहित किए गए कोष को व्यापारियों को मुहैया कराए जाने वाली सेवा और सुविधाओं के लिए उपयोग में लाया जा सकता है। इस प्रकार, अधिनियम, 2011 की धारा 4(3) में उल्लिखित प्रयोजनों के लिए कोष का उपयोग नहीं किए जाने का कोई अवसर नहीं है।

11. प्रत्यर्थी राज्य के लिए उपस्थित विद्वान महाधिवक्ता ने जोरदार निवेदन किया कि पूर्व निर्णयों में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि राज्य दर्शा सकता है कि (i) किस प्रकार कोष का वस्तुत: उपयोग किया गया है अथवा (ii) अधिनियम 2011 के अधीन करदाताओं को सेवाएँ और सुविधाएँ मुहैया कराने के लिए इसका उपयोग किए जाने की संभावना है। अत:, याचीगण की रिट याचिकाएँ समयपूर्व है और जब तक कोष सरकारी खजाना में नहीं आता है, इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है और केवल खजाना में कोष आने के बाद ही इसका 2011 के अधिनियम के अधीन प्रावधानों के अनुरुप निवेश किया जाएगा जैसा 2011 के अधिनियम की धारा 4(3)(a) से Z(d) तक में विनिर्दिष्ट प्रयोजनों के लिए विनिर्दिष्टत: प्रावधानित किया गया है। यह निवेदन भी किया गया है कि **ऑटोमोबाइल ट्रांसपोर्ट (राजस्थान) लि॰ बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य, AIR 1962 SC 1406,** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि यह कहना सही नहीं है कि जहाँ अनुच्छेद 19(1)(g) ने अपना व्यवसाय चलाने के लिए व्यक्ति के अधिकार को गारंटीकृत करता था, अनुच्छेद 301 भौगोलिक अवरोधों के विरुद्ध व्यापार के वॉल्यूम के स्वतंत्र प्रवाह को गारंटीकृत करता था और अनुच्छेद 301, बहुमत के

अनुसार, का लक्ष्य निर्बंधनों, को आवश्यकत: भौगोलिक नहीं हो सकते हैं, से व्यक्ति को मुक्त करता है किंतु चूँकि विनियामक उपाय अनुच्छेद 301 के कार्यक्षेत्र से बाहर थे, इन दोनों प्रावधानों का विस्तार सदृश नहीं है। यदि आक्षेपित आदेश विनियामककारी मात्र है, इसे वैध अभिनिर्धारित किए जाने से पहले इसकी युक्तियुक्तता को अनुच्छेद 19 के अधीन अवधारित करना होगा किंतु जहाँ तक अनुच्छेद 301 का संबंध है, अनुच्छेद के अधीन कोई प्रथम दृष्टया परिवाद नहीं किया जा सकता है जब तक यह व्यापार, वाणिज्य और समागम के मुक्त प्रवाह के निर्बंधन पर लक्ष्यित विनियामक शक्ति का आभासी प्रयोग नहीं है।?? किंतु यदि व्यापार, वाणिज्य और समागम की स्वतंत्रता का उल्लंघन गैर-विनियामक विधि द्वारा किया जाता है, प्रभावित व्यक्ति विधि के न्यायालय में उपचार पा सकता है। अत:, प्रत्यर्थी राज्य के अनुसार, प्रावधानों में से किसी के अधीन विनियामक उपाय निर्बंधन गठित नहीं करेंगे। राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान महाधिवक्ता ने **मद्रास राज्य बनाम नटराजन मुदलियार एन॰ के॰, AIR 1969 SC 147, ऑटोमोबाइल ट्रांसपोर्ट (राजस्थान) लि॰ बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य, AIR 1962 SC 1406** और **जिंदल स्टेनलेस स्टील (ऊपर)** के मामले में दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर विश्वास किया और राज्य के पक्ष में उक्त निर्णयों की अपील व्याख्या भी दी।

12. प्रत्यर्थी राज्य के लिए उपस्थित विद्वान महाधिवक्ता यह निवेदन करने में अधिक प्रबल थे कि **भरत राम मामला, 1995 Supp. (1) SCC 673, ऑटोमोबाइल ट्रांसपोर्ट** के मामले में प्रतिपादित वर्किंग टेस्ट के विपरीत है और यह घोषणा करते हुए'' कुछ संबंध'' का सिद्धांत विकसित किया गया है कि भले ही व्यापार को प्रत्यक्षत: अथवा अप्रत्यक्षत: दी गयी सुविधाओं और कर के बीच कुछ संबंध है, उद्ग्रहण को अवैध के रूप में आक्षेपित नहीं किया जा सकता है और इसलिए, वर्तमान मामले के तथ्यों में भले ही कुछ आनुषंगिक या प्रासंगिक लाभ अधिनियम 2011 के अधीन कर का भुगतान करने वाले व्यापारी समुदाय के अतिरिक्त आम जनता को भी मिलते हैं, तब भी ऐसे व्यापारियों को इस कोष से मुहैया करायी जाने वाली सेवा और सुविधा के साथ न केवल ''कुछ संबंध'' है बल्कि यह ''सारवान'' भी है। जोरदार निवेदन किया गया है कि स्वयं कोष से प्रत्यक्षत: अथवा अप्रत्यक्षत: व्यापार को दिए गए सुविधाओं और कर के बीच कुछ कड़ी में कुछ संबंध है यह अपने आप में पर्याप्त है किंतु राज्य ने कोष के लिए पृथक खाता कर्णांकित किया है ताकि समय के किसी बिंदु पर जाना जा सके कि क्या अधिनियम, 2011 की धारा 4(3)(a) से (d) में दर्शाए गए प्रयोजनों के लिए कोष का उपयोग किया गया है और इस चरण पर यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि सृजित किए जाने के लिए इप्सित कोष का 2011 के अधिनियम के अधीन करों के भुगतान के लिए दायी व्यापारी समुदाय को मुहैया कराए जाने वाली सुविधाओं और सेवाओं के साथ कोई संबंध नहीं है।

13. यह गौर करना समुचित होगा कि **जिंदल स्ट्रिप्स लि॰ बनाम हरियाणा राज्य, (2003)8 SCC 60,** मामले में दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय सहित अनेक पूर्व निर्णय जिंदल स्टेनलेस लि॰ में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचारार्थ आए थे और इसलिए **जिंदल स्टेनलेस लि॰ बनाम हरियाणा राज्य (द्वितीय जिंदल स्टेनलेस मामला), 2010 (4) SCC 595,** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ ने **अतियाब्रि टी॰ कं॰ लि॰ बनाम असम राज्य, AIR, 1961 SC 232 = 1961 (1) SCR 809,** मामले में दिए गए निर्णय पर विचार करने के लिए मामला वृहद पीठ को निर्दिष्ट कर दिया।

14. संक्षेप और सार में, विद्वान महाधिवक्ता ने निवेदन किया कि यह विवादित नहीं है कि 2011 के अधिनियम द्वारा उद्ग्रहित प्रवेश कर क्षतिपूर्तिकारी कर है। कर उद्ग्रहित इसलिए किया गया है क्योंकि यह व्यापारी समुदाय के हित में आवश्यक बन गया और उस प्रयोजन से स्थानीय क्षेत्रों के व्यापार,

आधारभूत संरचना, वाणिज्य और उद्योग के विकास के प्रयोजन से कोष सृजित करने के लिए स्वयं 2011 के अधिनियम की योजना के मुताबिक, 2011 के अधिनियम की धारा 2 के खंड (f) में परिभाषित झारखंड व्यापार विकास कोष सृजित करना राज्य सरकार के लिए आज्ञापक है और उस कोष को झारखंड राज्य में व्यापार, वाणिज्य और उद्योग के विकास के लिए अनन्य रूप से उपयोग करने के प्रयोजन, जो निम्नलिखित सम्मिलित करेंगे, से विनिर्दिष्ट शीर्ष के अधीन सरकारी खजाने में जमा करना आवश्यक है।

15. विद्वान महाधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि 2011 के अधिनियम की धारा 4 की उपधारा (3) के अधीन खंड (a) से (d) उदाहरणात्मक है जहाँ प्रयोजनों में से कुछ को दिया गया है जिसके लिए कोष का उपयोग किया जाएगा और उक्त के अतिरिक्त कोष को अधिक/और भी प्रयोजनों के लिए, जिन्हें झारखंड राज्य में व्यापार, वाणिज्य एवं उद्योग के विकास के लिए बताया जा सकता है, भी उपयोगित किया जा सकता है और इसलिए उपधारा (3) में प्रयोजनों जिनके लिए ''कोष का उपयोग किया जाएगा'' की सूची देने के पहले क्योंकि शब्दों ''निम्नलिखित को सम्मिलित करेंगे'' का प्रयोग किया गया है। अतः, यह घोषणा करना समयपूर्व है कि कोष का उपयोग झारखंड राज्य में व्यापार, वाणिज्य और उद्योग के विकास के लिए नहीं किया जाएगा, किंतु 2011 के अधिनियम की धारा (4) की उपधारा (3) के खंड (a) से (d) में दर्शाए गए प्रयोजन झारखंड राज्य में व्यापार, वाणिज्य और उद्योग के विकास में आवश्यकतः मदद भी करते हैं।

16. जहाँ तक प्रमाणीकरण योग्य डाटा का संबंध है, राज्य ने अब तक 2011 के अधिनियम के अधीन सारवान कर संग्रहित नहीं किया है और इसलिए, झारखंड राज्य में ऐसे विकास के लिए संग्रहित और उपयोगित किए जाने वाले राजस्व का पूर्ण तथ्य और आँकड़ा नहीं दे सकता है। यह निवेदन किया गया है कि ऐसा डाटा प्रदान किया जा सकता है जब कोष उपलब्ध कराया जाता है और इसका उपयोग करने की अनुमति दी जाती है। यद्यपि विरोध में निवेदन किया गया है कि 2011 का अधिनियम पूर्व अधिनियम जिसे अधिकारातीत घोषित किया गया है से पूर्णतः भिन्न है किंतु तर्क के क्रम में विद्वान महाधिवक्ता के लिए दोनों अधिनियमनों के बीच की सुभिन्नता इंगित करना मुश्किल था।

17. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों पर विचार किया है और विधि के प्रासंगिक प्रावधानों, ऊपर निर्दिष्ट अधिनियमों का परिशीलन किया है जिनकी वैधता पर **टाटा आयरन एण्ड स्टील कंपनी लि॰** के मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा विचार किया गया है और जिन प्रावधानों को भारत के संविधान के अनुच्छेद 304(b) के और 2011 के वर्तमान अधिनियम के प्रावधानों के अधिकारातीत घोषित किया गया है। हमने अनेक निर्णयों, जिन्हें पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत किया गया है, में दिए गए कारणों का भी परिशीलन किया है जिनमें से कुछ को पहले ही निर्दिष्ट किया जा चुका है और हम पूर्विक मामलों के तथ्यों और उनमें दिए गए निर्णयों को उद्धृत करने के लिए कोई कारण इस तथ्य की दृष्टि में नहीं पाते हैं कि अनेक निर्णयों में अनेक अवसरों पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विवाद्यकों पर विचार किया जा चुका है जिन पर **जिंदल स्टेनलेस लि॰ (2) एवं एक अन्य बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य, (2006)7 SCC 241,** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ द्वारा पुनः विस्तारपूर्वक विचार किया गया है।

18. उक्त निर्दिष्ट विवाद्यकों को विनिश्चित करने के लिए अग्रसर होने से पहले यह स्पष्ट करना समुचित होगा कि 2011 के अधिनियम को भारत के संविधान के अनुच्छेद 304 (b) के परन्तुक के अधीन भारत के राष्ट्रपति की मंजूरी के बिना अधिनियमित किया गया है और राज्य का मामला यह भी है कि चूँकि 2011 का अधिनियम प्रवेश कर, जो क्षतिपूर्तिकारी प्रकृति का है, अधिरोपित करता है, धारा 304

(b) के अधीन भारत के राष्ट्रपति की मंजूरी आवश्यक नहीं है। उक्त की दृष्टि में, हमारे लिए विचारार्थ प्रश्न यह है कि क्या 2011 के अधिनियम के अधीन उद्ग्रहित कर क्षतिपूर्तिकारी प्रकृति का है या नहीं और यह राज्य का स्वीकृत मामला है कि उक्त कर क्षतिपूर्तिकारी प्रकृति का है। अत: हमारे समक्ष अवधारण के लिए प्रश्न यह है कि क्या 2011 के अधिनियम द्वारा उद्ग्रहित कर 2011 के अधिनियम के अधीन कर दाताओं को प्रमाणीकरण योग्य और मापनीय लाभ प्रदान करता है। **जिंदल स्टेनलेस लि॰ (2) एवं एक अन्य** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि संविधान में क्षतिपूर्तिकारी कर की अवधारणा नहीं है बल्कि इसे **ऑटोमोबाइल ट्रांसपोर्ट मामला (ऊपर)** में विनियामक प्रभार के रूप में न्यायिक रूप से विकसित किया गया है। कर क्या है, इस संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ 40 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया:-

> *^^40. VDl vke ck> d :i e mnxfgr fd;k tkrk gA VDl dk vkèkkj djnkrkvk d Hkxrku dju dh {kerk vFkok gfl;r gA VDl d mnxg.k d ihN dk fl)kr l{kerk vFkok gfl;r dk fl)kr gA VDl d ekey e] fdlh fofufn"V ykHk dh igpku ugh g vkj ;fn ,lh dkb igpku g Hkh] ;g çR;{k :i l eki tku ;kX; ugh gA VDl d ekey e] dkb ykHk fo'k"k] ;fn ;g fo|eku g] jkT; dh dkjokb d vku"kfxd gA ;g 0;olk; d dfri; rRok] tl fuek.k] [kjhn] foØ;] miHkksx] mi;kx] ith] vkfn d vkèkkj ij fuèkkfjr fd;k tkrk g fdr bldk Hkxrku ijkHko; 'kr ugh gA ;g vuKflr dk fucèku vFkok 'kr ugh gA Qhl lekU; r% vuKflr dk fucèku gA VDl og Hkxrku g tgk fo'k"k ykHk] ;fn gk] vke ck> e lifjofrr fd;k tkrk gA*

तत्पश्चात् माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 4 में लिखाया कि फीस अथवा क्षतिपूर्तिकारी कर क्या है, जो निम्नलिखित है:-

> *"41. nljh vkj] Qhl ^^lerY; rk d fl)kr** ij vkèkkfjr gA ;g fl}kr Hkxrku d ^^l{kerk d fl}kr d foijhr gA Qhl vFkok {kfrifrdkjh VDl d ekey e ^^lerY; rk dk fl)kr** ykx gkrk gA Qhl vFkok {kfrifrdkjh VDl dk vkèkkj ,d gh gA Qhl vFkok {kfrifrdkjh VDl dk e[; vkèkkj çek.kh dj.k ;kX; vkj ekiuh; ykHk gA VDl d ekey e] Hkly gh dkb ykHk g] ;g ljdkjh dkjokb d vku"kfxd g vkj Hkly gh ,lk ykHk ljdkjh dkjokb l ifj.kr gkrk g] ;g ekiuh; ugh gA lerY; rk d fl)kr d vèkhu] tk Qhl vFkok {kfrifrdkjh VDl ij ç;kT; g] çek.kh dj.k ;kX; MkVk vFkkr ykHk tk ekiuh; g] dk min'ku gA**

जिंदल स्टेनलेस लि॰ (2) एवं एक अन्य के उसी निर्णय के पैरा 2 में, जो निम्नलिखित है, कर और क्षतिपूर्तिकारी कर की तुलना की गयी है:-

> *"42. VDl çxfr'khy gk ldrk gA fdr Qhl vFkok {kfrifrdkjh dkjd dk ekV rkj ij vkuikfrd vkj u fd çxfr'khy] gkuk gkxkA lerY; rk d fl}kr e] tk {kfrifrdkjh VDl vFkok Qhl dh uho g] çek.kh dj.k ;kX; ykHk d eY; dk çfrfufèkRo lfoèkk@lok çkIr dju e mixr 0;; }kjk fd;k tkrk g tk 0;; cny e lok@lfoèkk d çnkudrk d fy, çfrifr@çfrnku dk vkèkkj cu tkrk gA {kfrifrdkjh dj ^^eY; d fy, Hkxrku** d fl)kr ij vkèkkfjr gA ;g ^^Qhl** dk miox gA ljdkj d nf"Vdk.k l {kfrifrdkjh dj 0;kikfjd lfoèkk, çnku dju d fy, çHkkj gA ;g 0;kikj vkj okf.kT; d eY; e tMrk g tk bl idkj VDl d ekey e ?kfVr ugh gkrk gA VDl çxfr'khy vFkok vk;] lifÙk] 0;;*

*vFkok l{kerk vFkok gfl;r (l{kerk dk fl)kr) d fdlh vU; ijh{kk d vkuikfrd gk ldrk gA VDl vkuikfrd gku dh ryuk e çxfr'khy gk ldr gA Qhl dh rjg {kfrifrdkjh dj lno ykHkk d vkuikfrd gkr gA o lerY;rk d fl)kr ij vkèkkfjr gA fdr] {kfrifrdkjh VDl 0;fDr ij ox d lnL; d :i e mnxfgr fd;k tkrk g] tcfd Qhl 0;fDrxr rkj ij mnxfgr fd;k tkrk gA ;fn ^lerY;rk d fl}kr** d edkcy e ^l{kerk d fl)kr** dk è;ku e j[kk tkrk g] rc ,d vkj dj vkj nljh vkj Qhl vFkok {kfrifrdkjh VDl d chp chp d vrj dk vklkuh l crk;k tk ldrk gA Hkxrku dju dh {kerk vFkok gfl;r lifÙk vFkok fdjk;k eY; }kjk ekiuh; gA LFkkuh; njk dk lkekU;r% Hkxrku dju dh {kerk d vulkj yxk;k tk ldrk gA çfrifr vFkok çfrnku lokvk@lfoèkkvk d çnkudrk }kjk mixr 0;; d fudVre lerY; gA {kfrifrdkjh dj dk fl)kr ;g g fd ;g ml fl)kr ij vkèkkfjr g fd ;fn ljdkj fdlh ldkjkRed dkjokb }kjk 0;fDr(;k) dk fo'k"k ekiuh; ykHk çnku djrh g] 0;kid lenk; d fy, mfpr g fd ykHkkFkh bld fy, Hkxrku djxkA ,d vkj VDl vkj nljh vkj Qhl@{kfrifrdkjh VDl d chp dk ey vrj ;g g fd VDl ck> dh voèkkj.kk ij vkèkkfjr g tcfd {kfrifrdkjh dj@Qhl çfrnku@çfrifr dh voèkkj.kk ij vkèkkfjr gA VDl dk {kfrifrdkjh gku d fy, VDl dh ek=k vkj lfoèkk@lok d chp dN lcèk gkuk gkxkA çR;d ykHk dk 0;; d fucèkukulkj ekik tkrk g ftldh çfrifr {kfrifrdkjh VDl }kjk vFkok {kfrifrdkjh VDl d :i e djuk gkxkA nlj 'kCnk e] {kfrifrdkjh VDl çfrnku@çfrifr gA**

<u>माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने तत्पश्चात उसी निर्णय के पैराग्राफ 43 में अभिनिर्धारित किया कि क्षतिपूर्तिकारी टैक्स विनियमन के व्यय को पूरा करने के लिए अथवा व्यापार, वाणिज्य और समागम के कुछ विशेष लाभ के लिए उपगत लागत को पूरा करने के लिए प्राप्त किए गए विशेष लाभों के अनुपात में मोटे तौर पर उद्ग्रहित अनिवार्य योगदान है और यह आनुषंगिक रूप से सरकार को शुद्ध राजस्व दे सकता है किंतु वह परिस्थिति क्षतिपूर्तिकारी टैक्स का आवश्यक अवयव नहीं है।</u> इस प्रकार, इस संबंध में प्रासंगिक पैराग्राफों को उद्धृत करना प्रासंगिक होगा:

*"43. mDr vuPNn 301 d lnHk e] {kfrifrdkjh dj fofu;eu d 0;; dk ijk dju d fy, vFkok 0;kikj] okf.kT; vkj lekxe d dN fo'k"k ykHk d fy, mixr ykxr dk ijk dju d fy, çklr fd, x, fo'k"k ykHkk d vuikr e ekV rkj ij mnxfgr vfuok; ;kxnku gA ;g vku"kfxd :i l ljdkj dk 'k) jktLo n ldrk g fdr og ifjfLFkfr {kfrifrdkjh VDl dk vko';d vo;o ugh gA**

*"44. pfd {kfrifrdkjh VDl U;kf;d :i l fodflr voèkkj.kk g] bl voèkkj.kk dh le>] tlk mij ppk dh x;h g] bld ekinMk dk minf'kr djrk gA**

*"45. l{ki e] çR;d mnxg.k dk vkèkkj fu;=.kdkjh dkjd gA** VDl d ekey e] mnxg.k Hkxrku dju dh l{kerk vFkok gfl;r ij vkèkkfjr vke ck> dk Hkkx gA ^^Qhl** d ekey e] vkèkkj lerY;rk d fl)kr ij vkèkkfjr Hkxrkudrk dk fo'k"k ykHk g tc VDl fofu;eu d Hkkx d :i e vFkok fofu;ked dne d Hkkx d :i e vfèkjkfir fd;k tkrk g] bldk vkèkkj ^^ck>** dh voèkkj.kk l çek.khdj.k ;kX;@ekiuh; ykHk dh voèkkj.kk ij f'k¶V gk tkrk g vkj rc ;g ^^{kfrifrdkjh VDl** cu tkrk g vkj rc bldk Hkxrku jktLo d fy, ugh g cfYd lok@lfoèkk çnkudrk dk çfrifr@çfrnku d :i e gA rc ;g çfrnku ij VDl gA {kfrifrdkjh VDl ldj iÑfr dk g fdr ;g VDl dh*

*ryuk e Qhl d vfèkd fudV g D;kfd Qhl vkj {kfrifrdkjh VDl nkuk gh lerY;rk d fl)kr ij vkj çfrifr@çfrnku d vkèkkj ij vkèkkfjr gA ;fn vk{kfir fofèk viu çoru d ekinM d :i e 0;kikj vkj okf.kT; tlh xfrfofèk purh g vkj ;fn vfèkfu;e d çoru dk çHkko 0;kikj vkj okf.kT; dk vo#) djuk g] rc vuPNn 301 dk mYy?ku gkrk gA***

19. अत:, यदि टैक्स क्षतिपूर्तिकारी है, इसको **जिंदल स्टेनलेस लि॰ (2) एवं एक अन्य** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित आवश्यकताओं की कसौटी पर आधारित होने की आवश्यकता है। जैसा हमने पहले ही गौर किया है कि राज्य का मामला यह है कि टैक्स क्षतिपूर्तिकारी है, हमें यह परीक्षण करने की आवश्यकता है कि झारखंड राज्य में व्यापार, वाणिज्य और उद्योग के विकास के लिए जो भी टैक्स अधिरोपित किया गया है, क्या वह 2011 के अधिनियम के अधीन करदाताओं को लाभ पहुँचाएगा।

20. राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **भरत राम के मामले** में अभिनिर्धारित किया कि यदि टैक्स और ''कुछ संबंध'' द्वारा प्रत्यक्षत: अथवा अप्रत्यक्षत: व्यापार को दी गयी सुविधाओं के बीच कोई संबंध है, उद्ग्रहण को अवैध के रूप में आक्षेपित नहीं किया जा सकता है। किंतु, **जिंदल स्टेनलेस लि॰ (2) एवं एक अन्य** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस प्रतिपादना को विनिर्दिष्टत: नामंजूर कर दिया गया है और माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि **ऑटोमोबाइल ट्रांसपोर्ट (ऊपर)** के मामले में सात न्यायाधीशों की पीठ द्वारा प्रतिपादित वर्किंग टेस्ट और **भरत राम** के मामले में तीन न्यायाधीशों द्वारा प्रतिपादित ''कुछ संबंध'' की परीक्षा साथ-साथ नहीं हो सकती है। अत:, उनकी दृष्टिकोण में ''कुछ संबंध'' की परीक्षा जैसा भरत राम मामले में प्रतिपादित किया गया है, क्षतिपूर्तिकारी टैक्स की अवधारणा पर प्रयोज्य नहीं है और उस सीमा तक **भरतराम राजीव कुमार बनाम सी॰ एस॰ टी॰** और **बिहार राज्य बनाम बिहार चैंबर ऑफ कॉमर्स** के मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय नामंजूर कर दिया गया था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ 53 में निम्नलिखित घोषित किया:-

*"53. ge nkgjkr g fd vuPNn 301 d vèkhu 0;kikj vkj okf.kT; ij vk{kfir fofèk d ^^çR;{k vkj rjUr çHkko** dk fl)kr tlk ;g fofuf'pr dju d fy, fd D;k dj {kfrifrdkjh g ;k ugh] fjkV (AIR) d ijk 19 d rgr vfr;kckjh Vh d0 fy0 cuke vle jkT; e çfrikfnr fd;k x;k g vkj vkVkekckby Vkl ikV (jktLFkku) fy0 cuke jktLFkku jkT; e çfrikfnr cfdx VLV ykx gkrk jgxk vkj Hkxr jke jktho dekj cuke lh0 ,l0 Vh0 d fu.k; d (SCC) d ijk 8 e minf'kr vkj fcgkj jkT; cuke fcgkj pcj vkQ dkel e vulfjr ^^dN lcèk** dh ijh{kk gekj er e vPNh fofèk ugh gA rnulkj] vud LFkkuh; vfèkfu;euk dh loèkkfud oèkrk] tk yfcr vihyk] fo'k"k vuefr ;kfpdkvk vkj fjV ;kfpdkvk d fo"k;oLr g] dk vc bl fu.k; d vkykd e fuiVku d fy, lphc) fd;k tk,xkA***

उक्त की दृष्टि में, राज्य को अनुच्छेद 301 के अधीन व्यापार, वाणिज्य और समागम पर 2011 के आक्षेपित अधिनियम के प्रत्यक्ष और तुरन्त प्रभाव की परीक्षा में उत्तीर्ण होगा।

21. स्वीकृत रूप से, राज्य को अपने बोझ के निर्वहन की परीक्षा में उत्तीर्ण होना होगा कि क्या आक्षेपित अधिनियम facially अथवा स्पष्टत: प्रमाणीकरण योग्य डाटा उपदर्शित करता है जिसके आधार पर क्षतिपूर्तिकारी कर उद्ग्रहित किया जाना इप्सित किया गया है। **जिंदल स्टेनलेस लि॰ (2) एवं एक अन्य** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम को लाभ जो प्रमाणीकरण योग्य अथवा मापनीय है को facially उपदर्शित करना होगा और यदि प्रावधान संदिग्ध हैं

और भले ही अधिनियम facially प्रमाणीकरण योग्य लाभ उपदर्शित नहीं करता है, न्यायालय के समक्ष सामग्री प्रस्तुत करके सेवा/सुविधा प्रदानकर्ता के रूप में राज्य पर यह दर्शाने का भार होगा कि क्षतिपूर्तिकारी कर का भुगतान इसके दाताओं/भुगतानकर्ताओं को प्रदान किए गए अथवा प्रदान किए जाने वाले प्रमाणीकरण योग्य/मापनीय लाभ के लिए प्रतिपूर्ति/प्रतिदान है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आगे अभिनिर्धारित किया कि यदि यह दर्शाया जाता है कि अधिनियम व्यापार की स्वतंत्रता पर आक्रमण करता है, यह जाँच करना आवश्यक है कि क्या राज्य ने सिद्ध किया है कि क्या कराधान के रूप में इसके द्वारा अधिरोपित निर्बंधन अनुच्छेद, 304 (b) के अर्थ के अंतर्गत युक्तियुक्त है और लोकहित में है। 2011 के अधिनियम को न्यायोचित ठहराने के लिए, यद्यपि प्रतिवाद में यह कथन किया गया है कि 2011 का अधिनियम पूर्व अधिनियमन से बिल्कुल भिन्न है, किंतु हमारा सुविचारित मत है कि पूर्व अधिनियमन और 2011 के वर्तमान अधिनियम के बीच कोई अंतर नहीं है सिवाय इसके कि यह 2011 का अधिनियम है और स्वयं अधिनियम में टैक्स के कोष का उपयोग का प्रावधान बनाया गया है जबकि पूर्व अधिनियम में कोष दिनांक 29.3.2008 की पृथक अधिसूचना द्वारा सृजित किया गया था। 2007 के अधिनियम के अधीन जारी दिनांक 29.3.2008 की अधिसूचना निम्नलिखित है:–

foÙk foHkkx

vfèklpuk ,l0 vk0 48 fnukd 29 ekp] 2008/930/FD)

*>kj[kM eY; ofèkr dj vfèkfu;e] 2005 (2006 dk >kj[kM vfèkfu;e 5) dh èkkjk 2 d [kM (xxi-A) lg&ifBr èkkjk 11, tl k (2008 d vfèkfu;e 3) }kjk l'kkfèkr fd;k x;k g tk 'krk] tlk fofgr fd;k tk ldrk g] vkj bl èkkjk 11 dh mièkkjk (2) vkj (3) d vèkhu Hkh vfèkdfFkr vU; 'krk d vè;èkhu mle miHkkx] mi;kx vFkok foØ; d fy, jkT; e vFkok LFkkuh; {k= e vfèkfu;e dh rrh; vuLph e mfYyf[kr ekyk d çoʼk ij vk;kr eY; ij VDl dk mnxg.k vkj lxg fofgr djrk g] }kjk çnÙk 'kfDr;k vkj bl fufeÙk vU; leLr l{ke cukrh 'kfDr;k d ç;kx e >kj[kM d jkT;iky >kj[kM 0;kikj fodkl dk"k (bld ckn ^^dk"k** d :i e fufn"V) d :i e Kkr dk"k dk çlUurkiod lftr djr gA*

*2. >kj[kM eY; ofèkr dj vfèkfu;e] 2005 (2006 dk >kj[kM vfèkfu;e 5) dh èkkjk 11 d vèkhu mnxfgr vkj lxfgr ço'k dj dk vkxe ^^dk"k** e fofu;kftr fd;k tk,xkA*

*3. ^^dk"k** d vkxek dk mi;kx li.k >kj[kM jkT; e 0;kikj] okf.kT; vkj m|kx dk ldj cuku d fy, vuU; :i l fd;k tk,xk tk fuEufyf[kr lfEefyr djxkA&*

(a) mud i"Bçn'kk l cktkj ,o vk|kfxd {k=k dk tkMu d fy, iFkk vkj iyk dk fuek.k] fodkl vkj j[k&j[kko]

(b) ekyk d eDr vkokxeu dk ldj cuku d fy, vkèkkjHkr ljpuk d fodkl d fy, foÙk] lgk;rk] vunku vkj lkgkf;dh çnku dju d fy,(

(c) jkT; e 0;kikj vkj okf.kT; d lo)u d fy, fo|r mtk vkj tykifr dh vkifr d fy, vkèkkjHkr ljpuk lftr dju d fy,(

(d) lkekU; :i e 0;kikj] okf.kT; vkj m|kx dk vxlj dju d fy, vU; vkèkkjHkr ljpuk dk lTtu] fodkl vkj j[k&j[kkoA

*4. rjhdk ftl l ^dk"k** d vkxek dk mi;kx fd;k tk,xk] fofufn"V dju*

d fy, e[; lfpo dh vè;{krk d vèkhu mPp Lrjh; dfefV xfBr fd;k tk,xkA dfefV vè;{k] lnL;&lfpo vkj fuEufyf[kr inu lnL;k l xfBr gkxh%&

(a) e[; lfpo] >kj[kM	inu vè;{k
(b) foÙk lfpo] >kj[kM	lnL; lfpo
(c) lfpo&lg&vk;Dr] okf.kT; dj foHkkx] >kj[kM ljdkj	leUo;d
(d) lfpo] iFk fuek.k foHkkx] >kj[kM ljdkj	inu lnL;
(e) lfpo] Ñf"k ,o xUuk foHkkx] >kj[kM ljdkj	inu lnL;
(f) lfpo] m|kx foHkkx] >kj[kM ljdkj	inu lnL;
(g) lfpo] mtk foHkkx] >kj[kM ljdkj	inu lnL;
(h) lfpo] i;ty ,o lQkb foHkkx] >kj[kM ljdkj	inu lnL;

5. mDr dfefV dk e[;ky; jkph e gkxkA

6. mPp Lrjh; dfefV ;ktukvk dh igpku djxh vkj budk e tjh nxh ftudk djnkrkvk d ,l ox }kjk mud ijLij ;kxnku d ;FkklHko vu:i ço'k djnkrkvk d ykHk d fy, lftr fd, tku oky vko';d lfoèkkvk vkj vkèkkjHkr ljpuk dk nf"V e j[kr g, dk"k d vkxek l ijk fd;k tk,xkA

7. dfefV d lnL;&lfpo ^dk"k* d mí'; dk çklr dju d fy, fofHkUu foHkkxk dk bl çdkj lxfgr jkf'k d vkxek dk vkofVr dju d fy, o"k e de l de ,d ckj cBd vkgr djxkA

8. mPp Lrjh; dfefV mld i.k vkj lefpr mi;kx dk lfuf'pr dju dh nf"V l le;≤ ij [kM (3) e fofufn"V ç;ktuk d fy, dk"k d mi;kx dk ekfuVj djxkA

9. e[; 'kh"k&0042 d xk.k 'kh"k 106 d vèkhu >kj[kM eY; ofèkr dj vfèkfu;e] 2005 d vèkhu tek fd, x, ço'k dj dk dk"k e fofu;kftr fd;k x;k le>k tk,xkA

10. dk"k e ØfMV fd, x, vkj fdlh foÙkh; o"k d nkjku vui;kfxr fdlh jf'k dk mPp Lrjh; dfefV d fun'kk d vu:i i'pkrorh foÙkh; o"k e mlh ç;ktu l mi;kfxr fd;k tk,xkA

11. ;g vfèklpuk nl o"kk d fy, oèk gkxh] ijUr ;g fd jkT; ljdkj] bldh oèkrk dk ,lh vofèk rd d fy, c<k ldrh g tlk ;g bl lcèk e vko';d le> ldrh gA

bl vfèklpuk dk fnukd 1 vfçy, 2006 l çHkko'khy le>k tk,xkA

>kj[kM d jkT;iky d vkn'kkulkj

Sd/- fujtu dekj

vij foÙk vk;Dr]

>kj[kM] jkph

2011 के अधिनियम की धारा 4 निम्नलिखित है:–

*"4. **dk"k e fofu;kftr fd, tkus okyk dj-**&(1) bl vfèkfu;e d vèkhu mnxfgr vkj lxfgr dj ^^dk"k] tl k bl vfèkfu;e dh èkkjk 2 d [kM (f) d vèkhu lftr fd;k x;k g] e fofu;kftr fd;k tk,xkA*

(2) èkkjk 5 d vèkhu Hkxrku ;kX; dj 0;kikj] okf.kT; ,o m|kx d fy, cgrj foi.k n'kk ldj cuku dh nf"V d lkFk ml le; rd mnxfgr fd;k tkrk jgxk tk jkT; d Hkhrj vkèkkjHkr ljpuk tl mtk] iFk] foi.k n'kk] vkfn çnku vkj le) dju d fy, vko';d gA

*(3) ^^dk"k** d vkxek dk >kj[kM jkT; e 0;kikj] okf.kT; vkj m|kx d fodkl d fy, vuU; :i l mi;kfxr fd;k tk,xk tk fuEufyf[kr lfEefyr djxk%*

(a) mud i"B çn'kk d lkFk foi.ku ,o vk|kfxd {k=k dk tkMu d fy, iFkk vkj iyk dk fuek.k] fodkl vkj j[k&j[kko(

(b) foÙkh;] vk|kfxd vkj okf.kfT;d bdkb;k dk foÙk] enn] vunku vkj lgkf;dh çnku dju d fy,(

(c) m|kxk] foi.ku vkj vU; okf.kfT;d dlyDlk dk fo|r mtk vkj tykifr d fy, vkèkkjHkr ljpuk lftr dju d fy,(

(d) 0;kikj] okf.kT; vkj m|kx dk vxlj dju d fy, vU; vkèkkjHkr ljpukvk dk ltu] fodkl vkj j[k&j[kkoA

(4) jkT; ljdkj bl fufeÙk vfèklpuk tkjh djd cd [kkrkvk d lefpr 'kh"kk d vèkhu vFkok ,l cd [kkrk ftl bl fufeÙk vfèklfpr fd;k tk,xk] e dj tek dju dk rjhdk fofufn"V djxhA

(5) jkT; ljdkj vfèklpuk }kjk mPp Lrjh; dfefV xfBr djxh tk bl èkkjk e vrfo"V ç;ktuk d fy, dk"k d lforj.k dk rjhdk voèkkfjr djxhA

22. वर्ष 2005 के अधिनियम के अधीन दिनांक 29.3.2008 की अधिसूचना द्वारा सृजित तथा 2008 में संशोधित व्यापार विकास कोष और 2011 के अधिनियम के अधीन व्यापार विकास कोष के प्रावधान स्पष्टत: उपदर्शित करते हैं कि प्रावधान उनमें किसी परिवर्तन के बिना समरुप हैं और इसलिए प्रतिशपथ पत्र में राज्य का निवेदन कि नया अधिनियम बिल्कुल भिन्न है, खारिज किए जाने का दायी है।

23. अब प्रश्न उद्भूत होता है कि क्या राज्य ने स्वयं अधिनियम में प्रमाणीकरण योग्य डाटा, facially अथवा स्पष्टत: प्रदर्शित किया है जिसके आधार पर उद्ग्रहित किए जाने के लिए इप्सित क्षतिपूर्तिकारी कर करदाताओं को दी गयी सेवा और लाभ के समतुल्य है। राज्य का एकमात्र प्रतिवाद यह है कि इसने अधिसूचना द्वारा उच्च स्तरीय कमिटि गठित किया और पृथक शीर्ष के अधीन खजाना में पृथक खाता के लिए प्रावधान बनाया किंतु वह प्रमाणीकरण योग्य डाटा नहीं है जिसके आधार पर क्षतिपूर्तिकारी कर उद्गृहित किया जाना इप्सित किया गया है। किंतु पृथक शीर्ष में खजाना में पृथक खाता खोलने के बाद कोष का प्रबंध करने के लिए कमिटि गठित करने का राज्य सरकार का यह कार्य केवल कोष का प्रबंध और उपयोग करने का प्रयास है जिसे 2011 के अधिनियम के अधीन संग्रहित किया जा सकता है। तुल्नात्मक संग्रह तथा कोष के उपयोग दर्शाने वाला वास्तविक आँकड़ा प्रस्तुत किए जाने तथा

राज्य के आशय के बीच एक अंतर हो। यह प्रतीत होता है कि राज्य **जिंदल स्टेनलेस लि॰ (2) एवं एक अन्य** में शब्द ''उपयोग'' पर अधिक विश्वास कर रहा है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि यदि प्रावधान संदिग्ध हैं और भले ही अधिनियम प्रमाणीकरण योग्य लाभ को facially उपदर्शित नहीं करता है, न्यायालय के समक्ष सामग्री प्रस्तुत करके यह दर्शाने का भार सेवा/सुविधा प्रदानकर्ता के रूप में राज्य पर होगा कि क्षतिपूर्तिकारी कर का भुगतान **इसके भुगतानकर्ताओं को प्रदान की गयी अथवा प्रदान की जाने वाली** प्रमाणीकरण योग्य/मापनीय लाभ के लिए प्रतिपूर्ति/प्रतिदान है। अत: निवेदन किया गया है कि राज्य इसके क्रियान्वयन के बाद 2011 के अधिनियम को यह दर्शाते हुए न्यायोचित ठहरा सकता है कि राज्य ने वस्तुत: व्यापारियों के लाभ के लिए व्यापार और वाणिज्य के विकास के लिए कोष का उपयोग किया है। किंतु 2011 के अधिनियम में, धारा 4 की उपधारा (3) में खंडों (a) से (d) के अधीन उन प्रयोजनों को दिया गया है जिनके लिए व्यापार विकास कोष का उपयोग किया जाएगा। इन प्रयोजनों पर **टाटा स्टील लिमिटेड (ऊपर)** मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पैराग्राफ 44 में विचार किया गया था और इन प्रयोजनों पर विचार करने के बाद इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि 2008 की अधिसूचना में उल्लिखित ऊपर निर्दिष्ट लाभ केवल व्यापारियों के लाभ और सेवा नहीं है और सारवान रूप से ये वे लाभ और सुविधा है जिनको राज्य सरकार के सामान्य राजस्व से राज्य सरकार द्वारा उपलब्ध कराए जाने की जरूरत है और ये केवल व्यापारी समुदाय के लिए विशेष अथवा अतिरिक्त अथवा आनुषंगिक सेवाएँ नहीं हैं। **टाटा स्टील लिमिटेड** में इस न्यायालय के निर्णय के बावजूद व्यापारियों के लिए किसी पृथक कर्णांकित सुविधा की योजना नहीं बनायी गयी है और सेवायें प्रदान करने के लिए अधिनियम के अधीन अर्जित राजस्व और स्थानीय प्राधिकारीगण द्वारा उपगत व्यय के बीच कोई परस्पर संबंध नहीं है और अधिनियम और अधिसूचना द्वारा जो कोई सुविधा प्रदान किया जाना इप्सित किया गया है वे या तो राज्य की संवैधानिक बाध्यता है अथवा अधिनियम के अधीन गठित निगम और स्थानीय निकायों का सांविधिक कर्तव्य है। इसके बावजूद, राज्य ने पुन: उन डाटा को भी प्रस्तुत करना नहीं चुना जो कर के संग्रहण और भविष्य में जब कर के अधिरोपण द्वारा राज्य सरकार को कोष उपलब्ध कराया जाएगा, इसके उपयोग का निर्धारण टैक्स के उद्ग्रहण के लिए और अपने कोष के उपयोग के लिए पूर्ण प्रोजेक्ट रिपोर्ट के रूप में हो सकता था ताकि यह करदाताओं को प्रदान की जाने वाली सेवाओं और सुविधाओं की परीक्षा/कसौटी में सफल हो सके।

24. किंतु, हमें संदेह है कि ऐसा प्रक्षेपण भी 2011 के अधिनियम की वैधता को इस तथ्य की दृष्टि में बचा जा सकता था कि स्वयं 2011 के अधिनियम में, राज्य ने उनके पृष्ठ प्रदेशों के साथ विपणन एवं औद्योगिक क्षेत्र को जोड़ने के लिए पथों और पुलों के निर्माण, विकास और रख रखाव के लिए वित्तीय, उद्योग एवं वाणिज्यिक इकाईयों को वित्त, सहायता, अनुदान, साहायिकी प्रदान करने के लिए, उद्योगों, विपणन और अन्य वाणिज्यिक कॉम्प्लेक्सों को विद्युत ऊर्जा और जलापूर्ति की आपूर्ति के लिए आधारभूत संरचना सृजित करने के लिए और आम तौर पर व्यापार, वाणिज्य को अग्रसर करने के लिए अन्य आधारभूत संरचना के सृजन, विकास और रख-रखाव के लिए जिन सेवाओं और सुविधाओं को पहले ही केवल करदाताओं के लाभ के लिए नहीं घोषित किया गया है, प्रावधान बना कर झारखंड राज्य में व्यापार, वाणिज्य एवं उद्योग के विकास के लिए अनन्य रूप से वित्तीय उपयोग प्रावधानित किया है। इस प्रकार, उपयोग के मूल प्रयोजनों को 2011 के अधिनियम की धारा 4 की उपधारा (3) के खंडों (a) से (d) में दर्शाया गया है। अत: हम **टाटा स्टील लि॰** के मामले में इस न्यायालय की पूर्व खंडपीठ द्वारा अभिव्यक्त दृष्टिकोण के साथ पूर्णत: सहमत हैं कि उक्त काम को करदाता समुदाय के लाभ और सेवा नहीं कहे जा सकते हैं जिनसे 2011 के अधिनियम के अधीन कर वसूला जाना इप्सित किया गया है। उक्त लाभों को राज्य के सामान्य राजस्व से देना होगा जहाँ तक ये पथों और पुलों के निर्माण से संबंधित

है और वित्तीय अथवा औद्योगिक अथवा वाणिज्यिक इकाईयों को वित्त, सहायता, अनुदान, साहायिकी राज्य वित्त निगम द्वारा और अन्य वित्तीय संस्थानों द्वारा दी जाती है और न तो अधिनियम में अथवा अधिनियम के अधीन जारी अधिसूचना में वित्तीय, औद्योगिक और वाणिज्यिक इकाईयों को वित्त, सहायता, अनुदान और साहायिकी देने की कोई योजना बनाने के लिए कोई प्रावधान बनाया गया है। केवल यही नहीं, इन प्रयोजनों के लिए राज्य द्वारा कोई डाटा बेस भी तैयार नहीं किया गया है और परिणामस्वरुप इस न्यायालय को इस तथ्य के बावजूद उपलब्ध नहीं कराया गया कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने काफी पहले वर्ष 2006 में **जिंदल स्टेनलेस लि॰ (2) एवं एक अन्य** के मामले में घोषित किया है कि जब भी ऐसी विधि को भारत के संविधान के अनुच्छेद 301 का उल्लंघन करता हुआ आक्षेपित किया जाता है और यह facially और स्पष्टत: प्रमाणीकरण योग्य डाटा उपदर्शित नहीं करता है जिसके आधार पर क्षतिपूर्तिकारी कर का उद्ग्रहण इप्सित किया गया है, तब न्यायालय के समक्ष सामग्री प्रस्तुत करके यह दर्शाने का भार राज्य पर है कि क्षतिपूर्तिकारी कर का भुगतान इसके करदाताओं को प्रदान की गयी अथवा प्रदान की जाने वाली प्रमाणीकरण योग्य और मापनीय लाभ है किंतु राज्य ने 2011 के अधिनियम की धारा 4 की उपधारा (3) के खंडों (a) से (d) में किसी भी खंड के लिए ऐसा डाटा बेस नहीं दिया है।

25. हम प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता के निवेदन में बल नहीं पाते हैं कि कर के संग्रहण और इसको व्यापार विकास कोष खाता में रखने के बाद संग्रहित करके उपयोग के पहले अधिनियम की वैधता का निर्णय करना समयपूर्व होगा। राज्य को लाभ की आवश्यकता और क्षतिपूर्तिकारी कर उद्ग्रहित करके इसकी पूर्ति की आवश्यकताओं का पता लगाने के लिए प्रमाणीकरण योग्य डाटा संग्रहित करना चाहिए था। राज्य सरकार ने इस आशा में विधि अधिनियमित किया कि राज्य कर संग्रहित कर सकता है और तत्पश्चात करदाताओं के लाभ और सुविधा के लिए कर विनियोजित कर सकता है और वह भी किसी डाटा बेस अथवा प्रोजेक्ट रिपोर्ट के बिना और तब यदि यह कर के अधिरोपण को न्यायोचित ठहराने में विफल रहता है, तब व्यापारियों के विधि विरूद्व अमीरी के अभिवचन पर करदाताओं को इसे लौटा नहीं सकता है। भारत के संविधान के प्रावधानों का उल्लंघन करने की समस्त अधिसंभाव्यताओं के साथ इसके संवैधानिक रूप से वैध होने का अवसर लेते हुए संविधि अधिनियमित नहीं की जा सकती है जो करदाताओं और अंतत: आम जनता का दायित्व सृजित करे।

26. अत:, हमारा सुविचारित मत है कि 2011 का अधिनियम स्वीकृत रूप से क्षतिपूर्तिकारी कर का उद्ग्रहण है किंतु समतुल्यता के सिद्धांत को अग्रसर किए बिना और यह करदाताओं को प्रमाणीकरण योग्य और मापनीय लाभ प्रदान नहीं कर रहा है और मोटे तौर पर लाभ के आनुपातिक नहीं है। राज्य इस न्यायालय के समक्ष सामग्री का तथ्य संगणना अथवा डाटा प्रस्तुत करके अपने भार का निर्वहन करने में आगे विफल रहा है कि क्षतिपूर्तिकारी कर का भुगतान इसके करदाताओं को प्रदान की गयी अथवा प्रदान की जानेवाली प्रमाणीकरण योग्य अथवा मापनीय लाभों के लिए प्रतिपूर्ति है। झारखंड राज्य व्यापार विकास कोष के नाम में धारा 4(3) के खंड (a) से (d) के अधीन कोष का सृजन और धारा 4 की उपधारा (3) के खंड (a) से (d) में दिए गए प्रयोजनों से कर राशि का उपयोग करदाताओं को कर राशि की प्रतिपूर्ति/प्रतिदान उपदर्शित और सिद्ध नहीं करता है। 2011 के अधिनियम की धारा 4 की उपधारा (3) के खंड (a) से (d) में दर्शाए गए प्रयोजन सामान्य प्रकृति के हैं और न कि करदाताओं को विनिर्दिष्ट लाभ।

27. परिणामस्वरुप, रिट याचिकाएँ अनुज्ञात की जाती है। यह घोषणा की जाती है कि मालों के उपभोग अथवा उपयोग पर झारखंड प्रवेश कर अधिनियम, 2011 की धारा 3 अधिकारातीत है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 304 द्वारा व्यवृत नहीं है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 301 के साथ

संघर्षरत है। चूँकि मालों के उपभोग अथवा उपयोग पर झारखंड प्रवेश कर अधिनियम, 2011 की धारा 3 के अधिकारातीत अभिनिर्धारित किया गया है, प्रत्यर्थी राज्य मालों के उपभोग अथवा उपयोग पर झारखंड प्रवेश कर अधिनियम, 2011 के किसी प्रावधान को प्रवर्तित नहीं कर सकता है।

पी॰ पी॰ भट्ट, न्यायमूर्ति.—मैं सहमत हूँ।

---

ekuuh; ,pñ lhñ feJk] U;k;efr

सुरेन्द्र नाथ दास उर्फ सुरेन्द्र सिंह

cuke

बिहार राज्य (अब झारखंड) एवं अन्य

Cr. Misc. No. 1758 of 2000 (R). Decided on 9th April 2012.

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन एक आवेदन के मामले में।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 342, 323, 379, 506 एवं 500—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 197 एवं 482—उपहति, चोरी और अभित्रास–याची एक लोक सेवक है–याची के विरुद्ध अभिकथन उसके विरुद्ध स्पष्ट रूप से अपराध बनाते हैं–प्रहार के अभिकथन को याची के पदधारिक कर्तव्य के निर्वहन में किया गया नहीं कहा जा सकता है–याची को दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 197 के अधीन सुरक्षित नहीं किया गया था–याची के विरुद्ध अभिकथन स्पष्टतः अपराध बनाता है–अभिखंडन आवेदन खारिज। (पैराएँ 4 से 9)

अधिवक्तागण.–Mr. M. K. Sinha, For the Petitioner; Mr. Shreeprakash Jha, For the State; None, For the Opp.party No. 2.

न्यायालय द्वारा.–याची के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया। निजी विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 जो इस मामले का परिवादी है, के लिए कोई उपस्थित नहीं हुआ।

2. याची ने परिवाद केस सं॰ 47 वर्ष 1998 में अपने विरुद्ध कार्यवाही और उसमें विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, खूँटी द्वारा पारित दिनांक 7.12.1998 के आदेश के अभिखंडन के लिए प्रार्थना किया है जिसके द्वारा भारतीय दंड संहिता की धाराओं 342, 323, 379, 506, 500 के अधीन अपराध के लिए याची और अन्य अभियुक्तगण के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला पाया गया था और उनके विरुद्ध आदेशिका जारी करने का निर्देश दिया गया था।

3. परिवाद याचिका, जिसे परिशिष्ट-1 के रूप में लाया गया है, जो दर्शाती है कि याची प्रासंगिक समय पर जिला अधिकारी, भूमि विकास बैंक, हिनू, इंदिरा पैलेस, राँची के रूप में पदस्थापित था। परिवाद याचिका में अभियुक्तगण के विरुद्ध परिवादी पर प्रहार करने का अभिकथन है और याची के विरुद्ध भी अभिकथन है।

4. सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान पर परिवादी का बयान दर्ज किया गया था और परिवादी ने मामले का समर्थन भी किया है। दिनांक 7.12.1998 के आदेश द्वारा याची के विरुद्ध प्रथम दृष्टया अपराध पाया गया था और आदेशिका जारी करने का आदेश दिया गया था।

5. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि याची लोक सेवक है और तद्नुसार, समुचित सरकार से मंजूरी लिए बिना उसके विरुद्ध संज्ञान नहीं लिया जा सकता है। आगे निवेदन किया गया है कि अवर न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश पूर्णत: अवैध है और विधि में संपोषित नहीं किया जा सका है।

6. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने यह निवेदन करते हुए प्रार्थना का विरोध किया कि याची के विरुद्ध विनिर्दिष्ट अभिकथन है और अभिकथन की प्रकृति स्पष्टत: दर्शाती है कि याची की कार्रवाई ऐसी नहीं थी जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि याची द्वारा पदधारिक कर्तव्य का निर्वहन करते हुए अपराध किया गया था और तद्नुसार, मामले के तथ्यों में, याची को दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 197 की सुरक्षा उपलब्ध नहीं है।

7. दोनों पक्षों को सुनने पर और अभिलेख का परिशीलन करने पर मैं पाता हूँ कि याची के विरुद्ध अभिकथन स्पष्ट रूप से याची के विरुद्ध अपराध बनाते हैं और प्रहार के अभिकथन को याची के पदधारिक कर्तव्य का निर्वहन करते हुए किया गया नहीं कहा जा सकता है। तद्नुसार, मैं विद्वान अधिवक्ता के निवेदन में बल नहीं पाता हूँ कि याची दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 197 के अधीन सुरक्षित किया गया था।

8. इस तथ्य की दृष्टि में कि याची के विरुद्ध अभिकथन स्पष्ट रूप से अपराध बनाता है, अवर न्यायालय ने याची के विरुद्ध प्रथम दृष्टया मामला पाया है।

9. इस आवेदन में गुणागुण नहीं है और तद्नुसार इसे एतद् द्वारा खारिज किया जाता है।

---

ekuuh;k iue JhokLro] U;k;efr

यमुनादास शारदा

cuke

श्रीमती रीता लाल एवं अन्य

Appeal from Original Decree No. 98 of 2003. Decided on 20th April, 2012.

हक (बेदखली) वाद सं॰ 5 वर्ष 1992/02 वर्ष 2002 में श्री अशोक कुमार पाठक, उप-न्यायाधीश VII, राँची द्वारा पारित दिनांक 29 जुलाई, 2003 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध।

(क) बिहार मकान (पट्टा, किराया और बेदखली) नियंत्रण अधिनियम, 1982—धारा 11—बेदखली–किराया के भुगतान में व्यतिक्रम–वादी ने अनेक वाउचरों से किराया का भुगतान करना स्वीकार किया–वादी को दिए गए साक्ष्य के आधार पर स्वयं अपना मामला सिद्ध करना होगा–वादी ने विलेख और व्यतिक्रम की अवधि के अवसान के बाद किराया की दर को सिद्ध करने के लिए अपने बोझ का निर्वहन करने में विफल रहा–किराया की दर 2500/- रुपया प्रतिमाह थी और अग्रिम भुगतान भी किया गया था–प्रतिवादी को व्यतिक्रमी अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है–किराया के बकाया के आधार पर बेदखली डिक्री संपोषणीय नहीं है–आक्षेपित निर्णय और डिक्री अपास्त–अपील अनुज्ञात। (पैराएँ 24 से 36)

(ख) संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882—धारा 105—पट्टा–अचल संपत्ति का पट्टा प्रतिफल के लिए अभिव्यक्त अथवा विवक्षित कतिपय समय के लिए किए गए ऐसी संपत्ति के उपभोग के अधिकार का अंतरण है। (पैरा 35)

निर्णयज विधि.–(2003)8 SCC 204; (2010)11 SCC 108—Relied on; AIR 1976 SC 1813; 2001(3) Jhr CR 482 (Jhr); 2000 (1) PLJR 975—Referred.

अधिवक्तागण.–M/s. P. K. Prasad, Rahul Gupta, Ayush Aditya, For the Appellant; M/s. V. Shivnath, Amar Kumar Sinha, Sidharth Ranjan, For the Respondents.

पूनम श्रीवास्तव, न्यायमूर्ति.–वर्तमान प्रथम अपील हक (बेदखली) वाद सं॰ 5 वर्ष 1992/2 वर्ष 2002 में वाद डिक्री करते हुए श्री अशोक कुमार पाठक, उप-न्यायाधीश VII, राँची द्वारा पारित दिनांक 29 जुलाई, 2003 के निर्णय और दिनांक 12 अगस्त, 2003 के डिक्री से उद्भूत होती है।

2. श्री राहुल गुप्ता एवं श्री आयुष आदित्य द्वारा सहायित वरीय अधिवक्ता श्री पी॰ के॰ प्रसाद अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होते हैं और श्री अमर कुमार सिन्हा एवं सिद्धार्थ रंजन द्वारा सहायित वरीय अधिवक्ता श्री वी॰ शिवनाथ प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित होते हैं।

3. मूल वादी स्व॰ प्रमोद बिहारी लाल ने इस आधार पर निष्काषण वाद संस्थित किया था कि दिनांक 24 अक्टूबर, 1986 के करार पर 10,000/- रुपया की दर पर प्रतिवादी यमुनादास शारदा को वाद परिसर किराया पर दिया गया था। वादी का मामला यह है कि किराएदार को केवल एक माह के लिए पट्टा विलेख पर प्रवेश दिया गया था। किराया परिसर जो दुकान के लिए एक कमरा था को एक माह की पट्टा अवधि के अवसान के बाद खाली नहीं किया गया था। किराएदार ने दिनांक 1 अक्टूबर, 1987 तक प्रतिमाह 10,000/- रु॰ की दर पर किराया का भुगतान करना जारी रखा और तत्पश्चात किराया का भुगतान करना बंद कर दिया। वादी का मामला है कि किराएदार व्यतिक्रमी है और, इसलिए, बिहार मकान (पट्टा, किराया और बेदखली) नियंत्रण अधिनियम, 1982 (इसके बाद 'अधिनियम' के रूप में निर्दिष्ट) की धारा 11 के अधीन बेदखली के लिए स्वयं को दायी बना दिया। वाद स्वयं अपने उपयोग और अधिभोग के लिए सद्भावपूर्ण व्यक्तिगत आवश्यकता के आधार पर भी संस्थापित किया गया था और कि किराएदार प्रतिवादी ने वाद परिसर को तात्विक नुकसान कारित किया है।

वादपत्र में प्राख्यान था कि अक्टूबर, 1987 से नवंबर, 1987 तक की अवधि के लिए किराया वर्जित किया गया था और, इसलिए, उसने दिसंबर, 1989 के प्रभाव से 10,000/- रुपया प्रतिमाह की दर पर 3,60,000/- रुपयों की राशि के लिए किराया का दावा किया। वादी आगे अभिकथित करता है कि उसने वाद परिसर के रिक्त कब्जा की मांग करते हुए नोटिस के तामील को प्रभाव दिया। प्रतिवादी ने न तो किराया के बकाया का भुगतान किया और न ही वाद परिसर खाली किया बल्कि लिखित कथन दाखिल करके वाद का प्रतिवाद किया।

4. किराएदार अपीलार्थी ने दावा किया कि वाद जैसा विरचित किया गया था, पोषणीय नहीं था क्योंकि यह आवश्यक पक्ष नरेन्द्र कुमार शारदा और श्रीमती कमला कांत शारदा के असंयोजन के कारण दोषपूर्ण था; वादी के पास वाद हेतुक नहीं है जैसा वाद के पैराग्राफ 17 में अभिकथित किया गया है। वाद परिसर अप्रिल, 1989 के दस्तावेज के फलस्वरुप 2500/- रु॰ प्रतिमाह के मासिक किराया पर, और न कि 10,000/- रुपया जैसा वाद पत्र में कथन किया गया है, किराया पर लिया गया था। किसी आपत्ति के बिना 2500/- रुपयों की राशि सदैव स्वीकार की गयी थी।

5. प्रतिवादी ने वादपत्र के अभिकथनों को विवादित किया और अपना लिखित कथन दाखिल किया कि उसने नियमित मासिक भुगतान किया था। किराया की दर 10,000/- रुपया प्रतिमाह नहीं थी और, इसलिए, 3,60,000/- रुपयों की राशि का दावा किया गया बकाया भी विवादित किया गया था। अपीलार्थी ने आगे दावा किया कि रजिस्ट्रेशन के प्रयोजन से गैर न्यायिक स्टांप पर पट्टा विलेख लिखा गया था। इस विलेख को रजिस्टर्ड कराने के लिए कदम उठाने हेतु वादी स्व॰ प्रमोद बिहारी लाल को इसे सौंपा गया था। यद्यपि, रजिस्ट्रेशन नहीं करवाया जा सका था किंतु प्रतिवादी ने कर्ज खाते के लिए बैंक में इसे प्रस्तुत

करने के लिए पट्टा विलेख की प्रति की मांग की। अपीलार्थी की ओर से आगे प्रतिवाद किया गया है कि मूल वादी पी॰ बी॰ लाल ने कर्ज प्राप्त करने के लिए केनरा बैंक, डोरंडा शाखा, राँची में गैर रजिस्टर्ड पट्टा विलेख प्रस्तुत किया। आरंभ में जब नवंबर, 1986 में परिसर किराया पर दिया गया था, सहमति हुई थी कि किराया की दर 2500/- रुपया होगी और सौंदर्यीकरण और साज-सज्जा के लिए 7500/- रुपयों का भुगतान किया जाएगा जिसके लिए वादी विवरण प्रस्तुत करेगा। अपीलार्थी ने सजावट के लिए पी॰ बी॰ लाल को 90,000/- रुपयों की राशि का भुगतान किया किंतु किराया परिसर को न तो समुचित रूप से सजाया गया था और न ही सुंदर बनाया गया था। वादी ने किराया रसीद जारी नहीं किया था और प्रत्येक माह किराया का भुगतान करने का नियम नहीं था। वस्तुतः, एकमुश्त राशि का भुगतान किया जाता था जैसा और जब वादी द्वारा मांगा जाता था और यह वचन था कि इसे भविष्य के किराए में समायोजित कर दिया जाएगा। राशि वादी द्वारा अपने कर्मचारी अर्थात् किसी धनंजय सिंह द्वारा संग्रहित की जाती थी और अपीलार्थी के अनुसार यह अभिकथित किया गया था कि 5,39,932.75/- रुपयों की कुल राशि का भुगतान किराया आरंभ होने की तिथि से अर्थात् नवंबर, 1986 के प्रभाव से किया गया था। इस प्रकार, अपीलार्थी के अनुसार, अतिरिक्त भुगतान किया गया था और वादीगण-प्रत्यर्थीगण भविष्य के किराया के विरुद्ध इसे समायोजित करने के दायी थे।

6. विचारण न्यायालय ने पक्षों के अभिवचन के आधार पर कुल मिलाकर बारह विवाद्यकों को विरचित किया:-

(i) D;k okn tlk fojfpr fd;k x;k g ik"k.kh; g

(ii) D;k oknhx.k d ikl oSèk okn grd g

(iii) D;k okn vko';d i{kk d vl;ktu d dkj.k nk"ki.k g

(iv) D;k çfroknh u vDVcj] 1987 l ekfld fdjk;k d Hkxrku e0;frØe fd;k g

(v) D;k fdjk;k ij fn, x, ifjlj dk ekfld fdjk;k 10,000/- #i;k g D;kfd ;g 2500/- #i;k g

(vi) D;k oknh dh okn ifjlj dh vko';drk ;fDr;Dr ,o mfpr fLFkfr e g

(vii) D;k okn ifjlj l çfroknh dh vkf'kd cn[kyh oknh dh vko';drk dk lr"V djxh

(viii) D;k çfroknh u fdjk;k ifjlj dk udlku dkfjr fd;k g

(ix) D;k oknhx.k 3,60,000/- #i;k dh jkf'k d fdjk;k d cdk;k dk iku d gdnkj g

(x) D;k çfroknh u oknh d ikl vfèkd jkf'k tek fd;k g ftldk Hkfo"; e lek;kftr djuk g

(xi) D;k okn ifjlj vfçy] 1989 d u, iVVk foy[k d QyLo#i fdjk;k ij fn;k x;k Fkk vkj mDr nLrkot fo|eku g

(xii) oknh fdl vurk"k vFkok vurk"kk dk gdnkj g

7. विवाद्यक सं॰ (vi), (vii) और (viii) मकानमालिक की निजी आवश्यकता के लिए किराया परिसर खाली किए जाने से संबंधित है और क्या प्रतिवादी-किराएदार की आंशिक बेदखली वादी की आवश्यकता संतुष्ट करेगी और क्या किराया परिसर को नुकसान कारित किया गया था। ये विवाद्यक वर्तमान

में प्रासंगिक नहीं हैं क्योंकि विचारण न्यायालय ने वाद परिसर की दशा को नुकसान कारित करके किराया के निबंधनों के भंग के आधार पर बेदखली और निजी आवश्यकता के आधार पर बेदखली के दावा को खारिज कर दिया। सद्भावपूर्ण आवश्यकता अथवा भवन को नुकसान के आधार पर मकान मालिक द्वारा अपील दाखिल नहीं की गयी है। अत: वर्तमान अपील केवल व्यतिक्रम के प्रश्न पर अग्रसर होती है।

8. बेदखली के लिए वाद को किराया के व्यतिक्रम के आधार पर डिक्री किया गया था और वर्तमान अपील किराया के बकाया के आधार पर बेदखली के लिए अग्रसर होती है।

9. विद्वान अधिवक्ता का निवेदन है कि अवर न्यायालय ने व्यतिक्रम की अवधि के संबंध में कोई विनिर्दिष्ट निष्कर्ष दर्ज नहीं किया है, किंतु अभिनिर्धारित किया गया है कि वादी ने आज की तिथि तक अर्थात् वाद के संस्थापन की तिथि तक अक्टूबर, 1987 के प्रभाव से किराया प्राप्त नहीं किया था। अत: बकाया दो माह से अधिक तक का है।

10. दोनों पक्षों ने अपने परस्पर दावा के समर्थन में मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य दिया। वादी ने छह गवाहों का परीक्षण किया। मूल वादी पी॰ बी॰ लाल की पत्नी रीता लाल अ॰ सा॰ 6 के रूप में कठघरे में आयी। रवि शंकर वर्मा का परीक्षण अ॰ सा॰ 1 के रूप में यह सिद्ध करने के लिए किया गया था कि पी॰ बी॰ लाल और प्रतिवादी यमुना दास शारदा के बीच पट्टा था और वह पट्टा विलेख का गवाह है। उसने इस तथ्य को सिद्ध किया है कि पट्टा करार केवल एक माह अर्थात् दिनांक 2 नवंबर, 1986 से दिनांक 2 दिसंबर, 1986 तक के लिए था। परिसर को इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं को प्रदर्शित करने के लिए 10,000/- रुपयों के किराया पर एक माह के लिए दिया गया था। अ॰ सा॰ 1 ने पी॰ बी॰ लाल और प्रतिवादी के बीच पट्टा विलेख के पश्चात् किसी निबंधनों तथा शर्तों अथवा किराया के भुगतान के संबंध में अपनी अज्ञानता अभिव्यक्ति किया है। अ॰ सा॰ 2 रवि प्रताप सिन्हा ने निवेदन किया है कि वाद परिसर 10,000/- रुपयों के किराया पर यमुना लाल शारदा को दिया गया था किंतु प्रति परीक्षण में उसने स्पष्टत: कथन किया है कि उसे कोई जानकारी नहीं है कि वादी प्रतिवादी से किस प्रकार किराया प्राप्त करता था, वह इसे स्वयं प्राप्त करता था अथवा किसी के माध्सम से। वह आगे निवेदन करता है कि उसने कागज देखा है और सुना भी है कि किराया 10,000/- रुपया था यद्यपि उसने इस सुझाव से इनकार किया है कि किराया की दर 2500/- रुपया प्रतिमाह थी। अ॰ सा॰ 9 डॉ॰ जी॰ पी॰ शरण ने भी वादी के मामले का समर्थन करने का प्रयास किया है किंतु अपने प्रति परीक्षण में उसने स्वीकार किया है कि उसने केवल किराया 10,000/- रुपया होने के संबंध में कागज देखा है जो करार पेपर था। उसने स्वीकार किया कि उसने संपूर्ण करार पेपर नहीं पढ़ा है।

11. अ॰ सा॰ 6 रीता लाल मूल वादी स्व॰ पी॰ बी॰ लाल की पत्नी है। उसके साक्ष्य के अनुसार, प्रतिवादी को एक माह के लिए प्रवेश दिया गया था किंतु एक माह के अवसान के बाद उसने परिसर खाली नहीं किया था और उन्हीं निबंधनों और शर्तों पर किराएदार के रूप में बना रहा। एक माह के अवसान के बाद, प्रतिवादी ने चेक से 10,000/- रुपयों की दर पर कुछ माह के लिए किराए का भुगतान किया। जमा पर्चियों को प्रदर्श 2 से 2/f तक के रूप में सिद्ध किया गया है जिसे रीता लाल के केयरटेकर धनंजय सिंह द्वारा भरा गया था। पैराग्राफ 2 में वह कथन करती है कि अक्टूबर, 1987 के बाद चेक द्वारा अथवा मनीऑर्डर द्वारा अथवा नगद द्वारा कोई भुगतान नहीं किया गया था। पैराग्राफ 6 में, वह स्वीकार करती है कि धनंजय सिंह उसका केअरटेकर था और वह उसको किए गए भुगतान के वाउचरों पर हस्ताक्षर करता था। पैराग्राफ 6 में वह आगे कथन करती है कि शारदाजी ने किराया की ओर धनंजय सिंह को किए गए भुगतानों के समायोजन के लिए कोई नोटिस नहीं दिया है। वह कथन करती है कि उसका पति भुगतान किए गए किराया का हिसाब रखता था। उसका पति किराया प्राप्त करने के लिए राँची कभी नहीं आया था। उसका केअरटेकर उसके पति की ओर से किराया संग्रहित करता था। धनंजय सिंह अभी भी

केअरटेकर है। पैराग्राफ 13 में वह कथन करती है कि वह 10,000/- रुपया प्रतिमाह किराया दर्शाते हुए रिटर्न दाखिल किया करती थी और वह इसे दाखिल कर सकती है।

12. प्रतिवादी ने भी अनेक गवाहों का परीक्षण किया है। ब॰ सा॰ 6 यमुना दास शारदा, ब॰ सा॰ 8 नरेन्द्र कुमार शारदा अपीलार्थी की ओर से तात्विक गवाह हैं। ब॰ सा॰ 3 के॰ एन॰ प्रसाद राव केनरा बैंक का वरीय प्रबंधक है जिन्होंने अप्रिल, 1989 के पट्टा विलेख की छाया प्रतिलिपि को प्रस्तुत किया है। ब॰ सा॰ 11 जगदीश राजा ने अमरेन्द्र मिश्रा का हस्ताक्षर सिद्ध किया है जो पी॰ बी॰ लाल के कर्मचारी के रूप में कार्यरत था। ब॰ सा॰ 12 स्वयं अमरेन्द्र मिश्रा है जिसके हस्तलेखन में यह सिद्ध करने के लिए कि किराया की दर 2500/- रुपया प्रतिमाह है, प्रदर्श F तैयार किया गया है। ब॰ सा॰ 13 राजकुमार सिंह है।

13. दोनों पक्षों की ओर से दस्तावेजी साक्ष्य प्रदर्श 1, केवल एक माह के लिए पट्टा विलेख है; प्रदर्श 2 से 2/F बैंक के पे-इन-स्लिप हैं। प्रदर्श A नोटिस है। प्रदर्श B से B/10 वादी के केअरटेकर धनंजय सिंह को किए गए भुगतानों को दर्शाने वाले वाउचर हैं। प्रदर्श C धनंजय सिंह को 6000/- रुपयों का भुगतान करने के लिए पी॰ बी॰ लाल के अनुदेश को अंतर्विष्ट करने वाली पर्ची है। प्रदर्श D से D/1 पी॰ बी॰ लाल और उसकी पत्नी रीता लाल के एअर टिकट की ओर आर्या ट्रेवेल्स को किया गया भुगतान दर्शाने वाली धन रसीद है। प्रदर्श E वसीयत है। प्रदर्श F वादी को किए गए भुगतान के विवरण को दर्शाता पी॰ बी॰ लाल की ओर से किसी अमरेन्द्र मिश्रा द्वारा तैयार किया गया खाता है। प्रदर्श G श्रृंखला शारदा कलर लैब का बैलेंस शीट है। प्रदर्श H पट्टा विलेख की छाया प्रति है जिसमें बैंक मैनेजर के हस्ताक्षर को प्रदर्श H के रूप में चिन्हित किया गया है। प्रदर्श E को छोड़कर इन समस्त प्रदर्शों को वादी द्वारा किसी आपत्ति के बिना चिन्हित किया गया है।

14. अपीलार्थी ने अनेक आधारों पर आक्षेपित निर्णय को चुनौती दिया है और उक्त आधार वर्तमान अपील में अवधारण के लिए निम्नलिखित बिंदुओं को गठित करते हैं:-

(i) i{kk d vl;ktu dk çHkkoA

(ii) iVVk foy[k byDVkfud oLrvk d çn'ku d fy, fofufn"V ç;ktu l doy ,d ekg dh vofèk d fy, g] vr% ;g ykbl l vFkok iVVk FkkA

(iii) ih0 ch0 yky d LohÑr d;jVdj èkut; flg dk i'k ugh fd;k tkukA

(iv) fdjk;k dh nj 2500/- #i;k g ;k 10,000/- #i;k D;kfd fyf[kr dFku e vihykFkh dk fofufn"V çfrokn fdjk;k d nj d lcèk e gA

(v) fdjk;k d nj d lcèk e viu çfrokn dk leFku dju dk Hkkj oknh ij Fkk ;fn vihykFkh dh vkj l 0;frØe gvk Fkk vkj ml vofèk d fy, Hkh ft ld fy, fdjk,nkj ij cdk;k FkkA

15. अपीलार्थी की ओर से श्री पी॰ के॰ प्रसाद के तर्क ये हैं कि प्रथमतः तथाकथित पट्टा विलेख पट्टा नहीं है बल्कि यह लाइसेंस है। जोर यह है कि प्रश्नगत दुकान का कब्जा इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं का प्रदर्शन करने के लिए एक माह की सीमित अवधि के लिए दिया गया था। कोई अनुबंध नहीं है कि पट्टा की अवधि किसी रूप में बढ़ायी जा सकती थी। उक्त विलेख के निबंधन स्वयं इस तथ्य को प्रदर्शित करते हैं कि यह सुखाचार अधिनियम की धारा 52 के अर्थ के अंतर्गत लाइसेंस है।

16. अपीलार्थी की ओर से वरीय अधिवक्ता का अगला प्रतिवाद यह है कि किराया के भुगतान के संबंध में विनिर्दिष्ट विवाद की दृष्टि में और स्वीकृत वाउचरों को देखते हुए भी जिसमें किराया के दर के रूप में 2500/- रुपयों की राशि उल्लिखित की गयी है और इसके अतिरिक्त धनंजय सिंह का पृष्ठांकन कि कभी-कभी 2500/- रुपयों की दर पर दो माह के किराया के रूप में 5,000/- रुपयों का अथवा बारह माह के लिए 30,000/- रुपयों का भुगतान किया जाता था, उक्त दस्तावेज से इनकार करने के लिए केवल धनंजय सिंह तात्विक गवाह था। श्री प्रसाद निवेदन करते हैं कि इस गवाह का परीक्षण किया जाना चाहिए था चूँकि किराया की दर को सिद्ध करने के लिए अन्य दस्तावेज नहीं है। वादी के मामला को सिद्ध करने के लिए आरंभिक पट्टा विलेख ही एकमात्र दस्तावेज था। वादपत्र में किए गए प्राख्यान को सिद्ध करने का भार स्वयं वादी पर था और धनंजय सिंह को पेश नहीं किया जाना प्रतिकूल निष्कर्ष निकाले जाने के लिए पर्याप्त है विशेषत: अ॰ सा॰ 1 की स्वीकृति को देखते हुए कि वह न्यायालय में उपस्थित है और प्रत्येक तिथि पर न्यायालय में उपस्थित था। रीता लाल (अ॰ सा॰ 6) ने भी स्वीकार किया कि धनंजय सिंह अभी भी उसका केयरटेकर है। अत: जोरदार तर्क यह है कि ये परिस्थितियां वादी-प्रत्यर्थी के विरुद्ध उपधारणा करने के लिए पर्याप्त है। विद्वान अधिवक्ता ने इस पर भी जोर दिया है कि पक्षों के असंयोजन के कारण वाद दोषपूर्ण है।

17. अपने जूनियरों की सहायता से वरीय अधिवक्ता श्री वी॰ शिवनाथ ने अपीलार्थी की ओर से किए गए प्रत्येक तर्क का खंडन किया है। उनका जोर यह है कि प्रदर्श 1 करार है जिसे किराएदारी के आरंभ में ही निष्पादित किया गया था और करार केवल यमुना दास शारदा और पी॰ बी॰ लाल के बीच था और वाद पत्र के पैराग्राफ 3 और 4 में किए गए प्राख्यान की दृष्टि में किराएदारी को समय-समय पर दिनांक 1 अक्टूबर, 1987 तक बढ़ाया जाना था। अत: अपीलार्थी की ओर प्राख्यान कि वाद पक्ष के असंयोजन के कारण दोषपूर्ण है, आधारहीन है। इसके अतिरिक्त यमुना दास शारदा द्वारा लिखित कथन दाखिल किया गया था जो एकमात्र प्रतिवादी था। अपीलार्थी ने वादी के प्राख्यान से कोई विनिर्दिष्ट इनकार नहीं किया है कि प्रतिवादी व्यतिक्रमी है। विभिन्न अंतरालों पर एकमुश्त राशि का भुगतान, यदि सिद्ध किया भी जाता है, भविष्य के किराए की ओर समायोजित नहीं किया जा सकता है। स्वीकृत रूप से, ऐसा समायोजन करने के लिए प्रतिवादी किराएदार की ओर से नोटिस नहीं दिया गया था और, इसलिए, विद्वान अधिवक्ता ने जोर दिया है कि कोई भी समायोजन नहीं किया जा सकता है। अपने प्रतिवाद कि किराया की दर 10,000/- रुपया है और न कि 2500/- रुपया, के समर्थन में मकान मालिक के अधिवक्ता द्वारा बैंक के कतिपय पे-इन-स्लिप को भी इंगित किया गया था। बाद में निष्पादित पट्टा विलेख रद्दी कागज है क्योंकि यह गैर रजिस्टर्ड दस्तावेज है। प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता ने निर्णय के पैराग्राफों 20 और 21 के निष्कर्षों का समर्थन किया है कि प्रतिवादी को वर्ष 1986 में वाद परिसर में प्रवेश दिया गया था। किंतु, विद्वान अधिवक्ता द्वारा निर्णयों पर विश्वास किया गया है और प्रतिवादी-अपीलार्थी को अक्टूबर, 1987 के प्रभाव से व्यतिक्रमी अभिनिर्धारित किया गया है और जब एक बार व्यतिक्रम गठित किया जाता है, किराएदार बेदखली से बच नहीं सकता है।

18. अपीलार्थी और प्रत्यर्थीगण की ओर से अधिवक्ताओं के प्रतिवादों को सुनने के बाद वर्तमान अपील में विनिश्चित किया जाने वाला मुख्य प्रश्न किराया कि दर के संबंध में है और अगला प्रश्न है कि क्या प्रतिवादी-अपीलार्थी अधिनियम के अर्थ के अंतर्गत व्यतिक्रमी है। वादी का प्राख्यान है कि किराएदारी पट्टा विलेख, प्रदर्श 1 के निष्पादन के बाद आरंभ हुआ। उक्त पट्टा विलेख के परीक्षण और परिशीलन पर, यह पता चलता है कि वाद परिसर यमुना दास शारदा को इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं के प्रदर्शन के लिए 10,000/- रुपयों की दर पर दिनांक 2 नवंबर, 1986 से आरंभ होने और दिनांक 2 दिसंबर, 1986 को समाप्त होने वाले एक माह की अवधि के लिए दिया गया था। पट्टा विलेख के निबंधनों और शर्तों ने अनुबंधित किया कि पट्टा के अवसान पर किराएदार को रिक्त कब्जा सौंप दिया जाएगा।

19. वादीगण ने केवल इस विलेख पर विश्वास किया है और इसके आधार पर अवर न्यायालय यह विनिश्चित करने के लिए अग्रसर हुआ कि पट्टा पर दिया गया परिसर वाद के संस्थापन तक जारी रहा और निबंधन एवं शर्त भी वहीं बने हुए हैं। अपीलार्थी की ओर से तर्क कि प्रदर्श 1 केवल एक माह के विनिर्दिष्ट अवधि के लिए है और वह भी विशेष प्रयोजन के लिए अर्थात् इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं के प्रदर्शन के लिए। प्राख्यान यह है कि वस्तुत: यह सुखाचार अधिनियम की धारा 52 के अधीन लाइसेंस है और न कि संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 105 के अर्थ के अंतर्गत पट्टा। वादी का संपूर्ण मामला केवल इस विलेख पर आधारित है जिसे स्वीकृत रूप से न तो बढ़ाया गया था और न ही अवधि बढ़ाने के लिए विलेख के निबंधनों और शर्तों में अनुबंध था। वादी का मामला यह नहीं है कि पट्टा, जिसे वर्ष 1986 में सम्यक रूप से निष्पादित किया गया था, की अवधि बढ़ाने के लिए कोई विनिर्दिष्ट करार था।

20. श्री पी॰ के॰ प्रसाद ने **राजस्व बोर्ड बनाम ए॰ एम॰ अंसारी इत्यादि, AIR 1976 Supreme Court 1813,** मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के आधार पर अपने तर्क का समर्थन किया है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त दृष्टिकोण यह है कि यह अभिनिश्चित करने के लिए कि क्या दस्तावेज लाइसेंस अथवा पट्टा सृजित करता है, दस्तावेज के विषय वस्तु का परीक्षण आवश्यकत: किया जाना चाहिए। वास्तविक परीक्षा पक्षों का आशय है, यदि दस्तावेज संपत्ति में हित सृजित करता है, यह पट्टा है किंतु यदि यह केवल विनिर्दिष्ट अवधि के लिए और विनिर्दिष्ट प्रयोजन से उक्त अचल संपत्ति के उपयोग के लिए अन्य पक्ष को अनुमति देता है, तब अवस्था यह है कि उक्त विलेख को वादीगण के पक्ष में अभिधृति अधिकार सृजित करने वाले पट्टा के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। **राजस्व बोर्ड (ऊपर)** के मामले में करार नौ–दस माह की संक्षिप्त अवधि के लिए था और उक्त अवधि के दौरान सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश दिया कि केवल संक्षिप्त अवधि के लिए अधिकार सृजित किया गया था और इसलिए विलेख को देखते ही लाइसेंस का लक्षण स्पष्ट था और यह पट्टा की कोटि में नहीं आता था। **राजस्व बोर्ड (ऊपर)** में सर्वोच्च न्यायालय का संप्रेक्षण नीचे उद्धृत किया जा रहा है:–

> *^^vpy lifÙk e fgr dk ltu vFkok dkfct gku dk vfèkdkj iVVk dk ykblsl lfHkUu djrk gA ykblsl lifÙk e fgr lftr ugh djrk gft ll ;g lcfèkr g tcfd iVVk , lk djrk gA nlj 'kCnk e] iVVk dh fLFkfr e lifÙk dk miHkkx dju d fy, vfèkdkj dk vrj.k gA ;g ç'u fd D;k l0;ogkj fo'k"k iVVk lftr djrk g ;k ykbl] lno gh i{kk d vk'k; dk ç'u g ftl çR;d ekey dh ifjfLFkfr;k l fu"df"kr djuk gkxkA ;g fofuf'pr dju d ç;ktu l fd D;k etjh fo'k"k iVVk dh dkfV e vkrk g vFkok ykbl sl dh dkfV e] djkj d lkj vkj u fd bld çk:i dk n[kuk vko';d gA***

21. मैंने पट्टा विलेख का सूक्ष्मता से संवीक्षण किया है और प्रकटत: प्रदर्श 1 के परिशीलन पर पता चलता है कि यह विनिर्दिष्ट प्रयोजन के लिए है, इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं की प्रदर्शनी करने के लिए अपीलार्थी को अनुमति देते हुए। यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रतिवादी के पक्ष में हित सृजित किया गया है और उसको संपत्ति का अनन्य कब्जा सौंपा नहीं गया था। वादी एक माह की अवधि के अवसान पर अर्थात् दिनांक 2 दिसंबर, 1986 को वाद परिसर का कब्जा लेने का हकदार था। वादपत्र के अनुसार, वादी का मामला यह है कि पक्षगण किराया की उसी दर पर किराएदारी जारी रखने को सहमत हुए। किराएदार द्वारा इस तथ्य को विवादित किया गया है। वस्तुत:, लिखित कथन में किए गए प्राख्यानों के आधार पर किराएदारी यमुनादास शारदा, उसके पुत्र नरेन्द्र शारदा और उसकी बहु के बीच थी। किराया केवल 2500/- रुपया था और 7500/- रुपया सौंदर्यीकरण की ओर था। अपीलार्थी ने वस्तुत: प्रदर्श 2

से 2/f के माध्यम से भुगतान किया था जो पे-इन स्लिप है जिसके माध्यम से प्रतिवादी ने बैंक में राशि जमा किया था। जमा की गयी कुल राशि 1,10,000/- रुपया थी। वादी के अनुसार, यह 10,000/- रुपया प्रतिमाह की दर पर नवंबर, 1986 से सितंबर, 1987 तक की अवधि के लिए किराया आच्छादित करता है। इस प्रकार, इन तथ्यों के आधार पर 10,000/- रुपया की दर पर किराया का दावा किया गया था और वाद भी इस निष्कर्ष के आधार पर विनिश्चित किया गया था कि किराया की दर 10,000/- रुपया थी। किराया की दर को सिद्ध करने के लिए वादी द्वारा कोई अन्य दस्तावेज अथवा साक्ष्य नहीं दिया गया है।

22. इसके विपरीत, प्रतिवादी अपीलार्थी ने स्वीकार किया है कि आरंभ में एक माह की अवधि के अवसान के बाद पट्टा विलेख (प्रदर्श 1) के अनुसार, किराएदारी जारी रखने के लिए कोई करार अथवा अनुबंध नहीं था। वस्तुत: प्रतिवादी ने अभिवचन किया कि 7500/- रुपया साज-सज्जा और सौंदर्यीकरण के लिए था। प्रतिवादी ने अनेक दस्तावेजों को अभिलेख पर लाया है जैसे प्रदर्श B/2 जो दिनांक 21.4.1990 का वाउचर है जिसमें एक वर्ष के लिए वार्षिक किराया 30,000/- रुपयों की राशि दिखायी गयी है। तिथि के साथ धनंजय सिंह के हस्ताक्षर को अंतर्विष्ट करता यह वाउचर दर्शाता है कि किराया 2500/- रुपया प्रतिमाह था। प्रदर्श B/9 दिनांक 22.1.1992 का 5000/- रुपयों की राशि के लिए एक अन्य वाउचर है जो 2500/- रुपयों की दर पर दो माह का अग्रिम किराया है; यह भी पृष्ठभाग में धनंजय सिंह का हस्ताक्षर अंतर्विष्ट करता है। प्रदर्श B/11 20,040/- रुपयों की राशि के लिए दिनांक 3.7.1990 का वाउचर है जो डी॰ डी॰ कमीशन के अलावा 18 माह का किराया है। धनंजय सिंह ने इस वाउचर पर हस्ताक्षर किया है। प्रदर्श B/15 6,255/- रुपयों की राशि के लिए दिनांक 4.10.1989 का वाउचर है और मेडिकल चेकअप के लिए मद्रास के टिकटों के लिए आर्या ट्रेवल्स को इस राशि का भुगतान किया गया है और दुकान किराया के कारण है जिस पर धनंजय सिंह का हस्ताक्षर है। प्रदर्श B/16 धनंजय सिंह द्वारा हस्ताक्षरित किराया के आंशिक भुगतान को दिखाता 1000/- रुपयों के लिए दिनांक 30.9.1989 का एक अन्य वाउचर है। प्रदर्श B/17 300/- रुपयों के लिए दिनांक 17.8.1989 का एक अन्य वाउचर है। प्रदर्श B/18 यह निर्दिष्ट किए बिना कि किस माह से यह संबंधित है, दो माह के लिए दुकान के किराया की ओर 5000/- रुपयों के लिए दिनांक 12.11.1987 का वाउचर है। प्रदर्श B/26 किराया के रूप में 5000/- रुपयों का भुगतान दर्शाते हुए दिनांक 18.1.1994 का वाउचर है यद्यपि इस पर पी॰ बी॰ लाल अथवा धनंजय सिंह का हस्ताक्षर नहीं है। प्रदर्श B/30 दुकान के किराया की ओर 5000/- रुपयों के लिए दिनांक 15.11.1993 का वाउचर है। अनेक अन्य वाउचरों को यह सिद्ध करने के लिए दाखिल और प्रदर्शित किया गया है कि प्रतिवादी-अपीलार्थी ने पी॰ बी॰ लाल को विभिन्न शीर्षों के अधीन धन का भुगतान किया। प्रदर्श C, श्री पी॰ बी॰ लाल द्वारा अपने हस्ताक्षर के साथ लिखा गया धनंजय सिंह को 6000 रुपयों का भुगतान, करने के लिए कहता हुआ दिनांक 1.5.1989 का स्लिप है। प्रदर्श D और D/1 क्रमश: दिनांक 5.10.1989 और 2.5.1988 का आर्या ट्रेवल्स का केशमेमो है। प्रदर्श E और E/2 हवाई यात्रा टिकट खरीदने के लिए शारदा कलर लैब के नाम में दिए गए बिल हैं। प्रदर्श F समय-समय पर प्रतिवादी द्वारा किए गए भुगतान को दर्शाते हुए धनंजय सिंह द्वारा दिया गया विवरण है। इसे यह सिद्ध करने के लिए प्रदर्शित किया गया है कि प्रतिवादी ने दिनांक 31.3.1992 तक 68,419/- रुपयों के किराए का आधिक्य में भुगतान किया है यद्यपि इस पर पी॰ बी॰ लाल का हस्ताक्षर नहीं है। वस्तुत:, यह विभिन्न अन्य शीर्षों के अधीन भुगतान दर्शाता है। प्रदर्श G-श्रृंखला शारदा कलर लैब फर्म का लाभ-हानि खाता है। प्रदर्श H पी॰ बी॰ लाल और शारदा कलर लैब के भागीदार यमुनादास शारदा और नरेन्द्र कुमार शारदा के बीच पाँच वर्ष की अवधि के लिए निष्पादित गैर रजिस्टर्ड पट्टा विलेख की छाया प्रतिलिपि पर केनरा बैंक के शाखा प्रबंधक का सील और हस्ताक्षर है। यह विलेख ब॰ सा॰ 9 केनरा बैंक के प्रबंधक द्वारा सिद्ध किया गया है किंतु इसे प्रदर्श के रूप में चिन्हित नहीं किया गया है क्योंकि यह रजिस्ट्रेशन की कमी के कारण साक्ष्य में ग्राह्य नहीं था और अवर न्यायालय का दृष्टिकोण था कि इसे विधित: सिद्ध नहीं किया गया था। किंतु, उक्त पट्टा विलेख अभिलेख का भाग भी है जो दर्शाता है कि सहमत किराया 2500/- रुपया था।

23. मैंने प्रत्येक वाउचर का निरीक्षण किया है और मैं पाती हूँ कि अनेक दस्तावेजों पर विनिर्दिष्ट प्राख्यान है कि 2500/- रुपयों की दर पर दो माह का किराया दिया गया है जिसे धनंजय सिंह द्वारा प्राप्त किया गया है। स्पष्टत:, इन वाउचरों को आपत्ति के बिना स्वीकार और प्रदर्शित किया गया है। इस प्रकार केवल ये वाउचर ही ऐसे दस्तावेज हैं जहाँ किराया का दर उल्लिखित किया गया है।

24. यह सत्य है कि एयर टिकट के लिए अथवा किसी अन्य प्रयोजन से अग्रिम भुगतान, जहाँ ''किराया'' उल्लिखित नहीं किया गया है, को नोटिस की कमी के कारण किराया में समायोजित नहीं किया जा सकता है। किंतु, मेरे मत में, अनेक वाउचर हैं जो विवादित नहीं हैं और जिन्हें प्रदर्श के रूप में चिन्हित किया गया है। वे स्पष्टत: 2500/- रुपया के रूप में किराया के दर का उल्लेख करते हैं और जिन्हें धनंजय सिंह द्वारा सम्यक रूप से हस्ताक्षरित किया गया है; वह स्वीकृत रूप से सदैव न्यायालय में उपस्थित था किंतु 2500/- रुपयों के रूप में किराया की दर दर्शाते हुए वाउचरों पर अपने हस्ताक्षरों को विवादित करने के लिए कठघरे में नहीं आया था। केवल यही किराया के दर के संबंध में प्रतिवादी-अपीलार्थी के प्राख्यान को बल प्रदान करता है। इसकी दृष्टि में, मैं यह स्वीकार करने में सक्षम नहीं हूँ कि वादी 10,000/- रुपया प्रतिमाह के रूप में किराया की दर को स्थापित करने के भार का निर्वहन करने में सक्षम था।

25. वादी की ओर से प्रस्तुत मौखिक साक्ष्य के संवीक्षण पर श्रीमती रीता लाल का साक्ष्य वादपत्र के मामले को सिद्ध करने के लिए तात्विक प्रतीत होता है। अ॰ सा॰ 1 ने केवल प्रदर्श 1 सिद्ध किया है किंतु उसने एक माह के अवसान के बाद आगे नवीकरण के संबंध में अपनी अनभिज्ञता प्रकट की है, उसका साक्ष्य बहुत तात्विक नहीं है। उसने आगे अभिसाक्ष्य दिया है कि धनंजय सिंह पी॰ बी॰ लाल का केयरटेकर था और वह न्यायालय की कार्यवाही के दौरान सदैव न्यायालय में उपस्थित रहा है। इसी प्रकार से, अ॰ सा॰ 2, 3 और 4 का साक्ष्य भी अत्यन्त प्रासंगिक नहीं है। इस प्रकार, केवल अ॰ सा॰ 6 एकमात्र गवाह है जिसने डिपोजिट पर्चियों को सिद्ध किया है। यद्यपि प्रदर्श 2 से 2/1 केयरटेकर धनंजय सिंह द्वारा भरा गया था, जिसका परीक्षण वादी द्वारा नहीं किया गया था। उसने चेक अथवा कैशमेमो अथवा मनीआर्डर कूपन द्वारा किसी भुगतान से इनकार किया है किंतु पैराग्राफ 6 में वह स्वीकार करती है कि धनंजय सिंह केयरटेकर है और वह उसको किए गए भुगतान के वाउचर पर हस्ताक्षर करता था। वह आगे स्वीकार करती है कि उसका पति हवाई जहाज से मद्रास इलाज करवाने जाता था और धन धनंजय सिंह द्वारा संग्रहित किया जाता था जिसे किराया में समायोजित किया गया था। उसने आगे स्वीकार किया कि उसका पति भुगतान किए गए किराया का हिसाब रखता था किंतु उसने लिखित में किराया स्वीकार करने का रसीद कभी नहीं दिया था। केयरटेकर धनंजय सिंह अपीलार्थी की ओर से किराया संग्रहित करता था और जिस तिथि पर उसका बयान दर्ज किया गया था, उस तिथि पर भी वह केयरटेकर के रूप में कार्य कर रहा है। अ॰ सा॰ 6 कथन करती है कि किराया के लिए 10,000/- रुपया प्रतिमाह उसके आयकर रिटर्न में दर्शाया गया था, किंतु इस प्राख्यान को किसी दस्तावेजी प्रमाण अथवा आयकर रिटर्न की प्रति द्वारा सिद्ध नहीं किया गया है।

26. बयानों और साक्ष्य के सूक्ष्म विश्लेषण पर, जिन्हें वादी से किसी आपत्ति के बिना प्रदर्शित किया गया था सिवाए प्रदर्श F के जो दिनांक 24.10.1986 से आरंभ होकर दिनांक 31.3.1982 तक के मध्यक्षेपी अवधि में 2500/- रुपया प्रतिमाह की दर पर किराया की कटौती और वादी को किए गए भुगतानों का विवरण देते हुए पी॰ बी॰ लाल की ओर से किसी अमरेन्द्र मिश्रा द्वारा रखा गया खाता है। प्रकटत: वादी इस मामले के साथ आया है कि अपीलार्थी पर किराया बकाया था और किराया की दर 10,000/- रुपया थी। किराया के रूप में 10,000/- रुपया का दावा करने का आधार पट्टा विलेख (प्रदर्श 1) है। अत:, मेरे मत में, यह अभिनिर्धारित करने के लिए कि प्रतिवादी-अपीलार्थी अधिनियम के अर्थ के अंतर्गत व्यतिक्रमी है और किराया के बकाया के आधार पर बेदखल किए जाने का दायी है। वादी ने अनेक वाउचरों

से किराया का भुगतान भी स्वीकार किया है और उन वाउचरों का परिशीलन दर्शाता है कि धनंजय सिंह जो स्वीकृत रूप से वादी का केयरटेकर है, द्वारा सम्यक रूप से हस्ताक्षर करके किराया स्वीकार किया जाता था और विशेषत: यह स्पष्ट स्वीकृति कि पी॰ बी॰ लाल किडनी की समस्या के कारण हजारीबाग में रहता था और किराया धनंजय सिंह के माध्यम से प्राप्त किया जाता था। वाउचर स्पष्टत: 2500/- रुपए किराया की दर का उल्लेख करते हैं। अवर न्यायालय ने पट्टा विलेख (प्रदर्श 1) के आधार पर 10,000/- रुपए किराया की दर का उल्लेख किया। अवर न्यायालय ने पट्टा विलेख (प्रदर्श 1) के आधार पर 10,000/- रुपया के रूप में किराया का दर संगणित किया है। उक्त विलेख इस निष्कर्ष पर आने के लिए पर्याप्त नहीं है कि बाद की अवधि के लिए भी किराया की दर 10,000/- रुपया थी। मेरा मत यह भी है कि उक्त विलेख यह अभिनिर्धारित करने के लिए पर्याप्त नहीं है कि किराएदारी बाद की अवधि के लिए भी 10,000/- रुपया प्रतिमाह पर जारी रही।

27. दूसरी ओर, एकमात्र तर्क यह है कि एअर टिकट की ओर भुगतानों के समायोजन के लिए किराएदार की ओर से मकान मालिक को कोई नोटिस नहीं दिया गया है अथवा जहाँ केयरटेकर यह उल्लिखित करने में विफल रहा कि किराया की दर 2500/- रुपया थी। अवर न्यायालय यह परीक्षण करने का दायी था कि जबएक बार यह सिद्ध करने के लिए अभिलेख पर अविवादित दस्तावेज हैं कि 2500/- रुपए की दर पर विभिन्न अंतरालों पर किराया का भुगतान किया गया था, न्यायालय यह उपधारित करते हुए कि प्रतिवादी यह सिद्ध करने में सक्षम नहीं रहा था कि किराया की दर 2500/- रुपया थी, वादी के पक्ष में निष्कर्ष दर्ज नहीं कर सकता था। वादी प्रतिवादी की कमी का कोई लाभ नहीं उठा सकता है। वादी को दिए गए साक्ष्य के आधार पर अपना मामला सिद्ध करना होगा। मैं इन तथ्य की अनदेखी नहीं कर सकती कि प्रतिवादी ने लिखित कथन के प्रारंभ में ही यह पक्ष रखा है कि किराया की दर 2,500/- रु॰ थी। किसी करार विलेख अथवा वादी द्वारा जारी किसी किराया रसीद की अनुपस्थिति में यह अभिनिर्धारित करके कि किराया की दर 10,000/- रुपया प्रति माह थी, प्रतिवादी के विरुद्ध कोई प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला नहीं जा सकता था और इस प्रकार प्रतिवादी व्यतिक्रमी है। मैंने यह भी गौर किया है कि बकाया की अवधि के संबंध में और ब्याज की दर सिद्ध करने के लिए भी कोई निष्कर्ष नहीं है। वादी ने प्रदर्श 2 से 2/f पर विश्वास किया है। उक्त प्रदर्शों में शब्द ''किराया'' का उल्लेख नहीं है और विभिन्न राशियों के संबंध में बैंक पे-इन-स्लिप 5000/- रुपया, 10,000/- रुपया, 15,000/- रुपया और 30,000/- रुपया हैं। इस प्रकार, यह सिद्ध करने के लिए कि किराया की दर 10,000/- रुपया प्रतिमाह थी, वादी की ओर से लगभग कोई साक्ष्य नहीं है यद्यपि अ॰ सा॰ 6 ने कथन किया कि वह अपने आयकर रिटर्न में 10,000/- रुपया प्रतिमाह दर्शाया करती थी। यह भी किसी प्रमाण के बिना न्यायालय में कोरा बयान मात्र है।

28. जहाँ तक धनंजय सिंह को पेश नहीं किए जाने के संबंध में अपीलार्थी की ओर से किए गए तर्क का सम्बन्ध है, यह भी अत्यन्त प्रासंगिक लोप अथवा वादी की ओर से सोचा-विचारा इरादा है। धनंजय सिंह द्वारा हस्ताक्षरित वाउचरों के माध्यम से भुगतान जिसे अ॰ सा॰ 6 द्वारा स्वीकार किया गया पाया गया है के संबंध में सर्वोत्तम साक्ष्य धनंजय सिंह था। अ॰ सा॰ 1 के अनुसार, वह न्यायालय की कार्यवाही के दौरान सदैव न्यायालय में उपस्थित था किंतु क्यों उसे वादी की ओर से रोक लिया गया था और परीक्षण नहीं किया गया था, संदेह की छाया डालता है और अपीलार्थी की ओर से दिए गए तर्क की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। यह सत्य नहीं हो सकता है कि उसे आशयपूर्वक रोका गया था और गवाह के रूप में परीक्षण नहीं किया गया था किंतु सबसे महत्वपूर्ण गवाह, जो किरायेदार और उन्हीं शर्तों और निबंधनों पर जो पट्टा विलेख निष्पादित किए जाने के समय पर अनुबंधित की गयी थी, किराएदार के रूप में प्रतिवादी का बना रहना सिद्ध करने के लिए तात्विक हो सकता था, को वापस रोक लेने के लिए धारणा और उपधारणा है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 (g) ऐसा साक्ष्य प्रावधानित करती है जो प्रस्तुत नहीं किया गया है किंतु यदि प्रस्तुत किया जाता, उस व्यक्ति जो इसे वापस रोक लेता है के विरुद्ध हो सकता था। अत:, वर्तमान मामले में, चूँकि पी॰ बी॰ लाल, जो मूल पट्टा विलेख का पक्ष था, की मृत्यु कठघरे

में आने से पहले हो गयी, केवल धनंजय सिंह ही स्थापित कर सकता था कि पी॰ बी॰ लाल की ओर से उसके द्वारा प्राप्त की गयी राशि किराया के लिए नहीं थी बल्कि यह कर्ज अथवा अन्यथा के रूप में कतिपय राशि थी। चूँकि तथ्य की उपधारणा प्रमाण के भार को प्रभावित करती है, वर्तमान मामले में, लिखित कथन में किए गए प्राख्यानों को खंडित करने का भार वादी के कंधों पर था किंतु दु:खद रूप से उसे प्रस्तुत नहीं किया गया था। इसके विपरीत, अनेक गवाह, जो बहुत तात्विक नहीं थे का परीक्षण वादी की ओर से किया गया था किंतु धनंजय सिंह का नहीं जो न्यायालय में उपस्थित था जैसा अ॰ सा॰ 1 द्वारा स्वीकार किया गया है। इस न्यायालय के पास प्रतिकूल उपधारणा करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। अ॰ सा॰ 6 ने यह भी स्वीकार किया है कि वह वादी का केयरटेकर बना हुआ है। प्रदर्श B श्रृंखला पर धनंजय सिंह द्वारा हस्ताक्षर किया गया था और इस प्रकार वह उन दस्तावेजों से इनकार करने अथवा इन्हें स्वीकार करने वाला सर्वोत्तम व्यक्ति था। सर्वोच्च न्यायालय ने **पुनीत राय बनाम दिनेश चौधरी, [2008 (3) Supreme Court Cases 204,** (पैराग्राफ 14 और 15) मामले में अभिनिर्धारित किया है कि व्यक्ति जो सर्वोत्तम साक्ष्य को रोक लेता है, के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकालना ही होगा।

29. वादी का मामला इस तथ्य पर आधारित है कि प्रतिवादी पर किराया का बकाया बाकी है और 10,000/- प्रतिमाह की दर पर किराया किराएदार द्वारा भुगतान किए जाने का दायी था। प्रतिवादी ने किराया की दर को विवादित किया और वाउचरों के रूप में दस्तावेजी साक्ष्य दिया है जिसमें वादी के केयरटेकर धनंजय सिंह द्वारा धन स्वीकार किया गया था। उसने पृष्ठांकन किया था कि किराया की दर 2500/- रुपया प्रतिमाह थी। वादी गवाह (अ॰ सा॰ 1) ने पूरी कार्यवाहियों के दौरान न्यायालय में धनंजय सिंह की उपस्थिति को स्वीकार किया। प्रतिस्थापित वादी रीता लाल (अ॰ सा॰ 6) स्वीकार करती है कि धनंजय सिंह किराएदार *(sic* केयरटेकर) के रूप में उस तिथि पर जिस पर उसका साक्ष्य दर्ज किया गया था, बना हुआ है। इन परिस्थितियों की दृष्टि में, वह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण और तात्विक गवाह था किंतु अज्ञात कारणों से उसका परीक्षण नहीं किया गया था। इस प्रकार, ऐसे तात्विक गवाह को पेश नहीं करने के प्रश्न पर सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की दृष्टि में प्रतिकूल निष्कर्ष निकाले जाने के लिए पर्याप्त है।

30. इसी प्रकार से, **प्रदीप बुरगोहेन बनाम प्रनति फूकन, [2010 (11) SCC 108],** मामले में सर्वोच्च न्यायालय का दृष्टिकोण था कि तात्विक गवाह को रोकने की स्थिति में पक्ष के अलाभ की उपधारणा न्यायालय को प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने की छूट निश्चय ही देती है। उक्त निर्णय के पैराग्राफों 28 और 29 का पठन निम्नलिखित है:–

> *"28. vihykFkh d ikl LohÑr :i l miyC/k nLrkotk] tk vihykFkh }kjk LFkkfir fooj.k fd Hk"V vkpj.k dh ?kVuk ml vkj@vFkok ml d fuokpu ,tUV dk fjikV dh x;h Fkh] dk fo'oluh;rk çnku djx ftldk i'k ugh fd;k tkuk vihykFkh d fo#) çfrdy fu"d"k dk mnHkkr djxk fd ;k rk ,l ifjokn dHkh ugh fd, x, Fk vFkok ;fn bUg fd;k x;k Fkk] o ;kfpdk e vfHkdfFkr rjhd l vkj frfFk;k ,o LFkkuk ij çR;Fkh }kjk fd, x, Hk"V vkpj.k d lC/k e dkb vkjki vrfo"V ugh djr FkA*
>
> *29. ge bl lC/k e lk{; vfèkfu;e] 1872 dh èkkjk 114 d mnkgj.k (g) dk fufn"V dj ldr g tk U;k;ky; dk 0;frØeh i{k d fo#) bl çHkko dh çfrdy mi/kkj.kk dju dh vuefr nrk g fd lk{;] tk gk ldrk Fkk fdr çLrr ugh fd;k x;k g] dk ;fn çLrr fd;k tkrk] ;g ml 0;fDr tk bl okil jkdrk g d çfrdy gk ldrk FkkA ;g fu;e lKkr lfDr e vrfo"V g% Omnia praesumuntur contra Spoliatorem. ;fn dkb 0;fDr xyr :i l lk{; jkdrk g] LohÑr vFkok fl) rF;k d lkFk lxr ml d vykHk d fy, çR;d mi/kkj.kk dh tk,xhA***

31. जहाँ तक पक्ष के असंयोजन के प्रश्न का संबंध है, यह पट्टा विलेख के आधार पर तर्क है जिसको अभिकथित रूप से पश्चातवर्ती तिथि पर निष्पादित किया गया था और जिसका उपयोग केनरा बैंक से कर्ज प्राप्त करने के लिए किया गया था। नि:संदेह वादी द्वारा उक्त विलेख का उपयोग किया गया था किंतु बाद में वे न्यायालय में उक्त विलेख से मुकर गए थे पर प्रतिवादी के कब्जा में नहीं था। केनरा बैंक के प्रबंधक (ब॰ सा॰ 9) ने इसे प्रस्तुत किया था और स्वीकार किया था कि पी॰ बी॰ लाल और नरेन्द्र कुमार शारदा के बीच अप्रिल, 1989 का विलेख बैंक के पास था। केनरा बैंक के तत्कालीन प्रबंधक श्री के॰ बी॰ प्रसाद राव, डोरंडा शाखा, राँची द्वारा उक्त विलेख पर हस्ताक्षर किया गया था। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि वह लेखन और हस्ताक्षर से परिचित थे और बैंक के चिन्ह और मुहर को पहचाना था।

32. इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि नरेन्द्र कुमार शारदा और पी॰ बी॰ लाल के बीच कुछ करार था और इसके पश्चात् प्रदर्श B/2 के तहत 2500/- रुपया की दर पर दिनांक 21 अप्रिल, 1990 के प्रभाव से वाउचरों पर धनंजय सिंह द्वारा किराया स्वीकार किया जा रहा था। नि:संदेह, अप्रिल, 1989 का पट्टा विलेख गैर-रजिस्टर्ड दस्तावेज है किंतु नरेन्द्र कुमार शारदा द्वारा वाउचरों प्रदर्श B/2 आगे द्वारा पश्चातवर्ती भुगतान और पी॰ बी॰ लाल की ओर से धनंजय सिंह द्वारा इसको स्वीकार किया जाना इस उपधारणा को वस्तुत: उद्भूत करता है कि दोनों के बीच किसी प्रकार का करार हुआ था। किंतु, वाद को केवल पक्षों के असंयोजन के कारण खारिज नहीं किया जा सकता है किंतु ऊपर चर्चा किए गए कारणों से, यह प्रकट है कि नरेन्द्र कुमार शारदा और पी॰ बी॰ लाल के बीच बाद में किराएदारी जारी रही थी।

33. वादी-प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान अधिवक्ता का अपने प्रतिवाद के समर्थन में कि दो माह की अवधि के लिए किराया के गैर भुगतान पर किराएदार को व्यतिक्रमी अभिनिर्धारित किया जा सकता है यद्यपि व्यतिक्रम लगातार दो माह के लिए नहीं हो सकता है। वादीगण-प्रत्यर्थीगण की ओर से यह तर्क **विजय साहू बनाम सुखराम प्रसाद, 2001 (3) Jhr. C.R. 482 (Jhr.)** में इस न्यायालय के निर्णय पर आधारित है। प्रत्यर्थी द्वारा विश्वास किया गया एक अन्य निर्णय **बलवंत सिंह एवं अन्य बनाम आनन्द कुमार शर्मा एवं अन्य,** 2000 (1) PLJR 975, में हैं। इस न्यायालय की खंडपीठ ने अभिनिर्धारित किया कि बी॰ बी॰ सी॰ अधिनियम के प्रावधान स्व अंतर्विष्ट विशेष विधान है और धारा 11 का अध्यारोही प्रभाव है जो संविदा द्वारा नियत समय के भीतर और यदि ऐसी संविदा नहीं है, अगले माह के अंतिम दिन तक किराया के भुगतान की आज्ञा देती है। यद्यपि अधिनियम किराएदार की सुविधानुसार किराया के भुगतान के लिए विवक्षित संविदा परिकल्पित करती है। वर्तमान मामले में, बी॰ बी॰ सी॰ अधिनियम और इसकी प्रक्रिया की आवश्यकता पर विवाद नहीं किया गया है।

34. वर्तमान मामले में, अपीलार्थी का लगातार दृष्टिकोण है कि किराया की दर 2500/- रुपया है। वर्ष 1986 में निष्पादित पट्टा विलेख को छोड़ कर किराया के दर के संबंध में वादी के दावा को सिद्ध करने के लिए अभिलेख पर कुछ भी नहीं है। उसके बाद का कोई अन्य दस्तावेज नहीं है। वादी विलेख के अवसान के बाद किराया की दर और व्यतिक्रम की अवधि को सिद्ध करने के अपने भार का निर्वहन करने में विफल रहा है। यह केवल यह कहता है कि अक्टूबर, 1987 के बाद प्रतिवादी द्वारा किराया का भुगतान नहीं किया गया था। सिंतबर, 1987 तक किराया का भुगतान स्वीकार किया गया है और अनेक रसीद/वाउचर, आदि अग्रिम भुगतान को सिद्ध करते हैं। अत: यह निर्णय भी परिणामहीन है।

35. इस प्रतिवाद की कोई समायोजन करने के लिए नोटिस नहीं दिया गया था, के समर्थन में वादीगण-प्रत्यर्थीगण की ओर से उद्धृत निर्णय वर्तमान अपील में अंतर्ग्रस्त विवाद में तात्विक नहीं है। वस्तुत: यह उपधारित करते हुए कि एयर टिकट का भुगतान किराया के रूप में नहीं है और अन्य अग्रिम को

विचार में नहीं लिया गया है, तब भी 30,000/- रुपयों की एकमुश्त राशि का भुगतान और अन्य भुगतान भी विनिर्दिष्टत: उल्लिखित करता था कि 2500/- रुपया की दर पर किराया के रूप में राशि का भुगतान धनंजय सिंह को किया जा रहा है जो केयरटेकर था और पी॰ बी॰ लाल की ओर से इसे स्वीकार किया था, जैसा वादी द्वारा स्वीकार किया गया है, यह अभिनिर्धारित करने के लिए पर्याप्त है कि वादी ने किराया की दर और बकाया की अवधि के संबंध में अपने भार का निर्वहन नहीं किया है। इसके अतिरिक्त, मैं प्रतिवादी-अपीलार्थी की ओर से किए गए निवेदन के साथ सहमत होने की प्रवृति रखती हूँ कि विलेख (प्रदर्श 1) वस्तुत: लाइसेंस था और न कि पट्टा। संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 105 में शब्द ''पट्टा'' को परिभाषित किया गया है। अचल संपत्ति का पट्टा प्रतिफल के लिए अभिव्यक्त अथवा विवक्षित कतिपय समय के लिए ऐसी संपत्ति का उपभोग करने के अधिकार का अंतरण है। वर्तमान मामले में, इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं की प्रदर्शनी करने के लिए एक माह की अवधि के लिए वास-सुविधा दी गयी थी किंतु कोई अनुबंध नहीं था कि कब्जा जारी रहेगा और कि किसी हित का अंतरण किया जा रहा है यद्यपि वादी ने कथन किया है कि उन्हीं निबंधनों और शर्तों पर किराएदारी जारी रही। इस प्राख्यान को सिद्ध करने के लिए कुछ भी नहीं है। इसके विपरीत, वादी की ओर से प्रस्तुत गवाहों ने केवल यह कथन किया कि उन्होंने पट्टा विलेख देखा है। वे अवगत हैं कि ऐसा विलेख निष्पादित किया गया था किंतु किसी अनुबंध अथवा ऐसे निबंधनों और शर्तों का जारी रहना अथवा एक माह के समय के अवसान के बाद पक्षों के बीच अनुबंध समाप्त हो जाएगा, इसके संबंध में कुछ भी नहीं है।

36. इन परिस्थितियों में, मैं अभिनिर्धारित करती हूँ कि वादी यह सिद्ध करने कि किराया 10,000/- रुपया प्रतिमाह था, में सक्षम नहीं हुआ है और वे प्रतिवादी द्वारा किए गए भुगतान की रसीद को विवादित करने में सक्षम नहीं हुए हैं बल्कि उसकी ओर से स्वीकार किया जाना स्वीकार किया गया है। जब एक बार पृष्ठांकन के साथ वाउचरों के माध्यम से भुगतान कि यह 2500/- रुपए की दर पर किराया के लिए था, को विवादित नहीं किया गया था, तब यह 'किराया' नहीं था और विनिर्दिष्ट माह का उल्लेख कोई मदद नहीं कर सकता है, विशेषत: जब सबसे तात्विक गवाह, जिसने वाउचरों पर हस्ताक्षर किया और पृष्ठांकन के साथ धन स्वीकार किया, को रोक लिया गया था। अत:, मैं निष्कर्षित करती हूँ कि किराया की दर 2500/- रुपया प्रतिमाह थी। वस्तुत: अग्रिम भुगतान किया गया था। प्रतिवादी को बी॰ बी॰ सी॰ अधिनियम के अर्थ के अंतर्गत व्यतिक्रमी अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है और इस प्रकार किराया के बकाया के आधार पर बेदखली का निर्णय और डिक्री संपोषणीय नहीं है। मैं यहाँ ऊपर चर्चा किए गए कारणों से विचारण न्यायालय द्वारा पहुँचे गए निष्कर्षों के साथ सहमत नहीं हूँ जिन्हें शून्यकृत किया जाता है।

37. ऊपर चर्चा किए गए कारणों से अपील सफल होती है। विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है। व्यय को लेकर आदेश नहीं है।

---

ekuuh; ihñ ihñ HkVV] U;k;efr

सूर्यनारायण राय एवं अन्य

cuke

बिहार राज्य एवं अन्य

CWJC No. 4903 of 1995 (P). Decided on 19th April, 2012.

संथाल परगना अभिधृति (पूरक प्रावधान) अधिनियम, 1949—धारा 6 सह-पठित संथाल परगना अभिधृति (पूरक) नियमावली, 1950 का नियम 3 (5)—प्रधान के पद से बर्खास्तगी–रिट

याचिका के लंबित रहने के दौरान मूल याची की मृत्यु–नयी नियुक्ति करने के लिए प्रत्यर्थी-प्राधिकारीगण को मामला निर्दिष्ट करने की आवश्यकता है–प्रत्यर्थीगण द्वारा विधि के अनुरुप नयी नियुक्ति की प्रक्रिया आरंभ करने की आवश्यकता है। (पैराएँ 7 से 10)

अधिवक्तागण.–M/s J. P. Jha, S.P. Jha, A. Prakash, For the Petitioners; Mr. Altab Hussain, For the Respondents.

आदेश

भारत के संविधान के अनुच्छेदों 226 और 227 के अधीन वर्तमान रिट याचिका दाखिल करके याचीगण ने पुनरीक्षण विविध अपील सं॰ 70/89-90 दिनांक 17.4.95 में विद्वान आयुक्त, संथाल परगना डिविजन, दुमका के आदेश, जिसके द्वारा उन्होंने पुनरीक्षण विविध अपील सं॰ 137/1987-88 दिनांक 24.4.89 में उपायुक्त दुमका, जिन्होंने पी॰ डी॰ केस सं॰ 56/86-87 दिनांक 21.8.87 में सब-डिविजनल अधिकारी, दुमका के आदेश को अपास्त कर दिया है, के आदेश को मान्य ठहराया है, के अभिखंडन के लिए समुचित रिट, आदेश अथवा निर्देश जारी करने के लिए प्रार्थना किया है। आयुक्त ने उपायुक्त के पूर्वोक्त आदेश को मान्य ठहराते हुए रामगढ़ पुलिस थाना, जिला दुमका के अधीन साधुडीह मौजा के प्रधान के पद से याची की बर्खास्तगी के आदेश को अनुमोदित किया है।

2. याची का मामला यह है कि उपायुक्त और आयुक्त ने अपने पूर्वोक्त आदेशों द्वारा इस तथ्य के अलावा कि उन्होंने सब-डिविजनल अधिकारी, दुमका के आदेश और अंचलाधिकारी, रामगढ़ (भूस्वामी) की जाँच रिपोर्ट को अनदेखा किया है, तात्विक गलती और संवैधानिक अवैधता किया है। याची ने वर्तमान याचिका में तथ्य और विधि के अनेक प्रश्नों को उठाया है और पूर्वोक्त आदेशों को चुनौती दिया है किंतु इस याचिका के लंबित रहने के दौरान याची हीरा राय की मृत्यु दिनांक 28.4.96 को हो गयी और तत्पश्चात् उसके विधिक उत्तराधिकारियों को अभिलेख पर लाया गया है।

3. याची के विद्वान वरीय अधिवक्ता ने निवेदन किया कि संथाल परगना अभिधृति (पूरक प्रावधान) अधिनियम, 1949 की धारा 6 में अंतर्विष्ट प्रावधानों की दृष्टि में प्रत्यर्थी प्राधिकारीगण को विहित तरीके से प्रधान (ग्राम मुखिया) की नयी नियुक्ति करना होगा।

4. याची के विद्वान वरीय अधिवक्ता ने संथाल परगना अभिधृति (पूरक) नियमावली, जिसे संथाल परगना अभिधृति (पूरक प्रावधान) अधिनियम, 1949 की धारा 71 के अधीन विरचित किया गया है, के नियम (3) के उपनियम (5) को निर्दिष्ट किया और इस पर विश्वास किया और निवेदन किया कि प्रधान (ग्राम मुखिया) की नियुक्ति के लिए विहित प्रक्रिया के मुताबिक प्रधान की नियुक्ति करने के लिए प्रत्यर्थी प्राधिकारीगण को नए सिरे से कार्य करना होगा और इसलिए प्रधान की नियुक्ति करने के प्रयोजन से आरंभ से प्रक्रिया शुरू करने के लिए इस मामले को प्रत्यर्थी प्राधिकारीगण को निर्दिष्ट किया जा सकता है।

5. याची के विद्वान वरीय अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान संथाल परगना अभिधृति (पूरक) नियमावली, 1950 की अनुसूची V की ओर खास और प्रधानी गाँव में मुखिया की नियुक्ति के संबंध में आकृष्ट किया है।

6. याची के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान इस ओर भी आकृष्ट किया है कि हाल में **''सोगेन मुर्मू बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य, 2012 (2) JCR 1 (Jhr.)"** मामले में इस न्यायालय द्वारा विवाद्यक को संबोधित किया गया है।

7. यह प्रतीत होता है कि राज्य द्वारा प्रतिशपथ पत्र दाखिल नहीं किया गया है, किंतु प्रत्यर्थी राज्य के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि इस तथ्य की दृष्टि में कि मूल याची की मृत्यु हो गयी है और इसलिए, विधि के अनुरूप प्रत्यर्थी प्राधिकारीगण द्वारा नयी नियुक्ति की प्रक्रिया आरंभ करने की आवश्यकता है और इसलिए, उन्हें आपत्ति नहीं है यदि विधि के अनुरूप, प्रधान की नियुक्ति करने के लिए आरंभ से कार्य शुरू करने के लिए संबंधित प्राधिकारीगण को मामला निर्दिष्ट किया जाता है।

8. पूर्वोक्त परस्पर विरोधी निवेदनों पर विचार करते हुए और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के परिशीलन पर, यह प्रतीत होता है कि याची ने प्रत्यर्थी प्राधिकारीगण द्वारा पारित आदेशों को चुनौती दिया है किंतु इस याचिका के लंबित रहने के दौरान दिनांक 28.4.96 को मूल याची की मृत्यु हो गयी और तत्पश्चात, उसके विधिक उत्तराधिकारियों को अभिलेख पर लाया गया है। अत: याची के विद्वान वरीय अधिवक्ता ने सही प्रकार से इंगित किया है कि संथाल परगना अभिधृति (पूरक प्रावधान) अधिनियम, 1949 की धारा 5 एवं 6 तथा प्रासंगिक नियम अर्थात संथाल परगना अभिधृति (पूरक) नियमावली के नियम 3 के उप-नियम (5) में यथा अंतर्विष्ट प्रावधानों की दृष्टि में नई नियुक्ति करने का कार्य अपने हाथ में लेने के लिए वर्तमान मामला प्रत्यर्थी प्राधिकारियों को निर्दिष्ट किए जाने की जरूरत है जिसे संथाल परगना अभिधृति (पूरक प्रावधान) अधिनियम, 1949 की धारा 71 के अधीन विरचित किया गया है। संथाल परगना अभिधृति (पूरक प्रावधान) अधिनियम, 1949 की धाराओं 5 और 6 को यहाँ नीचे उद्धृत किया जाता है:

> *"5. **[kkl xke d xke ef[k;k dh fu;fDr-**&j;r vFkok fdlh [kkl xke d HkLokeh d vkonu ij vkj fofgr rjhd l vfHkfuf'pr xko d tekcnh j;rk dh de l de nk frgkb dh lgefr l mik;Dr ?kk"k.kk dj ldrk g fd xko d fy, ef[k;k fu;Dr fd;k tk,xk vkj rc fofgr rjhd l fu;fDr dju d fy, vxlj gk ldrk gA*
>
> *6. **xke ef[k;k dh eR; d ckj e HkLokeh }kjk fjikV-**&tc fdlh xko] tk [kkl ugh g] d xke ef[k;k dh eR; gk tkrh g] xko dk HkLokeh bl ?kVuk d rhu ekg d Hkhrj mik;Dr dk fofgr rjhd l xke ef[k;k dh fu;fDr dh nf"V d lkFk bl rF; dk fjikV nxkA**"*

9. संथाल परगना अभिधृति (पूरक) नियमावली के नियम (3) जिसे दिनांक 23 जनवरी, 1951 की अधिसूचना के तहत राजस्व विभाग द्वारा प्रकाशित किया गया था, का पठन निम्नलिखित है:–

> *"(5) èkkjk 5 vFkok èkkjk 6 d vèkhu ef[k;k dh fu;fDr e mik;Dr ;FkklHko vulph V e fofgr fu;ek dk vulj.k djxk flok, tgk ; fu;e] vfHk0;Dr :i l vFkok vko';d foo{kk }kjk vU;Fkk çkoèkkfur djr gA**"*

10. नियुक्ति करने की प्रक्रिया संथाल परगना अभिधृति (पूरक) नियमावली, 1950 की अनुसूची V में भी विहित की गयी है। अत:, इस न्यायालय का दृष्टिकोण है कि इस मामले पर विचार करते हुए आगे किसी विस्तारपूर्वक चर्चा की आवश्यकता नहीं है और विधि के अनुरूप प्रधान (ग्राम मुखिया) की नियुक्ति करने के प्रयोजन से आरंभ से प्रक्रिया शुरू करने के लिए इस मामले को प्रत्यर्थी प्राधिकारीगण के पास भेजने की आवश्यकता है।

तद्नुसार, यह रिट याचिका निपटायी जाती है।

ekuuh; ,pñ lhñ feJk] U;k;efr

मोहर सोरेन एवं एक अन्य

cuke

झारखंड राज्य

Cr. Revision No. 887 of 2010. Decided on 9th April, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 409 एवं 468—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 239—लोक सेवक द्वारा न्यास का दांडिक भंग एवं कूटरचना–उन्मोचन आवेदन को अस्वीकार किया जाना–नरेगा योजना के धन को अवैध रूप से निकाला जाना–यह तथ्य कि अन्वेषण के दौरान याचीगण के पक्ष में कुछ सामग्रियाँ आयी हैं, इस चरण पर उनको उन्मोचित करने का आधार नहीं बन सकता है–याचीगण को इस तथ्य की दृष्टि में उन्मोचित नहीं किया जा सकता है कि प्राथमिकी में याचीगण के विरुद्ध चेकों का अभिरक्षक होने का प्रत्यक्ष अभिकथन है–पुनरीक्षण याचिका खारिज। (पैराएँ 5 से 8)

अधिवक्तागण.–Mr. Sanjeev Thakur, For the Petitioners; APP, For the State.

आदेश

दोनों पक्षों के अधिवक्ता को सुना गया।

2. याचीगण को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 409 और 468 के अधीन अपराध के लिए गोड्डा (पोरैयाहाट) पी॰ एस॰ केस सं॰ 182 वर्ष 2007, जी॰ आर॰ सं॰ 1195 वर्ष 2007 के तत्सम, के संबंध में अभियुक्त बनाया गया है।

3. मामला मनरेगा योजना से संबंधित धन के अवैध निकासी से संबंधित है और यह पाया गया था कि 3,02,500/- रुपये के एक चेक के माध्यम से और 2,60,000/- रुपए के एक अन्य चेक के माध्यम से बैंक से अवैध रूप से निकाला गया था। बी॰ डी॰ ओ॰ द्वारा प्राथमिकी दर्ज की गयी थी जिसमें कथन किया गया है कि ये चेक याचीगण की अभिरक्षा में थे। याचीगण को भी इस मामले में अभियुक्त बनाया गया था। जी॰ आर॰ सं॰ 1195 वर्ष 2007 में विद्वान एस॰ डी॰ जे॰ एम॰ द्वारा पारित दिनांक 19.2.2010 के आक्षेपित आदेश द्वारा उन्मोचन के लिए याचीगण द्वारा दाखिल आवेदन अस्वीकार कर दिया गया था।

4. आक्षेपित आदेश से यह प्रतीत होता है कि किसी ग्राम पंचायत पर्यवेक्षक ध्रुव कुमार मंडल को अंततः चेकों का अभिरक्षक पाया गया था, क्योंकि यह पाया गया था कि बी॰ डी॰ ओ॰ के मौखिक निर्देश पर चेकों को ध्रुव कुमार मंडल को सौंपा गया था। यह भी प्रतीत होता है कि अन्वेषण के क्रम में बी॰ डी॰ ओ॰ और उक्त ध्रुव कुमार मंडल के विरुद्ध कुछ सामग्रियाँ पायी गयी थी। अन्वेषण के दौरान पायी गयी सामग्रियों के आधार पर याचीगण ने उन्मोचन के लिए अवर न्यायालय के समक्ष आवेदन दाखिल किया जिसे जी॰ आर॰ सं॰ 1195 वर्ष 2007 में विद्वान एस॰ डी॰ जे॰ एम॰, गोड्डा द्वारा पारित दिनांक 19.2.2010 के आक्षेपित आदेश द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था।

5. आक्षेपित आदेश आगे दर्शाता है कि अवर न्यायालय ने अन्वेषण के दौरान पायी गयी सामग्रियों पर विस्तारपूर्वक चर्चा किया है और कथन किया है कि भारतीय दंड संहिता की धाराओं 409 और 468 के अधीन आरोप विरचित करने के लिए इन याचीगण के विरुद्ध पर्याप्त सामग्री है और तद्नुसार, आरोप विरचित करने के लिए याचीगण को व्यक्तिगत तौर पर उपस्थित रहने का निर्देश दिया है।

6. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि अवर न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश पूर्णत: अवैध है, क्योंकि अन्वेषण के दौरान आया है कि उक्त चेकों को ग्राम पंचायत पर्यवेक्षक ध्रुव कुमार मंडल को दिया गया था और उक्त चेकों पर याचीगण के हस्ताक्षर को अन्वेषण के दौरान कूटरचित पाया गया था। तद्नुसार विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि मामले में याचीगण के विरुद्ध कोई सामग्री नहीं है और उन्हें अवर न्यायालय द्वारा उन्मोचित कर दिया जाना चाहिए था।

7. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद और आक्षेपित आदेश का परिशीलन करने पर, मैं पाता हूँ कि यद्यपि अन्वेषण के दौरान याचीगण के पक्ष में कुछ सामग्री आ सकती है, किंतु याचीगण को इस चरण पर इस तथ्य की दृष्टि में उन्मोचित नहीं किया जा सकता है कि प्राथमिकी में याचीगण के विरुद्ध चेकों के अभिरक्षक होने का प्रत्यक्ष अभिकथन है। यह तथ्य कि अन्वेषण के दौरान याचीगण के पक्ष में कुछ सामग्रियाँ आयी हैं, इस चरण पर उनको उन्मोचित करने का आधार नहीं हो सकती है।

8. मैं पुनरीक्षण अधिकारिता में विद्वान अवर न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने लायक कोई अवैधता और/अथवा अनियमितता नहीं पाता हूँ। इस पुनरीक्षण याचिका में गुणागुण नहीं है जिसे तद्नुसार खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; vkjî vkjî çlkn] U;k;efr

सुरेश दास एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 22 of 2012. Decided on 9th April, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 379/354/504—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 320 एवं 420—चोरी एवं लज्जा भंग करने का प्रयास–संज्ञान–शमन–पक्षों के बीच सुलह–चूँकि मामला पति-पत्नी से संबंधित है, विचारण की कठिनाई का सामना याची को करने देने से कोई लाभदायी प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा जब पक्षों के बीच सुलह हो जाने के कारण याची को दोषसिद्ध करने का कोई अवसर नहीं है–सुलह याचिका स्वीकार–दांडिक कार्यवाही अभिखंडित–आवेदन अनुज्ञात। (पैराएँ 2, 4, 5 एवं 6)

अधिवक्तागण.–Mr. R.R. Singh, For the Petitioners; A.P.P., For the State; Mr. P. K. Nayak, For the Opp.party no. 2.

आदेश

आरंभ में यह आवेदन तत्कालीन न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, बोकारो द्वारा पारित दिनांक 23.2.2011 के आदेश, जिसके द्वारा और जिसके अधीन याचीगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 379/354/504 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए संज्ञान लिया गया था किंतु अब इस आधार पर कि मामले में सुलह कर लिया गया है, कार्यवाही का अभिखंडन इप्सित किया जा रहा है।

2. याचीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि परिवादी द्वारा मामला दर्ज किया गया था जिसमें अभिकथन किया गया था कि याची सं॰ 2 ने परिवादी की बहन को फुसला लिया

था। किंतु, पक्षों ने अपना विवाद सुलझा लिया है और वर्तमान में परिवादी की बहन याची सं॰ 2 के साथ विवाह करके उसके साथ रह रही है और इस स्थिति के अधीन सुलह याचिका आई॰ ए॰ सं॰ 612 वर्ष 2012 दाखिल किया गया है।

3. विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि यह सत्य है कि मामले में सुलह हो गयी है।

4. चूँकि मामला पति-पत्नी से संबंधित है, अतः याची सं॰ 2 को विचारण की कठिनाई का सामना करने देने से कोई लाभदायी प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा जब पक्षों के बीच समझौता हो जाने के कारण याची को दोषसिद्ध किए जाने का अवसर नहीं है।

5. इन परिस्थितियों के अधीन, पक्षों की ओर से दाखिल सुलह याचिका स्वीकार की जाती है। परिणामस्वरुप, दिनांक 23.2.2011 के आदेश सहित परिवाद केस सं॰ 4 वर्ष 2011 में संपूर्ण दांडिक कार्यवाही एतद् द्वारा अभिखंडित की जाती है।

6. परिणामस्वरुप, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; ,p lh feJk] U;k;efr

संजीत उर्फ संजीत निषाद उर्फ गणेश निषाद एवं एक अन्य

cuke

झारखंड राज्य

Cr. Revision No. 952 of 2010. Decided on 11th April, 2012.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 397 एवं 401—बैंक गारंटी लौटाने से इनकार—जमानत प्रदान करने वाले आदेश ने स्पष्टतः उपदर्शित किया कि याची द्वारा प्रस्तुत बैंक गारंटी मामले के परिणाम के अध्यधीन होगा—जब एक बार मामले का परिणाम याची की दोषमुक्ति में हुआ, याची बैंक गारंटी वापस पाने का हकदार था—प्रार्थना अस्वीकार करने के लिए अवर न्यायालय द्वारा तर्कपूर्ण कारण नहीं दिया गया—आक्षेपित आदेश अपास्त और बैंक गारंटी वापस लेने का निर्देश अवर न्यायालय को दिया गया। (पैराएँ 3 से 6)

अधिवक्तागण.—Mr. M.B. Lal, For the Petitioners; APP, For the State.

आदेश

याचीगण और राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. इस पुनरीक्षण आवेदन में, याची ने जी॰ आर॰ सं॰ 3453 वर्ष 2008 में श्री बी॰ बी॰ गौतम, विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 18.9.2010 के आदेश को चुनौती दिया है जिसके द्वारा 1,50,000/- रुपयों की बैंक ऑफ इंडिया की डबल बेनेफिट डिपोजिट सर्टिफिकेट सं॰ 9290337, जिसे याची लीलमणि कामिन द्वारा जमा किया गया था, वापस लौटाने से इनकार किया गया था।

3. यह प्रतीत होता है कि याची संजीत उर्फ संजीत निषाद उर्फ गणेश निषाद को धुर्वाडीह पी॰ एस॰ केस सं॰ 337 वर्ष 2008, जी॰ आर॰ सं॰ 3453 वर्ष 2008 के तत्सम, में अभियुक्त बनाया गया था। उक्त मामले में बी॰ ए॰ सं॰ 320 वर्ष 2009 में दिनांक 6.2.2009 के आदेश द्वारा इस न्यायालय द्वारा जमानत प्रदान किया गया था और याची को 1,50,000/- रुपयों की बैंक गारंटी, जिसे इस मामले में निर्णय

तक और इस मामले के परिणाम के अध्यधीन किसी प्रतिकूलता के बिना जमानत की शर्त स्वीकृत किया जाता रहेगा, प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया था। तद्नुसार, याची द्वारा बैंक गारंटी के रूप में 1,50,000/- रुपयों की राशि का बैंक ऑफ इंडिया का डबल बेनिफिट डिपोजिट सर्टिफिकेट सं॰ 9290337 में जमा किया गया था। यह प्रतीत होता है कि विचारण का सामना करने के बाद उक्त याची को जी॰ आर॰ केस सं॰ 3453/2008/विचारण सं॰ 452 वर्ष 2010 में न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 7.9.2010 के निर्णय द्वारा विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया था।

4. अवर न्यायालय द्वारा दोषमुक्त कर दिए जाने के बाद, याची ने 1,50,000/- रुपयों का बैंक ऑफ इंडिया का डबल बेनिफिट डिपोजिट सर्टिफिकेट सं॰ 9290337, जिसे बैंक गारंटी के रूप में जमा किया गया था, निर्मुक्त करने के लिए याचीगण ने आवेदन दाखिल किया किंतु विचारण न्यायालय ने याचीगण की प्रार्थना को केवल इस आधार पर इनकार कर दिया है कि बंधपत्र की निर्मुक्ति के लिए इस न्यायालय द्वारा ऐसा आदेश पारित नहीं किया गया है।

5. दोनों पक्षों के अधिवक्ता को सुनने के बाद और अभिलेख का परिशीलन करने पर मैं पाता हूँ कि अवर न्यायालय द्वारा दिया गया कारण बिल्कुल विचित्र है, क्योंकि जमानत प्रदान करने वाले आदेश में जो इस आवेदन के परिशिष्ट-2 पर है, स्पष्ट किया गया था कि याची द्वारा प्रस्तुत 1,50,000/- रुपयों की बैंक गारंटी मामले के परिणाम के अध्यधीन होगी। यह कहना अनावश्यक है कि जब एक बार मामला याची की दोषमुक्ति में परिणत हुआ है, याची बैंक गारंटी वापस पाने का हकदार था, किंतु विचारण न्यायालय द्वारा विचित्र कारण दिया गया है कि इस न्यायालय द्वारा इसको निर्मुक्त करने के लिए ऐसा आदेश नहीं है और अवर न्यायालय द्वारा याची की प्रार्थना अस्वीकार कर दी गयी है।

6. आक्षेपित आदेश से स्पष्ट है कि प्रार्थना अस्वीकार करने के लिए अवर न्यायालय द्वारा कोई तर्कपूर्ण कारण नहीं दिया गया है। तद्नुसार, जी॰ आर॰ सं॰ 3453 वर्ष 2008 में श्री बी॰ बी॰ गौतम, न्यायिक दंडाधिकारी प्रथम श्रेणी, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 18.9.2010 का आक्षेपित आदेश एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है और अवर न्यायालय को 1,50,000/- रुपयों का बैंक ऑफ इंडिया का डबल बेनिफिट डिपोजिट सर्टिफिकेट सं॰ 9290337 जिसे बैंक गारंटी के रूप में जमा किया गया था, याचीगण को वापस लौटाने का निर्देश दिया जाता है।

---

ekuuh; vkjî vkjî çlkn] U;k;efr

इंडियन स्टील एंड वायर प्रोड्क्टस लिमिटेड एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 4475 of 2001. Decided on 19th April, 2012.

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881—धारा 138 सह-पठित भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 420—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 320 एवं 482—चेक का अनादर—छल—संज्ञान—पक्षों ने न्यायालय के बाहर अपना मामला सुलझा लिया है—याचीगण ने पहले ही परिवादी को बकाया राशि का भुगतान कर दिया है—याचीगण को विचारण की कठिनाई का सामना करने देना न्याय के हित में नहीं होगा जब याचीगण को दोषसिद्ध किए जाने का अवसर नहीं है—दांडिक कार्यवाही अभिखंडित है। (पैराएँ 3 से 6)

अधिवक्तागण.—Mr. Kaushik Sarkhel, For the Petitioners; Mr. G. M. Mishra, For the Opp.party no. 2; APP, For the State.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. यह आवेदन तत्कालीन न्यायिक दंडाधिकारी, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 26.5.1998 के आदेश सहित, जिसके द्वारा परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन और भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के अधीन भी अपराध का संज्ञान लिया गया है, सी॰/1 सं॰ 239 वर्ष 1998 में संपूर्ण दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन के लिए दाखिल की गयी है।

3. दांडिक कार्यवाही का अभिखंडन इस आधार पर इप्सित किया जा रहा है कि पक्षों ने न्यायालय के बाहर अपना विवाद सुलझा लिया है। जब दिनांक 29.3.2012 को मामला सुनवाई के लिए लिया गया था, विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 की ओर से कथन किया गया था कि याचीगण ने पहले ही विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 को धन, जिसका भुगतान उसे करने के लिए बकाया था, का भुगतान किया जा चुका है और इस प्रकार विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 को याचीगण के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं है और विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 दांडिक मामला अग्रसर करने में दिलचस्पी नहीं रखता है।

4. ऐसी स्थिति में, याचीगण को विचारण की कठिनाई का सामना करने देना जब याचीगण को दोषसिद्ध किए जाने का कोई अवसर नहीं होगा, न्याय के हित में नहीं होगा।

5. तद्नुसार, दिनांक 26.5.1998 के आदेश सहित सी॰/1 सं॰ 239 वर्ष 1998 की संपूर्ण दांडिक कार्यवाही, जहाँ तक याचीगण का संबंध है, एतद् द्वारा अभिखंडित की जाती है।

6. परिणामस्वरुप, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; ujUn ukFk frokjh] U;k;efr

मेसर्स परशुराम उद्योग

cuke

आदित्यपुर औद्योगिक क्षेत्र विकास प्राधिकार एवं अन्य

W.P. (C) No. 5915 of 2011. Decided on 2nd April, 2012.

श्रम एवं औद्योगिक विधि–भूखंड का आवंटन–याची ने आवंटन के लिए आवश्यक संपूर्ण राशि का भुगतान कर दिया है और याची को कब्जा दिया जा चुका है किन्तु आज की तिथि तक औपचारिक आवंटन पत्र जारी नहीं किया गया है–प्रत्यर्थीगण ने पहले ही अन्य औपचारिकताओं को पूरा कर लिया है और आवंटन का औपचारिक पत्र जारी करने के लिए तैयार और इच्छुक है किंतु उच्च न्यायालय की खंडपीठ के आदेश की दृष्टि में ऐसा करने में अक्षम है–इस संबंध में खंडपीठ के समक्ष प्रार्थना करने की स्वतंत्रता याची को दी गयी।

(पैराएँ 2 से 4)

अधिवक्तागण.–Mr. Sachin Kumar, For the Petitioner; Ashok Kumar Yadav, For the Respondent Nos. 3 & 4.

आदेश

याची ने स्वयं को आवंटित भूखंड के आवंटन पत्र को जारी करने के लिए, जिसके लिए संपूर्ण भुगतान किया जा चुका है, प्रत्यर्थीगण को निर्देश देने के लिए प्रार्थना किया है।

2. यह कथन किया गया है कि प्रत्यर्थीगण ने कतिपय निबंधनों और शर्तों पर उक्त भूखंड पर औद्योगिक इकाई स्थापित करने के लिए फेज-VI, औद्योगिक क्षेत्र, आदित्यपुर, जमशेदपुर में भूखंड सं॰ NS-3 (P) आवंटित किया है। याची ने आवंटन के लिए आवश्यक संपूर्ण राशि का भुगतान कर दिया है और याची को कब्जा दिया जा चुका है, किंतु बार-बार अनुरोध करने और अभ्यावेदन देने के बावजूद आज की तिथि तक प्रत्यर्थीगण द्वारा औपचारिक आवंटन पत्र जारी नहीं किया गया है।

3. प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि याची को भूमि का आवंटन किया जा चुका है, उससे अध्यपेक्षित राशि भी प्राप्त की जा चुकी है और उसे कब्जा भी दे दिया गया है किंतु चूँकि एल॰ पी॰ ए॰ सं॰ 204/2011 में पारित दिनांक 15.2.2012 के इस न्यायालय के आदेश द्वारा आगे आवंटन को स्थगित कर दिया गया है, प्रत्यर्थीगण आवंटन का औपचारिक पत्र जारी करने में अक्षम हैं। उन्होंने आगे निवेदन किया कि यदि याची अनुमति इप्सित करता है और इस न्यायालय के समक्ष आदेश प्रस्तुत करता है, याची को किसी विलंब के बिना औपचारिक आवंटन पत्र जारी किया जाएगा अन्यथा इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा उक्त अपील के निपटारे तक उक्त प्रयोजन से प्रत्यर्थीगण प्रतीक्षा करेंगे।

4. उक्त प्रतिवादों और पक्षों के निवेदनों पर विचार करते हुए, मैं प्रत्यर्थीगण की कार्रवाई में मनमानापन नहीं पाता हूँ। चूँकि प्रत्यर्थीगण ने पहले ही अन्य औपचारिकताओं को पूरा कर लिया है और आवंटन का औपचारिक पत्र जारी करने के लिए तैयार और इच्छुक है और इस न्यायालय की खंडपीठ के आदेश की दृष्टि में ऐसा करने में अक्षम है, याची को इस संबंध में विद्वान खंडपीठ के समक्ष आदेश प्रस्तुत करने और प्रार्थना करने की स्वतंत्रता देते हुए इस रिट याचिका को निपटाया जाता है और यदि ऐसा आदेश प्रस्तुत किया जाता है, प्रत्यर्थीगण याची के अभ्यावेदन पर समुचित आदेश पारित करेंगे।

---

ekuuh; vkjs vkjs çlkn] U;k;efr

गुलाब भगत एवं एक अन्य (826 में)

मनरूल शेख उर्फ हक एवं एक अन्य (966 में)

cuke

झारखंड राज्य (दोनों में)

Criminal Misc. Petition Nos. 826, 966 of 2011. Decided on 2nd February, 2012.

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन एक आवेदन के मामले में।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 413/414 सह-पठित झारखंड लघु खनिज रियायत नियमावली, 2004 के नियम 54 एवं 57—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 4 एवं 482—छरियों का अनाधिकृत निष्कर्षण—दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 4 के निबंधनानुसार यदि कोई अपराध भा॰ दं॰ सं॰ से भिन्न किसी अन्य विधि के अधीन किया जाता है, उस प्रवर्तित अधिनियम में अंतर्विष्ट प्रावधानों के अनुसार इसका अन्वेषण, जाँच अथवा विचारण किया जाएगा—झारखंड लघु खनिज रियायत नियमावली के अधीन दंडनीय अपराध के लिए मामला दर्ज करने के लिए पुलिस का ए॰ एस॰ आई॰ प्राधिकृत नहीं किया गया है—दंडाधिकारी के आदेश के बिना पुलिस को मामले का अन्वेषण करने की शक्ति नहीं है—प्राथमिकी अभिखंडित। (पैराएँ 6, 10 से 15)

निर्णयज विधि.–2009 (2) JLJR 258—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. Rajeev Sharma (in both), For the Petitioners; Mrs. Niki Sinha, For the State.

न्यायालय द्वारा.–याचीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. इन दोनों आवेदनों को पाकुड़ (मालपहाड़ी) पी॰ एस॰ केस सं॰ 47 वर्ष 2011 (जी॰ आर॰ सं॰ 126 वर्ष 2011), जिसे भारतीय दंड संहिता की धाराओं 413/414 सह–पठित धारा 120B के अधीन और झारखंड खनन अधिनियम, 2004 की धाराओं 40 और 54 (7) जिसे झारखंड लघु खनिज रियायत नियमावली, 2004 की धारा 54 के स्थान पर गलत रूप से उल्लिखित किया गया प्रतीत होता है, के अधीन भी दर्ज किया गया है, की प्राथमिकी को अभिखंडित करवाने के लिए दाखिल किया गया है।

3. अभियोजन का मामला यह है कि जब छर्रियों का परिवहन कर रहे चार–पाँच ट्रकों को पाया गया था, इन्हें पाकुड़ (माल पहाड़ी) के ए॰ एस॰ आई॰ द्वारा रास्ते में रोका गया था और मांगे जाने पर जब कोई दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया गया था, इस अभिकथन पर मामला दर्ज किया गया था कि छर्रियों को खान से अवैध रूप से निकालने के बाद लाया गया था और इन्हें विक्रय के प्रयोजन से ढोया जा रहा था।

4. ऐसे अभिकथन पर, भारतीय दंड संहिता की धाराओं 413/414 सह–पठित धारा 120B के अधीन और झारखंड लघु खनिज रियायत नियमावली की धारा 54 के अधीन भी मामला दर्ज किया गया था।

5. याचीगण के लिए उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री राजीव शर्मा निवेदन करते हैं कि खान से पत्थर का अवैध निष्कर्षण झारखंड लघु खनिज रियायत नियमावली की धारा 54 के अधीन अपराध गठित करता है जो विशेष विधान है जो कहता है कि यदि कोई उक्त नियमावली के प्रावधानों के उल्लंघन में खनिजों को निष्कर्षित अथव परिवहित करता है, यह झारखंड लघु खनिज रियायत नियमावली की धारा 54 के अधीन दंडनीय होगा और इस स्थिति में भारतीय दंड संहिता की धाराओं 413/414 के अधीन अपराध आकृष्ट नहीं होता है और, इसलिए, यदि अपराध झारखंड लघु खनिज रियायत नियमावली के प्रावधानों के अधीन है, इसे केवल सक्षम अधिकारी अर्थात् सरकार द्वारा सम्यक रूप से प्राधिकृत उपनिदेशक, खान, अपर निदेशक, खान अथवा निदेशक, खान अथवा खान कलक्टर अथवा किसी अधिकारी की प्रेरणा पर ही उक्त नियमावली के नियम 57 के निबंधनानुसार संस्थापित किया जा सकता है और केवल तब प्राथमिकी के आधार पर अपराध का संज्ञान लिया जा सकता है।

6. यहाँ यह दर्शाने के लिए अभिलेख पर कुछ भी नहीं प्रस्तुत किया गया है कि ए॰ एस॰ आई॰ झारखंड लघु खनिज रियायत नियमावली के अधीन दंडनीय मामला दर्ज करने के लिए प्राधिकृत किया गया है और इस प्रकार वर्तमान प्राथमिकी अभिखंडित किए जाने योग्य है।

7. याचीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने पूर्वोक्त निवेदन के समर्थन में **भोटना महतो बनाम झारखंड राज्य,** 2009 (2) JLJR 258, मामले में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट किया है।

8. राज्य के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि चूँकि मामला न केवल झारखंड लघु खनिज रियायत नियमावली के अधीन बल्कि भारतीय दंड संहिता की धाराओं 413/414 सह–पठित धारा 120B के अधीन भी दर्ज किया गया था, अत: ए॰ एस॰ आई॰ को मामला दर्ज करने के लिए पर्याप्त रूप से सक्षम कहा जा सकता है।

9. इन तथ्यों और परिस्थितियों में, जैसा ऊपर कथित किया गया है, मैं राज्य की ओर से किए गए निवेदन में कोई गुणागुण नहीं पाता हूँ।

10. इस संबंध में, मैं प्रावधान को निर्दिष्ट कर सकता हूँ जैसा यह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 4 में अंतर्विष्ट है जो उपबंधित करती है कि यदि कोई अपराध भा॰ दं॰ सं॰ से भिन्न किसी अन्य विधि के अधीन किया जाता है, उस समय प्रवर्तित अधिनियम में अंतर्विष्ट प्रावधानों के अनुसार इसका अन्वेषण, जाँच अथवा विचारण किया जाएगा।

11. यहाँ वर्तमान मामले में, जैसा ऊपर गौर किया गया है, पूर्वोक्त नियमावली का नियम 57 विहित करता है कि प्राथमिकी ऊपर उल्लिखित व्यक्तियों की प्रेरणा पर दर्ज की जा सकती है किंतु यह कहीं नहीं उल्लिखित किया गया है कि किसी पुलिस थाना का ए॰ एस॰ आई॰ मामला दर्ज करने के लिए सक्षम है।

12. अत:, ए॰ एस॰ आई॰ की प्रेरणा पर वर्तमान मामले का दर्जकरण बिल्कुल अवैध है। इसके अतिरिक्त, पूर्वोक्त नियमावली के अधीन अपराध असंज्ञेय प्रतीत होते हैं क्योंकि विहित महत्तम दंडादेश छह माह अथवा जुर्माना के साथ है।

13. उस स्थिति में, दंडाधिकारी के किसी आदेश के बिना पुलिस को मामले का अन्वेषण करने की कोई शक्ति नहीं है।

14. इन परिस्थितियों के अधीन, जहाँ तक याचीगण का संबंध है, भारतीय दंड संहिता की धाराओं 413/414 सह-पठित धारा 120B के अधीन और झारखंड लघु खनिज रियायत नियमावली की धारा 54 के अधीन भी दर्ज पाकुड़ (मालपहाड़ी) पी॰ एस॰ केस सं॰ 47 वर्ष 2011 (जी॰ आर॰ केस सं॰ 126 वर्ष 2011) की प्राथमिकी एतद् द्वारा अभिखंडित की जाती है।

15. परिणामस्वरुप, दोनों आवेदनों को अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; vkjî vkjî çlkn] U;k;efr

अरुण कुमार सिंह

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr.M.P. No. 449 of 2010. Decided on 6th March, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 420—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—छल संज्ञान–छल का अपराध गठित करने के लिए प्रथम आवश्यक तत्व अभियुक्त द्वारा परिवादी की प्रवंचना है–जब तक प्रवंचना नहीं है, छल का अपराध कभी आकृष्ट नहीं होता है–छल का अपराध गठित करने वाले प्रथम तत्व की कमी है क्योंकि परिवाद में किए गए अभिकथन कहीं पर भी याचीगण द्वारा किसी तरीके से परिवादी को प्रवंचित किए जाने के बारे में उपदर्शित नहीं करते हैं–दांडिक अभियोजन के माध्यम से दबाव डालकर सिविल विवाद और दावा, जो कोई दांडिक अपराध अंतर्ग्रस्त नहीं करते हैं को सुलझाने के प्रयास को निरुत्साहित किया जाना चाहिए–दांडिक मामला अभिखंडित। (पैराएँ 16 से 20)

निर्णयज विधि.–(1992) Supp (1) SCC 335; (2006) 6 SCC 736; (2011) 1 SCC 74—Relied on; (2008) 1 SCC (Cri.) 399; AIR 2009 SC 3191—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. Pankaj Kumar, For the Petitioner; A.P.P., For the State; Mr. Chandrajit Mukherjee, For the Opp. Party No. 2.

आदेश

यह आवेदन परिवाद केस सं॰ 649 वर्ष 2009 में पारित दिनांक 13.7.2009 के आदेश के विरुद्ध निर्देशित है जिसके द्वारा तत्कालीन न्यायिक दंडाधिकारी, हजारीबाग ने याची के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के अधीन अपराध का संज्ञान लिया है।

2. इस आवेदन को उद्भूत करने वाले तथ्य ये हैं कि परिवादी–विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, हजारीबाग के समक्ष यह कथन करते हुए परिवाद केस सं॰ 649 वर्ष 2009 दाखिल किया कि उसने ओम एनक्लेब, हजारीबाग स्थित निर्माणाधीन फ्लैट के विक्रय के लिए 9 लाख रुपयों के प्रतिफल के लिए इस याची के साथ करार किया था और उसके विरुद्ध 1.61 लाख रुपयों की राशि का भुगतान अग्रिम के रूप में दिया गया था। रजिस्टर्ड करार के मुताबिक, शेष प्रतिफल राशि प्राप्त कर लेने के बाद अप्रिल, 2009 के दूसरे सप्ताह में अथवा इसके पहले फ्लैट का कब्जा दिया जाना था।

3. परिवादी का मामला यह भी है कि परिवादी ने याची की अनुमति से फ्लैट को सज्जित करने के लिए 80,000/- रुपयों का निवेश किया किंतु विक्रय विलेख के रजिस्ट्रेशन की अवधि के अवसान के पहले याची द्वारा कानूनी नोटिस दिया गया था जिसके द्वारा उसने कतिपय शर्तों को भंग किए जाने के आधार पर विक्रय विलेख निष्पादित करने से इनकार कर दिया।

4. यह भी अभिकथित किया गया है कि नोटिस में किया गया कथन मानहानि कारक था। उस नोटिस का उत्तर दिया गया था किंतु याची ने उक्त नोटिस स्वीकार करने से इनकार कर दिया।

5. इन परिस्थितियों के अधीन, अभिकथित किया गया है कि याची ने अग्रिम धन स्वीकार करके और तब विक्रय विलेख को निष्पादित करने से इनकार करके याची के साथ छल किया और तद्द्वारा उसने छल का अपराध किया।

6. न्यायालय ने जाँच करने के बाद पाया कि प्रथम दृष्टया छल का मामला बनता है और भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के अधीन अपराध का संज्ञान लिया। वह आदेश चुनौती के अधीन है।

7. याची की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि परिवादी ने करार के निबंधनों और शर्तों के विरुद्ध उक्त अपार्टमेंट में अतिचार करके प्रतिफल धन का पूर्ण भुगतान किए बिना अपनी पसंद के फ्लैट का कब्जा ले लिया किंतु आज की तिथि तक याची ने परिवादी को उक्त फ्लैट नहीं सौंपा है। यह कि याची करार के निबंधनों और शर्तों के मुताबिक परिवादी द्वारा दी गयी राशि को बैंक ब्याज के साथ वापस लौटाने के लिए तैयार है।

8. विद्वान अधिवक्ता आगे निवेदन करते हैं कि मामले के किसी भी दृष्टिकोण में यह सिविल विवाद का मामला है और इन परिस्थितियों के अधीन छल का अपराध करने का प्रश्न उद्भूत ही नहीं होता है और आक्षेपित आदेश अपास्त करने योग्य है।

9. विद्वान अधिवक्ता ने अपने निवेदन के समर्थन में **दिलीप कौर एवं अन्य बनाम जगनार सिंह एवं एक अन्य, AIR 2009 SC 3191,** मामले में दिए गए निर्णय पर विश्वास किया है।

10. इसके विरुद्ध, विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि सिविल विवाद के मामले में भी, यदि अभिकथन दांडिक अपराध गठित करता है, दांडिक अभियोजन किया जा सकता है और इसलिए, वर्तमान अभियोजन को अभिखंडित करना अपेक्षणीय नहीं है क्योंकि

दांडिक दायित्व को आकृष्ट करने वाले कुछ तथ्य हैं क्योंकि याची ने न केवल धन अपने पास रख लिया है बल्कि विक्रय विलेख निष्पादित करने से भी इनकार किया है और यह छल का अपराध गठित करने के लिए याची की आपराधिक मन:स्थिति दिखाता है।

11. विद्वान अधिवक्ता ने अपने निवेदन के समर्थन में **प्रतिभा बनाम रामेश्वरी देवी एवं अन्य, (2008)1 SCC (Crl.)399,** और **इरिडियम इंडिया टेलीकॉम लि॰ बनाम मोटोरोला लिमिटेड एवं अन्य, (2011)1 SCC 74** मामलों में दिए गए निर्णयों को निर्दिष्ट किया है।

12. कथन किया जा सकता है कि **हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल, (1992)Supp (1) SCC 335,** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उदाहरण के रूप में मामलों की कतिपय कोटियों को अधिकथित किया है जिसमें किसी संहिता की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए अथवा अन्यथा न्याय का उद्देश्य सुरक्षित करने के लिए संहिता की धारा 482 के अधीन अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है। ऐसी कोटियों में से एक है:–

> *^^tgk çkFkfedh vFkok ifjokn e fd, x, vfHkdFku] ;fn mudk T;k dk R;k fy;k tkrk g vkj mudh li.krk e Lohdkj fd;k tkrk g] çFke n"V;k vijkèk xfBr ugh djr g vFkok vfHk;Dr d fo#) ekeyk ugh cukr gA***

13. अधिकथित सिद्धांत के संदर्भ में विचार करने की जरूरत है कि परिवाद में किए गए अभिकथन छल का अपराध गठित करते हैं या नहीं?

14. भारतीय दंड संहिता की धारा 415 के अधीन छल का अपराध परिभाषित किया गया है जिसका पठन निम्नलिखित हैं:–

> ***^^Ny-***&*tk dkb fdlh 0;fDr l çopuk dj ml 0;fDr dk] ftl bl çdkj çofpr fd;k x;k g] diViod ;k cbekuh l mRçfjr djrk g fd og dkb lifÙk fdlh 0;fDr dk ifjnÙk dj n] ;k ;g lEefr n n fd dkb 0;fDr fdlh lifÙk dk j[k ;k lk'k; ml 0;fDr dk] ftl bl çdkj çofpr fd;k x;k g] mRçfjr djrk g fd og , lk dkb dk; dj] ;k dju dk yki dj] ftl og ;fn ml gj çdkj çofpr u fd;k x;k gkrk rk] u djrk ;k dju dk yki u djrk] vkj ftl dk; ;k yki l ml 0;fDr dk 'kkjhfjd] ekufld] [;kfr lcèkh ;k lkifÙkd udlku ;k vigkfu dkfjr gkrh g] ;k dkfjr gkuh lHkk0; g] og ^^Ny** djrk g] ;g dgk tkrk gA***

15. इसके पठन से यह प्रतीत होता है कि छल का अपराध गठित करने के लिए निम्नलिखित अवयवों का होना जरूरी है:–

> *(1) ml çofpr djd 0;fDr dk diVi.k vFkok xjbekunkj mRçj.k fd;k x;k gkuk pkfg,A*
>
> *(2) (a) bl çdkj çofpr 0;fDr dk fdlh 0;fDr dk dkb lifÙk lkiu d fy, mRçfjr fd;k x;k gk vFkok fdlh 0;fDr }kjk dkb lifÙk viu ikl j[ku d fy, lgefr nu d fy, mRçfjr fd;k x;k gkA*
>
> *(b) bl çdkj çofpr 0;fDr dk fdlh pht dk dju vFkok ugh dju d fy, vk'k;iod mRçfjr fd;k x;k gk tk og djrk vFkok ugh djrk ;fn ml bl çdkj çofpr ugh fd;k x;k gkrk*
>
> *(3) 2(b) }kjk vkPNkfnr ekeyk e ÑR; vFkok yki , lk gkuk pkfg, tk mRçfjr fd, x, 0;fDr dk 'kkjhfjd :i l vFkok ml dh çfr"Bk vFkok lifÙk dk udlku vFkok gkfu dkfjr djrk g vFkok dkfjr fd, tku dh lHkkouk gA*

16. इस प्रकार, छल का अपराध गठित करने के लिए प्रथम आवश्यक तत्व अभियुक्त द्वारा परिवादी की प्रवंचना है। जब तक प्रवंचना नहीं है, छल का अपराध कभी नहीं आकृष्ट होता है। प्रवंचना

किए जाने के बाद प्रवंचित व्यक्ति को कुछ करने अथवा नहीं करने के लिए उत्प्रेरित किया जाना चाहिए। तब, प्रश्न उद्भूत होता है कि प्रवंचना क्या है?

17. सामान्य अर्थ में प्रवंचना में किसी व्यक्ति को किसी चीज के बारे में भ्रमित करने अथवा यह विश्वास दिलाने का तत्व होता है जो झूठा है अथवा उसे इस प्रकार उत्प्रेरित करना है कि वह असत्य को सत्य, अवास्तविक को विद्यमान, नकली को सच्चा माने और यह भी आवश्यक है कि संविदा के आरंभ से ही प्रवंचना होनी चाहिए। अभिकथन के संदर्भ में छल का दांडिक अपराध गठित करने वाले सिद्धांत को लागू करते हुए यह प्रतीत होता है कि छल का अपराध गठित करने वाले प्रवंचना के प्रथम तत्व की कमी है क्योंकि परिवाद में किया गया अभिकथन कहीं पर भी याची द्वारा किसी तरीके से परिवादी को प्रवंचित करना उपदर्शित नहीं करता है।

18. विपक्षी पक्षकार द्वारा विश्वास किए गए **इरिडियम इंडिया टेलीकॉम लिमिटेड बनाम मोटोरोला निगमित एवं अन्य (ऊपर)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 415 को ध्यान में लेते हुए अभिनिर्धारित किया है कि धारा के दोनों भागों के अधीन छल के अपराध के लिए प्रवंचना आवश्यक अवयव है। जहाँ तक विश्वास किए गए अन्य मामले का संबंध है, कोई संदेह नहीं है कि यदि तथ्य दांडिक दायित्व और सिविल दायित्व दोनों गठित करते हैं, तब सिविल विधि के लिए उपलब्ध उपचार दांडिक कार्यवाही अभिखंडित करने के लिए आधार नहीं हो सकता है जिस प्रतिपादना को **भारतीय तेल निगम बनाम एन॰ ई॰ पी॰ सी॰ इंडिया लिमिटेड एवं अन्य, (2006)6 SCC 736** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित किया गया है किंतु साथ ही माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह भी संप्रेक्षित किया गया है कि शुद्ध रूप से सिविल मामलों को दांडिक मामलों में संपरिवर्तित करने की प्रवृति व्यावसायिक समूह में बढ़ती जा रही है। यह स्पष्टत: इस प्रचलित धारणा के कारण है कि सिविल विधि के उपचार समय लेने वाले हैं और देनदारों/उधार देने वालों के हित की पर्याप्त रूप से सुरक्षा नहीं करते हैं। ऐसी प्रकृति अनेक पारिवारिक विवादों में भी देखी गयी है जो विवाहों/परिवारों के पूरी तरह टूटने की ओर ले जाती है। यह धारणा भी है कि यदि किसी व्यक्ति को किसी तरह दांडिक अभियोजन में फँसा दिया जाता है, सन्निकट समझौते की संभावना बढ़ जाती है। उक्त निर्णय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जोर देकर कहा गया है कि सिविल विवाद और दावा, जो कोई भी दांडिक अपराध अंतर्ग्रस्त नहीं करते हैं, को दांडिक अभियोजन के माध्यम से दबाव डालकर सुलझाने के प्रयास की निंदा की जानी चाहिए और इन्हें निरुत्साहित करना चाहिए।

19. इस निष्कर्ष पर आने पर कि परिवाद में किए गए अभिकथन छल का अपराध गठित नहीं करते हैं, संज्ञान लेने वाले दिनांक 13.7.2009 के आदेश सहित संपूर्ण दांडिक मामला एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है।

20. परिणामस्वरूप, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh;k iue JhokLro] U;k;efr

वीर कृष्ण सहाय

cuke

मेसर्स वरदान बिल्डर्स, राँची एवं एक अन्य

W.P. (C) No. 2034 of 2010. Decided on 9th April, 2012.

माध्यस्थम् एवं सुलह अधिनियम, 1996—धारा 34—माध्यस्थम अधिनिर्णय को चुनौती–अधिनिर्णय आयुक्त की रिपोर्ट के निबंधनानुसार पारित–अधिनिर्णय और इसका आशय निष्पादन न्यायालय द्वारा प्रभाव दिए जाने के दायी है–अधिनिर्णय अनुबंधित अवधि के भीतर प्रभाव दिए जाने के लिए दायी है–संपूर्ण विवाद का परीक्षण करने के बाद माध्यस्थम द्वारा दिया गया अधिनिर्णय ठुकराया और तोड़ा-मरोड़ा नहीं जा सकता है। (पैराएँ 12, 13 एवं 17)

अधिवक्तागण.–M/s Sumeet Gododia, Bindeshwari Singh, For the Petitioner; M/s Rajesh Kumar, Amit Sinha, M.K. Sinha, For the Respondents.

आदेश

याची की ओर से उपस्थित श्री बिंदेश्वरी सिंह की सहायता से अधिवक्ता श्री एस० गडोडिया और प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित श्री अमित सिन्हा एवं श्री एम० के० सिन्हा की सहायता से अधिवक्ता श्री राजेश कुमार को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका निष्पादन केस सं० 3 (A) वर्ष 2005 (बी० के० सहाय बनाम मेसर्स वरदान बिल्डर्स) में उप न्यायाधीश VI, राँची द्वारा पारित दिनांक 7.4.2010 के आदेश को चुनौती दी गयी है।

3. विवाद 14 फ्लैटों के कब्जा दिए जाने के संबंध में अधिनिर्णय के निष्पादन से संबंधित है जैसा एकमात्र मध्यस्थ द्वारा पारित माध्यस्थम अधिनिर्णय/डिक्री में उल्लिखित किया गया है। याची 17, एस० के० सहाय रोड, लालपुर, राँची में अवस्थित 33 कट्ठा भूमि का स्वामी है। याची और प्रतिवाद कर रहे प्रत्यर्थी सं० 1 और 2 जो निर्माता हैं और मेसर्स वरदान बिल्डर्स के नाम और शैली में बहुमंजिला आवासीय कॉम्पलेक्स के विकास और निर्माण के व्यवसाय में अंतर्ग्रस्त हैं, के बीच दिनांक 1.10.1998 को करार हुआ था। पक्षगण सहमत हुए कि प्रस्तावित निर्माण में स्वामी-निर्माता का हिस्सा निम्नलिखित अनुपात में होगा:–

(i) Lokeh dk vkofVr (27%) : $\frac{59400 \times 27}{100} = 16{,}038$ *oxQhV*

(ii) fuekrk dk vkofVr (73%) : $\frac{59400 \times 73}{100} = 43{,}362$ *oxQhV*

4. यह आवंटन भूमि के कुल क्षेत्र जो 33 कट्ठा था के आधार पर संगणित किया गया था। याची के हिस्से को उसे सौंपने सहित विकास करार के संबंध में पक्षों के बीच विवाद उद्‌भूत हुआ। याची की प्रेरणा पर विकास करार के माध्यस्थम खंड का अवलंब लिया गया था और मामला एकमात्र मध्यस्थ–माननीय न्यायाधीश श्री पी० के० सरकार, पटना उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश को निर्दिष्ट किया गया था। दिनांक 31.10.2004 को अधिनिर्णय (परिशिष्ट-2) पारित किया गया था। अधिनिर्णय के उद्धरण को रिट याचिका के पैराग्राफ 10 में वर्णित किया गया है और इसे नीचे उद्धृत किया जाता है:–

"(i) Åij dh x;h ppkZ d ifj.kkeLo#i ejk er g fd Lokeh&nkonkj 27% ikfdx LFky vkj 50% Nr {k= d lkFk 16038 oxQhV fcYV&vi {k= vrfo"V dju oky 14 ¶yVk dk dCtk iku dk gdnkj gA 16038 oxQhV vrfo"V dju oky mDr 14 ¶yVk e l Lokeh&nkonkj 27% ikfdx LFky d lkFk 13 ¶yVk dk dCtk vkt d fnu l 15 fnuk d Hkhrj iku dk gdnkj g tlk vk;Dr d fjikV e mfYyf[kr g vkj Lokeh d fgLl d 27% 'k"k v'k dk vrfo"V dju oky 'k"k

,d ¶yV dk dCtk çfrHkfr jkf'k d 6 yk[k #i;k vkj fuek.k dk; e fofun'ku e foiFku d fy, vfrfjDr jkf'k d :i e 3 yk[k #i;k vkj iokDr 9 yk[k #i;k ij 12% dh nj l C;kt d lkFk vkt d fnu l vFkkr vfèkfu.k; dh frfFk l Hkxrku dju d 15 fnuk d Hkhrj Lokeh&nkonkj dk dCtk fn;k tk,xkA ;fn çR;Fkh&fuekrk mDr fun'k d erkfcd 15 fnuk d Hkhrj Lokeh d fgL l d 13 ¶yV {k= dk dCtk vfèk'k"k eY;] ;fn vfre (pkngo) ¶yV d eki e ,h fLFkfr gk] d Hkxrku d lkFk vkt d fnu l 12% dh nj C;kt d lkFk 9 yk[k #i;k d Hkxrku d 15 fnuk d Hkhrj lkiu e foQy jgrk g] Lokeh nkonkj igy Ng ekg d fy, 30,000/- #i;k çfrekg dh nj ij vkj rRi'pkr dCtk fn, tku d fnu rd mDr Hkxrku d 16 o fnu d çHkko l 50,000/- #i; çfrekg dh nj udlkuh@nM iku dk gdnkj gkxkA

(ii) rnulkj] uhp mfYyf[kr lhek rd Lokeh@nkonkj vkj çR;Fkh@fcYMj nkuk d i{k e vfèkfu.k; fn;k x;k g%

(a) çR;Fkh fcYMj vk;Dr d fjikV d erkfcd vkt d fnu vFkkr vfèkfu.k; ikfjr dju d fnu l 15 fnuk d Hkhrj 13 ¶yVk vkj 27% ikfdx LFky dk dCtk lkixkA

(b) çR;Fkh fcYMj dk 31.512 ehVj eki oky pkjnhokj d vi.k v'k dk ijk djuk pkfg, vkj Hkou d lkeu d fgL l e e[; uxjikfydk ukyk dh vkj vkèkkj@Hkfe pcj l ukyk dk ikuh cgku d fy, çkoèkku 15 fnuk d Hkhrj djuk pkfg, ftle foQy jgu ij og 16o fnu (vkt d fnu l) d çHkko d lkFk igy Ng ekg d fy, 30,000/- #i;k çfrekg vkj rRi'pkr 50,000/- #i;k çfrekg mDr fuek.k ijk fd, tku rd Hkxrku dju dk nk;h gkxkA

(c) Lokeh nkonkj dk 9 yk[k #i;k dh jkf'k (6 yk[k #i;k çfrHkfr jkf'k ykVk, tku dh vkj rFkk fuek.k e fofun'ku d foiFku e dk; d eY; dh vkj 3 yk[k #i;k) dk Hkxrku 9 yk[k #i;k dh mDr jkf'k ij 12% dh nj ij C;kt d lkFk vkt d fnu l vFkkr vfèkfu.k; dh frfFk l Hkxrku rd djuk pkfg,\

(d) Lokeh&nkonkj }kjk fd, x, ,l Hkxrku ij çR;Fkh fcYMj dk fcYV&vi{k= d 27% d 'k"k v'k dk eki dju oky 'k"k 14 o ¶yV dk dCtk lki nuk pkfg,A ;fn ¶yV dk eki fcYV vi {k= d 'k"k 27% dk iDd rkj ij ifji.k ugh djrk g] de ;k vfèkd vrj dk Hkxrku ,l dCtk dk lkiu d igy lcfèkr i{k }kjk 525/- #i;k çfrox QhV dh nj ij fd;k tk,xkA mDr Hkxrku d 15 fnuk d Hkhrj çR;Fkh@fcYMj }kjk Lokeh&nkonkj dk 14o ¶yV dk dCtk fn;k tk,xkA

(e) ;fn çR;Fkh&fcYMj vk;Dr d fjikV d erkfcd vkt d fnu l 15 fnuk d Hkhrj] tlk Åij fun'k fn;k x;k g] 13 ¶yVk vkj 27% dkj ikfdx LFky dk dCtk lkiu e foQy jgrk g] Lokeh&nkonkj 16o fnu l (vkt d fnu l) igy Ng ekg d fy, 30,000/- #i;k çfrekg vkj rRi'pkr 50,000/- #i;k çfrekg dh nj l dCtk lki tku rd udlkuh@nM iku dk gdnkj gkxkA

(f) bl h çdkj] ;fn çR;Fkh fcYMj fcYV&vi {k= d 27% d 'k"k v'k dk xfBr dju oky 140 ¶yV dk dCtk (de ;k vfèkd {k= d Hkxrku d lkFk tl k Åij fun'k fn;k x;k g) 15 fnuk d Hkhrj lkiu e foQy jgrk g] Loeh&nkonkj 160 fnu (vkt d fnu l) d çHkko l dCtk lki tku rd igy Ng ekg d fy, çfr ekg 30,000- #i;k vkj rRi'pkr 50,000- #i;k çfr ekg dh jkf'k iku dk gdnkj gkxkA

(g) bl ekê;LFke dk;okgh e ednek d [kp d lcèk e i{kx.k Lo; viu fofèkd [kp dk lgu djxhA

(h) çR;Fkhx.k@fcYMjk }kjk Loeh@nkonkj dk 13 ¶yVk dk dCtk lkiu l 15 fnuk d Hkhrj ;kph&nkonkj 'k"k e[rkjuek Hkh fu"ikfnr djxkA

*nkuk i{kk d 'k"k nkok vkj çfrnkok dk [kkfjt@vLohdkj fd;k tkrk gA***

5. यह भी मेरे ध्यान में लाया गया है कि माध्यस्थम कार्यवाही के दौरान किसी देवव्रत भद्र सेवानिवृत्त जी॰ एम॰ (सिविल), सी॰ एम॰ पी॰ डी॰ आई॰ को पक्षों के परस्पर हिस्सों को आवंटित और सीमांकित करने की दृष्टि से बहुमंजिला भवन में निर्मित अपार्टमेंट का माप करने के लिए आयुक्त के रूप में नियुक्त किया गया था। आयुक्त को पृथक रूप से पार्किंग स्थल का माप प्रस्तुत करना था। आयुक्त द्वारा रिपोर्ट प्रस्तुत किया गया था जो याची और बिल्डर के प्रतिनिधि द्वारा सम्यक रूप से हस्ताक्षरित पूरक रिपोर्ट सम्मिलित करता था। आयुक्त के रिपोर्ट के संबंध में किसी पक्ष को कोई आपत्ति नहीं थी। दिनांक 31.10.2004 को एकमात्र मध्यस्थ द्वारा अधिनिर्णय दिया गया था और यह परिशिष्ट–2 के रूप में अभिलेख का भाग निर्मित करता है।

6. बिल्डर ने उप–न्यायाधीश, राँची के न्यायालय में माध्यस्थम् एवं सुलह अधिनियम, 1996 (इसके बाद 'अधिनियम' के रूप में निर्दिष्ट) की धारा 34 के अधीन अधिनिर्णय को चुनौती देते हुए आवेदन दाखिल किया। विविध केस सं॰ 1 वर्ष 2005 में धारा 34 के अधीन आवेदन उपन्यायाधीश VI, राँची द्वारा दिनांक 7.9.2005 के आदेश के तहत खारिज कर दिया गया था। माध्यस्थम अपील सं॰ 15 वर्ष 2005 में उच्च न्यायालय के समक्ष आदेश को चुनौती दी गयी थी जिसे भी रिट याचिका के परिशिष्ट–4 के तहत दिनांक 14.6.2007 को खारिज कर दिया गया था। इस आदेश को पुनः एक बार माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गयी थी जिसे भी रिट याचिका के परिशिष्ट–5 के तहत दिनांक 23.7.2007 को खारिज कर दिया गया था।

7. याची की ओर से उपस्थित श्री एस॰ गडोडिया ने जोर दिया कि आयुक्त की रिपोर्ट को संपुष्ट किया गया था और इसको कभी नहीं चुनौती दी गयी थी।

8. वस्तुतः, विवाद इस कारण से उद्भूत हुआ कि वास्तविक निर्माण पूरा कर लेने और माप कर लेने के बाद 634 वर्ग फीट का आधिक्य निर्माण था। आयुक्त का रिपोर्ट रिट याचिका का परिशिष्ट–3 है।

9. विद्वान अधिवक्ता का प्रतिवाद यह है कि याची को कुल मिलाकर 14 फ्लैटों को आवंटित किया जाना था। 1470.57 वर्गमीटर, जो 15829.51 वर्गफीट के समतुल्य है, क्षेत्र माप वाले 13 फ्लैटों को पहले ही आरक्षित कर दिया गया था। स्वामी/याची के हिस्से का शेष क्षेत्र 16678.81-15829.51 = 849.30 वर्ग फीट था, किंतु संपरिवर्तन के कारण लगभग 1.30 वर्ग फीट का अंतर था। मध्यस्थ ने आदेश में उल्लिखित किया है कि स्वामी शेष क्षेत्र के 848 वर्गफीट का हकदार था। इस 848 वर्गफीट पर कोई

विवाद नहीं है। आगे कथन किया गया है कि 14वाँ फ्लैट 91.22 वर्ग मीटर क्षेत्र से गठित था जो 987.27 वर्गफीट के समतुल्य है। चूँकि स्वामी 848 वर्ग फीट का हकदार था, वह सहमत कीमत की दर पर भुगतान के अध्यधीन अतिरिक्त क्षेत्र का भी हकदार है। अत:, याची ने 525 वर्ग फीट की कीमत पर लगभग 138/139 वर्गफीट के लिए अवर न्यायालय में आधिक्य क्षेत्र की कीमत जमा किया।

10. श्री गडोडिया ने अपने निवेदनों पर जोर देते हुए कथन किया कि निष्पादन न्यायालय आक्षेपित आदेश पारित करते हुए कतिपय टंकण गलती द्वारा प्रभावित हुआ था और मध्यस्थ द्वारा अनवधानीपूर्वक किए गए संप्रेक्षण पर विश्वास किया कि याची को आवंटित क्षेत्र मात्र 16038 वर्ग फीट था। निष्पादन न्यायालय अधिनिर्णय में उल्लिखित उक्त आँकड़े के आधार मात्र पर डिक्री निष्पादित करने के लिए अग्रसर हुआ और अभिनिर्धारित किया कि 16038 वर्ग फीट के आधार पर स्वामी के हिस्से की संगणना करने के बाद 214 वर्गफीट का क्षेत्र आवंटित किया जाना बाकी है। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि स्वामी–याची 14वें फ्लैट का हकदार नहीं है और अधिकाधिक वह 525/- रुपया प्रतिवर्ग फीट की दर पर 214 वर्गफीट के मूल्य का दावा बिल्डर से कर सकता है।

11. प्रत्यर्थी बिल्डर की ओर से उपस्थित अधिवक्ता श्री राजेश कुमार ने बिल्डर की ओर से दाखिल पूरक शपथपत्र के प्रत्युत्तर में परिशिष्ट–B में किए गए प्रकथनों के आधार पर श्री एस॰ गडोडिया के तर्कों का विरोध किया है कि न्यायालय ने दोनों पक्षों को सुनने के बाद आदेश पारित किया। उन्होंने 213 वर्गफीट के फ्लैटों और 27% पार्किंग स्थल देते हुए अधिनिर्णय को परिपूर्ण करने का प्रस्ताव कर्जदार को दिया।

12. प्रत्यर्थी के अधिवक्ता का प्रतिवाद यह है कि याची का दावा बिल्कुल निराधार है। उसे 14वाँ फ्लैट नहीं दिया जा सकता है क्योंकि यह अधिनिर्णय में दिए गए क्षेत्र के आधिक्य में होगा। बिल्डर के अधिवक्ता ने आयुक्त के माप के संबंध में कतिपय विषमताओं को भी इंगित किया और तर्क किया कि अधिनिर्णय स्वीकार करने की स्थिति में अधिनिर्णय अनिष्पादनीय हो जाएगा।

13. मैंने परस्पर पक्षों के अधिवक्ता को सुना है और अभिलेखों एवं निर्णयों का परिशीलन किया है। प्रकटत:, दोनों पक्षों ने माप के संबंध में ताथ्यिक विवाद उठाने का प्रयास किया है। माप आयुक्त द्वारा किया गया था और मध्यस्थ द्वारा रिपोर्ट स्वीकार किया गया था। कोई आपत्ति नहीं की गयी थी और आयुक्त की रिपोर्ट के निबंधनानुसार अधिनिर्णय पारित किया गया था। अधिनिर्णय और इसका आशय निष्पादन न्यायालय द्वारा प्रभाव दिए जाने के दायी है।

14. मैं भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन अधिकारिता के प्रयोग में ताथ्यिक विवादों का परीक्षण करने की इच्छुक नहीं हूँ। किंतु, याची की ओर से किया गया निवेदन इस प्रश्न के संबंध में है कि क्या निष्पादन न्यायालय अधिनिर्णय के पैरा 38 में एकमात्र टंकण गलती पर विश्वास करके अधिनिर्णय के परे जा सकता था। विद्वान अधिवक्ता ने जोर दिया है कि निष्कर्षों को जाँचना होगा और यदि कुछ विषमता है, तब इन्हें व्यथित पक्ष की प्रेरणा पर परिशुद्ध करना ही था। मैं इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकती हूँ कि प्रत्यर्थी बिल्डर द्वारा अधिनियम की धारा 34 के अधीन, तत्पश्चात अपील में और अंतत: सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अधिनिर्णय को चुनौती दी गयी थी जिन्हें खारिज कर दिया गया था। यदि बिल्डर अधिनिर्णय से व्यथित नहीं था और वह संप्रेक्षणों से संतुष्ट था, तब अधिनिर्णय को चुनौती देने के लिए उसके पास अवसर नहीं था। अधिनिर्णय को भी परिशिष्ट–2 के रूप में रिट याचिका के साथ संलग्न किया गया है। संपूर्ण विवाद का परीक्षण करने के बाद मध्यस्थ द्वारा दिए गए अधिनिर्णय को ठुकराया और तोड़ा–मरोड़ा नहीं जा सकता है।

15. अधिनिर्णय के उद्धरण और इसके प्रभावी भाग के कोरे परिशीलन पर विवाद्यक सं॰ 9 के सब–पैरा D में कथन किया गया है कि स्वामी–दावेदार, द्वारा ऐसा भुगतान कर दिए जाने पर प्रत्यर्थी बिल्डर को बिल्ट–अप क्षेत्र के 27% के शेष अंश की माप करते हुए शेष 14वें फ्लैट का कब्जा सौंप देना चाहिए। यदि फ्लैट का माप बिल्ट–अप क्षेत्र के 27% को पूर्णतः परिपूर्ण नहीं करता है, ऐसा कब्जा सौंपे जाने के पहले संबंधित पक्ष द्वारा 525/- रुपया प्रति वर्ग फीट की दर पर कम या अधिक अंतर का भुगतान किया जाएगा। स्वामी–दावेदार को उक्त भुगतान के 15 दिनों के भीतर प्रत्यर्थी बिल्डर द्वारा 14वें फ्लैट का कब्जा सौंप दिया जाएगा।

16. उपखंड A में उल्लेख मात्र यह है कि प्रत्यर्थी बिल्डर 13 फ्लैटों और 27% कार पार्किंग स्थल का कब्जा सौंपेगा, अधिनिर्णय को अनावश्यक नहीं बनाएगा। उपखंड (i) के विवाद्यक सं॰ 9 के पैरा 38 में 16038 वर्गफीट के रूप में क्षेत्र को उल्लिखित करते हुए गलती हुई जिस गलती का परीक्षण करने के लिए निष्पादन न्यायालय दायी था। परिशिष्ट 6 और 6/1, जो दिनांक 21.10.2008 के डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 1818 वर्ष 2008 में और दिनांक 3.3.2009 के सिविल पुनरीक्षण सं॰ 106 वर्ष 2008 में इस न्यायालय के आदेश हैं, के अतिरिक्त संपूर्ण अधिनिर्णय का कोरा पठन याची की ओर से किए गए प्रतिवाद को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं। पुनर्विलोकन आवेदन को निष्पादन न्यायालय द्वारा याची को प्रत्यर्थी बिल्डर द्वारा भुगतान योग्य 25000/- रुपयों के खर्च के साथ खारिज कर दिया गया था। ये आदेश निष्पादन न्यायालय के समक्ष अभिलेख के भाग थे किंतु मैं यह समझने में विफल हूँ कि किस प्रकार निष्पादन न्यायालय द्वारा इन समस्त पहलूओं और आदेशों और निर्णयों को नजरअंदाज कर दिया गया था। वस्तुतः, मैं रिट याचिका में और पुनर्विलोकन आवेदन में भी इस न्यायालय द्वारा किए गए संप्रेक्षणों के साथ पूरी तरह सहमत हूँ कि प्रत्यर्थी बिल्डर ने तुच्छ और तंग करने वाली आपत्तियों को उठाकर विधि की प्रक्रिया का लगातार दुरुपयोग किया है। विधि की प्रक्रिया का घोर दुरुपयोग किया गया है। याची साम्या अधिकारिता के समक्ष आया है। इस न्यायालय को भी समस्याओं का परीक्षण करना होगा और सुनिश्चित करना होगा कि पारित आदेशों और डिक्री का अनुपालन किया जाए। अधिनिर्णय वर्ष 2004 में दिया गया था और याची, जो संपत्ति का स्वामी भी है, को अनावश्यक मुकदमें में खींचा गया है। निष्पादन न्यायालय अथवा किसी अन्य न्यायालय के समक्ष प्रत्यर्थी का मामला यह नहीं है कि उसका हिस्सा आरंभिक करार में सहमत हिस्से के आवंटन की तुलना में कम है। यदि कुछ अंतर था भी, तब इसे मध्यस्थ के समक्ष उठाया जाना और सही करवाना चाहिए था। आयुक्त के रिपोर्ट को भी चुनौती नहीं दी गयी थी और केवल बाद के चरण पर बिल्डर द्वारा कुछ अनवधानीपूर्वक की गयी गलतियों को ध्यान में लिया गया था जिसका उपयोग उसने अधिनिर्णय को अवरुद्ध करने के लिए याची के विरुद्ध अपने लाभ के हथियार के रूप में किया।

17. रिट याचिका से अलग होने के पहले, मैं निष्पादन न्यायालय के गलती से उत्साहहीन रवैये अथवा डिक्री के अनिष्पादन को सुनिश्चित करने के मददगार के रूप में अपनी चिंता अभिव्यक्त करती हूँ।

18. यहाँ ऊपर वर्णित तथ्यों और परिस्थितियों में, रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है। निष्पादन न्यायालय का आदेश शून्यकृत किया जाता है और निष्पादन न्यायालय को यह सुनिश्चित करने का निर्देश दिया जाता है कि 14वें फ्लैट, जिसका क्षेत्रफल अधिक है, की डिलीवरी और तब 13 फ्लैंटों का कब्जा याची को उसके समक्ष इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत किए जाने की तिथि से दो माह की अवधि के भीतर सौंपा जाए। उनको यह सुनिश्चित भी करना होगा कि आधिक्य क्षेत्र के बदले याची द्वारा पहले ही जमा की जा चुकी संगणित राशि की संगणना सही–सही मध्यस्थ के निर्णय में हस्तक्षेप किए बिना की जाए जिसे अधिनियम की धारा 34 के अधीन उप–न्यायाधीश द्वारा संपुष्ट किया गया था और अपील

में उच्च न्यायालय द्वारा मान्य ठहराया गया था और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्वीकार और संपुष्ट किया गया था। दो माह की पूर्वोक्त अनुबंधित अवधि के भीतर अधिनिर्णय प्रभाव दिए जाने का दायी है और निष्पादन न्यायालय अथवा प्रत्यर्थी की ओर से कोई अवहेलना स्वीकार नहीं की जा सकती है चूँकि यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करते हुए संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन पर्यवेक्षकीय शक्ति का प्रयोग भी करता है।

19. तद्नुसार, यहाँ ऊपर किए गए निबंधनों और संप्रेक्षणों के अनुसार रिट याचिका अनुज्ञात की जाती है।

---

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efrx.k

प्रेम नारायण साव एवं एक अन्य

cuke

झारखंड राज्य

Cr. Appeal D.B. No. 1698 of 2003. Decided on 24th January, 2012.

सत्र केस सं॰ 79 वर्ष 1995 में अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट, लातेहार द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 20.11.2003 और दिनांक 21.11.2003 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 304B/34 एवं 328/34 सह-पठित दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धारा 3—पत्नी की हत्या–जहर देने के कारण मृत्यु–प्रत्येक को कारावास और 5000/- रुपया जुर्माना का दंडादेश अधिनिर्णीत–मृत्यु अस्वाभाविक थी और विवाह के 7 वर्षों के भीतर हुई–अपीलार्थी पति मृत्यु तक पत्नी को यातना देता रहा और दुर्व्यवहार किया–आरंभ से ही दहेज की मांग के लिए यातना के बारे में मौखिक साक्ष्य द्वारा समर्थित दस्तावेजी साक्ष्य है–अपीलार्थी-पति की दोषसिद्धि संपुष्ट की गयी किंतु दंडादेश पहले ही भुगत ली गयी अवधि तक घटा दिया गया–संदेह का लाभ देकर अन्य अभियुक्तगण को दोषमुक्त किया गया। (पैराएँ 8 से 10)

निर्णयज विधि.–1997(11) SCC 552—Referred.

अधिवक्तागण.–Mr. A.K. Pathak, For the Appellants; Mr. Amaresh Kumar, For the State.

न्यायालय द्वारा.–आरंभ में, अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री अजय कुमार पाठक ने निवेदन किया कि अपीलार्थी सं॰ 2 पनदेव साव की मृत्यु अपील लंबित रहने के दौरान हो गयी। अतः, वह उसकी ओर से अपील नहीं कर रहे हैं। तद्नुसार, अपीलार्थी सं॰ 2 की ओर से अपील पर जोर नहीं दिए जाने के कारण इसे खारिज कर दिया गया है।

2. यह अपील सत्र केस सं॰ 79 वर्ष 1995 में अपीलार्थीगण को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 304B/34 और 328/34 तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3 के अधीन दोषसिद्ध करते हुए अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट, लातेहार द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 20.11.2003 और दिनांक 21.11.2003 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है। उन्हें दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3 के अधीन छह माह का कठोर कारावास और प्रत्येक को 5000/- रुपयों का जुर्माना और जुर्माना के भुगतान के व्यतिक्रम में छह माह का सामान्य कारावास, भारतीय दंड संहिता की धारा 328/34 के अधीन दस वर्षों का कठोर कारावास; भारतीय दंड संहिता की धारा 304B/34 के अधीन आजीवन कारावास और प्रत्येक को 5000/- रुपयों का जुर्माना और जुर्माना के भुगतान के व्यतिक्रम में

छह माह की अवधि का सामान्य कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया है, जुर्माना के 60% का भुगतान मृतका के सूचक पिता को किया जाना था। दंडादेशों को साथ-साथ चलना था।

3. संक्षेप में अभियोजन मामला यह है कि शुक्रवार दिनांक 8.11.1991 को प्रात: लगभग 10.15 बजे लालदेव साह (अ॰ सा॰ 13) द्वारा अस्पताल में इस प्रभाव का फर्दबयान दर्ज किया गया था कि उसकी पुत्री मुनिया देवी (मृतका) का विवाह लगभग छह वर्ष पहले अपीलार्थी सं॰ 1 प्रेम नारायण साव के साथ हुआ था किंतु वह उसके साथ ''मार-पीट'' किया करता था और दहेज मांगा करता था जिसके लिए दो बार पंचायती की गयी थी किंतु ऐसी यातना जारी रही। अपीलार्थी सं॰ 2 (ससुर) और अपीलार्थी सं॰ 3 (सास) भी ऐसी यातना देते थे। पिछले मंगलवार को, सूचक की दो पुत्रियाँ सोनी देवी (अ॰ सा॰ 14) और किरण कुमारी (अ॰ सा॰ 2) ''छठ के अवसर'' पर मुनिया देवी को लाने गयी। उन्होंने बिदाई पर जोर दिया किंतु अपीलार्थी सं॰ 1 प्रेम नारायण साव द्वारा ऐसा नहीं किया गया था। अ॰ सा॰ 14 और अ॰ सा॰ 2 वापस चले आए। अपीलार्थी सं॰ 1 प्रेम नारायण साव ने उनसे कहा कि वह शनिवार को मुनिया देवी को लाएगा किंतु फर्दबयान की तिथि पर प्रात: लगभग 6 बजे एक ग्रामीण (अ॰ सा॰ 7) जो सूचक की पुत्री के गाँव गया था, को किसी शंकर साव द्वारा बताया गया था कि उसे जहर दे दिया गया था जिस पर अ॰ सा॰ 7 वहाँ गया और किसी डॉ॰ ए॰ एक्का को उसका इलाज करते पाया जिसके बाद उसे अ॰ सा॰ 7 द्वारा अस्पताल ले जाया गया था। वापस लौटने पर, अ॰ सा॰ 2 ने सूचक को बताया कि मुनिया देवी को जहर दिया गया था जिसे अ॰ सा॰ 7 की गाड़ी में अस्पताल ले जाया गया था। सूचक अस्पताल गया और पाया कि मुनिया देवी बेहोश पड़ी थी और उसकी नाक से झाग बाहर आ रहा था। इलाज के दौरान एक घंटा बाद उसकी मृत्यु हो गयी। सूचक ने अभिकथित किया कि अपीलार्थीगण ने जहर देकर मुनिया देवी की हत्या कर दी है।

4. अभियोजन ने 15 गवाहों का परीक्षण किया है। अ॰ सा॰ 1, 3 और 4 अनुश्रुत गवाह हैं। अ॰ सा॰ 2 और 14 किरण कुमारी और सोनी देवी सूचक की पुत्रियाँ है जो मृतका को लाने गयी थी। अ॰ सा॰ 5 सुनारी देवी मृतका की माता है। अ॰ सा॰ 6, 7 और 8 परमेश्वर साह, लखन साह और धुन्नु साह ने अभियोजन मामले का समर्थन नहीं किया है। अ॰ सा॰ 9 सिद्धनाथ डॉक्टर है जिन्होंने शव परीक्षण किया। उन्होंने विसरा रिपोर्ट की प्रतीक्षा करते हुए अनंतिम रूप से पाया कि मृत्यु जहर देने के कारण हुई थी। अ॰ सा॰ 10, बिहारी प्रसाद यादव गवाह है जो मृतका का इलाज करने के लिए डॉ॰ एक्का को बुलाने प्रेम नारायण साव के साथ गया था। अ॰ सा॰ 11 शंकर राम वाहन का चालक है जिसमें मृतका को अस्पताल ले जाया गया था। अ॰ सा॰ 12 भुनेश्वर सिंह अनुश्रुत ग्रामीण है। अ॰ सा॰ 13 लालदेव साव सूचक है। अ॰ सा॰ 15 बसुदेव साव औपचारिक गवाह है।

5. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री अजय कुमार पाठक ने निवेदन किया कि यह सत्य है कि यह दर्शाने के लिए दस्तावेज है कि दहेज मांग के कारण मृतका और अपीलार्थीगण के बीच तनावपूर्ण संबंध था और इसके लिए दोबारा पंचायती भी की गयी थी और दिनांक 3.4.1990 को अंतिम पंचायती की गयी थी किंतु, यह दर्शाने के लिए कुछ नहीं है कि तत्पश्चात, घटना की अभिकथित तिथि तक कोई दुर्भाग्यपूर्ण घटना हुई थी सिवाए इसके कि प्रेम नारायण साव के बड़े भाई अर्थात् वृक्ष (जिसे विचारण के लिए नहीं भेजा गया था) ने यह कहते हुए कि केवल सूचक के आने के बाद उसको भेजने का निर्णय किया जाएगा, अ॰ सा॰ 2 और 14 के साथ मुनिया देवी की बिदाई करने पर आपत्ति किया था। उन्होंने आगे निवेदन किया कि अ॰ सा॰ 2 और 14 ने विनिर्दिष्टत: कहा है कि प्रेम नारायण साव को बिदाई पर आपत्ति नहीं थी। यह दर्शाने के लिए कुछ नहीं है कि अपीलार्थीगण द्वारा उसे जहर दिया गया था। उसने यह भी निवेदन किया कि अ॰ सा॰ 2 और 14 ने सिवाए इसके कि प्रेम नारायण साव ने अपने बड़े भाई

का समर्थन किया, अपीलार्थीगण के किसी बुरे आचरण के बारे में कुछ भी नहीं कहा था। उन्होंने यह निवेदन भी किया कि कुछ गवाहों ने कहा था कि उन्होंने सुना था कि मुनिया देवी ने दवा खा लिया था। उन्होंने यह निवेदन भी किया कि अः साः 5, मृतका की माता हितबद्ध गवाह है और तनावपूर्ण संबंध के कारण उसने अपीलार्थीगण के विरुद्ध अभिकथन किया था किंतु ऐसे अभिकथनों को अभिलेख पर किसी अन्य सामग्री द्वारा संपुष्ट नहीं किया गया है। अतः उसने निवेदन किया कि अभियोजन समस्त युक्तियुक्त संदेह के परे अपीलार्थीगण के विरुद्ध अपना मामला सिद्ध करने में सक्षम नहीं हुआ है। उन्होंने **प्यारेलाल बनाम हरियाणा राज्य, 1997 (11) SCC 552,** में प्रकाशित निर्णय पर विश्वास किया।

6. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता श्री अमरेश कुमार ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया। उन्होंने निवेदन किया कि यह दर्शाने के लिए दस्तावेज हैं कि आरंभ से ही, विवाह के पहले भी दो अवसरों पर पंचायती के बावजूद दहेज मांग के लिए अपीलार्थीगण द्वारा मृतका को यातना दी गयी थी। अतः, प्रश्नगत घटना पहले की घटनाओं की निरन्तरता में घटित हुई है।

7. इस पर, अपीलार्थीगण के लिए उपस्थित श्री पाठक ने निवेदन किया कि अपीलार्थी सं॰ 1 प्रेम नारायण साव अब तक आठ वर्षों से अधिक तक कारा में बना हुआ है जो धारा 304B के अधीन विहित न्यूनतम दंडादेश से अधिक है और इसलिए दंडादेश की मात्रा पर कम से कम उसके मामले पर विचार किया जा सकता है। उन्होंने आगे निवेदन किया कि जहाँ तक अपीलार्थी तुकनी देवी (सास) का संबंध है, केवल अः साः 5 (मृतका की माता) ने उसके विरुद्ध अभिकथन किया है किंतु अन्य गवाहों द्वारा इसे संपुष्ट नहीं किया गया है। मृतका की बहनों अः साः 2 और 14 ने भी तुकनी देवी के विरुद्ध कुछ नहीं कहा है। इसके अतिरिक्त, अब तक वह 60 वर्षों की होगी और जमानत प्रदान किए जाने के पहले वह डेढ़ वर्ष तक कारा में रही है। उन्होंने यह निवेदन भी किया कि यह मामला वर्ष 1991 में हुई घटना से संबंधित बतायी जाती है। अंत में उन्होंने निवेदन किया कि अपीलार्थी सं॰ 3 तुकनी देवी संदेह के लाभ की हकदार है।

8. पक्षों को सुनने और सावधानीपूर्वक अभिलेख का परिशीलन करने के बाद हमारे मत में अपीलार्थी सं॰ 1 प्रेम नारायण साव की दोषसिद्धि के निर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं है। आरंभ से ही दहेज मांग के लिए दी गयी यातना के बारे में मौखिक साक्ष्य द्वारा समर्थित दस्तावेजी साक्ष्य है। यह प्रतीत होता है कि पंचायती हुई थी जिसमें उसने अपना दोष स्वीकार किया किंतु यातना जारी रही और पुनः दिनांक 3.4.1990 को पंचायती हुई थी। जब अः साः 2 और 14 ''छठ'' उत्सव के अवसर पर अपने साथ मृतका को लाने के लिए गयी और उसके बड़े भाई ने आपत्ति किया, उसने भी अपने भाई का समर्थन किया कि मृतका के पिता के आने के बाद ही निर्णय किया जाएगा कि उसे अपने भी पिता के घर भेजा जाए या नहीं। हम राज्य के विद्वान अधिवक्ता के निवेदन के साथ सहमत होने के इच्छुक हैं कि दिनांक 8.11.1991 को उसकी मृत्यु हो जाने तक अपीलार्थी सं॰ 1 प्रेम नारायण साव मृतका को यातना देता रहा और दुर्व्यवहार करता रहा। विवाह उसकी मृत्यु के सात वर्ष के भीतर हुआ था। मृत्यु अस्वाभाविक थी। इन परिस्थितियों में, प्रेम नारायण साव साक्ष्य अधिनियम की धारा 113B के अधीन अपने भार का निर्वहन करने के लिए बाध्य था किंतु वह ऐसा करने में विफल रहा। तद्नुसार, हम उसकी दोषसिद्धि में हस्तक्षेप करने के इच्छुक नहीं है।

किंतु, जहाँ तक दंडादेश का संबंध है, हम भारतीय दंड संहिता की धाराओं 304B/34 और 328/34 के अधीन दोनों अपराधों के लिए पहले ही भुगत ली गयी अवधि तक के दंडादेश को उपांतरित करने के इच्छुक हैं। वह पहले ही दहेज प्रतिषेध अधिनियम के अधीन दंडादेश भुगत चुका है। हम जुर्माना के आदेश में हस्तक्षेप करने इच्छुक नहीं है।

9. जहाँ तक अपीलार्थी तुकनी देवी का संबंध है, यह प्रतीत होता है कि अ॰ सा॰ 5 (मृतका की माता) ने केवल यह कहा है कि वह दहेज की मांग के लिए मृतका को यातना देती थी किंतु किसी अन्य गवाह द्वारा उसका बयान संपुष्ट नहीं किया गया है बल्कि उसकी पुत्रियों अ॰ सा॰ 2 और 14 ने भी, जो मृतका को लाने गयी थी, उसके विरुद्ध कुछ नहीं कहा था। साक्ष्य में यह भी आया है कि वह अपने पति के साथ अपने पुत्र प्रेम नारायण साव से अलग रहती थी।

मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, हम उसे संदेह का लाभ देने इच्छुक हैं।

10. परिणामस्वरुप, सत्र केस सं॰ 79 वर्ष 1995 में अपीलार्थी तुकनी देवी के विरुद्ध अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट, लातेहार द्वारा पारित दिनांक 20.11.2003 और दिनांक 21.11.2003 का दोषसिद्धि का निर्णय और दंडादेश अपास्त किया जाता है और उसे अपने जमानत बंधपत्र से उन्मोचित किया जाता है।

किंतु, अपीलार्थी प्रेम नारायण साव की दोषसिद्धि बनायी रखी जाती है पर पहले ही भुगत ली गयी अवधि तक के लिए दंडादेश घटाया जाता है।

यह स्पष्ट किया जाता है कि जुर्माना के दंडादेश में हस्तक्षेप नहीं किया गया है। तद्नुसार, अपीलार्थी प्रेम नारायण साव को जुर्माना जमा करने के बाद तुरन्त निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है यदि किसी अन्य मामले में उसकी आवश्यकता नहीं है।

इस प्रकार, यह अपील निपटायी जाती है।

---

ekuuh; vkjs vkjs çlkn] U;k;efr

किशोर कुमार गुप्ता उर्फ किशोर प्रसाद गुप्ता एवं एक अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr.M.P. No. 191 of 2011. Decided on 20th March, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 420 एवं 406—दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—छल एवं न्यास का दांडिक भंग–संज्ञान–घर की खरीद बिक्री के लिए करार-विक्रय विलेख के निष्पादन और रजिस्ट्रेशन के बाद भी भूमि का रिक्त कब्जा सौंपने से इनकार–जब तक प्रवंचना नहीं है, छल का अपराध कभी नहीं आकृष्ट होता है–परिवाद उपदर्शित नहीं करता है कि याचीगण द्वारा किसी तरीके से परिवादी को प्रवंचित किया गया था–छल का अपराध गठित करने के लिए आवश्यक अवयव की कमी है–यह न्यास के दांडिक भंग का मामला नहीं है–यह शुद्ध करार के भंग का मामला है जिसे सिविल न्यायालय में प्रवर्तित किया जा सकता था–संज्ञान लेने वाले आदेश को अपास्त किया गया। (पैराएँ 12, 14 से 19)

निर्णयज विधि.–(2011) 1 SCC 74—Relied on.

अधिवक्तागण.–M/s Sanjay Prasad, Kamdeo Pandey, For the Petitioners; A.P.P., For the State; Mr. P.C. Sinha, For the Opp. Party No.2.

आदेश

यह आवेदन दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 142 वर्ष 2006 में विद्वान सत्र न्यायाधीश-सह-एफ॰ टी॰ सी॰ II, गिरीडीह द्वारा पारित दिनांक 27.11.2010 के आदेश के विरुद्ध निर्देशित है जिसके द्वारा और जिसके

अधीन विद्वान न्यायाधीश ने परिवाद केस सं॰ 354 वर्ष 2006 में पारित दिनांक 1.8.2006 के आदेश को अपास्त करके याचीगण के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं 420 और 406 के अधीन दंडनीय अपराधों का संज्ञान लिया।

2. पक्षों के निवेदनों पर विचार करने के पहले परिवादी के मामले को ध्यान में लेने की आवश्यकता है।

3. परिवादी का पिता गिरीडीह नगरपालिका के वार्ड सं॰ 1 में अवस्थित होल्डिंग सं॰ 539 (आंशिक) वाले घर के एक हिस्से में किराएदार था। याचीगण ने गृह स्वामी होने के नाते परिवादी–विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 को बताया कि वे 14,11,000/- रुपयों के प्रतिफल के लिए घर बेचने का आशय रखते हैं। परिवादी इसको खरीदने के लिए सहमत हुआ और इसलिए 2,00,000/- रुपयों की राशि का भुगतान अग्रिम के रूप में किया गया था। इस पर, विक्रय करार निष्पादित किया गया था जिसे दिनांक 6.9.2005 को रजिस्टर्ड करवाया गया था। दिनांक 18.10.2005 को बैंक ड्राफ्ट के माध्यम से 6,00,000/- रुपयों की राशि का भुगतान किया गया था। इस पर परिवादी को बताया गया था कि वे प्रश्नगत घर को खाली करेंगे और इसका रिक्त कब्जा देंगे किंतु रिक्त कब्जा देने के बजाए कानूनी नोटिस दिया गया था जिसमें कथन किया गया था कि वे संपत्ति बेचने में दिलचस्पी नहीं रखते हैं और वे धन वापस करने के लिए तैयार हैं।

4. इस अभिकथन पर, परिवाद केस सं॰ 354 वर्ष 2006 के तहत परिवाद दर्ज किया गया था जिसमें अभिकथित किया गया था कि याचीगण ने विक्रय विलेख को निष्पादित नहीं करके और धन वापस नहीं करके छल और दुर्विनियोग का अपराध किया है। जाँच करने पर, विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी द्वारा अभिनिर्धारित किया गया था कि दांडिक अपराध नहीं बनता है, बल्कि यह सिविल दायित्व का मामला है और इसलिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 203 के अधीन इसे खारिज कर दिया गया था।

5. उस आदेश से व्यथित होकर, परिवादी ने दांडिक पुनरीक्षण सं॰ 142 वर्ष 2006 दाखिल किया जिसे यह अभिनिर्धारित करते हुए अनुज्ञात किया गया था कि अभियुक्तगण ने संपत्ति बेचने के लिए अग्रिम लिया था किंतु इसको बेचने के बजाए उन्होंने करार को प्रतिसंहृत कर दिया और इस प्रकार, यह दर्शाने के लिए पर्याप्त सामग्री है कि अभियुक्तगण ने भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 406 तथा 420 के अधीन अपराध किया है। वह आदेश चुनौती के अधीन है।

6. याचीगण की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि अधिकाधिक यह कहा जा सकता है कि याचीगण ने करार के निबंधनों का उल्लंघन किया है जिसके अधीन याचीगण को विक्रय विलेख निष्पादित करना था और प्रश्नगत घर का कब्जा देना था। इन परिस्थितियों में, छल अथवा दुर्विनियोग का अपराध करने का प्रश्न कभी उद्भूत नहीं होता है।

7. इसके विरुद्ध, परिवादी–विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि जब याचीगण ने संपत्ति बेचने का प्रस्ताव दिया, परिवादी इसको खरीदने के लिए सहमत हुआ और तद्द्वारा विक्रय करार निष्पादित किया गया था जिसे रजिस्टर्ड किया गया था और कि प्रतिफल के लिए 2,00,000/- रुपयों की राशि पहले ही अग्रिम के रूप में दी जा चुकी थी और विक्रय करार के निष्पादन के बाद 6,00,000/- रुपयों की अतिरिक्त राशि भी दी गयी थी। इसके बावजूद, न तो विक्रय विलेख निष्पादित किया गया था और न ही घर का कब्जा दिया गया था और न ही धन वापस लौटाया गया था और तद्द्वारा निश्चय ही याचीगण को छल का अपराध करते हुए कहा जा सकता है।

8. पक्षों की ओर से किए गए निवेदन के संदर्भ में, यह विचार करना होगा कि क्या परिवाद में किए गए अभिकथन छल और दुर्विनियोग का अपराध गठित करते हैं या नहीं?

9. भारतीय दंड संहिता की धारा 415 के अधीन छल का अपराध परिभाषित किया गया है जिसका पठन निम्नलिखित हैं:–

*^^**Ny-**&tk dkb fdlh 0;fDr l çopuk dj ml 0;fDr dk] ftl bl çdkj çofpr fd;k x;k g] diViod ;k cbekuh l mRçfjr djrk g fd og dkb lifÙk fdlh 0;fDr dk ifjnÙk dj n] ;k ;g lEefr n n fd dkb 0;fDr fdlh lifÙk dk j[k ;k lk'k; ml 0;fDr dk] ftl bl çdkj çofpr fd;k x;k g] mRçfjr djrk g fd og ,lk dkb dk; dj] ;k dju dk yki dj] ftl og ;fn ml bl çdkj çofpr u fd;k x;k gkrk rk] u djrk ;k dju dk yki u djrk] vkj ftl dk; ;k yki l ml 0;fDr dk 'kkjhfjd] ekufld] [;kfr lcèkh ;k lkifÙkd udlku ;k vigkfu dkfjr gkrh g] ;k dkfjr gkuh lHkkO; g] og ^^Ny** djrk g] ;g dgk tkrk gA***

19. इसके पठन से यह प्रतीत होता है कि छल का अपराध गठित करने के लिए निम्नलिखित अवयवों का होना जरूरी है:–

(1) ml çofpr djd 0;fDr dk diVi.k vFkok xjbekunkj mRçj.k gkuk pkfg,A

(2) (a) bl çdkj çofpr 0;fDr dk fdlh 0;fDr dk dkb lifÙk lkiu d fy, mRçfjr fd;k x;k gk vFkok fdlh 0;fDr }kjk dkb lifÙk viu ikl j[ku d fy, lgefr nu d fy, mRçfjr fd;k x;k gkA

(b) bl çdkj çofpr 0;fDr dk fdlh pht dk dju vFkok ugh dju d fy, vk'k;iod mRçfjr fd;k x;k gk tk og djrk vFkok ugh djrk ;fn ml bl çdkj çofpr ugh fd;k x;k gkrk

(3) 2(b) }kjk vkPNkfnr ekeyk e ÑR; vFkok yki ,lk gkuk pkfg, tk mRçfjr fd, x, 0;fDr dk 'kkjhfjd :i l vFkok mldh çfr"Bk vFkok lifÙk dk udlkuh vFkok gkfu dkfjr djrk g vFkok dkfjr fd, tku dh lHkkouk gA

11. इस प्रकार, छल का अपराध गठित करने के लिए प्रथम आवश्यक तत्व अभियुक्त द्वारा परिवादी की प्रवंचना है। जब तक प्रवंचना नहीं है, छल का अपराध कभी आकृष्ट नहीं होता है। प्रवंचना किए जाने के बाद प्रवंचित व्यक्ति को कुछ करने अथवा नहीं करने के लिए उत्प्रेरित किया जाना चाहिए। प्रश्न उद्भूत होता है कि प्रवंचना क्या है?

12. सामान्य अर्थ में प्रवंचना में किसी व्यक्ति को किसी चीज के बारे में भ्रमित करने अथवा यह विश्वास दिलाने का तत्व होता है जो झूठा है अथवा उसे इस प्रकार उत्प्रेरित करना है कि वह असत्य को सत्य, अवास्तविक को विद्यमान, नकली को सच्चा माने और यह भी आवश्यक है कि संविदा के आरंभ से ही प्रवंचना होनी चाहिए। अभिकथन के संदर्भ में छल का दांडिक अपराध गठित करने वाले सिद्धांत को लागू करते हुए यह प्रतीत होता है कि छल का अपराध गठित करने वाले प्रवंचना के प्रथम तत्व की कमी है क्योंकि परिवाद में किया गया अभिकथन कहीं पर भी याची द्वारा किसी तरीके से परिवादी को प्रवंचित करना उपदर्शित नहीं करता है।

13. इस चरण पर, **इरिडियम इंडिया टेलीकॉम लिमिटेड बनाम मोटोरोला निगम एवं अन्य, (2011)1 SCC 74,** मामले को निर्दिष्ट करना समुचित होगा जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 415 को ध्यान में लेते हुए अभिनिर्धारित किया कि धारा के दोनों भागों के अधीन छल के अपराध के लिए प्रवंचना आवश्यक अवयव है।

14. आगे संप्रेक्षित किया गया है कि शुद्धत: सिविल विवादों को दांडिक मामलों में संपरिवर्तित करने की प्रवृत्ति व्यावसायिक क्षेत्र में बढ़ती जा रही है। यह स्पष्टत: इस प्रचलित धारणा के कारण है कि सिविल विधि उपचार समय लेते हैं और देनदारों/उधार देने वालों के हितों की पर्याप्त रूप से सुरक्षा नहीं करते

हैं। ऐसी प्रवृत्ति को अनेक पारिवारिक विवादों में देखा जा रहा है और जो विवाहों/परिवारों को पूरी तरह टूटने की ओर ले जाता है। यह धारणा भी है कि यदि किसी व्यक्ति को किसी तरह दांडिक अभियोजन में उलझा दिया जाता है, सन्निकट सुलह की संभावना बढ़ जाती है। उक्त निर्णय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जोर देकर कहा गया है कि सिविल विवाद और दावा, जो दांडिक अपराध अंतर्ग्रस्त नहीं करते हैं, को दांडिक अभियोजन के माध्यम से दबाव डालकर सुलझाने के प्रयास की निंदा की जानी चाहिए और इसे निरुत्साहित करना चाहिए।

15. जैसा मैंने पहले ही संप्रेक्षित किया है कि छल का अपराध गठित करने वाले आवश्यक अवयव की कमी है, अत: दर्ज किया जाए कि छल का अपराध नहीं बनता है भले ही परिवाद में किए गए अभिकथन को सत्य माना जाए।

16. जहाँ तक भारतीय दंड संहिता की धारा 406 के अधीन अपराध का संबंध है, वह भी याची के विरुद्ध बनाया गया प्रतीत नहीं होता है। भारतीय दंड संहिता की धारा 405 के अधीन न्याय का दांडिक भंग परिभाषित किया गया है जिसका पठन निम्नलिखित है:–

> *"405.* ***vkijkfèkd U;kl Hkx-*** *&tk dkb lEifÙk ;k lEifÙk ij dkb Hkh v[kR;kj fdlh idkj viu dk U;Lr fd, tku ij ml lEifÙk dk cbekuh l nfofu;kx dj yrk g ;k ml viu mi;kx e lifjofrr dj yrk g ;k ftl idkj ,lk U;kl fuogu fd;k tkuk g] mldk fofgr dju okyh fofèk l fdlh fun'k dk] ;k ,l U;kl d fuogu d ckj e mld }kjk dh xb fdlh vfHkO;Dr ;k foof{kr oèk lfonk dk vfrØe.k djd cbekuh l ml lEifÙk dk mi;kx ;k O;;u djrk g] ;k tkuc>dj fdlh vU; O;fDr dk ,lk djuk lgu djrk g] og ^vkijkfèkd U;klHkx** djrk gA**

17. उक्त प्रावधान के पठन पर, भारतीय दंड संहिता की धारा 405 के अधीन अपराध गठित करने के लिए निम्नलिखित अवयव होने चाहिए।

> *(a) fdlh O;fDr dk lifÙk vFkok lifÙk d Åij vkfèkiR; U;Lr fd;k tkuk gkxkA*
>
> *(b) fd og O;fDr ml lifÙk dk viu mi;kx d fy, xj bekunkj :i l nfofu;kftr vFkok lifjofrr djrk g vFkok ml lifÙk dk xj bekunkj :i l mi;kx djrk g vFkok fBdku yxkrk g vFkok ,lk dju d fy, fdlh O;fDr dk tkuc> dj ihfMr djrk gA*
>
> *(c) fd ,lk nfofu;kx] lifjoru] mi;kx vFkok O;;u ml <x] ftle ,l U;kl dk fuogu fd;k tkuk g vFkok fdlh fofèkd lfonk tk ,l U;kl d fuogu dju okyk O;fDr u fd;k g fofgr dju okyk fofèk vFkok fun'k d mYy?ku e gkuk pkfg,A**

18. परिवाद में किए गए अभिकथन की पृष्ठभूमि में मैं इसे न्यास के दांडिक भंग का मामला नहीं पाता हूँ बल्कि यह शुद्धत: करार के भंग का मामला है जिसे सिविल न्यायालय में प्रवर्तित किया जा सकता था।

19. पूर्वोक्त परिस्थितियों के अधीन, विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय अपराध का संज्ञान लेने में अवैधता करता प्रतीत होता है। अत: दिनांक 27.11.2010 का आदेश एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है।

20. परिणामस्वरूप, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

ekuuh;k iue JhokLro] U;k;efr

गणेश भगत

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (C) No. 4533 of 2010. Decided on 13th March, 2012.

छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम, 1908—धारा 71A—भारत का संविधान–अनुच्छेद 226—भूमि का पुनर्स्थापन–उत्प्रेषण रिट, जो धारा 71A के अधीन पारित आदेश को चुनौती इप्सित करता है सदस्य, राजस्व बोर्ड के समक्ष अपील, पुनरीक्षण और याचिका के वैकल्पिक फोरमों के अस्तित्व के बावजूद पोषणीय है–अनुच्छेद 226 असाधारण उपचार है जिसका लाभ वैकल्पिक उपचार के प्रभावकारी न होने पर लिया जा सकता था। (पैरा 10)

निर्णयज विधि.–(2002) 3 JLJR 224—Assented.

अधिवक्तागण.–M/s Rajesh Kumar, Deepak Kumar Bharti, Amit Kr., Manindra Kr. Sinha, For the Petitioner; J.C. to S.C. (Mines), For the Respondent-State; M/s Rohit Roy, P.A.S. Pati, For the Respondent No.5.

आदेश

याची की ओर से उपस्थित अधिवक्ता और राज्य की ओर अधिवक्ता और प्रत्यर्थी सं॰ 5 की ओर से अधिवक्ता को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका एस॰ ए॰ आर॰ अपील सं॰ 105 वर्ष 1998 में प्रत्यर्थी सं॰ 2 द्वारा पारित दिनांक 19.7.2006 के आदेश और एस॰ ए॰ आर॰ केस सं॰ 4 वर्ष 1991-92 में प्रत्यर्थी सं॰ 3 द्वारा पारित दिनांक 30.6.1998 के आदेश को चुनौती देते हुए दाखिल की गयी है।

3. विवाद भूमि अर्थात् 1 एकड़ 18 डिसमिल क्षेत्र मापवाली भूखंड सं॰ 232 के पुनर्स्थापन से संबंधित है। प्राईवेट प्रत्यर्थी ने आरंभ में किसी शिव नंदन साहू के विरुद्ध छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम की धारा 71A के अधीन भूमि के पुनर्स्थापन के लिए विविध केस सं॰ 381 वर्ष 1976 के तहत मामला दाखिल किया जिसे दिनांक 25.7.1977 के आदेश (रिट याचिका का परिशिष्ट-1) के तहत खारिज कर दिया गया था। आवेदन इस आधार पर अस्वीकार किया गया था कि प्रश्नगत भूमि सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 46 की कोटि के अंतर्गत नहीं आती है। किसी जगरनाथ कोइरी के विरुद्ध एस॰ ए॰ आर॰ केस सं॰ 70 वर्ष 1985 के तहत द्वितीय पुनर्स्थापन आवेदन दाखिल किया गया था। उक्त व्यक्ति की भूमि बाकस्त भूमि थी और वर्तमान याची के विरुद्ध एस॰ ए॰ आर॰ केस सं॰ 74 वर्ष 1985 के तहत एक अन्य मामला दाखिल किया गया था। याची के विरुद्ध एस॰ ए॰ आर॰ केस सं॰ 78 वर्ष 1985 के रूप में तीसरा मामला दर्ज किया गया था। इन तीनों मामलों को साथ-साथ विनिश्चित किया गया था किंतु जगरनाथ कोइरी के विरुद्ध केस सं॰ 70 वर्ष 1985 में निर्णय अग्रनिर्णय था। कतिपय समय बीतने के बाद, उसी भूमि के संबंध में डी॰ सी॰ एल॰ आर॰ के समक्ष एस॰ ए॰ आर॰ केस सं॰ 4 वर्ष 1991 के तहत एक अन्य मामला दाखिल किया गया था।

4. विद्वान अधिवक्ता का निवेदन है कि प्रश्नगत भूमि अर्थात् भूखंड सं॰ 232 खतियानी भूमि है और याची के पिता के नाम में है जैसा खतियान में दर्शाया गया है। शिव नंदन साहू के पिता का नाम भी उल्लिखित किया गया था, जिसे पहले पक्ष बनाया गया था जब प्रथम एस॰ ए॰ आर॰ मामला संस्थापित

किया गया था। इस प्रकार, इस आधार पर याची ने जोर दिया कि यह इस बात को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि प्रश्नगत भूमि वर्ष 1935 के सर्वे बंदोबस्ती के पहले याची के हाथ में थी।

5. प्रत्यर्थी ने सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 71A के अधीन आवेदन दिया था जिसे रंगलाल सिंह मुंडा बनाम गणेश भगत के बीच एस॰ ए॰ आर॰ केस सं॰ 2/R8/1992-93 के रूप में दर्ज किया गया था। अंचलाधिकारी ने यह अभिनिर्धारित करते हुए कि वर्ष 1976 में दाखिल विविध मामला और विशेष अधिकारी द्वारा विनिश्चित कि प्रश्नगत भूमि बाकस्त भूमि है और, इसलिए, प्रत्यर्थी का दावा आधारहीन है, दिनांक 30.11.1992 के आदेश के तहत प्रत्यर्थी का दावा अस्वीकार कर दिया। दिनांक 30.11.1992 के अंचलाधिकारी के आदेश के विरुद्ध कोई अपील दाखिल नहीं की गयी थी, किंतु डी॰ सी॰ एल॰ आर॰ ने दिनांक 30.6.1998 के आदेश के तहत एस॰ ए॰ आर॰ केस सं॰ 4 वर्ष 1991 अनुज्ञात किया और प्रश्नगत संपत्ति को पुनर्स्थापित करने का निर्देश सक्षम प्राधिकारी को दिया। उक्त आदेश रिट याचिका के परिशिष्ट 6 के रूप में संलग्न है। याची ने एस॰ ए॰ आर॰ अपील सं॰ 105/R-15/1998-99 (गणेश भगत बनाम रंगलाल सिंह मुंडा) दाखिल किया जिसे दिनांक 19.7.2006 के आदेश के तहत प्रत्यर्थी सं॰ 2 उपायुक्त, राँची द्वारा खारिज कर दिया गया था। रिट याचिका में दोनों आदेशों को चुनौती दी गयी है।

6. प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित अधिवक्ता द्वारा आर्रंभिक आपत्ति की गयी है कि चूँकि याची उपायुक्त द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध सदस्य, राजस्व बोर्ड के समक्ष अपील में रिट याचिका दाखिल करने में विफल रहा है, रिट याचिका खारिज किए जाने की दायी है।

7. याची की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने इस आधार पर आक्षेपित आदेशों को चुनौती दिया है कि प्रतिवाद करने वाले प्रत्यर्थी ने वर्ष 1976 से ही अनेक अवसरों पर प्रश्नगत भूमि के पुनर्स्थापन का प्रश्न उठाया था और उन समस्त मामलों को खारिज कर दिया गया था, जो आदेश रिट याचिका के साथ संलग्न है किंतु उक्त आदेशों के विरुद्ध अपील नहीं की गयी थी। पूर्व आदेशों को दबाते हुए डी॰ सी॰ एल॰ आर॰, राँची के समक्ष चौथी बार वही प्रश्न उठाया गया था और अपने पक्ष में आदेश प्राप्त कर लिया गया था। जोर यह है कि पूर्व न्याय के सिद्धांत पूरी तरह प्रयोज्य हैं। उसी भूमि के संबंध में जहाँ पुनर्स्थापन का वही विवाद्यक अंतर्ग्रस्त था, याची और प्रतिवाद कर रहे प्राइवेट प्रत्यर्थी के बीच दो बार मामला विनिश्चित किया जा चुका है और इसलिए बार–बार डी॰ सी॰ एल॰ आर॰ द्वारा और उपायुक्त द्वारा भी मामला न्यायनिर्णीत नहीं किया जा सकता था।

8. प्रतिवाद कर रहे प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान अधिवक्ता के आर्रंभिक आपत्ति का उत्तर देते हुए, निवेदन यह है कि चूँकि डी॰ सी॰ एल॰ आर॰ का आदेश और अपील में आदेश अधिकारितावहीन है चूँकि उन्हीं पक्षों के बीच उसी प्रश्न के संबंध में पहले से ही पूर्व निर्णय है और, इसलिए, रिट याचिका ही केवल प्रभावकारी उपचार है जहाँ आदेशों को चुनौती दी जा सकती थी।

9, डॉ॰ कृष्ण देव नारायण अग्रवाल बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, 2002 (3) JLJR 224, में इस न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया गया है।

10. मैंने निर्णय का परिशीलन किया है और प्रकटत:, वर्तमान मामले के तथ्य उस मामले के तथ्य के कुछ समरुप हैं जिसे वर्ष 2002 में ही इस न्यायालय द्वारा विनिश्चित किया गया था। अभिनिर्धारित किया गया था कि उत्प्रेषण रिट, जो सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 71A के अधीन पारित आदेश को चुनौती इप्सित करता है, सदस्य, राजस्व बोर्ड के समक्ष अपील, पुनरीक्षण और याचिका के वैकल्पिक फोरमों के अस्तित्व के बावजूद पोषणीय है क्योंकि आदेश पूर्णत: अधिकारितावहीन थे और, इसलिए, वैकल्पिक उपचार की वर्जना लागू नहीं होगी। मैं पूर्वोक्त निर्णयों के साथ पूरी तरह सहमत हूँ। इसके

अतिरिक्त, भारत के संविधान का अनुच्छेद 226 असाधारण उपचार है जिसका लाभ तब लिया जा सकता था जब वैकल्पिक उपचार प्रभावकारी नहीं है, विशेषत: जब रिट याचिका ग्रहण कर ली गयी थी, शपथपत्रों का आदान-प्रदान किया जा चुका था और अंतिम न्याय निर्णयन के चरण पर वैकल्पिक उपचार के आधार पर रिट याचिका को खारिज नहीं किया जा सकता है। वैकल्पिक उपचार का अस्तित्व नि:संदेह प्रक्रियात्मक विधि है किंतु इस न्यायालय ने पहले ही याची को इस उपचार का लाभ लेने की अनुमति दी है, अत: इस चरण पर आपत्ति ग्रहण नहीं की जा सकती है।

11. डी॰ सी॰ एल॰ आर॰, राँची और उपायुक्त, राँची इस तथ्य पर विचार करने में विफल रहे कि प्रतिवाद कर रहे प्रत्यर्थी के कहने पर पुनर्स्थापन को अनेक अवसरों पर पहले अस्वीकार कर दिया गया था और उन समस्त मामलों में पारित आदेश अंतिमता प्राप्त कर चुके हैं। अवर प्राधिकारीगण को परिणामों को ध्यान में लेना चाहिए था जो अपरिहार्य है जब सक्षम प्राधिकारी द्वारा विवादित प्रश्न को पहले ही विनिश्चित किया जा चुका है और इसे व्यथित पक्ष द्वारा चुनौती नहीं दी गयी है।

12. अत:, वर्तमान रिट याचिका में आक्षेपित दोनों आदेशों एस॰ ए॰ आर॰ अपील सं॰ 105/1998 में प्रत्यर्थी सं॰ 2 द्वारा पारित दिनांक 19.7.2006 एवं एस॰ ए॰ आर॰ केस सं॰ 4 वर्ष 1991-92 में प्रत्यर्थी सं॰ 3 द्वारा पारित दिनांक 30.6.1998 के आदेश को एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है। नए सिरे से प्रश्न विनिश्चित करने के लिए मामला अपीलीय प्राधिकारी अर्थात् प्रत्यर्थी सं॰ 2 को वापस भेजा जाता है। पक्षों को सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए और प्राधिकारी निम्नलिखित विनिश्चित करेंगे:-

(1) D;k io U;k; dk fl)kr oreku ekey ij ç;kT; g pfd iuLFkkiuk dk ç'u igy gh fofoèk dl l0 381 o"k 1976 e fnukd 25.7.1977 d vkn'k d rgr vkj ,l0 ,0 vkj0 dl l0 70 o"k 1985, 74 o"k 1985 vkj 78 o"k 1985 e fnukd 24.3.1986 d vkn'k d rgr fofuf'pr fd;k tk pdk Fkk

(2) çfrokn dj jgk çR;Fkh iokDr dk;okfg;k e ikfjr vkn'kk dk pukrh nu e foQy jgk vkj blfy, mDr vkn'kk u vfrerk çkIr dj fy;k g vkj D;k bl rkfRod igy ij xkj fd, fcuk çkfèkdkjh vkn'k ikfjr dj ldrk Fkk

(3) ç'uxr Hkfe d iuLFkkiu d lcèk e i{kk }kjk mBk;k x;k dkb vU; ç'u

13. अपीलीय प्राधिकारी इस आदेश की प्रमाणित प्रति की प्रस्तुति की तिथि से छह माह की अवधि के भीतर दोनों पक्षों को सुनवाई का पर्याप्त अवसर देने के बाद अपील विनिश्चित करेगा।

14. पूर्वोक्त संप्रेक्षणों/निर्देशों के साथ इस रिट याचिका को निपटाया जाता है।

---

ekuuh; çdk'k rkfr;k] e[; U;k;kèkh'k ,o vij'k dekj flg] U;k;efr

मेसर्स पी॰ के॰ प्रेस मेटल प्रा॰ लि॰, जमशेदपुर

cuke

झारखंड राज्य विद्युत बोर्ड एवं अन्य

L.P.A. No. 171 of 2012. Decided on 2nd April, 2012.

झारखंड औद्योगिक नीति, 2001—विद्युत प्रोत्साहन–अंतिम बिल की प्रमाण पत्र कार्यवाही को चुनौती–औद्योगिक नीति के अधीन उपयुक्त व्यक्तियों को समस्त लाभ उपलब्ध है किंतु उस व्यक्ति को नहीं जो समस्त प्रक्रियाओं को विलंबित करने के बाद समय के किसी बिंदु पर लाभ लेना चाहता है–याची लाभ लेने के लिए समय पर न्यायालय के पास नहीं आया–न्यायालय आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने का इच्छुक नहीं है। (पैराएँ 4 एवं 5)

अधिवक्तागण.–M/s. N.K. Pasari, For the Appellant; M/s. Ajit Kumar, For the Respondents.

आदेश

अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. अपीलार्थी ने 59 लाख और कुछ रुपयों की राशि के दिनांक 25 मार्च, 2004 के अंतिम बिल की प्रमाण पत्र कार्यवाही को चुनौती दिया है। याची की रिट याचिका खारिज कर दी गयी है, अत: यह एल॰ पी॰ ए॰ दाखिल किया गया है।

3. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, दिनांक 7 मार्च, 2002 को अपीलार्थी की इकाई को बीमार घोषित किया गया था और अपीलार्थी के अनुसार काफी पहले दिनांक 20 जून, 2003 को झारखंड औद्योगिक नीति, 2001 के अधीन अपीलीय प्राधिकारी द्वारा कतिपय बकायों के अधित्यजन के लिए उसका मामला बोर्ड को अनुशंसित किया गया था और दिनांक 12 जून, 2006 को स्वयं बोर्ड द्वारा परिपत्र भी जारी किया गया था।

4. ये समस्त चीजें स्पष्टत: प्रदर्शित करती है कि यदि याची योजना में से किसी का लाभ लेने का इच्छुक था, उसे अनुतोष पाने के लिए तुरन्त इस न्यायालय के समक्ष आना चाहिए था किंतु वह वर्ष 2010 में इस न्यायालय के पास आया और वह भी प्रमाण पत्र प्राधिकारी के समक्ष उपस्थित हुए बिना और अब तक प्रमाणपत्र कार्यवाही में पहले ही आठ वर्षों तक का और इस रिट याचिका को दाखिल करने के समय तक छह वर्षों तक का विलंब हो चुका है।

5. औद्योगिक नीति के अधीन, उपयुक्त व्यक्तियों को समस्त लाभ उपलब्ध है और न कि उस व्यक्ति को जो समस्त प्रक्रियाओं को विलंबित करने के बाद समय के किसी बिन्दु पर, लाभ लेना चाहता है। याची समय पर लाभ, यदि यह याची को प्रोद्भूत हुआ, लेने न्यायालय के पास नहीं आया था। अत:, हम आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने के इच्छुक नहीं हैं और इतनी लंबी अवधि के बाद याची द्वारा अभ्यावेदन किया जाना ऐसे मामले में अनुतोष प्रदान किए जाने के लिए कम करने वली परिस्थितियाँ नहीं होंगी क्योंकि सरकारी राजस्व अंतर्ग्रस्त है और सरकार के किसी दोष के बिना विद्युत बोर्ड को राजस्व का भुगतान नहीं किया गया है।

6. अत: यह एल॰ पी॰ ए॰ खारिज किया जाता है।

---

ekuuh;k iue JhokLro] U;k;efr

अंजनी कुमार विश्वकर्मा

cuke

झारखंड राज्य

S.A. No. 116 of 2009. Decided on 2nd April, 2012.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—धारा 100—भूमि पर हक एवं कब्जा के लिए वाद–वादी ने अपना दावा सिद्ध करने के लिए कोई पट्टा अथवा अमलनामा दाखिल नहीं किया

था–वादी-अपीलार्थी का दावा व्यवस्थापन विलेख और प्रतिकूल कब्जा पर आधारित है–बंदोबस्ती रद्द करते हुए डी॰ सी॰ के आदेश में कोई गलती अथवा अवैधता दर्शायी नहीं जा सकी थी–अपीलार्थी राज्य के विरुद्ध तीस वर्षों की अवधि के लिए प्रतिकूल, अबाधित और निरन्तर कब्जा सिद्ध नहीं कर सका था–उसने प्रतिकूल कब्जा के रूप में अपना हक पुख्ता नहीं किया है–अपील खारिज। (पैराएँ 4 से 8)

अधिवक्तागण.–M/s Manjul Prasad, Praveen Kumar, Shashank Shekhar Prasad, For the Appellant; None, For the Respondent.

आदेश

अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. वाद पत्र के अंत में वर्णित भूमि के संबंध में गाँव डंबीसाई के गाँव मुंडा द्वारा किए गए परती भूमि की बंदोबस्ती के संबंध में वादी के कब्जा को संपुष्ट करने के लिए और उसके अधिकार, हक अथवा हित की घोषणा करने के लिए वाद दाखिल किया गया था। प्रश्नगत भूमि चाईबासा नगरपालिका, वार्ड सं॰ 5, मुहल्ला टूंगरी, पी॰ ओ॰ चाईबासा, जिला पश्चिमी सिंहभूम के अंतर्गत अवस्थित थी। वर्ष 1973 से संबंधित सर्वे बंदोबस्ती में रैयत के रूप में वादी के नाम में विवादित भूमि को दर्ज किया गया था। वादी का दावा यह था कि डंबीसाई गाँव के एस्टेट सं॰ 697, थाना सं॰ 663 वाले खाता सं॰ 2 के अधीन भूखंड सं॰ 667 से संबंधित प्रश्नगत भूमि उसके दादा के नाम पर बंदोबस्त की गई थी।

3. प्रत्यर्थी द्वारा इस वाद का प्रतिवाद किया गया था। प्रतिवादी की ओर से प्रतिवाद किया गया था कि वाद विधि में और तथ्यों पर पोषणीय नहीं था, यह तंग करने वाले प्रकृति का है और गलत आशय के साथ दाखिल किया गया है। वाद, जैसा दाखिल किया गया है, तथ्यों के दमन और सही विवरण की विकृति से पूर्ण है। वादी वाद पत्र पर हस्ताक्षर करने और इसे सत्यापित करने में विफल रहा। वाद घोर रूप से अवमूल्यित है। वाद का मूल्य न्यूनतम चार लाख रुपयों पर सुझाया गया था और, इसलिए, यह न्यायालय की धनीय अधिकारिता के परे है। वाद संपत्ति के विवरण को भी चुनौती दी गयी थी जैसा अनुसूची-1 में वर्णित है। वादी डंबीसाई गाँव का रैयत नहीं है। वह अभिकथित रूप से अपने द्वारा धारित भूमि का कोई विवरण प्रस्तुत करने में सक्षम नहीं हुआ है।

4. अनेक विवाद्यकों को विरचित किया गया था। अधिकारिता के संबंध में विवाद्यक सं॰ 2 वादी के पक्ष में विनिश्चित किया गया था। अभिनिर्धारित किया गया था कि न्यायालय को वाद का विचारण करने की अधिकारिता है। विवाद्यक सं॰ 5 और 6 इस प्रश्न पर थे कि क्या वादी के पक्ष में की गयी बंदोबस्ती अवैध थी और अवर न्यायालयों का दृष्टिकोण था कि चूँकि वादी ने रैयत के रूप में अपना दावा सिद्ध करने के लिए कोई पट्टा अथवा अमलनामा दाखिल नहीं किया था, अतः विवाद्यक सं॰ 5 और 6 को उसके विरुद्ध विनिश्चित किया गया था।

5. सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या वाद परिसीमा विधि द्वारा वर्जित है। दावा किया गया अनुतोष इस प्रभाव की घोषणा के लिए डिक्री के लिए प्रार्थना सम्मिलित करता है कि उपायुक्त, सिंहभूम पश्चिम का आदेश और आयुक्त, दक्षिण छोटानागपुर डिविजन और राजस्व बोर्ड, झारखंड द्वारा उक्त आदेश की संपुष्टि विधि के अनुरूप नहीं है और न्यायालय का दृष्टिकोण था कि दावा परिसीमा द्वारा वर्जित है। अपीलार्थी का दावा बंदोबस्ती विलेख, प्रदर्श 1, और प्रतिकूल कब्जा के आधार पर है।

6. बंदोबस्ती रद्द करने वाले विद्वान उपायुक्त के निष्कर्ष और आदेश, जिन्हें उच्चतर प्राधिकारी द्वारा संपुष्ट किया गया है, को चुनौती दी गयी है। यह सिद्ध करने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि यह क्यों अवैध है और उक्त निष्कर्ष में मुख्य त्रुटि क्या है। विद्वान अधिवक्ता अपने प्रतिवाद के समर्थन में कोई विश्वासोत्पादक स्पष्टीकरण अथवा तर्क देने में सक्षम नहीं हुए है।

7. इसके अतिरिक्त, दावा प्रतिकूल कब्जा के आधार पर किया गया है। वादी–अपीलार्थी तीस वर्षों की अवधि के लिए राज्य के विरुद्ध प्रतिकूल, अबाधित और निरन्तर कब्जा सिद्ध करने में सक्षम नहीं हुआ है और इसलिए, मेरा दृष्टिकोण है कि उसने प्रतिकूल कब्जा के रूप में भी अपना हक पुख्ता नहीं किया है।

8. वर्तमान द्वितीय अपील में उठाया गया विधि का प्रश्न सी॰ पी॰ सी॰ की धारा 100 के अधीन किसी हस्तक्षेप के लिए नहीं कहता है। कोई सारवान त्रुटि नहीं है और विनिश्चित किए जाने के लिए विधि का प्रश्न नहीं है। विद्वान अधिवक्ता द्वारा किया गया ताथ्यिक तर्क गुणागुणरहित है और तद्नुसार वर्तमान द्वितीय अपील खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; ujUn ukFk frokjh] U;k;efr

ओम श्रीवास्तव

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (C) No. 207 of 2003. Decided on 2nd April, 2012.

भारत का संविधान–अनुच्छेद 226—प्रमाण पत्र मामला–कुर्की वारन्ट–याची के पास प्रभावकारी वैकल्पिक उपचार है–रिट याचिका अपोषणीय। (पैराएँ 2 से 5)

अधिवक्तागण.–M/s Dilip Jerath, M. Kumar, For the Petitioner; J.C. to S.C. (Mines), For the Respondents.

आदेश

इस रिट याचिका में, याची ने दिनांक 19.9.1990 और दिनांक 14.5.2003 के आदेशों के अभिखंडन के लिए प्रार्थना की है जिसके द्वारा प्रमाणपत्र केस सं॰ 114 (एम॰ आर॰) वर्ष 1989-90 में याची के विरुद्ध कुर्की वारन्ट जारी किया गया है।

2. याची की शिकायत यह है कि प्रमाणपत्र अधिकारी द्वारा याची की आपत्ति और दस्तावेजों पर समुचित रूप से विचार नहीं किया गया था और इस प्रकार आदेश अवैध और मनमाना है।

3. अन्य बातों के साथ यह कथन करते हुए कि आदेश के विरुद्ध सांविधिक अपील का प्रावधान है और कि यह रिट याचिका पोषणीय नहीं है, प्रत्यर्थीगण की ओर से प्रति शपथ पत्र दाखिल किया गया है।

4. याची के विद्वान अधिवक्ता ने उक्त प्रतिवादों को विवादित नहीं किया है कि आदेश के विरुद्ध अपील का प्रावधान है।

5. यह विचार करते हुए कि याची के पास प्रभावकारी वैकल्पिक उपचार है, यह रिट याचिका ग्रहणीय नहीं है।

6. तद्नुसार, यह रिट याचिका खारिज की जाती है।

---

ekuuh; vkjñ vkjñ çlkn ,o vij'k dekj flg] U;k;efrx.k

टाटा स्टील लिमिटेड

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (T) No. 6661 of 2011. Decided on 6th March, 2012.

(क) झारखंड मूल्य वर्धित कर अधिनियम, 2005—धाराएँ 37 एवं 40—दंड–लेखा परीक्षा आपत्ति–निर्धारण से बचता हुआ टर्नओवर–सकल विक्रय आगम के संबंध में याची द्वारा दाखिल पुनरीक्षित वार्षिक रिटर्न मुख्य रूप से लेखा-परीक्षा रिपोर्ट से भिन्न था–निर्धारण की मात्रा पर विचार करने वाले निर्णय के गुणागुण पर रिट न्यायालय विचार नहीं कर सकता है–याची के पास विहित प्राधिकारी के समक्ष अपील/पुनरीक्षण दाखिल करने का सांविधिक उपचार है–रिट याचिका खारिज। (पैराएँ 17 से 21)

(ख) भारत का संविधान–अनुच्छेद 226—राजस्व अंतर्ग्रस्त करने वाले मामलों में, जहाँ सांविधिक उपचार उपलब्ध हैं, उच्च न्यायालय को जोर देना होगा कि अनुच्छेद 226 के अधीन उपचार का लाभ लेने के पहले व्यक्ति ने प्रासंगिक संविधि के अधीन उपलब्ध उपचारों को निःशेष कर लिया हो। (पैरा 20)

निर्णयज विधि.–(2010) 8 SCC 110—Relied on; 1985 STC (58) 217; 2000 STC (117) 346—Referred.

अधिवक्तागण.–M/s M.S. Mittal, A.R. Choudhary, For the Petitioner; Mr. Ajit Kumar, For the Respondents.

आदेश

वर्तमान रिट आवेदन में याची ने वाणिज्य कर उपायुक्त, झरिया सर्किल, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 13.8.2011 के आदेश (परिशिष्ट-9) सहित दिनांक 16.7.2011 के नोटिस (परिशिष्ट-6 श्रृंखला) के अनुसरण में आरंभ की गयी संपूर्ण कार्यवाही का अभिखंडन इप्सित किया है। याची वाणिज्य कर उपायुक्त, झरिया सर्किल, धनबाद द्वारा दिनांक 13.8.2011 के अपने आदेश के अनुसरण में किए गए दिनांक 13.8.2011 के पश्चातवर्ती मांग नोटिस सं॰ 527 (परिशिष्ट-8) से भी व्यथित है जहाँ झारखंड मूल्य वर्धित कर अधिनियम, 2005 (इसमें इसके बाद ''2005 के अधिनियम'' के रूप में निर्दिष्ट) की धारा 37 (6) के अधीन 39,98,993.36/- रुपयों के दंड के साथ 19,99,496.68/- रुपयों के दायित्व को अभिनिर्धारित करते हुए झारखंड मूल्य वर्धित कर के अधीन निर्धारण का आदेश पारित किया गया है।

2. दिनांक 13.8.2011 के पूर्वोक्त आक्षेपित निर्णय और उसी तिथि के मांग नोटिस को जारी करने की ओर ले जाते तथ्य संक्षेप में निम्नलिखित है:–

3. याची कंपनी झारखंड राज्य में जमशेदपुर में अपने समेकित इस्पात संयंत्र में लौह एवं इस्पात उत्पादों के निर्माण में लगी हुई है। इसके पास झारखंड राज्य के भीतर जामडोबा और भेलाटांड में अपना कोयला खान है। याची 2005 के अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रेशन सं॰ 20671800791 वाली जामडोबा और भेलाटांड में अपनी गतिविधियों के लिए झरिया सर्किल, धनबाद में पृथक रूप से रजिस्टर्ड है। वित्तीय वर्ष 2007-08 के लिए 2005 के अधिनियम के अधीन निर्धारण कार्यवाही 2005 के अधिनियम की धारा 35 के अधीन उपायुक्त, वाणिज्य कर, झरिया सर्किल, धनबाद द्वारा परिशिष्ट 3 में अंतर्विष्ट आदेश को पारित करके दिनांक 19.2.2010 को निर्धारण अधिकारी द्वारा समाप्त की गयी थी।

4. निर्धारण प्राधिकारी के आदेश से व्यथित होकर याची ने वाणिज्य कर आयुक्त के समक्ष स्वप्रेरित पुनरीक्षण पुनरीक्षण मामला सं० CC (S) 86 वर्ष 2010 दाखिल किया। दिनांक 25.3.2010 के आदेश द्वारा वाणिज्य कर आयुक्त ने कर की विवादित राशि की वसूली स्थगित करते हुए अंतरिम आदेश पारित किया यदि याची दिनांक 29.3.2010 तक विवादित राशि के विरुद्ध 1 करोड़ रुपयों की राशि के भुगतान का साक्ष्य अवर न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करता है। उक्त पुनरीक्षण मामला अभी भी विद्वान आयुक्त, वाणिज्य कर, राँची, झारखंड के समक्ष लंबित पड़ा है।

5. तत्पश्चात्, याची ने दिनांक 30.7.2011 को उपस्थित होने और वित्तीय वर्ष 2007-08 के संबंध में की गयी लेखा परीक्षा आपत्ति के संबंध में स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने के लिए उसको कहते हुए दिनांक 16.7.2011 का नोटिस प्राप्त किया। लेखा परीक्षा आपत्ति को दिनांक 16.7.2011 की अधिसूचना के साथ संलग्न किया गया था जो रिट याचिका की परिशिष्ट-6 श्रृंखला है। याची उपस्थित हुआ और अपना विस्तृत उत्तर दाखिल किया जो रिट याचिका में किए गए प्रकथनों से भी स्पष्ट है। कारण बताओ का उत्तर भी रिट याचिका के परिशिष्ट-7 के रूप में संलग्न है। याची यहाँ ऊपर निर्दिष्ट दिनांक 16.7.2011 के नोटिस का कारण बताओ का विस्तृत उत्तर प्रस्तुत करता प्रतीत होता है। किंतु, निर्धारण प्राधिकारी यह निष्कर्ष कि सकल विक्रय राशि के संबंध में याची द्वारा दाखिल पुनरीक्षित वार्षिक रिटर्न और लेखा परीक्षा रिपोर्ट JVAT/409 में भिन्नता है, दर्ज करते हुए दिनांक 13.8.2011 का आक्षेपित आदेश पारित करने के लिए अग्रसर हुआ है। अतः, निर्धारण अधिकारी ने याची के बयान पर अविश्वास किया और लेखा परीक्षा आपत्ति की दृष्टि में आक्षेपित आदेश पारित करने के लिए अग्रसर हुआ। तद्नुसार, 4% की दर पर वैट के रूप में 19,99,496.68/- रुपयों की राशि निर्धारित की गयी है और साथ ही 2005 के अधिनियम की धारा 37(6) के अधीन 39,98,993.36/- रुपयों की राशि का दंड भी अधिरोपित किया गया है। दोनों शीर्षों के अधीन पूर्वोक्त कुल राशि 59,98,490.04/- रुपया होती है और इसके अनुसरण में भी दिनांक 13.8.2011 की मांग नोटिस जिसे भी यहाँ आक्षेपित किया गया है, जारी की गयी थी।

6. याची ने अन्य बातों के साथ इस आधार पर आक्षेपित आदेश का विरोध किया है कि आक्षेपित आदेश 2005 के अधिनियम की धारा 40 के प्रावधानों, जो निर्धारण से बचते हुए टर्न ओवर पर विचार करते हैं; के अधीन जारी किया है जबकि उक्त अधिनियम के प्रावधानों सह-पठित झारखंड मूल्य वर्धित कर नियमावली, 2006 का नियम 59 (1) के अनुरूप JVAT/302 याची को कोई कार्यवाही जारी नहीं की गयी थी। याची ने आक्षेपित आदेश के अधीन जारी अतिरिक्त दंड का भी विरोध किया है क्योंकि 2005 के अधिनियम की धारा 37 (6) के अधीन याची को सुनवाई का अवसर देते हुए कोई नोटिस जारी नहीं किया गया है।

7. प्रत्यर्थीगण उपस्थित हुए हैं और याची की ओर से किए गए दावा का प्रतिवाद करते हुए आक्षेपित आदेश और मांग नोटिस का समर्थन करते हुए अन्य बातों के साथ अपना प्रतिशपथ पत्र दाखिल किया है। प्रत्यर्थीगण ने यह कथन भी किया है कि दिनांक 16.7.2011 के मेमो सं० 365, जिसके साथ लेखा परीक्षा आपत्ति भी संलग्न की गयी थी, के अधीन नोटिस तामील करके याची को युक्तियुक्त और पर्याप्त अवसर दिया गया था।

8. याची उपस्थित हुआ और विस्तृत उत्तर दाखिल किया, जिसे प्रत्यर्थी सं० 4 द्वारा विश्वासोत्पादक नहीं पाया गया था और तद्नुसार, आक्षेपित आदेश जारी किया गया था। प्रत्यर्थीगण ने धारा 37 (6) के प्रावधानों के अधीन दंड का अधिरोपण इस आधार पर आगे न्यायोचित ठहराया है कि लेखा परीक्षा आपत्ति और मूल निर्धारण आदेश के प्रति-सत्यापन दाखिल किए गए मूल वार्षिक रिटर्नों, दाखिल किए गए पश्चातवर्ती पुनरीक्षित रिटर्नों और अंतरित किए गए स्टॉक के आँकड़ों के साथ वैट रिपोर्ट के निष्पक्ष पठन पर पाया गया था कि इन्हें न तो अपने रिटर्नों में प्रदर्शित किया गया था और न ही ये मूल निर्धारण के

समय पर अथवा बाद के चरण पर जब प्रत्यर्थी सं० 4 द्वारा इसे कारण बताओ दिया गया था सांविधिक फॉर्म JVAT 506 द्वारा आच्छादित थे। लेखा परीक्षा आपत्ति में इंगित अंतर की दृष्टि में और याची डीलर द्वारा किसी विश्वासोत्पादक औचित्य अथवा स्पष्टीकरण की अनुपस्थिति में, निर्धारण अधिकारी के पास कर और दंड अधिरोपित करते हुए 2005 के अधिनियम के अधीन विरचित नियमावली और अधिनियम के अभिव्यक्त प्रावधानों के अनुरूप कार्रवाई करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं था।

9. प्रत्यर्थीगण ने यह प्राख्यान भी किया है कि याची को वैकल्पिक सांविधिक उपचार उपलब्ध है और पहले भी याची ने वाणिज्य कर आयुक्त के समक्ष पुनरीक्षण द्वारा उक्त उपचार का लाभ लिया है। याची को अपने वैकल्पिक उपचार को नि:शेष किए बिना इस न्यायालय के पास सीधे नहीं आना चाहिए। प्रत्यर्थीगण ने अपने प्रतिशपथ पत्र के पैरा 13 में कथित भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित अनेक निर्णयों और **(2010)8 SCC 110** में प्रकाशित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के नवीनतम निर्णय पर विश्वास किया है।

10. प्रत्यर्थी सं० 4 द्वारा जारी दिनांक 16.7.2011 के कारण बताओ के परिशीलन पर, यह प्रतीत होता है कि इसे याची को आवश्यक दस्तावेजों और कागजातों के साथ निर्धारण वर्ष 2007-08 के लिए लेखा परीक्षा आपत्ति के संबंध में अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने के लिए कहते हुए जारी किया गया है। उक्त लेखा परीक्षा आपत्ति को भी उक्त नोटिस (परिशिष्ट–6 श्रृंखला) के साथ संलग्न किया गया है। याची स्वीकृत रूप से उक्त नोटिस के प्रत्युत्तर में प्रत्यर्थी सं० 4 के समक्ष उपस्थित हुआ और की गयी लेखा परीक्षा आपत्ति के विषय वस्तुओं का सामना करने के लिए विस्तृत कारण बताओ (परिशिष्ट–7) जारी किया।

11. इस चरण पर मूल्य वर्धित कर के निर्धारण से संबंधित 2005 के अधिनियम के कुछ प्रावधानों पर गौर करना प्रासंगिक होगा। धारा 35 स्वनिर्धारण पर विचार करती है। धारा 36 अनंतिम निर्धारण से संबंधित है, जबकि धारा 37 लेखा परीक्षा निर्धारण से संबंधित है। धारा 37 के प्रासंगिक प्रावधानों को यहाँ नीचे उद्धृत किया जाता है:–

37. ***y[kk ijh{kk fuèkkj.k-****&(1) tgk*

(a) jftLVMM Mhyj fdlh vofèk d lcèk e èkkjk 29 dh mièkkjk (1) d vèkhu dkbZ fjVu nkf[ky dju e foQy jgk g(vFkok

(b) jftLVMM Mhyj fdlh ekinM d vkèkkj ij vFkok vfu;fer vkèkkj ij fofgr çkfèkdkjh }kjk y[kk ijh{kk fuèkkj.k d fy, p;fur fd;k x;k g(vFkok

(c) fofgr çkfèkdkjh èkkjk 29 d vèkhu nkf[ky fdlh fjVu(vFkok NV] dVkrh tku] fj;k;r] buiV VDl ØfMV d fdlh nkok d ;FkkFkk vFkok mld leFku e jftLVMM Mhyj }kjk çLrr fdlh ?kk"k.kk] lk{; dh okLrfodrk dh 'k) rk l lr"V ugh g(vFkok

(d) fofgr ikfèkdkjh dk ;g fo'okl dju dk dkj.k g fd eksey dh foLrr loh{kk vko';d g(rk

fofgr çkfèkdkjh bl rF; d ckotn fd Mhyj dk igy gh èkkjk 35 vFkok 36 d vèkhu fuèkkj.k fd;k tk pdk Fkk] , l Mhyj ij mle fofufn"V frfFk vkj LFkku tk 0;kolkf;d ifjlj vFkok ukfVl e fofufn"V LFkku gk ldrk g] ij mifLFkr gku d fy, vkj y[kk ifLrdk@[kkrk cgh vkj leLr lk{;k ftu ij Mhyj VDl bu0;kl] ;fn gk] lfgr viu fjVuk d leFku e fo'okl djrk g] dk çLrr dju vFkok çLrr fd;k tkuk dkfjr dju d fy, vFkok , lk lk{;

t lk ukfVl e fofufn"V fd;k x;k g] çLrr dju d fy, mifLFkr gku d fy, ukfVl rkehy dj ldrk gA

(2) Mhyj viu 0;kolkf;d ifjlj ij bl èkkjk d vèkhu dk;okgh lpkfyr dju d fy, fofgr çkfèkdkjh dk viuk i.k lg;kx vkj lgk;rk çnku djxkA

(3) ;fn bl èkkjk d vèkhu dk;okgh Mhyj d 0;kolkf;d ifjlj e lpkfyr dh tkuh g] mldk viu 0;kolkf;d ifjlj e fofgr frfFk vkj le; ij mifLFkr jgu d fy, mldk ukfVl nr g, vkj ;fn ;g ik;k tkrk g fd Mhyj vFkok mldk çkfèkÑr çfrfufèk miyCèk ugh g vFkok ,l ifjlj l dke ugh dj jgk g] fofgr çkfèkdkjh mld ikl cdk;k dj dh jkf'k dk fuèkkj.k dju d fy, viu lokÙke food ij vxlj gkxkA

(4) ;fn fofgr çkfèkdkjh dk bl èkkjk d vèkhu dk;okgh lpkfyr dju l jkdk tkrk g] og bl çdkj fuèkkfjr dj dh jkf'k d lerY; jkf'k dk nM d :i e vfèkjkfir dj ldrk gA

(5) fofgr çkfèkdkjh dk;okgh d Øe e çLrr vFkok mld }kjk lxfgr leLr lk{;k ij fopkj djxk vkj ;fn og lr"V g fd Mhyj

(a) fofgr frfFk rd fdlh vofèk(;k) d lcèk e fjVuk dk çLrr ugh fd;k g(vFkok

(b) fdlh vofèk d fy, vi.k vFkok vlR; fooj.k miyCèk djk;k g(;k

(c) mièkkjk (1) vFkok mièkkjk (3) d vèkhu fdlh ukfVl dk vuikyu dju e foQy jgk g] vFkok

(d) bl vfèkfu;e d çkoèkkuk d vu:i [kkrk j[ku e foQy jgk g vFkok y[kk d fdlh fofèk dk fu;fer :i l ç;kx ugh fd;k g(fofgr çkfèkdkjh ,l Mhyj l n; dj dh jkf'k dk fuèkkj.k viu lokÙke food d vulkj djxkA

(6) ;fn fofgr çkfèkdkjh lr"V g fd Mhyj dj d Hkxrku dk ifjotu vFkok viopu dju d fy,A

(a) fofgr frfFk rd fdlh vofèk d lcèk e ;fDr;Dr dkj.k d fcuk fjVuk dk çLrr dju e foQy jgk g(;k

(b) fdlh vofèk d fy, vi.k vkj xyr fjVuk dk çLrr fd;k g(vFkok

(c) buiV VDl ØfMV] ftld fy, og gdnkj ugh g] dk ykHk fy;k g(vFkok

(d) y[kk d ,l rjhd dk mi;kx fd;k g tk mldk n;dj dk fuèkkj.k dju d fy, fofgr çkfèkdkjh dk l{ke curk g]

og Mhyj dk luokb dk ;fDr;Dr volj nu d ckn fun'k nxk fd Mhyj bl èkkjk d vèkhu mDr dkj.kk d dkj.k fuèkkfjr vfrfjDr dj dh jkf'k d nkxu d lerY; jkf'k dk nM d :i e Hkxrku djxkA

12. पूर्वोक्त प्रावधानों के परिशीलन पर, यह प्रतीत होता है कि विहित प्राधिकारी इस तथ्य कि धारा 35 अथवा 36 के अधीन कर की राशि के लिए डीलर का निर्धारण पहले ही किया जा चुका है, के बावजूद ऐसे डीलर पर उसको प्रासंगिक खाता बही और अन्य साक्ष्यों को प्रस्तुत करने के लिए और

उस आधार, जिस पर धारा 37 (1) (a), (b), (c), (d) के प्रावधानों में संगणित शर्तों के अधीन लेखा परीक्षा निर्धारण किया जा रहा है, पर अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करने के लिए कहते हुए विहित तरीके से नोटिस तामील कर सकता है निर्धारण अधिकारी उत्तर और कार्यवाही के क्रम में प्रस्तुत अथवा अपने द्वारा संग्रहित साक्ष्य पर विचार करने के बाद और संतुष्ट होने पर कि :–

(a) jftLVM Mhyj fdlh vofèk d lcèk e èkkjk 29 dh mièkkjk (1) d vèkhu dkb fjVu nkf[ky dju e foQy jgk g(vFkok

(b) jftLVM Mhyj fdlh ekinM d vkèkkj ij vFkok vfu;fer vkèkkj ij fofgr çkfèkdkjh }kjk y[kk ijh{kk fuèkkj.k d fy, p;fur fd;k x;k g(vFkok

(c) fofgr çkfèkdkjh èkkjk 29 d vèkhu nkf[ky fdlh fjVu(vFkok NV] dVkrh] fj;k;kr] buiV VDl ØfMV d fdlh nkok d ;FkkFkk vFkok mld leFku e jftLVM Mhyj }kjk çLrr fdlh ?kk"k.kk] lk{; dh okLrfodrk dh 'k)rk l lr"V ugh g(vFkok

(d) ,l Mhyj ij mle fofufn"V frfFk vkj LFkku tk 0;kolkf;d ifjlj vFkok ukfVl e fofufn"V LFkku gk ldrk g]

अपने सर्वोत्तम विवेकानुसार ऐसे डीलर के पास बकाया कर राशि का निर्धारण करेगा।

13. धारा 37 (6) प्रावधानित करती है कि यदि विहित प्राधिकारी संतुष्ट है कि डीलर कर के भुगतान के परिवर्जन अथवा अपवंचन के लिए पूर्वोक्त उपधारा 6 के अधीन कथित आधारों में से किसी पर विफल रहा है, सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर देने के बाद डीलर को इस धारा के अधीन उक्त कारणों के कारण निर्धारित अतिरिक्त कर राशि के दुगुना राशि के समतुल्य राशि का भुगतान दंड के रूप में करने का निर्देश देगा।

14. दूसरी ओर, धारा 40 के परिशीलन पर, यह प्रतीत होता है कि यह निर्धारण से बचते हुए टर्न ओवर से संबंधित है। धारा 40 (1) के प्रासंगिक अंश को यहाँ नीचे उद्धृत किया जाता है:–

*"40. **fuèkkj.k l cprk gvk Vuvkoj-**&(1) tgk fdlh o"k vFkok mld Hkkx d fy, Mhyj dk fuèkkj.k fd, tku d ckn fofgr çkfèkdkjh d ikl lpuk ij vFkok vU;Fkk ;g fo'okl dju dk dkj.k g fd fdlh vofèk d lcèk e Mhyj d Vu vkoj dk li.k vFkok bldk dkb HkkxA*

(a) fuèkkj.k l cp x;k g] vFkok

(b) de fuèkkfjr fd;k x;k g] vFkok

(c) ml nj ftl ij ;g fuèkkj.k ;kX; g dh ryuk e de nj ij fuèkkfjr fd;k x;k g(vFkok

(d) ml l dkb dVkrh fd, tku dh xyr :i l vuefr nh x;h g(vFkok

(e) mle fdlh ØfMV dh xyr :i l vuefr nh x;h g(

fofgr çkfèkdkjh Mhyj ij ukfVl rkehy dj ldrk g vFkok rkehy djok ldrk g vkj Mhyj dk luokb dk ;fDr;Dr volj nu vkj ,lh tkp] tl og vko';d le>rk g] dju d ckn viu lokÙke foodkulkj ,l Vu vkoj d lcèk e Mhyj ij cdk;k dj dh jkf'k dk fuèkkj.k dju d fy, vxlj gk ldrk g vkj bl vfèkfu;e d çkoèkku tgk rd lHko gk rnulkj ykx gkx(

*ijUr [kM (a) d fy, ;g fd tgk fofgr çkfèkdkjh d ikl ;g fo'ok dju dk dkj.k g fd Mhyj u tkuc>dj , l Vu vkoj d fooj.kk dk fNik;k] feVk;k g vFkok çdV dju e foQy jgk g vFkok viu , l Vu vkoj d xyr fooj.kk dk çLrr fd;k g vkj rn}kjk fjVu vkdMk okLrfod jkf'k d uhp@de g] fofgr çkfèkdkjh , l Vu vkoj d lcèk e Mhyj ij cdk;k dj dh jkf'k dk fuèkkj.k vFkok iufuèkkj.k dju d fy, vxlj gkxk vkj bl vfèkfu;e d çkoèkku] tgk rd ; rnulkj ykx gkx vkj bl ç;ktu l èkkjk 37 dh mièkkjk (6) d çkoèkku rnulkj ykx gkxA***

15. यद्यपि, याची ने विभिन्न धाराओं के अधीन सुनवाई के नोटिस से संबंधित झारखंड मूल्य वर्धित कर नियमावली, 2006 की धारा 59 की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है किंतु रिट याचिका के साथ संलग्न प्रासंगिक फॉर्म JVAT 302 धारा 37 (6) के अधीन अनुध्यात नोटिस सम्मिलित नहीं करता है जैसा याची की ओर से निवेदन किया गया है। याची ने 1**985 STC Vol.-58 पृष्ठ 217 में प्रकाशित ऊषा सेल्स (प्रा॰) लि॰ बनाम बिहार राज्य** के मामले में और **2000 STC Vol.-117 पृष्ठ 346** में प्रकाशित **बिहार प्लास्टिक इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम बिहार राज्य एवं अन्य** के मामले पर समुचित नोटिस जारी किए जाने से संबंधित प्रश्न के संबंध में विश्वास किया है।

16. ऊषा सेल्स (प्रा॰) लि॰ (ऊपर) का निर्णय पश्चातवर्ती मामले **बिहार प्लास्टिक इंडस्ट्रीज लिमिटेड (ऊपर)** में निर्दिष्ट किया गया है। **ऊषा सेल्स (प्रा॰) लि॰** में मामला छूट गए निर्धारण से संबंधित था, जबकि वर्तमान मामले में याची को दिनांक 16.7.2011 की नोटिस के साथ लेखा परीक्षा आपत्ति की प्रति तामील की गयी थी और अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करने के लिए आवश्यक दस्तावेजों और खाता–बही के साथ उपस्थित होने के लिए कहा गया था जबकि बिहार प्लास्टिक इंडस्ट्रीज लिमिटेड, जिसमें लेखा परीक्षा आपत्ति की प्रति नोटिस के साथ संलग्न नहीं की गयी थी, का मामला इसके विपरीत था। किसी भी स्थिति में याची ने नोटिस और यह क्या स्पष्ट किए जाने की अपेक्षा करता था, को समझा था। तत्पश्चात् याची ने लेखा परीक्षा आपत्तियों में किए गए प्रत्येक आपत्तियों का सामना करने के लिए विस्तृत कारण बताओ उत्तर प्रस्तुत किया था।

17. इन परिस्थितियों में, निर्धारण अधिकारी याची द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण से असंतुष्ट होकर आक्षेपित आदेश और मांग नोटिस जारी करने के लिए अग्रसर हुआ है। याची ने इस रिट याचिका में निर्धारण आदेश और 2005 अधिनियम की धारा 37 (6) के अधीन अधिरोपित दंड का विरोध किया है। आक्षेपित आदेश में पूर्वोक्त निर्धारण लेखा परीक्षा निर्धारण पर विचार करने वाले 2005 के अधिनियम की धारा 37 के अधीन प्रदत्त शक्ति के प्रयोग में लेखा परीक्षा आपत्ति के आधार पर पारित किया गया प्रतीत होता है। निर्धारण अधिकारी ने आक्षेपित आदेश में अपने निष्कर्षों को भी दर्ज किया है कि सफल विक्रय आगम के संबंध में याची द्वारा दाखिल पुनरीक्षित वार्षिक रिटर्न सारवान रूप से लेखा परीक्षा रिपोर्ट JVAT 409 से भिन्न था।

18. उस लेखा परीक्षा आपत्ति के आधार पर, निर्धारण प्राधिकारी 4% वैट की दर पर 19,99,496.68/- रुपयों के कर के निर्धारण का आदेश पारित करने के लिए अग्रसर हुआ है। इस न्यायालय को अपनी रिट अधिकारिता के प्रयोग में निर्धारण की मात्रा पर विचार करने वाले निर्णय अथवा निर्धारण प्राधिकारी द्वारा पहुँचे गए निष्कर्षों के गुणागुण पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है। याची के पास विहित प्राधिकारी के समक्ष अपील और/अथवा पुनरीक्षण का सांविधिक उपचार है जहाँ अन्य समस्त विवाद्यकों के साथ निर्धारण आदेश की शुद्धता कर का विरोध किया जा सकता है।

19. किंतु, याची ने यह प्रतिवाद भी किया है कि निर्धारण प्राधिकारी ने 2005 के अधिनियम की धारा 37(6) के अधीन नोटिस की आवश्यकता का अनुपालन किए बिना निर्धारण राशि के दोगुने के ऊपर दंड अधिरोपित किया है। यद्यपि यह प्रतीत होता है कि याची के पूर्वोक्त निवेदन में कुछ सार है चूँकि केवल विहित प्राधिकारी द्वारा अपील अथवा पुनरीक्षण में टैक्स के अधिरोपण और मूल निर्धारण पर न्याय निर्णयन किया जा सकता है, पर यह न्यायालय उक्त निर्धारण आदेश की शुद्धता अथवा अन्यथा पर विचार नहीं कर सकता है। अत:, यह उचित है कि याची अपने को उपलब्ध सांविधिक उपचार के अधीन उसी विहित प्राधिकारी के समक्ष दंड के अधिरोपण के संबंध में विधि और तथ्य के ऐसे समस्त बिंदुओं को उठा सकता है। चूँकि मूल निर्धारण आदेश पर सांविधिक प्राधिकारी द्वारा न्याय निर्णयन किया जा सकता है, 2005 के अधिनियम के अधीन अनुध्यात नोटिस की आवश्यकता सहित इसकी धारा 37(6) के अधीन तात्पर्यित रूप से उठाए गए दंड के अधिरोपण के संबंध में विधि और तथ्य के ऐसे समस्त बिंदुओं को उठाने की स्वतंत्रता याची को है।

20. भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बार-बार अभिनिर्धारित किया है यदि किसी व्यथित व्यक्ति को प्रभावकारी वैकल्पिक सांविधिक उपचार उपलब्ध है, उच्च न्यायालय सामान्यत: भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन याचिका ग्रहण नहीं करेगा। यह नियम कर, सेस, फीस, लोक धन के अन्य प्रकारों और बैंकों एवं अन्य वित्तीय संस्थानों के बकायों की वसूली अंतर्ग्रस्त करने वाले मामलों पर और भी कठोरता से लागू होता है। **यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया बनाम सत्यवती टंडन एवं अन्य, (2010)8 SCC 110,** मामले में वैकल्पिक उपचार का अवलम्ब लेने के नियम पर विचार करते हुए माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पहले अधिकथित निर्णयों की श्रृंखला पर विचार करने के बाद स्पष्टत: अभिनिर्धारित किया कि राजस्व अंतर्ग्रस्त करने वाले मामलों में जहाँ सांविधिक उपचार उपलब्ध है, उच्च न्यायालय को जोर देना होगा कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उपचार का लाभ लेने से पहले व्यक्ति को प्रासंगिक संविधि के अधीन उपलब्ध उपचार को नि:शेष करना ही होगा। याची के पास विहित प्राधिकारी के समक्ष अपील अथवा पुनरीक्षण के रूप में प्रभावकारी वैकल्पिक सांविधिक उपचार है। अत:, यहाँ ऊपर किए गए संप्रेक्षणों और कारणों की दृष्टि में याची विहित प्राधिकारी के समक्ष निर्धारण के आक्षेपित आदेश और दंड तथा पारिमाणिक मांग नोटिस का विरोध करने के लिए वैकल्पिक सांविधिक उपचार का लाभ ले सकता है जहाँ वह विधि और तथ्य के ऐसे समस्त विवाद्यकों को उठा सकता है।

21. अत:, यह न्यायालय इस चरण पर अपनी स्वविवेकी अधिकारिता का प्रयोग करना समुचित नहीं समझता है और तद्नुसार, यह रिट याचिका खारिज की जाती है।

---

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efrx.k

जहीर अब्बास एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य

Criminal Appeal (DB) No. 1263 of 2005. Decided on 22nd March, 2012.

सत्र केस सं॰ 476 वर्ष 2001/03 वर्ष 2003 में श्री अरुण कुमार प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, जामताड़ा द्वारा पारित क्रमश: दिनांक 25 अगस्त, 2005 और 27 अगस्त, 2005 के दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302/34—हत्या–आजीवन कारावास और 25000/- रुपयों का जुर्माना अधिनिर्णीत–मृतक के मस्तक पर कुल्हाड़ी से घातक वार किया गया–अभियोजन मामला चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा संपुष्ट–उन पर अविश्वास करने के लिए गवाहों के प्रति परीक्षण में कुछ भी नहीं है–झूठा आलिप्त किए जाने का उपदर्शन नहीं है–यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि अभिकथित घटना पक्षों के बीच अचानक हुए झगड़े और लड़ाई के दौरान हुई थी क्योंकि अपीलार्थीगण तेज हथियारों के साथ मृतक के घर के निकट स्वयं को छुपाए हुए थे और उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे–अभियोजन ने दोनों अपीलार्थीगण के विरुद्ध अपना मामला सिद्ध किया–संदेह का लाभ देते हुए तीसरी महिला अभियुक्त को दोषमुक्त किया गया–अपील अंशत: अनुज्ञात। (पैराएँ 6 से 9)

अधिवक्तागण.–M/s. Shree Niwas Roy, Arwind Kumar, For the Appellants; Mr. Amaresh Kumar, For the Respondent.

न्यायालय द्वारा.–यह अपील सत्र केस सं॰ 476 वर्ष 2001/03 वर्ष 2003 में अपीलार्थीगण को भारतीय दंड संहिता की धाराओं 302/34 के अधीन अपराध करने के लिए दोषसिद्ध करते हुए और उनको आजीवन कठोर कारावास और प्रत्येक को मृतक की पत्नी को 25,000/- रुपयों के जुर्माना का भुगतान करने के लिए और उसके व्यतिक्रम में एक वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश देते हुए प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश द्वारा क्रमश: दिनांक 25 अगस्त, 2005 और दिनांक 27 अगस्त, 2005 को पारित दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध निर्देशित है।

2. संक्षेप में, अभियोजन मामला यह है कि अ॰ सा॰ 9 अख्तर हुसैन ने दिनांक 14.7.2001 को रात्रि 11 बजे पुलिस के समक्ष फर्दबयान दर्ज कराया कि रात्रि लगभग 8.30 बजे वह अपने पिता मो॰ अनवर अली (मृतक) के साथ अपना दुकान बंद करने के बाद लौट रहा था। मृतक सूचक से 25-30 गज आगे था। ज्योंही मृतक घर के निकट आया, अपीलार्थीगण अचानक प्रकट हुए और मृतक को पकड़ लिया और कहा कि उसे मार दिया जाएगा। अपीलार्थी सं॰ 1 जहीर अब्बास ने मृतक के मस्तक पर अपने हाथ में पकड़ी टांगी से वार किया जिस कारण मृतक घायल होकर गिर गया और तब अपीलार्थी सं॰ 2 मो॰ अल्ताफ हुसैन ने भी मृतक पर टांगी से प्रहार किया और कहा कि मृतक की हत्या कर देनी चाहिए। घटना समय के छोटे अंतराल में हुई जिसे सूचक ने देखा था। सूचक चिल्लाया और तब अपीलार्थीगण भाग गए। पड़ोसी जमा हुए। मृतक को अस्पताल ले जाया गया था जहाँ उसे मृत घोषित किया गया था। अभिकथित किया गया है कि घटना के सात दिन पहले महिलाओं के बीच कुछ विवाद के कारण अभिकथित घटना हुई थी।

3. अभियोजन ने 12 गवाहों का परीक्षण किया। अ॰ सा॰ 1, 4 और 5 ने अपीलार्थीगण को घटनास्थल से भागते देखा था और मृतक को उपहतियों के साथ पड़े देखा था। अ॰ सा॰ 6, 7 और 8 ने उपहतियों के कारण मृतक की मृत्यु होते देखा था। अ॰ सा॰ 10 डॉक्टर है जिन्होंने मृतक के मृत शरीर का शव परीक्षण किया और मृतक के मस्तक पर तेज धार वाले हथियार द्वारा कारित तीन कटे जख्मों को पाया जो मृत्यु का कारण थी। अ॰ सा॰ 11 और 12 पुलिसकर्मी थे जिन्होंने तात्विक प्रदर्श टांगी को सिद्ध और प्रस्तुत किया। अ॰ सा॰ 9 (सूचक) और अ॰ सा॰ 2 और 3 चश्मदीद गवाह हैं।

बचावपक्ष ने यह दर्शाने के लिए ब॰ सा॰ 1 का परीक्षण किया कि पक्षों के बीच दुश्मनी थी।

4. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने अनेक आधारों पर आक्षेपित निर्णय का विरोध किया और निवेदन किया कि अपीलार्थीगण को दुश्मनी के कारण झूठा आलिप्त किया गया है। आगे निवेदन किया गया है कि प्राथमिकी में चश्मदीद गवाहों के रूप में अ॰ सा॰ 2 और 3 के नाम को प्रकट नहीं किया

गया था। प्राथमिकी में अपीलार्थी सं० 3 सलमा बीबी के विरुद्ध अभिकथन नहीं है और यह कहानी कि उसने अपीलार्थी सं० 1 और 2 को मृतक की हत्या करने के लिए कहा, विचारण के दौरान विकसित की गयी थी। यह निवेदन भी किया गया है कि अपीलार्थी सं० 2 के विरुद्ध अभिकथन नहीं है कि उसने मृतक के मस्तक पर प्रहार किया और दूसरी टांगी जिससे अपीलार्थी सं० 2 को प्रहार करता हुआ अभिकथित किया गया है, बरामद नहीं की गयी है। इसके अतिरिक्त, अपीलार्थी सं० 1 ने संस्वीकार किया कि वह एकमात्र व्यक्ति है जिसने अपराध किया और न कि उसके भाई अपीलार्थी सं० 2 ने और इसलिए अपीलार्थी सं० 2 कम से कम संदेह का लाभ पाने योग्य है।

5. दूसरी ओर, राज्य के लिए उपस्थित विद्वान ए० पी० पी० श्री अमरेश कुमार ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया। उन्होंने निवेदन किया कि अभियोजन ने समस्त युक्तियुक्त संदेह के परे अपना मामला सिद्ध किया है। चाक्षुक साक्ष्य चिकित्सीय साक्ष्य के साथ संगत है। सूचक से प्राथमिकी में अन्य समस्त चश्मदीद गवाहों के नाम को प्रकट करने की उम्मीद नहीं की जाती थी। अभियोजन गवाह एकजुट हैं। अ० सा० 9 सूचक चश्मदीद गवाह ने अभियोजन मामले का पूरा समर्थन किया है। अ० सा० 2 ने भी चश्मदीद गवाह के रूप में अभियोजन मामले का पूरा समर्थन किया है। उसने यह भी कहा कि अपीलार्थीगण उसके संबंधी हैं। अ० सा० 3 भी चश्मदीद गवाह है जिसने अभियोजन मामले का पूरा समर्थन किया है। अ० सा० 2 और 3 ने यह भी कहा कि मृतक ने अपनी मृत्यु के पहले कहा कि अपीलार्थी सं० 1 और 2 ने उसकी हत्या की है। अ० सा० 1, 4 और 5 ने अपीलार्थीगण को घटना स्थल से भागते देखा है।

6. जैसा पहले गौर किया गया है कि डॉक्टर ने तेज धार वाले हथियार द्वारा कारित मृतक के मस्तक पर तीन कटने की उपहतियों को पाया था जो मृत्यु का कारण थीं। उन पर अविश्वास करने के लिए गवाहों के प्रति परीक्षण में कुछ भी नहीं है। झूठा आलिप्त किए जाने का अवसर होने का उपदर्शन नहीं है।

7. अपीलार्थीगण की ओर से किया गया निवेदन कि अभिकथित घटना इस उकसावे के कारण हुई थी कि अपीलार्थी सं० 2 की माता को सूचक पक्ष द्वारा 'डायन' कहा गया था, स्वीकार्य नहीं है। यह दर्शाने के लिए कुछ भी नहीं है कि अभिकथित घटना पक्षों के बीच अचानक हुए झगड़ा और लड़ाई के कारण हुई थी। गवाह संगत हैं कि अपीलार्थी सं० 1 और 2 मृतक के घर के निकट छुपे हुए थे और दुकान बंद करने के बाद उसके घर लौटने की प्रतीक्षा कर रहे थे। वे अपने हाथों में तेज धार वाले हथियार के साथ छुपे हुए थे। ज्योंही मृतक, जिसके पीछे सूचक आ रहा था, वहाँ पहुँचा, अपीलार्थी सं० 1 और 2 ने मृतक के मस्तक पर तेज धार वाले हथियार द्वारा बार-बार प्रहार किया।

8. इस प्रकार, पक्षों को विस्तारपूर्वक सुनने के बाद और अभिलेखों का परिशीलन करने पर हमारे मत में अभियोजन अपीलार्थी सं० 1 और 2 अर्थात् जहीर अब्बास और मो० अलताफ हुसैन के विरुद्ध अपना मामला समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे सिद्ध करने में सक्षम हुआ है।

किंतु, जहाँ तक अपीलार्थी सं० 3 सलमा बीबी का संबंध है हम उसे संदेह का लाभ देने के इच्छुक हैं। उसका नाम प्राथमिकी में प्रकट नहीं किया गया था। किंतु, साक्ष्य में कहा गया था कि उसने अपीलार्थी सं० 1 और 2 को मृतक की हत्या करने का आदेश दिया था। इसके सिवाए उसके विरुद्ध कुछ नहीं है।

9. परिणामस्वरुप, अपीलार्थी सं० 1 और 2 अर्थात् जहीर अब्बास और मो० अलताफ हुसैन की ओर से दाखिल अपील खारिज की जाती है और अपीलार्थी सं० 3 सलमा बीबी की ओर से दाखिल अपील अनुज्ञात की जाती है। उसके विरुद्ध पारित दोषसिद्धि का निर्णय और दंडादेश अपास्त किया जाता है। अपीलार्थी सं० 3 सलमा बीबी जमानत पर है और इसलिए उसे अपने जमानत बंधपत्र के दायित्व से उन्मोचित किया जाता है।

ekuuh;k t ;k jk;] U;k;efr

अवध किशोर सिंह एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. Revision No. 210 of 2010. Decided on 26th March, 2012.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 319—विचारण का सामना करने के लिए अतिरिक्त अभियुक्त को समन किया जाना–याचीगण को प्राथमिकी में नामित किया गया था किंतु साक्ष्य की कमी के कारण विचारण के लिए भेजा नहीं गया था–याचीगण के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल नहीं किया गया था–आक्षेपित आदेश अपास्त–किंतु, यदि विचारण के दौरान याचीगण के विरुद्ध साक्ष्य आता है, सत्र न्यायालय को धारा 319 के अधीन अभियुक्तगण के कतार में ऐसे व्यक्ति को जोड़ने तथा विचारण का सामना करने के लिए उनको समन करने की प्रत्येक शक्ति है–आवेदन अनुज्ञात। (पैराएँ 4 से 8)

निर्णयज विधि.–1993 SCC (Cri.) 470—Distinguished; (1998) 7 SCC 149; AIR 2000 SC 3725—Relied.

अधिवक्तागण.–M/s Mahesh Tiwary, Munna Lal Yadav, For the Petitioner; M/s A.K. Chaturvedi, For the Opp. Party No. 2; A.P.P., For the State.

जया रॉय, न्यायमूर्ति.–याचीगण के विद्वान अधिवक्ता और वि॰ प॰ सं॰ 2 के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. याचीगण ने एस॰ टी॰ सं॰ 91 वर्ष 2009 में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰ III, चतरा द्वारा पारित दिनांक 16.2.2010 के आदेश के विरुद्ध मामला दाखिल किया है जिसके द्वारा अभियुक्तगण अवध किशोर सिंह, आशुदेव सिंह उर्फ असदेव सिंह और अर्जुन सिंह (याचीगण) जिनके नामों को आई॰ ओ॰ द्वारा आरोप-पत्र में से निकाल दिया गया था, को समन करने के लिए दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 319 के अधीन अभियोजन द्वारा दाखिल आवेदन अनुज्ञात किया गया था।

3. याचीगण के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री महेश तिवारी ने निवेदन किया है कि पुलिस ने याचीगण और अन्य अभियुक्तगण के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 147/148/324/326/307/504 के अधीन यह मामला संस्थापित किया किंतु अन्वेषण के बाद पुलिस ने केवल पाँच अभियुक्तों के विरूद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत किया था एवं याचीगण को जिन्हें प्राथमिकी में नामजद किया गया था को साक्ष्य की कमी के कारण विचारण के लिए नहीं भेजा गया था। इस मामले के आई॰ ओ॰ ने याचीगण के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल नहीं किया है। आगे निवेदन किया गया है कि अन्वेषण के दौरान पुलिस द्वारा अनेक गवाहों का परीक्षण किया गया था किंतु उनमें से किसी ने याचीगण के विरुद्ध कोई कथन नहीं किया था। तत्पश्चात, विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी चतरा ने प्राथमिकी और केस डायरी के परिशीलन के बाद दिनांक 18.2.2008 के आदेश द्वारा केवल पाँच अभियुक्तगण अर्थात् दीपक कुमार सिंह, कुलवंत सिंह, बलवंत सिंह, अनिल सिंह, सनी सिंह के विरुद्ध भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 147/148/324/325/307/504 के अधीन संज्ञान लिया और केवल पूर्वोक्त पाँच अभियुक्तगण के विरुद्ध एस॰ टी॰ सं॰ 91 वर्ष 2009 के रूप में मामला विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰ III, चतरा के सत्र न्यायालय को सुपुर्द किया गया था।

4. श्री तिवारी ने प्रतिवाद किया है कि अभियोजन ने इस मामले में याचीगण को समन करने के लिए दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 319 के अधीन आवेदन दाखिल किया है और अवर न्यायालय ने अपने न्यायिक

विवेक का इस्तेमाल किए बिना और यह विचार में लिए बिना कि यह मामले में किसी साक्ष्य को दर्ज किए बिना याचीगण को समन नहीं कर सकता था, अभियोजन द्वारा दाखिल उक्त आवेदन अनुज्ञात किया।

5. श्री तिवारी ने **किशोरी सिंह एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं एक अन्य, AIR 2000 Supreme Court 3725,** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को उद्धृत किया है जहाँ अभिनिर्धारित किया गया है:–

"10. tgk rd mu 0;fDr;k ftud fo#) vkjki&i= nkf[ky ugh fd;k x;k g] dk lcèk g] mUg n0 ç0 l0 dh èkkjk 319 d vèkhu 'kfDr;k d ç;kx e ^vfHk;Drx.k d :i e drkjc) fd;k tk ldrk g tc fopkj.k d Øe e vfHky[k ij dN lk{; vFkok lkexh yk;h tkrh g------***

6. श्री तिवारी ने प्रतिवाद किया है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय का उक्त निर्णय **रंजीत सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1998)7 Supreme Court Cases 149,** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के तीन न्यायाधीशों के पूर्व निर्णय पर आधारित है जिसमें अभिनिर्धारित किया गया है:–

*^^20. bl çdkj] tc ,d ckj linxh vkn'k d vulj.k e l= U;k;ky; vijkèk dk lKku yrk g] ,dek= vU; pj.k tc U;k;ky; fdlh vU; 0;fDr dk vfHk;Drx.k d drkj e tkMu d fy, l'kDr g] lk{; d lxg.k d ckn vkrk g tc lfgrk dh èkkjk 319 d vèkhu 'kfDr;k dk voyc fy;k tk ldrk gA ge l= U;k;ky; d fy, u, 0;fDr vFkok 0;fDr;k dk vfHk;Drx.k dh drkj e tkMu dh vuefr nu dh fdlh vU; 'kfDr dk iku e v{ke gA fu'p; gh] mDr 'kfDr;k dk ç;kx dju d fy, li.k lk{; d tek gk tku rd çrh{kk djuk U;k;ky; d fy, vko';d ugh gA***

7. वि॰ प॰ सं॰ 2 के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री ए॰ के॰ चतुर्वेदी ने निवेदन किया है कि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 319 में शब्द हैं: ''जब अपराध में किसी जाँच अथवा विचारण के क्रम में.....'' अत: सामग्रियों जो मामले की जाँच में आयी हैं, पर विचार करने के बाद गवाहों को समन करने की प्रत्येक शक्ति सत्र न्यायालय को है। इस संबंध में उन्होंने **किशुन सिंह एवं अन्य बनाम बिहार राज्य, 1993 Supreme Court Cases (Cri.) 470** मे माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को निर्दिष्ट किया है।

8. सर्वोच्च न्यायालय के माननीय तीन न्यायाधीशों के पूर्वोक्त निर्णय, जैसा ऊपर कथन किया गया है, पर विचार करते हुए मेरे मत में विद्वान अधिवक्ता श्री चतुर्वेदी द्वारा उद्धृत निर्णय इस मामले पर प्रयोज्य नहीं है। चूँकि वर्तमान मामला सर्वोच्च न्यायालय के माननीय तीन न्यायाधीशों के (ऊपर कथित) निर्णय द्वारा पूरी तरह आच्छादित है, मैं एस॰ टी॰ सं॰ 91 वर्ष 2009 में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, एफ॰ टी॰ सी॰ III, चतरा द्वारा पारित दिनांक 16.2.2010 के आक्षेपित आदेश को अपास्त करता हूँ। किंतु स्पष्ट किया जाता है कि यदि अभियोजन गवाह अथवा गवाहों का परीक्षण करने के बाद विचारण के दौरान वर्तमान याचीगण अथवा उनमें से किसी के विरुद्ध साक्ष्य आता है, सत्र न्यायालय को दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 319 के अधीन ऐसे व्यक्ति/व्यक्तियों को अभियुक्तगण के कतार में जोड़ने और विचारण का सामना करने के लिए उनको समन करने की प्रत्येक शक्ति है। पूर्वोक्त निर्देशों के साथ, पुनरीक्षण आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

कार्यालय को संबंधित न्यायालय को संपूर्ण अवर न्यायालय अभिलेख को तुरन्त भेजने का निर्देश दिया जाता है।

ekuuh; Mhñ ,uñ iVy] U;k;efr

आशा कुमारी

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (S) No. 1109 of 2009. Decided on 6th March, 2012.

सेवा विधि–नियुक्ति–महिला पर्यवेक्षक का पद–याची आँगनबाड़ी सेविका के रूप में 12 वर्षों के अनुभव का दावा कर रही है–मैट्रिकुलेट उम्मीदवार के लिए महत्तम अर्हत्ता आंगनबाड़ी सेविका के रूप में 15 वर्ष का अनुभव है और उनके लिए जो स्नातक हैं आंगनबाड़ी सेविका के रूप में 10 वर्ष के अनुभव की आवश्यकता है–याची महिला पर्यवेक्षक के पद के लिए आवश्यक न्यूनतम अर्हत्ता नहीं रखती है–न्यायालय इस शर्त को परिवर्तित नहीं कर सकता है–नियोक्ता आवश्यकता जानता है और जिसकी आवश्यकता है, वह याची के पास नहीं है–याचिका खारिज। (पैराएँ 4 एवं 5)

अधिवक्तागण.–Mr. Rajeeva Sharma, For the Petitioner; J.C. to SC-I, For the State.

डी० एन० पटेल, न्यायमूर्ति.–वर्तमान रिट याचिका मुख्यत: इस कारण से दाखिल की गयी है कि याची को महिला पर्यवेक्षक के पद के लिए आवेदन देने की अनुमति दी जा सकती है जिसके लिए दिनांक 23 फरवरी, 2012 को सार्वजनिक विज्ञापन दिया गया है जो याची द्वारा दाखिल पूरक शपथ पत्र के परिशिष्ट-7 पर है।

2. याची जो मैट्रिकुलेट है के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि महिला पर्यवेक्षक के पद के लिए आवेदन करने के लिए आंगनबाड़ी सेविका के रूप में न्यूनतम पंद्रह वर्षों का अनुभव आवश्यक है। याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि याची इस कोटि में आती है और याची के पास पहले से ही आंगनबाड़ी सेविका के रूप में लगभग बारह वर्षों का अनुभव है। याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे निवेदन किया गया है कि याचिका के मेमो के पैराग्राफ सं० 12 में कथन किया गया है कि याची को पहले ही वर्ष 1989 से वर्ष 1997 तक देवघर जिला के अंतर्गत मोहनपुर प्रखंड के केवट टोला केंद्र में अनौपचारिक शिक्षा के अधीन अनुदेशक के रूप में नियुक्त किया गया था और यदि इस अनुभव को आंगनबाड़ी सेविका के रूप में वर्तमान अनुभव में जोड़ा जाता है, वह महिला पर्यवेक्षक के पद के लिए आवेदन देने की हकदार है और, इसलिए, आंगनबाड़ी सेविका के पद के लिए याची का आवेदन स्वीकार करने का उपयुक्त निर्देश प्रत्यर्थीगण को दिया जाए क्योंकि वर्ष 1989 से वर्ष 1997 तक के पूर्व अनुभव को आंगनबाड़ी सेविका के रूप में बारह वर्षों के वर्तमान अनुभव में जोड़ने पर याची महिला पर्यवेक्षक के पद के लिए आवेदन देने के लिए पात्र बन जाएगी।

3. प्रत्यर्थीगण राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि सार्वजनिक विज्ञापन के मुताबिक, यदि उम्मीदवार मैट्रिकुलेट है, आंगनबाड़ी सेविका के रूप में पंद्रह वर्षों का न्यूनतम अनुभव आवश्यक है, जिस कोटि में याची आ रही है और चूँकि याची के पास न्यूनतम अर्हत्ता नहीं है, जहाँ तक अनुभव का संबंध है, वह महिला पर्यवेक्षक के पद पर आवेदन देने की पात्र नहीं है और इसलिए इस न्यायालय द्वारा यह रिट याचिका ग्रहण नहीं की जा सकती है।

4. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने पर और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, मैं मुख्यत: निम्नलिखित तथ्यों और कारणों से इस रिट याचिका को ग्रहण करने का कोई कारण नहीं देखता हूँ:–

(i) çR;Fkh&jkT; ljdkj u efgyk i;o{kd d in d fy, fMfotuy vk;Dr] lFkky ijxuk fMfotu] nedk d dk;ky; l nfud lekpkj i= e lkotfud foKkiu çdkf'kr fd;k g vkj efVdyV mEehnokj d fy, U;ure vgrk vkxuckMh lfodk d :i e ing o"kk dk vuHko g vkj mu mEehnokjk d fy, tk Lukrd g] vkxuckMh lfodk d :i e nl o"kk d vuHko dh vko';drk gA ;g lkotfud foKkiu fnukd 23 Qjojh] 2012 dk g ftl ;kph }kjk nkf[ky ijd 'kiFki= d ifjf'k"V&7 d :i e lyXu fd;k x;k gA

(ii) ekey d rF;k l vkx çrhr gkrk g fd ;kph dk o"k 2001 e vkxuckMh lfodk d :i e fu;Dr fd;k x;k Fkk vkj] bl çdkj] LohÑr :i l ;kph d ikl vkxuckMh lfodk d :i e ing o"kk dk vuHko ugh g vkj] blfy,] og efgyk i;o{kd in d fy, vko';d U;ure vuHko ugh j[krh gA

(iii) ;kph d fo}ku vfèkoDrk u fuonu fd;k fd ;kph u o"k 1989 l o"k 1997 rd dh vofèk d fy, no?kj ftyk d vrxr ekguij ç[kM d doV Vkyk dn e vukipkfjd f'k{kk d vèkhu vun'kd d :i e dke fd;k FkkA ;g vuHko mruk gh vPNk g ftruk vkxuckMh lfodk d :i e vuHko vkj] blfy,] bu nkuk vuHkok dk tkMu ij ;kph efgyk i;o{kd d in d fy, vkonu nu dk ik= cu tk,xhA

;g çfrokn bl U;k;ky; }kjk e[;r% bl dkj.k l LohdkJ ugh fd;k x;k g D;kfd ;kph dh vkj l ;g mièkkj.kk fd no?kj ftyk d vrxr ekguij ç[kM d doV Vkyk dn e vukipkfjd f'k{kk d vun'kd d :i e io vuHko vkxuckMh lfodk d :i e vuHko ftruk vPNk g vFkok vkxuckMh lfodk d :i e vuHko d lerY; g] vèkkjghu gA ljdkj }kjk ;g lehdj.k ugh fn;k x;k gA

(iv) lkotfud foKkiu tk ;kph }kjk nkf[ky ijd 'kiFki= d ifjf'k"V&7 ij g] dk n[kr g, vkxuckMh lfodk d :i e ing o"kk d vuHko dh vko';drk gA ;g U;k;ky; Hkkjr d lfoèkku d vuPNn 226 d vèkhu 'kfDr;k dk ç;kx djr g, bl 'kr dk ifjofrr ugh dj ldrk gA fu;kDrk vko';drk tkurk g vkj tk vko';drk g] og ;kph d ikl ugh gA

(v) vkx çrhr gkrk g fd ;kph igy l gh o"k 2001 l vkxuckMh lfodk d :i e dke dj jgh Fkh vkj bl çdkj og T;kgh ing o"k dk vuHko ijk dj yxh] mld ikl Hkfo"; e efgyk i;o{kd d in d fy, ik= cuu dk ijk volj gkxk] fdr] vkt d fnu LohÑr :i l mld ikl vkxuckMh lfodk d :i e doy ckjg o"kk dk vuHko gA

5. पूर्वोक्त तथ्यों और कारणों के समेकित प्रभाव के कारण मैं इस रिट याचिका को ग्रहण करने का कोई कारण नहीं देखता हूँ और इसलिए इसे एतद् द्वारा खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efrx.k

चोयता बोदरा

cuke

झारखंड राज्य

Cr. (Jail) Appeal (DB) No. 86 of 2004. Decided on 6th February, 2012.

सत्र विचारण सं॰ 7 वर्ष 1998 में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट-I, चाईबासा द्वारा पारित दिनांक 16.9.2003 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 18.9.2003 के दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 302—हत्या–आजीवन कारावास–चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा अभियोजन मामला संपुष्ट किया गया–एकमात्र स्वभाविक चश्मदीद गवाह ने पूर्णतः अभियोजन मामले का समर्थन किया–लघु विरोधाभासों पर उसके साक्ष्य पर अविश्वास नहीं किया जा सकता है–अभियोजन गवाहों के साक्ष्य पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है–घटना के कारण अभिकथित किया कि अपीलार्थी सूचक की सौतेली पुत्री के साथ विवाह करना चाहता था जिसका मृतक ने विरोध किया था–अभियोजन मामला समस्त युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध किया गया–अपील खारिज। (पैराएँ 10 से 12)

अधिवक्तागण.–Mr. Rajan Raj, *Amicus Curiae,* For the Appellant; Mr. Ravi Prakash, For the State.

निर्णय

अपीलार्थी की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ।

अपीलार्थी की ओर से इस न्यायालय की मदद करने के लिए विद्वान पैनल अधिवक्ता श्री राजन राज को न्यायमित्र के रूप में नियुक्त किया जाता है।

बाद में.–

न्यायालय द्वारा.–यह अपील सत्र विचारण सं॰ 7 वर्ष 1998 में भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 302 के अधीन अपीलार्थी को दोषसिद्ध करते और कठोर आजीवन कारावास का दंडादेश देते हुए विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, द्वारा फास्ट ट्रैक कोर्ट I, चाईबासा द्वारा पारित दिनांक 16.9.2003 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 18.9.2003 के दंडादेश से उद्भूत होती है।

2. संक्षेप में, अभियोजन मामला यह है कि दिनांक 6.3.1997 को दर्ज अपने फर्दबयान में सूचक नरमी कंदिर (अ॰ सा॰ 2) ने कथन किया कि पूर्व रात्रि को वह अपने पति की चीख सुनकर जागी और देखा कि अपीलार्थी टांगी निकाल रहा था जो उसके पति की आँख के निकट घुसी हुई थी। कमरे में जलते ढिबरी की रोशनी में उसने अपीलार्थी को पहचाना। उसने अपने घर के दरवाजा के बाहर खड़े एक अन्य अभियुक्त सुखराम बोदरा को देखा जो मृतक पर टॉर्च की रोशनी डाल रहा था। चिल्लाने पर, दोनों अभियुक्तगण भाग गए। उक्त उपहति के कारण उसके पति की मृत्यु हो गयी। घटना का कारण यह था कि अपीलार्थी सूचक की सौतेली पुत्री के साथ विवाह करना चाहता था जिसका मृतक द्वारा विरोध किया गया था और जिसके लिए अपीलार्थी ने मृतक को गंभीर परिणामों की चेतावनी दी थी।

3. अभियोजन ने पाँच गवाहों का परीक्षण किया। अ॰ सा॰ 1 अनुश्रुत गवाह है किंतु उसने सूचक के विवरण का समर्थन किया है।

4. अ॰ सा॰ 2 सूचक है।

5. अ॰ सा॰ 3 वह व्यक्ति है जिसने सूचक की कहानी का अनुभव किया और प्राथमिकी, मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट और रक्त रंजित मिट्टी की जब्ती का गवाह है।

6. अ॰ सा॰ 4 डॉक्टर है जिसने मृतक के मृत शरीर का शव परीक्षण किया।

7. अ॰ सा॰ 5 आई॰ ओ॰ है जिसने आरोप पत्र दाखिल किया।

8. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान न्यायमित्र श्री राजन राज ने अनेक आधारों पर आक्षेपित निर्णय का विरोध किया। उसने निवेदन किया कि अभियोजन अपना मामला समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे सिद्ध करने में सक्षम नहीं हुआ है।

9. राज्य के विद्वान अधिवक्ता श्री रवि प्रकाश ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया।

10. डॉक्टर (अ॰ सा॰ 4), जिन्होंने मृतक के मृत शरीर का शव परीक्षण किया, ने बाएँ मैक्सिलरी क्षेत्र से टेम्पोरल क्षेत्र के मध्य तक जाती 4½" x 1" x 2" की तेज धारदार हथियार से कटने की उपहति पाया; बायाँ मैक्सिला कटा था; बायाँ टेम्पोरल हड्डी कटा हुआ था; मस्तिष्क का टेम्पोरल लोब विदीर्ण था; क्रेनियल कैविटी खून से भरा था। डॉक्टर के मत के मुताबिक, उपहतियाँ तेज धार वाले हथियार द्वारा कारित की गयी थी जो टांगी हो सकती है। अ॰ सा॰ 2, जो एकमात्र स्वाभाविक चश्मदीद गवाह है, ने अभियोजन मामले का पूरा समर्थन किया है। लघु विरोधाभासों पर, उसका साक्ष्य अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। डॉक्टर ने उसके विवरण का पूरा समर्थन किया है।

11. अभिलेख का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने के बाद और पक्षों को विस्तारपूर्वक सुनने के बाद, हमारे मत में, अभियोजन अपीलार्थी के विरुद्ध अपना मामला समस्त युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध करने में सक्षम हुआ है। अ॰ सा॰ 2 और अन्य गवाहों के साक्ष्य पर अविश्वास करने का कारण नहीं है।

12. परिणामस्वरुप, यह अपील खारिज किया जाता है।

13. निर्णय लिखाए जाने के बाद, राज्य के अधिवक्ता ने निवेदन किया कि दंडादेश पुनर्विलोकन कमिटि की अनुशंसा पर अपीलार्थी को दंडादेश भुगत लेने के बाद पहले ही निर्मुक्त कर दिया गया है।

---

ekuuh; ç'kkUr dekj] U;k;efr

इमरान आलम

cuke

रेशमा परवीन एवं अन्य

Cr. Revision No. 63 of 2007. Decided on 21st February, 2012.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 125 एवं 303—भरण-पोषण कार्यवाही—अधिवक्ता को काम पर लगाने के लिए आवेदन की अस्वीकृति—धारा 303 के अनुसार किसी व्यक्ति, जिसके विरुद्ध न्यायालय में कार्यवाही संस्थापित की गयी है, को अपनी पसन्द के अधिवक्ता के माध्यम से स्वयं का बचाव करने का अधिकार है—आक्षेपित आदेश दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 303 में अंतर्विष्ट प्रावधानों के विरुद्ध है और इसे कायम नहीं रखा जा सकता—आक्षेपित आदेश अपास्त—आवेदन अनुज्ञात। (पैराएँ 2 से 5)

अधिवक्तागण.—Mr. S.K. Singh, For the Petitioner; Mr. Tapas Roy, For the State; Mr. Nagmani Tiwari, For the O.P. Nos. 1 & 2.

आदेश

यह पुनरीक्षण विविध केस सं॰ 75 वर्ष 2006 में प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 12.12.2006 के आदेश के अभिखंडन के लिए दाखिल की गयी है जिसके द्वारा अधिवक्ता को काम पर लगाने के लिए याची द्वारा दाखिल आवेदन अस्वीकार कर दिया गया है।

2. याची के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निवेदन किया गया है कि अवर न्यायालय का आदेश अवैध है–क्योंकि दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 303 के अधीन अंतर्विष्ट प्रावधान के मुताबिक किसी व्यक्ति, जिसके विरुद्ध न्यायालय में कार्यवाही संस्थापित की गयी है, को अपनी पसन्द के अधिवक्ता के माध्यम से स्वयं का बचाव करने का अधिकार है।

3. विपक्षी पक्षकार सं॰ 1 और 2 के लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने पूर्वोक्त विधिक अवस्था को विवादित नहीं किया है। किंतु, वह निवेदन करते हैं कि याची सुलह कार्यवाही से बचना चाहता है जो दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 125 के अधीन कार्यवाही में आज्ञापक है।

4. निवेदनों को सुनने पर, मैंने आक्षेपित आदेश का परिशीलन किया है। आक्षेपित आदेश प्रकट करता है कि अवर न्यायालय ने अपनी पसन्द के अधिवक्ता को नियुक्त करने के लिए याची की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया, जो मेरे दृष्टिकोण में, दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 303 में अंतर्विष्ट प्रावधानों के विरुद्ध है। तद्नुसार, आक्षेपित आदेश संपोषित नहीं किया जा सकता है।

5. परिणामस्वरुप, यह पुनरीक्षण आवेदन अनुज्ञात किया जाता है और आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है।

6. याची को आज के दिन से चार सप्ताह के भीतर अवर न्यायालय में उपस्थित होने और अपने अधिवक्ता के माध्यम से वकालतनामा दाखिल करने का निर्देश दिया जाता है। याची को आगे सुलह कार्यवाही तक व्यक्तिगत तौर पर उपस्थित बने रहने का निर्देश दिया जाता है।

---

ekuuh; ,pñ lhñ feJk] U;k;efr

स्टानिसलांस एक्का एवं एक अन्य

cuke

बिहार राज्य (अब झारखंड)

Cr. W.J.C. No. 190 of 1999 (R). Decided on 16th February, 2012.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन आवेदनों के मामले में।

भारत का संविधान–अनुच्छेद 226—प्रतिकूल टिप्पणी के विलोपन के लिए आवेदन–याचीगण सरकारी पदधारीगण है–विचारण न्यायालय ने अभियुक्त के विरुद्ध दोषसिद्धि का निर्णय पारित करते हुए अभियुक्त का पक्ष लेने के लिए ऐसे दस्तावेजों को सृजित करने के लिए याचीगण की निन्दा की–याचीगण ने सरकारी सेवक होने के नाते निर्मित दस्तावेजों को प्रस्तुत करके अभियुक्त की तरफदारी की थी–सरकारी पदधारी की ऐसी कार्रवाई की निंदा करने में अवैधता नहीं है–रिट याचिका पोषणीय नहीं है। (पैराएँ 4 एवं 5)

अधिवक्तागण.–Mr. S.P. Roy, For the Petitioner; Mr. Rajesh Kumar, For the State.

न्यायालय द्वारा.–याचीगण के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के लिए उपस्थित विद्वान जी॰ पी॰ V को सुना गया।

2. यह रिट याचिका बुंडु पी॰ एस॰ केस सं॰ 3 वर्ष 1986 (जी॰ आर॰ सं॰ 10 वर्ष 1986) से उद्भूत होने वाले विचारण सं॰ 716 वर्ष 1998 में श्री जगन्नाथ राय, विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम श्रेणी, खूँटी, राँची द्वारा पारित दिनांक 14.9.1998 के निर्णय, जिसके द्वारा अभियुक्त जो सरकारी सेवक था को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 409 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध और दंडादेशित किया गया है, में किए गए

संप्रेक्षण के विरुद्ध निर्देशित है। जहाँ तक याचीगण का संबंध है, वे विचारण के क्रम में अभियुक्त द्वारा परीक्षित किए गए बचाव गवाह हैं और विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी ने निर्णय में कथन किया है कि इन याचीगण ने अभियुक्त की तरफदारी करने के लिए दो दस्तावेजों, जो निर्मित दस्तावेज थे और जिन्हें प्रदर्श C एवं D के तौर पर चिन्हित किया गया था, को प्रस्तुत और सिद्ध किया था। विचारण न्यायालय ने केवल याचीगण, जो सरकारी पदधारीगण भी हैं, द्वारा अभियुक्त की तरफदारी करने के लिए ऐसे दस्तावेजों को सृजित करने की निंदा की है।

3. याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि निर्णय में इन याचीगण के विरुद्ध की गयी प्रतिकूल टिप्पणियाँ याचीगण पर प्रतिकूलता कारित करेंगी और इस प्रकार ये विलोपित किए जाने योग्य है।

4. अभिलेख पर लाए गए निर्णय का परिशीलन करने पर, मैं पाता हूँ कि विद्वान विचारण न्यायालय की चिंता अनपेक्षित नहीं थी, क्योंकि याचीगण ने सरकारी सेवक होने के नाते निर्मित दस्तावेजों को प्रस्तुत करके अभियुक्त की तरफदारी की थी। सरकारी पदधारी की ऐसी किसी कार्रवाई की निंदा करने में अवैधता नहीं है। इन याचीगण के विरुद्ध निर्णय में इससे अधिक कुछ भी नहीं कहा गया है।

5. मेरे सुविचारित मत में, विद्वान विचारण न्यायालय का संप्रेक्षण अनपेक्षित नहीं था और उक्त संप्रेक्षण का विलोपन करने के लिए याचीगण द्वारा दाखिल यह रिट याचिका विधि की दृष्टि में बिल्कुल पोषणीय नहीं है। तद्नुसार, यह रिट याचिका खारिज की जाती है।

---

ekuuh; ihñ ihñ HkVV] U;k;efr

असिन मांझी

cuke

अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक, सेंट्रल कोल फील्ड लि॰, राँची एवं अन्य

W.P. (S) No. 24 of 2002. Decided on 1st March, 2012.

श्रम एवं औद्योगिक विधि–क्षतिपूर्तिकारी नियुक्ति–याची की भूमि को वर्ष 1990-91 में अर्जित किया गया–करार निष्पादित किया गया था जिसके द्वारा भूमि अर्जन के बदले में नियोजन का प्रस्ताव दिया गया था–कंपनी द्वारा विरचित योजना की आवश्यकता को परिपूर्ण नहीं किया गया था–तथ्य के विवादित प्रश्न हैं जिनको रिट याचिका में विनिश्चित नहीं किया जा सकता है–याची को समर्थनीय दस्तावेजों के साथ कंपनी के समक्ष अभ्यावेदन देने का निर्देश दिया गया। (पैराएँ 6 से 9)

अधिवक्तागण.–M/s A. Allam, Ranjan Pd. Sinha, For the Petitioner; Mr. Ananda Sen, For the Respondent.

न्यायालय द्वारा.–याची के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. कागजातों का परिशीलन किया गया।

3. याची ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन वर्तमान याचिका के रूप में अधिसूचित क्षेत्र में कोयला की खुदाई की प्रक्रिया के दौरान संबंधित प्रत्यर्थीगण द्वारा वर्ष 1990-91 में याची की भूमि

के अर्जन के बदले और वर्ष 1992 में याची की भाभी श्रीमती पार्वती देवी और प्रबंधन के बीच समझौते की दृष्टि में भी नौकरी/क्षतिपूर्ति प्रदान करने के लिए प्रत्यर्थीगण को आदेश देते हुए समुचित रिट/आदेश/निर्देश जारी करने के लिए प्रार्थना किया है।

4. याची का मामला यह है कि खनन गतिविधियों के लिए प्रत्यर्थी-कंपनी द्वारा याची की भूमि का अर्जन इप्सित किया गया था और तद्नुसार, याची और परिवार के अन्य सदस्यों ने उक्त अर्जन के लिए सहमति दी थी। याची का मामला यह है कि करार निष्पादित किया गया था, जिसके द्वारा भूमि के अर्जन के बदले नियोजन का प्रस्ताव दिया गया था।

5. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि वर्तमान याची की भाभी श्रीमती पार्वती देवी को नियोजन का प्रस्ताव दिया गया था किंतु मेडिकल आवश्यकताओं को पूरा नहीं किए जाने के कारण उसे नियुक्ति नहीं दी जा सकी थी। आगे निवेदन किया गया है कि श्रीमती पार्वती देवी के बदले वर्तमान याची को नियोजन का प्रस्ताव दिया गया था किंतु उस समय पर, चूँकि याची अवयस्क था, यह सहमति हुई थी कि वयस्कता प्राप्त कर लेने पर याची को प्रत्यर्थी कंपनी में काम दिया जाएगा, किंतु उसके पश्चात् कंपनी ने याची को नियोजन का प्रस्ताव नहीं दिया यद्यपि कंपनी और वर्तमान याची के बीच ऐसी सहमति हुई थी। याची के विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि प्रत्यर्थी कंपनी द्वारा अपेक्षित समस्त अध्यपेक्षित दस्तावेजों की आपूर्ति की गयी है। किंतु, प्रत्यर्थी-कंपनी द्वारा नियोजन का प्रस्ताव नहीं दिया गया है, अत: वह वर्तमान रिट याचिका दाखिल करके इस न्यायालय के पास आने के लिए मजबूर है।

6. इसके विरुद्ध, प्रत्यर्थी-कंपनी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रत्यर्थी कंपनी द्वारा दाखिल प्रति शपथपत्र को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन किया कि वर्तमान याची की भाभी को योजना के अधीन नियोजन का प्रस्ताव दिया गया था किंतु बाद में, यह पाया गया था कि कंपनी द्वारा विरचित योजना की आवश्यकता को परिपूर्ण नहीं किया गया था और इसलिए याची की भाभी को और वर्तमान याची को भी नियोजन का प्रस्ताव देना प्रत्यर्थी कंपनी के लिए संभव नहीं था।

7. प्रत्यर्थी कंपनी के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार अभिधृति भूखंड सं॰ 1054, 1057 और 1059 के 3.22 एकड़ में से 0.75 एवं आधा एकड़ कुल क्षेत्र का खनन प्रयोजन से उपयोग किया गया था और शेष क्षेत्र अर्थात् 2.46 एवं आधा एकड़ अभी भी खाता सं॰ 31 के उत्तराधिकारियों के अभिधारियों के कब्जा में है और वे खेती कर रहे हैं और इसलिए अभिधारियों के विस्थापन का प्रश्न उद्भूत नहीं होता है।

8. इसके विरुद्ध, याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि उन्होंने पहले ही प्रश्नगत भूमि को सरेंडर कर दिया है और वस्तुत:, वे प्रश्नगत भूमि पर खनन नहीं कर रहे हैं। ये तथ्य के विवादित प्रश्न हैं जिनको रिट अधिकारिता में विनिश्चित नहीं किया जा सकता है। किंतु, याची प्रासंगिक सामग्रियों को प्रस्तुत करने के लिए स्वतंत्र होगा जैसा विस्थापित व्यक्ति के रूप में रोजगार पाने के लिए प्रत्यर्थी कंपनी द्वारा विरचित नीति की शर्तों की परिपूर्ति के अनुसरण में प्रत्यर्थी कंपनी द्वारा अपेक्षा की जाती है। उस प्रयोजन से, याची को अन्य सह-स्वामियों के सहमति पत्र/वचनबंध को प्रस्तुत करने की आवश्यकता है जिसकी अपेक्षा प्रश्नगत भूमि को सरेंडर करने के प्रयोजन से प्रत्यर्थी कंपनी द्वारा की जाती है ताकि

ऐसे दस्तावेज के संवीक्षण/परीक्षण पर योजना के अधीन लाभ को प्रत्यर्थी कंपनी द्वारा याची को दिया जा सके। इस प्रयोजन से, याची इस आदेश की प्रति की प्राप्ति/प्रस्तुति की तिथि से दो सप्ताह की अवधि के भीतर समर्थनीय दस्तावेजों के साथ अभ्यावेदन प्रस्तुत करके प्रत्यर्थी कंपनी के समक्ष जा सकता है। आवश्यक सामग्रियों द्वारा समर्थित ऐसे अभ्यावेदन की प्राप्ति पर प्रत्यर्थी कंपनी तत्पश्चात चार सप्ताह के भीतर निर्णय लेगी।

9. याची प्रत्यर्थी कंपनी के समक्ष अभ्यावेदन देते हुए उन समस्त बिंदुओं, जिन्हें वर्तमान याचिका में उठाया गया है, को उठाने के लिए और वर्तमान याचिका में प्रस्तुत दस्तावेजों पर विश्वास करने के लिए स्वतंत्र होगा और प्रत्यर्थी कंपनी बदले में योजना के अधीन रोजगार का लाभ देने के लिए निर्णय लेने के प्रयोजन से समस्त प्रासंगिक सामग्रियों पर विचार करेगी।

10. पूर्वोक्त संप्रेक्षणों और निर्देशों के साथ, यह रिट याचिका निपटायी जाती है।

---

ekuuh; ç'kkr dekj] U;k;efr

कालिन्दी देवी एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. Revision No. 368 of 2011. Decided on 2nd March, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 498A एवं 323 सह-पठित दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धाराएँ 3/4—दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 227—क्रूरता—केस डायरी का परिशीलन किए बिना अवर न्यायालय द्वारा उन्मोचन आवेदन की अस्वीकृति—अवर न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों पर अपने विवेक का इस्तेमाल नहीं किया है—आक्षेपित आदेश अपास्त—नए आदेश के लिए मामला वापस अवर न्यायालय भेजा गया। (पैराएँ 1 से 4)

अधिवक्तागण.—Mr. A.K. Sahani, For the Petitioners; Mr. A.K. Kashyap, For the O.P. No. 2; Mrs. Lily Sahay, For the State.

आदेश

यह आवेदन एस॰ टी॰ सं॰ 632 वर्ष 2009 में सत्र न्यायाधीश, हजारीबाग द्वारा पारित दिनांक 21.5.2010 के आदेश के विरुद्ध निर्देशित है जिसके द्वारा उन्होंने यह अभिनिर्धारित करते हुए कि यह पोषणीय नहीं है, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के अधीन दाखिल याचीगण के आवेदन को अस्वीकार कर दिया।

विद्वान अवर न्यायालय ने निम्नलिखित निष्कर्ष दिया था:—

^^n0 ç0 l0 dh èkkjk 227 d vèkhu ;kfpdk vkj vfHk;ktu dh vkj l nkf[ky bld çR;Ükj dk ifj'khyu fd;k vkj e ikrk g fd ;kfpdk vkj bld çR;Ükj nkuk e ;g Lohdkj fd;k x;k g fd Hkk0 n0 l0 dh èkkjkvk 498A vkj 323 vkj MhO ih0 vfèkfu;e dh èkkjkvk 3/4 d vèkhu ekeyk cuk;k x;k g vkj Hkk0 n0 l0 dh èkkjk 307 d vèkhu vijkèk ugh cuk;k x;k gA n0 ç0 l0 dh èkkjk 227 dgrh g fd ;fn U;k;kèkh'k ekurk g fd ekey dk vkx y tku d fy, i;kIr vkèkkj ugh g] og vfHk;Dr dk mUekfpr djxk vkj ,l dju d fy, viu dkj.kk dk nt djxkA

*vr% dl Mk;jh dk ifj'khyu fd, fcuk e ikrk g fd n0 ç0 l0 dh èkkjk 227 d vèkhu vfHk;Drx.k dh vkj l nkf[ky ;kfpdk ik"k.kh; ugh gA***

2. विद्वान अवर न्यायालय द्वारा दिए गए पूर्वोक्त कारण के परिशीलन से, यह स्पष्ट है कि उन्होंने अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों पर अपने विवेक का इस्तेमाल नहीं किया है।

3. उक्त परिस्थिति के अधीन, आक्षेपित आदेश संपोषित नहीं किया जा सकता है।

4. तद्नुसार, मैं यह आवेदन अनुज्ञात करता हूँ और आक्षेपित आदेश को अपास्त करता हूँ। मैं विद्वान अवर न्यायालय को मामला वापस भेजता हूँ और उनको केस डायरी में उपलब्ध समस्त सामग्रियों पर विचार करने के बाद आदेश पारित करने और यह निष्कर्ष देने कि क्या भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 307 के अधीन अपराध बनाता है या नहीं, का निर्देश देता हूँ।

---

ekuuh;k iue JhokLro] U;k;efr

मेसर्स टाटा आयरन एण्ड स्टील कंपनी लिमिटेड, जमशेदपुर (1981 में)

मेसर्स टाटा स्टील लि॰ (6816 में)

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य (दोनों में)

W.P. (C) No. 1981 of 2003 with 6816 of 2005. Decided on 23rd April, 2012.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन एक आवेदन के मामले में।

छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम, 1908—धाराएँ 50 एवं 90—रैयती अधिकार–जब एक बार याची ने राज्य के साथ पट्टा किया, वह अपने इस दृष्टिकोण से मुकर गया कि वे भूमि के भू-धृतिधारक थे और जिसे धारा 50 के अधीन निर्मुक्त किया गया था–भूमि को केवल तब निर्मुक्त किया जा सकता था जब इसे धारा 50 (a) में वर्णित विनिर्दिष्ट प्रयोजन के लिए याची द्वारा इसकी निर्मुक्ति इप्सित की गयी थी और केवल प्रतिवाद करने वाले प्रत्यर्थीगण, जो खेती करने वाले के रूप में काबिज थे, को मुआवजा देने के बाद ही इसे निर्मुक्त किया जा सकता था–प्रतिवाद करने वाले प्रत्यर्थीगण का नाम अधिकारों के सर्वे अभिलेख में प्रकाशित किया गया था–केवल धारा 50 के अधीन भूमि निर्मुक्त किए जाने के आधार पर दावा मात्र स्वीकार्य नहीं है, विशेषतः जब याची ने किसी मुआवजा का भुगतान नहीं किया है–याची भूमि के संबंध में पट्टाधारी है और वे साथ-साथ रैयती अधिकारों का दावा नहीं कर सकते हैं–याचिका खारिज। (पैराएँ 15 से 17)

निर्णयज विधि.–1986 BLT 220—Referred.

अधिवक्तागण.–M/s Binod Kanth, G.M. Mishra, Umesh Mishra, For the Petitioner; Mr. V. Shivnath, Birendra Kumar, For the Respondent Nos. 6 & 7; Mr. V.K. Prasad, S.C. (L & C), For the Respondent-State; Mr. Rohit Roy, For the Respondent No.8.

पूनम श्रीवास्तव, न्यायमूर्ति.–इन दोनों रिट याचिकाओं को एक साथ सुना जा रहा है और इसे एक ही निर्णय द्वारा निपटाया जा रहा है क्योंकि अंतर्ग्रस्त विवाद्यक एक ही है।

2. डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 1981 वर्ष 2003 में छोटानागपुर अभिधृति अधिनियम (रिट याचिका का परिशिष्ट-7) की धारा 90 के अधीन केस सं॰ 264 वर्ष 2001-02 में प्रत्यर्थी सं॰ 5 सहायक बंदोबस्ती अधिकारी, जमशेदपुर, पूर्वी सिंहभूम द्वारा पारित दिनांक 5.8.2002 का आदेश चुनौती के अधीन है।

3. डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 6816 वर्ष 2005, पूर्वोक्त आदेश के अनुसरण में प्रमुख सचिव, राजस्व एवं भूमि सुधार विभाग, झारखंड सरकार द्वारा उपायुक्त, पूर्वी सिंहभूम को भेजे गए पत्र सं॰ 305/Ra दिनांक 5.9.2005 (परिशिष्ट-1) के तहत जारी पारिणामिक पत्र है और उप-सचिव, राजस्व एवं भूमि सुधार विभाग, झारखंड सरकार द्वारा उपायुक्त, पूर्वी सिंहभूम को भेजा गया पत्र सं॰ 5/Sa. Bhu. Pu.

Singh 54/053553/Ra दिनांक 27.10.2005 एवं पत्र सं॰ 5/Sa. Bhu. Pu. Singh-54/053650/ Ra दिनांक 10.11.2005 (परिशिष्ट–3) और दिनांक 19.11.2005 का आम नोटिस (परिशिष्ट–4) जिसके द्वारा प्रत्यर्थी राज्य के प्राधिकारीगण 5.26 एकड़ क्षेत्र के माप वाली मौजा खूंटाडीह में खाता सं॰ 40 के आर॰ एस॰ भूखंड सं॰ 1566, 1567, 1568, 1569, 1570 और 1572 भूमि, जो सांविधिकत: याची को पट्टा पर दी गयी है, को रैयती भूमि के रूप में मानते हुए और इसे प्रत्यर्थी सं॰ 6 और 7 के पक्ष में इसका आवंटन करने के लिए उन्मत है।

4. याची मेसर्स टाटा आयरन एण्ड स्टील कं॰ लि॰ की ओर से अधिवक्तागण, श्री जी॰ एम॰ मिश्रा और श्री उमेश मिश्रा की सहायता से वरीय अधिवक्ता, श्री विनोद कंठ को और प्रत्यर्थी सं॰ 5 और 6 की ओर से अधिवक्ता, श्री बिरेन्द्र कुमार की सहायता से वरीय अधिवक्ता, श्री वी॰ शिवनाथ को और राज्य की ओर से श्री॰ वी॰ के॰ प्रसाद, एस॰ सी॰ (एल॰ एण्ड सी॰) और प्रत्यर्थी सं॰ 8 की ओर से अधिवक्ता, श्री रोहित राय को सुना गया।

5. याची पूर्वी सिंहभूम जिला जमशेदपुर में अपना कार्यालय और कारखाना रखने वाला भारतीय कंपनी अधिनियम के अधीन निगमित कंपनी है। लौह एवं इस्पात कंपनी तथा सहयोगी कंपनियों को स्थापित करने के लिए दो हस्तांतरण विलेखों द्वारा तत्कालीन प्रादेशिक सरकार द्वारा भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 के अधीन 15725 एकड़ भूमि अर्जित की गयी थी। संपूर्ण भूमि का उपयोग तुरन्त नहीं किया गया था और इसलिए, लगभग 3000 एकड़ भूमि अनुपयोगित थी और स्थानीय कृषकों को उक्त रिक्त भूमि पर खेती करने की अनुमति दी गयी थी। खूँटाडीह गाँव में खाता सं॰ 40 की विवादित भूखंड सं॰ (पुराना) 1566, 1567, 1568, 1569, 1570 और 1572 किसी बंगाल कुमार को वर्ष 1934-37 में दिया गया था। उक्त बंगाल कुमार ने 5.26 एकड़ भूमि पर खेती करना शुरू किया और परिणामस्वरुप उसका नाम अभिधारी के रूप में अधिकार अभिलेख में दर्ज किया गया था।

6. याची की ओर से निवेदन यह है कि सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 50 के अधीन कार्यवाही शुरू करने के बाद टाटा स्टील द्वारा प्रश्नगत पूर्वोक्त भूमि का अधिग्रहण किया गया था। याची को दिनांक 24.6.1944 को कब्जा दिया गया था। बाद में, बिहार भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (इसके बाद 'बि॰ भू॰ सु॰ अधिनियम' के रूप में निर्दिष्ट) अधिनियमित किया गया था और समस्त मध्यवर्तियों का हित राज्य में निहित किया गया था जो एकमात्र भूस्वामी बन गया। याची का दावा यह है कि उस समय जब बि॰ भू॰ सु॰ अधिनियम दिनांक 1.1.1956 से प्रभाव में आया, याचीगण शांतिपूर्ण तौर पर काबिज थे, किंतु अधिनियम के आगमन पर समस्त भूमि राज्य में निहित हो गयी। बि॰ भू॰ सु॰ अधिनियम की धारा 2B वर्ष 1961 में अधिनियमित की गयी थी। इसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गयी थी और सर्वोच्च न्यायालय ने स्थगन प्रदान किया जो 11 वर्षों की अवधि तक के लिए जारी रहा। किन्तु, बाद में याची ने दिनांक 16.8.1982 को रिट याचिका वापस ले लिया। बि॰ भू॰ सु॰ अधिनियम की धारा 2B को वर्ष 1972 में विलोपित किया गया था और धारा 7D और 7E को सम्मिलित किया गया था और, इस प्रकार, याची का प्रतिवाद है कि वे setlee बन गए। अधिनियम सं॰ 17 वर्ष 1984 द्वारा धारा 7D और 7E के प्रावधानों को संशोधित किया गया था और तत्पश्चात, याचीगण को राज्य के अधीन समझे गए पट्टादार के रूप में माना गया था और 40 वर्षों की अवधि के लिए पट्टा विलेख निष्पादित किया गया था। पट्टा की अवधि वर्ष 1956 में आरम्भ हुई थी। केस सं॰ 223 वर्ष 1965-66 के तहत वर्ष 1965 में बि॰ भू॰ सु॰ अधिनियम की धारा 6 के अधीन कार्यवाही आरंभ हुई थी। प्रत्यर्थी सं॰ 6 और 7 के पूर्ववर्ती बंगाल कुमार ने समुचित किराया के नियतीकरण के लिए धारा 6 के अधीन वर्ष 1971 में आवेदन दाखिल किया जिसे डी॰ सी॰ एल॰ आर॰ द्वारा दिनांक 31.7.1971

को अनुज्ञात किया गया था याची ने विविध अपील सं॰ 10 वर्ष 1971-72 के तहत अपील दाखिल किया जिसे खारिज कर दिया गया था। याची की ओर से विद्वान अधिवक्ता निवेदन करते हैं कि **सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 204, 205 और 202 वर्ष 1981 (R) (टाटा आयरन एण्ड स्टील कं॰ लि॰ बनाम बिहार राज्य एवं अन्य)** में उक्त आदेश को चुनौती दी गयी थी जिसे पटना उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 23.9.1986 के आदेश के तहत अनुज्ञात किया गया था और **1986 BLT 220** में प्रकाशित किया गया था।

7. राज्य सरकार ने सर्वेक्षण किया और ड्राफ्ट तैयार किया जिसे वर्ष 1995 में प्रकाशित किया गया था। याची टिस्को का नाम पट्टादार के रूप में दर्ज नहीं किया गया था। यह सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 83 के अधीन याची द्वारा आपत्ति दाखिल किए जाने की ओर ले गया। दिनांक 26.6.1991 को उक्त आपत्तियों को अस्वीकार कर दिया गया था। पुनरीक्षण सं॰ 138 वर्ष 1992-93 के तहत याची की ओर से पुनरीक्षण दाखिल किया गया था जिसे दिनांक 15.6.1996 को अनुज्ञात किया गया था। प्रत्यर्थी सं॰ 6 और 7 ने सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 90 के अधीन वर्ष 2001 में आवेदन दाखिल किया गया था जिसे डब्ल्यू॰ पी॰ (सी॰) सं॰ 1981 वर्ष 2003 के परिशिष्ट-7 के तहत सहायक बंदोबस्ती अधिकारी द्वारा अनुज्ञात किया गया था और वर्तमान रिट याचिका में उक्त आदेश आक्षेपित है।

8. विद्वान अधिवक्ता का निवेदन यह है कि पूर्वोक्त आदेश **1986 BLT 220** में प्रकाशित पटना उच्च न्यायालय के आदेश के विरोध में है। सी॰ डब्ल्यू॰ जे॰ सी॰ सं॰ 204, 205 और 202 वर्ष 1981 (R) में उक्त निर्णय अंतिम रूप से विनिश्चित करता है कि निहित किए जाने की तिथि पर जब बि॰ भू॰ सु॰ अधिनियम प्रभाव में आया, याची मध्यवर्ती होने के नाते कब्जा बनाए रखने का हकदार है। पटना उच्च न्यायालय ने स्पष्टत: अभिनिर्धारित किया है कि याची-कंपनी काबिज थी, किंतु किराया का भुगतान करने की दायी नहीं थी और आदेश अब निश्चयात्मक है।

9. प्रतिवाद कर रहे प्रत्यर्थी सं॰ 6 और 7 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने याची के प्रतिवाद का जोरदार विरोध इसलिए किया है क्योंकि उनका प्रश्नगत भूमि पर कोई रैयती अधिकार नहीं है और वे किसी किराया का भुगतान करने के दायी भी नहीं है। वे न तो मध्यवर्ती हैं और न ही काबिज हैं। याची की स्वीकृत हैसियत पट्टेदार की है और पट्टा विलेख निष्पादित किया गया है और यह राज्य एवं टिस्को के बीच अस्तित्व में है।

10. श्री वी॰ शिवनाथ और विद्वान राज्य अधिवक्ता ने तर्क किया है कि **1986 BLT 220** में प्रकाशित पटना उच्च न्यायालय का निर्णय वर्तमान मामले के प्रासंगिक नहीं है क्योंकि याची का दावा है कि वे सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 50 के अधीन उनके द्वारा दाखिल आवेदन के आधार पर काबिज हुए, स्वीकार नहीं किया जा सकता है। विद्वान अधिवक्ता का निवेदन यह है कि वर्तमान मामले में अंतर्ग्रस्त वर्तमान विवाद के संबंध में पटना उच्च न्यायालय का निर्णय निश्चयात्मक नहीं है। उक्त निर्णय के पैराग्राफ-7 में इंगित किया गया है कि निर्णय इस उपधारणा पर अग्रसर होता है कि याची (टिस्को) 0.64 डिसमिल भूमि पर काबिज था जिसे प्रत्यर्थी सं॰ 4 (वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी सं॰ 6) से निर्मुक्त करने का निर्देश दिया गया था जबकि वर्तमान विवाद में कुल अंतर्ग्रस्त क्षेत्र 5.26 एकड़ है।

11. प्रत्यर्थीगण की ओर से उठायी गयी अगली आपत्ति यह है कि सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 50 के अधीन पारित आदेश के अनुसरण में टिस्को ने कब्जा वापस पाया जबकि धारा 50 (a) प्रावधानित करती है कि भूमि को केवल तब भूस्वामी के पक्ष में निर्मुक्त किया जा सकता है यदि जाँच, जैसा उपायुक्त आवश्यक समझे, के बाद प्राधिकारी संतुष्ट है कि वह भूमि के ऐसे उपयोग से संबंधित युक्तियुक्त और पर्याप्त प्रयोजन, जो पूर्त, धार्मिक अथवा शैक्षणिक प्रयोजन अथवा निर्माण अथवा सिंचाई प्रयोजन है, के लिए धृति अथवा उसके भाग को अर्जित करने का इच्छुक है। केवल इन परिस्थितियों में,

और ऐसी शर्तों पर भूस्वामी के पक्ष में अर्जन की अनुमति, अभिधारी को मुआवजा अधिनिर्णीत करने सहित, उपायुक्त द्वारा दी जा सकती है और भूस्वामी द्वारा मुआवजा पूर्वोक्त अधिनियम की धारा 50 (b)के अधीन उपायुक्त द्वारा विनिश्चित किया जाएगा।

12. श्री वी० शिवनाथ ने **1986 BLT 220** में प्रकाशित निर्णय के पैराग्राफ 13 पर यह सिद्ध करने के लिए जोर दिया है कि याची ने यह सिद्ध किए बिना कि यह किसी पूर्त, धार्मिक अथवा शैक्षणिक प्रयोजन के लिए था और किसी मुआवजा को नियत किए बिना भी भूमि की निर्मुक्ति के लिए धारा 50 के अधीन आवेदन दाखिल किया। उन्होंने यह जोर भी दिया कि यदि निर्मुक्ति स्वीकार की भी जाती है, यह केवल 0.64 डिसमिल भूमि के संबंध में है।

13. राज्य के अधिवक्ता श्री वी० के० प्रसाद ने तर्क किया है कि बंगाल कुमार पुनरीक्षित सर्वे अधिकार अभिलेख में दर्ज अभिधारी था और इसलिए रैयत था। बि० भू० सु० अधिनियम के प्रभाव में आने के बाद, भूमि राज्य में निहित हुई और अधिनियम की धारा 2B के विलोपन के बाद याची टाटा स्टील दिनांक 1.1.1956 के प्रभाव से 40 वर्षों की अवधि के लिए दिनांक 14.8.1984 और दिनांक 1.8.1985 को बिहार राज्य और टाटा कंपनी के बीच निष्पादित पट्टा किया। दिनांक 1.1.1996 को पट्टा का अवसान हो गया, किंतु बाद में एक नया पट्टा निष्पादित किया गया था। पट्टा विलेख केवल तब निष्पादित किया गया था जब टाटा कंपनी सी० एन० टी० अधिनियम, 1908 की धारा 50 के अधीन भू-धृतिधारक होने के अपने पूर्विक प्रतिवाद से मुकर गयी। राज्य जो पट्टाकर्त्ता था और याची जो पट्टेदार था के बीच पट्टा होने के बाद पट्टा दिनांक 1.1.1996 के प्रभाव से 30 वर्षों की अवधि के लिए दिनांक 20.8.2005 को नवीकृत किया गया था और यह दिनांक 1.1.2025 तक अस्तित्वयुक्त है। इस प्रकार, याची का प्रतिवाद है कि **1986 BLT 220** में प्रकाशित निर्णय संपूर्ण विवाद का मुख्य अवलंब है, सारहीन है।

14. प्रत्यर्थी सं० 8 के विद्वान अधिवक्ता ने प्रत्यर्थी सं० 6 और 7 की ओर से दिए गए तर्कों का समर्थन किया है।

15. मैंने याची और राज्य के अधिवक्ता और प्रतिवाद कर रहे प्रत्यर्थीगण के वरीय अधिवक्ता के तर्कों का सावधानीपूर्वक विश्लेषण किया है और सी० डब्ल्यू० जे० सी० सं० 204, 205 और 202 वर्ष 1981 (R) में दिनांक 23.9.1986 के निर्णय का संवीक्षण किया है। पटना उच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि केवल यह है कि बिहार भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 6 के अधीन पश्चातवर्ती कार्यवाही पोषणीय नहीं है यदि आवेदक ने पूर्विक कार्यवाहियों का प्रतिवाद नहीं किया हो। पूर्वोक्त पैराग्राफों में कथित संपूर्ण तथ्यों के पुनर्विलोकन पर स्वीकृत अवस्था यह है कि 5.26 एकड़ मापवाली रिक्त भूमि का कब्जा खेती के लिए बंगाल कुमार को दिया गया था। याची ने बि० भू० सु० अधिनियम के प्रभाव में आने से काफी पहले सी० एन० टी० अधिनियम की धारा 50 के अधीन भूमि निर्मुक्त किए जाने के परिणामस्वरुप कब्जा का दावा किया। बि० भू० सु० अधिनियम की धारा 2B के विलोपन और धारा 7D और 7E के अंत:स्थापन के बाद याची राज्य का पट्टादार बन गया। उक्त अधिनियम के आगमन पर संपूर्ण भूमि स्पष्टत: राज्य में निहित है और राज्य सर्वोपरि भूस्वामी है। इस प्रकार, जब एक बार याची ने राज्य के साथ पट्टा किया, स्पष्टत: यह अपने दृष्टिकोण से मुकर गया कि वह भूमि का भूधृतिधारक था जो सी० एन० टी० अधिनियम की धारा 50 के अधीन निर्मुक्त की गयी थी। इसके अतिरिक्त, भूमि केवल तब निर्मुक्त की जा सकती थी यदि विनिर्दिष्ट प्रयोजन, जैसा धारा 50 (a) के अधीन वर्णित किया गया है, के लिए और उक्त अधिनियम की धारा 50(5) के अधीन प्रतिवाद कर रहे प्रत्यर्थीगण, जो खेतिहर के रूप में काबिज थे, को मुआवजा का भुगतान करने के बाद याची द्वारा इसकी निर्मुक्ति इप्सित की जाती थी। याचीगण ने कहीं पर भी यह अभिवाक् नहीं किया है कि उन्होंने किसी प्रतिकर का भुगतान किया था या भूमि सुधार उपायुक्त इस बात से संतुष्ट थे कि भूमि की निर्मुक्ति की मांग किसी पूर्त, शैक्षणिक या किसी अन्य प्रयोजन से

की जा रही थी जैसा कि धारा 50 के अधीन अपेक्षित है। जब याची द्वारा दाखिल विविध अपील सं॰ 10 वर्ष 1971-72 खारिज कर दिया गया था, याची राजस्व अधिकारी के समक्ष धारा 87 के अधीन वाद में उक्त आदेश को चुनौती देने का दायी था अपील में ताथ्यिक विवाद को सुलझाया जा सकता था जैसा स्वीकृत रूप से नहीं किया गया था। बि॰ भू॰ सु॰ अधिनियम की धारा 6 के प्रावधान भूमि के संबंध में उचित किराए के नियतीकरण से संबंधित हैं जो निहित किए जाने के पहले पूर्व भूस्वामी के खास कब्जा के अधीन थी और पूर्व भूस्वामी की हैसियत राज्य के अधीन अभिधारी के रूप में बदल जाती है जो राज्य को अभिधारी के रूप में किराया का भुगतान करना आरंभ करता है। वर्तमान मामले में, दिनांक 5.8.2002 के आक्षेपित आदेश में तथ्य का निष्कर्ष दर्ज किया गया है कि टाटा कंपनी का विवादित भूमि पर खास कब्जा कभी नहीं था। याची ने पहले अपने दावा का प्रतिवाद किया कि प्रश्नगत भूमि सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 50 के अधीन निर्मुक्त की गयी थी और, इसलिए, उचित किराया के नियतीकरण के लिए बि॰ भू॰ सु॰ अधिनियम की धारा 6 के अधीन आवेदन दाखिल नहीं किया गया था। इन परिस्थितियों में, राज्य ने उचित किराया के नियतीकरण के लिए बि॰ भू॰ सु॰ अधिनियम की धारा 6 के अधीन कार्यवाही आरंभ किया। यह भी स्वीकृत तथ्य है कि **1986 BLT 220** में प्रकाशित रिट याचिका में पटना उच्च न्यायालय द्वारा अंतिम निर्णय उद्घोषित किए जाने के पहले याची पहले ही पट्टेदार की हैसियत अर्जित कर चुका था जो उक्त निर्णय के पैराग्राफ 18 में स्पष्ट उल्लिखित है और उक्त याचिका में विनिश्चित किया गया एकमात्र प्रश्न यह था कि राजस्व प्राधिकारीगण द्वारा आरंभ की गयी पश्चातवर्ती कार्यवाही पोषणीय नहीं थी। वर्तमान मामले की उत्पत्ति तब हुई जब याची ने सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 83 के अधीन आवेदन दाखिल किया और अन्य बातों के साथ प्रतिवाद किया कि हाल के नवीनतम सर्वेक्षण में प्रविष्टि जिसमें अधिकार अभिलेख के कॉलम 5 और 6 में 'अनाबाद बिहार सरकार' के रूप में विवादित भूमि दर्ज की गयी है जिसे **केस सं॰ 467 वर्ष 1986 (टाटा आयरन एण्ड स्टील कं॰ लि॰ बनाम बिहार राज्य)** के रूप में दर्ज किया गया था और इसे दिनांक 29.6.1991 के आदेश के निबंधनानुसार सहायक बंदोबस्ती अधिकारी द्वारा खारिज कर दिया गया था। वर्तमान रिट याचिका में आक्षेपित आदेश नयी कार्यवाही पर था और यह इस आधार पर अग्रसर होता है कि चूँकि प्रत्यर्थी सं॰ 6 और 7 के पूर्वज को खेतिहर के रूप में कब्जा दिया गया था, वे बि॰ भू॰ सु॰ अधिनियम के प्रभाव में आने के बाद काबिज बने रहे। प्रतिवाद कर रहे प्रत्यर्थीगण के नामों को सर्वेक्षण के अधिकार अभिलेख में प्रकाशित किया गया था। केवल सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 50 के अधीन भूमि की निर्मुक्ति के आधार पर दावा स्वीकार्य नहीं है, विशेषत: जब याची ने मुआवजा का भुगतान नहीं किया है।

16. मेरे मत में, याची टिस्को पट्टादार होने के नाते दिनांक 5.8.2002 के आदेश (डब्ल्यू॰ पी॰ सी॰ सं॰ 1981 वर्ष 2003 का परिशिष्ट–7) का व्यथित पक्ष नहीं है जिसके द्वारा अधिकार–अभिलेख में प्रविष्टि के स्थान पर सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 90 के अधीन सहायक बंदोबस्त अधिकारी का आदेश के परिणामस्वरुप राज्य सरकार ने प्रत्यर्थी सं॰ 6 को रैयत के रूप में स्वीकार किया है। याची के पट्टाजन्य अधिकार के अंतिम रूप से प्रकाशित अधिकार–अभिलेख के टिप्पणी कॉलम में कोई शुद्धि नहीं है। याची स्वतंत्रतापूर्वक किसी हक का दावा नहीं कर रहा है बल्कि केवल राज्य के अधीन पट्टादार होने का दावा करता है। सहायक बंदोबस्ती अधिकारी ने याची और प्रत्यर्थी सं॰ 6 के द्वारा लाए गए सामग्री के आधार पर तथ्य का निष्कर्ष दिया है कि बंगाल कुमार 1937 के सर्वेक्षण के दौरान अभिलिखित रैयत था, और इसे याची द्वारा स्वीकार भी किया गया है। याची ने बि॰ भू॰ सु॰ अधिनियम की धारा 6 के अधीन याची के पक्ष में किराया के नियतीकरण के संबंध में कोई दस्तावेज अथवा सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 50 के अधीन अभिलिखित अभिधारियों द्वारा अंतरण विलेख एवं कब्जा दिए जाने का कोई दस्तावेज अथवा सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 50 (5) के अधीन मुआवजा के भुगतान के संबंध में कोई

दस्तावेज कभी नहीं लाया है। याची ने प्रत्यर्थी सं॰ 5 के समक्ष कोई तात्विक दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया था कि अभिलिखित रैयत अथवा उसके उत्तराधिकारी को कोई भुगतान किया गया था जैसा सी॰ एन॰ टी॰ अधिनियम की धारा 50 (5) के अधीन आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, पटना उच्च न्यायालय का निर्णय 0.64 डिसमिल माप वाली सीमित भूमि से संबंधित है। इसके अतिरिक्त, उक्त निर्णय केवल यह विनिश्चित करता है कि बि॰ भू॰ सु॰ अधिनियम की धारा 6 के अधीन किराया के नियतीकरण के लिए द्वितीय कार्यवाही पोषणीय नहीं है और इसलिए मेरे दृष्टिकोण में, वर्तमान रिट याचिका में उठाए गए कतिपय ताथ्यिक विवादों पर विचार नहीं किया जा सकता है। याची भूमि के संबंध में पट्टादार है और वे साथ-साथ रैयती अधिकारों का दावा नहीं कर सकता है, यह पूर्णतः सही है।

17. रिट याचिकाओं में, बल नहीं है और तद्नुसार यहाँ ऊपर पहले ही वर्णित कारणों से रिट याचिकाओं को खारिज किया जाता है।

---

ekuuh; ,pñ lhñ feJk] U;k;efr

सहदेव महतो

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. Revision No. 956 of 2010. Decided on 3rd April, 2012.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 125—भरण-पोषण–कुटुंब न्यायालय द्वारा याची को अपनी अधित्यजित पत्नी को 1000/- रुपया प्रति माह के भरण-पोषण का भुगतान करने का निर्देश दिया गया–अवर न्यायालय ने याची की आय के संबंध में कोई निष्कर्ष नहीं दिया है और ऐसे किसी निष्कर्ष के बिना याची को अपनी पत्नी को 1000/- रुपया प्रतिमाह भुगतान करने का निर्देश दिया गया–न्यायालय को याची की आय के संबंध में कुछ निष्कर्ष देना चाहिए था जिसकी अनुपस्थिति में आक्षेपित निर्णय विधि की दृष्टि में संपोषित नहीं किया जा सकता है–आक्षेपित आदेश अपास्त–अवर न्यायालय को भरण-पोषण के लिए नया निर्णय पारित करने का निर्देश दिया गया। (पैराएँ 3 से 6)

अधिवक्तागण.–Mr. Mohan Kumar Dubey, For the Petitioner; A.P.P., For the State; None, For the O.P. No. 2

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता और अभियोजन के विद्वान ए॰ पी॰ पी॰ को सुना गया। उस पर नोटिस तामील किए जाने के बावजूद विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के लिए कोई उपस्थित नहीं हुआ।

2. याची ने विविध केस सं॰ 80 वर्ष 2003 में विद्वान प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, जमशेदपुर (पूर्वी सिंहभूम) द्वारा पारित दिनांक 18.8.2010 के निर्णय को चुनौती दिया है जिसके द्वारा द॰ प्र॰ सं॰ की धारा 125 के अधीन कार्यवाही में न्यायालय ने याची को अपनी अधित्यजित पत्नी जो वर्तमान मामले में विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 है को 1000/- रुपया प्रतिमाह के भरण-पोष्ण का भुगतान करने का निर्देश दिया है।

3. निर्णय के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि यद्यपि आवेदक अर्थात् विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने दावा किया कि याची की आय अपने दुकान से 4000/- प्रतिमाह और खेती से 30,000/- रु॰ प्रति वर्ष थी, किंतु न्यायालय में याची का दावा यह था कि वह ईंट भट्टा में काम करके 250/- से 300/- रु॰ प्रति सप्ताह कमाता था। अवर न्यायालय ने उल्लिखित किया है कि पक्षों में से किसी ने आय के संबंध में कागज का कोई टुकड़ा तक दाखिल नहीं किया है। किंतु न्यायालय ने याची को अपनी पत्नी को भरण-पोषण के रूप में 1000/- रु॰ प्रतिमाह का भुगतान करने का निर्देश दिया।

4. यह प्रकट है कि अवर न्यायालय ने याची की आय के संबंध में कोई निष्कर्ष नहीं दिया है और ऐसा निष्कर्ष दिए बिना याची को अपनी पत्नी को 1000/- रुपयों का भुगतान करने का निर्देश दिया है। यदि याची की आय, जैसा उसके द्वारा दावा किया गया है, को सत्य माना जाए, उसकी आय प्रतिमाह 1000/- रुपया बनती है। इस प्रकार, मेरा सुविचारित दृष्टिकोण है कि न्यायालय को याची की आय के संबंध में कुछ निष्कर्ष देना चाहिए था जिसकी अनुपस्थिति में आक्षेपित निर्णय को विधि की दृष्टि में संपोषित नहीं किया जा सकता है।

5. उक्त चर्चा की दृष्टि में, विविध केस सं॰ 80 वर्ष 2003 में विद्वान प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, जमशेदपुर (पूर्वी सिंहभूम) द्वारा पारित दिनांक 18.8.2010 के आक्षेपित निर्णय को एतद् द्वारा अपास्त किया जाता है और अवर न्यायालय को विधि के अनुरूप भरण-पोषण के लिए विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के पक्ष में नया निर्णय पारित करने का निर्देश दिया जाता है।

6. इन निर्देशों के साथ, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

---

ekuuh; vkjî vkjî çlkn] U;k;efr

मेसर्स इरोस मल्टी मीडिया प्राईवेट लिमिटेड एवं अन्य

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. M.P. No. 684 of 2010. Decided on 16th April, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 403, 406, 420 सह-पठित धारा 34—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 482—छल एवं संपत्ति का दुर्विनियोग–समन जारी–भुगतान के बावजूद फर्म का डिस्ट्रीब्यूटरशिप नहीं दिया गया–छल का अपराध गठित करने वाले प्रवंचना के प्रथम तत्व की पूर्णतः कमी है क्योंकि परिवाद में किए गए अभिकथन कहीं पर भी याची द्वारा किसी तरीके से परिवादी को प्रवंचित करना उपदर्शित नहीं करते हैं–परिवादी के साथ कपट करने के लिए याची की ओर से कपटपूर्ण अथवा गैरईमानदार आशय नहीं था–इस प्रकार, याचीगण की ओर से गैर ईमानदार दुर्विनियोग का प्रश्न उद्भूत नहीं होता है–यदि तथ्य सिविल दायित्व और दांडिक दायित्व दोनों गठित करता है, तब सिविल दायित्व के लिए उपचार उपलब्ध होने पर दांडिक कार्यवाही अभिखंडित करने का आधार नहीं हो सकता है–संपूर्ण दांडिक कार्यवाही अपास्त। (पैराएँ 11, 13, 18 से 20)

निर्णयज विधि.–(2006) 6 SCC 736—Relied.

अधिवक्तागण.–M/s P.K. Prasad, Ashish Jha, For the Petitioners; A.P.P., For the State; M/s B.M. Tripathy, S. Mallick, For the O.P. No.2.

आदेश

याची के विद्वान अधिवक्ता और विपक्षी पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. यह आवेदन दिनांक 21.12.2009 के आदेश जिसके द्वारा और जिसके अधीन न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धाराओं 403, 406, 420 सह-पठित धारा 34 के अधीन प्रथम दृष्टया मामला पाकर पर याचीगण के विरुद्ध समन जारी किया, सहित परिवाद C/1 केस सं॰ 308 वर्ष 2009 की संपूर्ण कार्यवाही अभिखंडित करने के लिए दाखिल किया गया है।

3. परिवादी–विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 का मामला, जैसा परिवाद मामले से प्रतीत होता है, यह है कि परिवादी ने फिल्मों अर्थात् ''हीरोज'', ''द्रोणा'' और ''चल चला चल'' का डिस्ट्रीब्यूटरशिप उसे देने के लिए अभियुक्त सं॰ 2 और 3 के साथ टेलीफोन पर संपर्क किया। जिसपर अभियुक्तगण द्वारा उसे बताया गया था कि पूर्वोक्त फिल्मों का डिस्ट्रीब्यूटरशिप 60,000,00/- रुपयों के भुगतान पर दिया जाएगा। तद्नुसार, परिवादी ने अभियुक्तगण को 9,47,000/- रुपयों की राशि का भुगतान किया जिसकी रसीद अभियुक्तगण द्वारा अभिस्वीकृत की गयी थी। बाद में, परिवादी को पता चला कि पूर्वोक्त डिस्ट्रीब्यूटरशिप किसी अन्य व्यक्ति को दे दी गयी है क्योंकि परिवादी समय के प्रासंगिक बिंदु पर शेष राशि का भुगतान करने में अक्षम था। इस पर परिवादी ने 9,47,000/- रुपया लौटाने का अनुरोध किया किंतु अभियुक्तगण ने परिवादी को राशि वापस करने से इनकार कर दिया और तद्द्वारा अभिकथित किया गया है कि अभियुक्तगण ने भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 403, 406 और 420 के अधीन दंडनीय अपराध किया।

4. मामले की जाँच की गयी थी। जाँच करने के बाद, विद्वान दंडाधिकारी ने भारतीय दंड संहिता की धाराओं 403, 406, 420/34 के अधीन प्रथम दृष्टया मामला बनता पाने पर विचारण का सामना करने के लिए अभियुक्तगण को समन जारी किया। वह आदेश इस आवेदन में चुनौती के अधीन है।

5. याचीगण के लिए उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री पी॰ के॰ प्रसाद निवेदन करते हैं कि परिवाद में किए गए संपूर्ण अभिकथनों को सत्य मानने पर भी भारतीय दंड संहिता की धारा 406 अथवा 420 के अधीन अथवा धारा 403 के अधीन भी कोई अपराध नहीं बनता है और इसलिए संपूर्ण दांडिक कार्यवाही अपास्त किए जाने योग्य है।

6. इस संबंध में, आगे निवेदन किया गया था कि परिवादी के मामले के अनुसार, 60,000,00/- रु॰ के भुगतान पर डिस्ट्रीब्यूटरशिप दिया जाना था किंतु उसके विरुद्ध केवल 9,47,000/- रुपयों की राशि का भुगतान किया गया था। चूँकि परिवादी द्वारा आंशिक भुगतान किया गया था, याचीगण ने परिवादी द्वारा शेष भुगतान करने का इंतजार किया जिसके परिणामस्वरुप इस अवधि के दौरान अन्य को डिस्ट्रीब्यूटरशिप नहीं दिया जा सका था। किंतु, जब शेष भुगतान नहीं किया गया था, अन्य को डिस्ट्रीब्यूटरशिप दे दिया गया था और तद्द्वारा स्वयं याचीगण ने नुकसान सहा और अधिकाधिक यह सिविल विवाद का मामला है और न कि संविदा के दांडिक भंग का।

7. इसके विरुद्ध, परिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान वरीय अधिवक्ता श्री बी॰ एम॰ त्रिपाठी निवेदन करते हैं कि यह सत्य है कि केवल 9,47,000/- रुपयों का भुगतान किया गया था किंतु परिवादी को शेष राशि का भुगतान करने के लिए कभी नहीं कहा गया था, और ऐसी सूचना दिए बिना किसी अन्य को डिस्ट्रीब्यूटरशिप दे दिया गया था जो स्वयं अभियुक्तगण के कपटपूर्ण और गैरईमानदार आशय के बारे में उपदर्शित करता है और याचीगण द्वारा जो कोई भी अभिवचन किया जा रहा है, यह उनके बचाव में किया जा रहा है और इस चरण पर उन पर विचार नहीं किया जा सकता है। इस स्थिति के अधीन, आवेदन अस्वीकार करने की प्रार्थना की गयी थी।

8. पक्षों द्वारा किए गए निवेदन के संदर्भ में, यह विचार किया जाना है कि क्या परिवाद में किए गए अभिकथन छल अथवा दांडिक दुर्विनियोग का अपराध गठित करते हैं।

9. भारतीय दंड संहिता की धारा 415 के अधीन छल का अपराध परिभाषित किया गया है जिसका पठन निम्नलिखित है:–

> *^^**Ny-**&tk dkb fdlh 0;fDr l çopuk dj ml 0;fDr dk] ft l bl çdkj çofpr fd;k x;k g] diViod ;k cbekuh l mRçfjr djrk g fd og dkb l ifÙk fdlh 0;fDr*

dk ifjnÙk dj n] ;k ;g lEefr n n fd dkb 0;fDr fdlh lifÙk dk j[k ;k lk'k; ml 0;fDr dk] ftl bl çdkj çofpr fd;k x;k g] mRçfjr djrk g fd og ,lk dkb dk; dj] ;k dju dk yki dj] ftl og ;fn ml bl çdkj çofpr u fd;k x;k gkrk rk] u djrk ;k dju dk yki u djrk] vkj ftl dk; ;k yki l ml 0;fDr dk 'kkjhfjd] ekufld] [;kfr lcèkh ;k lkifÙkd udlku ;k vigkfu dkfjr gkrh g] ;k dkfjr gkuh lHkkO; g] og ^^Ny** djrk g] ;g dgk tkrk gA**

10. इसके पठन से यह प्रतीत होता है कि छल का अपराध गठित करने के लिए निम्नलिखित अवयव आवश्यकत: होने चाहिए:–

(1) fdlh 0;fDr dk çofpr djd diVi.k vFkok xjbekunkj mRçj.k gkuk pkfg,A

(2) (a) bl çdkj çofpr 0;fDr dk fdlh 0;fDr dk dkb lifÙk nu vFkok fdlh lifÙk dk fdlh 0;fDr }kjk viu ikl j[ku dh lgefr nu dk mRçj.k gkuk pkfg,A

(b) bl çdkj ofpr 0;fDr dk fdlh pht dk dju vFkok ugh dju d fy,] tk og djrk vFkok ugh djrk ;fn ml bl çdkj çofpr ugh fd;k x;k gkrk] vk'k;iod mRçfjr fd;k tkuk pkfg,A

(3) 2(b) }kjk vkPNkfnr ekeyk e ÑR; vFkok yki ,lk gkuk pkfg, tk mRçfjr fd, x, 0;fDr dk 'kkjhfjd :i l vFkok çfr"Bk vFkok lifÙk e gkfu igpku] udlkuh dkfjr djrk g vFkok udlku dkfjr fd, tku dh lHkkouk gA

11. इस प्रकार, छल का अपराध गठित करने के लिए प्रथम आवश्यक तत्व अभियुक्त द्वारा परिवादी की प्रवंचना है। जब तक प्रवंचना नहीं है, छल का अपराध नहीं बनाया जा सकता है। प्रवंचना किए जाने के बाद प्रवंचित व्यक्ति को कुछ करने अथवा नहीं करने के लिए उत्प्रेरित किया जाना चाहिए। तब, प्रश्न उठता है कि प्रवंचना क्या है?

12. सामान्य अर्थ में प्रवंचना में किसी व्यक्ति को किसी चीज जो झूठा है, में विश्वास करने के लिए भ्रमित करना है अथवा उसे यह विश्वास दिलाना है कि वह सच को झूठ, अवास्तविक को विद्यमान, नकली को असली समझे और यह भी आवश्यक है कि प्रवंचना संविदा के आरंभ से ही होनी चाहिए।

13. वर्तमान मामले में, अभिकथनों के संदर्भ में, यह दर्ज किया जाए कि छल का अपराध गठित करने वाले प्रवंचना के प्रथम तत्व की पूर्णत: कमी है क्योंकि परिवाद में किए गए अभिकथन कहीं पर भी याचीगण द्वारा किसी तरीके से परिवादी को प्रवंचित किए जाने के बारे में उपदर्शित नहीं करते हैं बल्कि परिवादी का मामला यह है कि उसने स्वयं कुछ फिल्मों का डिस्ट्रीब्यूटरशिप पाने के लिए टेलीफोन पर अभियुक्तगण के साथ संपर्क किया। 60,000,00/- रुपयों के भुगतान पर डिस्ट्रीब्यूटरशिप दिए जाने के प्रस्ताव को स्वीकार किया गया था किंतु केवल 9,47,000/- रुपयों की राशि का भुगतान किया गया था। परिवादी का आगे मामला यह है कि जब परिवादी को शेष राशि का भुगतान नहीं किया गया था, किसी अन्य को डिस्ट्रीब्यूटरशिप दे दिया गया था।

14. इस स्थिति के अधीन, याचीगण को परिवादी को धन से अलग होने के लिए कपटपूर्वक अथवा गैरईमानदार रूप से उत्प्रेरित किया गया नहीं कहा जा सकता है।

15. तद्नुसार, भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के अधीन अपराध गठित करने वाले आवश्यक अवयव की बिल्कुल कमी है।

16. जहाँ तक भारतीय दंड संहिता की धारा 406 के अधीन अपराध का संबंध है, वह भी याचीगण के विरुद्ध बनाया गया प्रतीत नहीं होता है। भारतीय दंड संहिता की धारा 405 के अधीन न्यास के दांडिक भंग को परिभाषित किया गया है जिसका पठन निम्नलिखित है:–

*"405. **vkijkfèkd U;kl Hkx-**&tk dkbZ lEifÙk ;k lEifÙk ij dkbZ Hkh v[kR;kj fdlh idkj viu dk U;Lr fd, tkus ij ml lEifÙk dk cbekuh l nfofu;kx dj yrk g ;k ml viumi;kx e lifjofrr dj yrk g ;k ftl idkj , lk U;kl fuogu fd;k tkuk g] mldk fofgr dju okyh fofèk l fdlh fun'k dk] ;k , l U;kl d fuogu d ckj e mld }kjk dh xbZ fdlh vfHk0;Dr ;k foof{kr oèk lfonk dk vfrØe.k djd cbekuh l ml lEifÙk dk mi;kx ;k 0;;u djrk g] ;k tkuc>dj fdlh vU; 0;fDr dk , lk djuk lgu djrk g] og ^^vkijkfèkd U;kl Hkx** djrk gA**"*

17. उक्त प्रावधान के पठन पर, भारतीय दंड संहिता की धारा 405 के अधीन अपराध गठित करने के लिए निम्नलिखित अवयव होने चाहिए:–

(a) fdlh 0;fDr dk lifÙk U;Lr vFkok lifÙk d Åij vkfèkiR; U;Lr fd;k x;k gk(

(b) fd 0;fDr us ml lifÙk dk Lo; viumi;kx d fy, xj&bekunkj :i l nfofu;kfxr vFkok lifjofrr fd;k gk vFkok ml lifÙk dk xj bekunkj :i l fuLrkfjr fd;k gk vFkok tkuc>dj fdlh vU; 0;fDr dk , lk djuk lgu fd;k gk(

*(c) fd , lk nfofu;kx lifjoru] fuLrkj.k ml <x ftle U;kl dk fuogu fd;k tkuk g] dk fofgr dju okyh fofèk d fdlh fun'k vFkok , l U;kl d fuogu dk Li'k dju okyh fdlh fofèkd lfonk] tk 0;fDr u fd;k g] d mYy?ku e gkA**"*

18. जैसा मैंने पहले कहा है कि परिवादी के साथ कपट करने का याचीगण की ओर से कोई कपटपूर्ण अथवा गैरईमानदार आशय नहीं था और इस प्रकार याचीगण की ओर से गैरईमानदारी, दुर्विनियोग का प्रश्न ही उद्भूत नहीं होता है।

19. इस चरण पर, इसे दर्ज किया जाए कि यदि तथ्य सिविल दायित्व और दांडिक दायित्व दोनों गठित करता है, तब सिविल विधि के अधीन उपचार उपलब्ध होना दांडिक कार्यवाही के अभिखंडन का आधार नहीं हो सकता है। विधि की जिस प्रतिपादना को **भारतीय तेल निगम बनाम एन॰ इ॰ पी॰ सी॰ इंडिया लिमिटेड एवं अन्य, (2006)6 SCC 736** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित किया गया है किंतु साथ ही उक्त मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह भी संप्रेक्षित किया गया है कि व्यावसायिक जगत में शुद्धत: सिविल विवाद को दांडिक मामलों में संपरिवर्तित करने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। यह स्पष्टत: इस प्रचलित धारणा के कारण है कि सिविल विधि उपचार समय लेने वाले होते हैं और देनदारों/उधार देने वालों के हितों की पर्याप्त रूप से सुरक्षा नहीं करते हैं। ऐसी प्रवृत्ति अनेक पारिवारिक विवादों में भी देखी गयी है जो विवाहों/परिवारों को अपरिहार्य रूप से टूटने की ओर ले जाती है। यह भी धारणा है कि यदि किसी व्यक्ति को किसी प्रकार से दांडिक अभियोजन में फँसा दिया जाता है, सन्निकट समझौते की संभावना बढ़ जाती है। उक्त निर्णय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जोर देकर कहा गया है कि दांडिक अभियोजन के माध्यम से दबाव डालकर सिविल विवाद और दावों, जो कोई दांडिक अपराध अंतर्ग्रस्त नहीं करते हैं; को सुलझाने के प्रयास की निंदा की जानी चाहिए और इन्हें हतोत्साहित किया जाना चाहिए।

20. इन परिस्थितियों के अधीन, जैसा ऊपर कहा गया है, दिनांक 21.12.2009 के संज्ञान लेने वाले आदेश सहित परिवाद C/1 केस सं॰ 308 वर्ष 2009 में संपूर्ण दांडिक कार्यवाही एतद् द्वारा अपास्त की जाती है। परिणामस्वरुप, यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है।

ekuuh;k iue JhokLro] U;k;efr

शिव नारायण जायसवाल

cuke

सावित्री देवी जायसवाल एवं अन्य

W.P(C) No. 7021 of 2011. Decided on 23rd April, 2012.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश I, नियम 10(2) सह-पठित धारा 151—भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925—धारा 283 (1)(c)—प्रोबेट केस–वाद में पक्ष के रूप में पक्षकार बनाने के लिए आवेदन की अस्वीकृति-धारा 283 (1) (c) केवल उन लोगों के हित की सुरक्षा करने के लिए है जिनका केवियट योग्य हित है–याची ने इस आधार पर आपत्ति उठायी है कि वह भागीदारी विलेख के माध्यम से सृजित अपने हितों पर नजर रखना चाहता है–यदि याची महसूस करता है कि उसके हिस्से के संबंध में कोई विवाद है, इसे पृथक कार्यवाही में विनिश्चित किया जा सकता है–वर्ग I में विनिर्दिष्ट निकटतम उत्तराधिकारियों के पक्ष में वसीयत निष्पादित किया गया था–याची का हस्तक्षेप अनपेक्षित है–याचिका खारिज। (पैराएँ 10 से 12)

निर्णयज विधि.–(1993)2 SCC 507 **: 2008 (2) BLJ 32 (SC) :** 2007 (11) SCC 357; (2008) 4 SCC 300; (2008) 10 SCC 489; (2010) 5 SCC 157 : **2010 (2) JLJ 210 (SC)**—Referred.

अधिवक्तागण.–M/s A.K. Sinha, A.K. Srivastava Badal Vishal, Suman Srivastava, For the Petitioner; M/s P.K. Prasad, Ayush Aditya, For the Respondents.

आदेश

याची की ओर से श्री ए॰ के॰ श्रीवास्तव, श्री बादल विशाल, सुश्री सुमन श्रीवास्तव, अधिवक्ताओं की सहायता से वरीय अधिवक्ता श्री ए॰ के॰ सिन्हा और प्रतिवाद कर रहे प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित श्री आयुष आदित्य की सहायता से वरीय अधिवक्ता श्री पी॰ के॰ प्रसाद को सुना गया।

2. एल॰ ए॰ केस सं॰ 150 वर्ष 2010 में अपर न्यायिक आयुक्त XII, राँची द्वारा पारित दिनांक 18 नवंबर 2011 का आदेश (रिट याचिका का परिशिष्ट-3) चुनौती के अधीन है। अवर न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश I, नियम 10(2) सह-पठित धारा 151 के अधीन याची द्वारा दाखिल आवेदन अस्वीकार कर दिया है।

3. प्रत्यर्थीगण स्व॰ उमाशंकर जायसवाल के वर्ग I उत्तराधिकारी हैं जिसने संपत्ति का अपना 1/6वाँ हिस्सा उनके पक्ष में वसीयत द्वारा देते हुए वसीयत निष्पादित किया। वसीयत दिनांक 13 फरवरी, 2002 का है। प्रत्यर्थीगण ने प्रोबेट प्रदान किए जाने के लिए भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 (इसके बाद 'अधिनियम' के रूप में निर्दिष्ट) के अधीन दिनांक 9 सितंबर, 2010 को प्रशासन पत्र दाखिल किया। याची ने पक्ष के रूप में अभियोजित किए जाने के लिए पूर्वोक्त आवेदन दाखिल किया क्योंकि उसका वसीयत के विषय वस्तु में हित है। पक्ष के रूप में अभियोजित किए जाने का आधार यह है कि राय साहब लक्ष्मी नारायण जायसवाल और राम नारायण जायसवाल दो भाई थे और विभिन्न राज्यों में विभिन्न स्थानों पर मेसर्स लक्ष्मी नारायण रामनारायण के नाम और शैली में आसवनी का अपना व्यवसाय चला रहे थे। लक्ष्मी नारायण जायसवाल की मृत्यु अपने पीछे अर्थात् याची शिव नारायण जायसवाल, वसीयत का वसीयतकर्ता उमाशंकर जायसवाल और चार अन्य भाई-प्रभु शंकर जायसवाल, कुलदीप नारायण जायसवाल, जगत नारायण जायसवाल और रंजीत सिंह जायसवाल को छोड़ते हुए हो गयी। वर्ष 1970 में भागीदारी फर्म विघटित कर दिया गया था और फर्म के विघटन के पहले छह भाईयों के बीच एक अन्य

फर्म मेसर्स लक्ष्मी नारायण एन्ड संस गठित किया गया था और भागीदारी का परिशुद्धि विलेख बनाया गया था। बाद में संकल्प लिया गया था कि भागीदारी का व्यवसाय राँची में और ऐसे अन्य स्थानों पर अथवा ऐसा अन्य नामों और स्टाइल के अधीन होगा जैसा समय-समय पर परस्पर रूप से सहमति होगी।

4. याची का प्रतिवाद था कि उसे स्व॰ उमाशंकर जायसवाल द्वारा निष्पादित वसीयत के बारे में जानकारी नहीं थी और वसीयत झूठा था और याची एवं अन्य भाईयों के दावा को वंचित करने की दृष्टि से गढ़ा गया था। प्रत्यर्थीगण ने उक्त आवेदन को यह कथन करते हुए चुनौती दिया कि वसीयत के विषय वस्तु का भागीदारी की संपत्तियों के साथ कोई संबंध बिल्कुल नहीं था और दोनों बिल्कुल भिन्न और सुभिन्न थे। वसीयत के फलस्वरुप वसीयत द्वारा दी गयी संपत्ति स्व॰ उमाशंकर जायसवाल की अनन्य संपत्ति थी। सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश I नियम 10 (2) सह-पठित धारा 151 के अधीन आवेदन वस्तुतः अवर न्यायालय द्वारा अपोषणीय अभिनिर्धारित किया गया था और याची ने स्वीकार किया कि सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधान के अधीन इस याचिका का पठन करने के बजाए अधिनियम की धारा 283 के अधीन आवेदन के रूप में इसका पठन किया जाना चाहिए। याची की ओर से निवेदन है कि अधिनियम की धारा 283 (c) के अर्थ के अंतर्गत संपत्ति में उसका ''केवियट योग्य हित'' है।

5. याची का दावा कि धारा 283 (1)(c) के अर्थ के अंतर्गत उसका 'केवियट योग्य हित' था, का विरोध किया गया था। अवर न्यायालय का दृष्टिकोण था कि अभिव्यक्ति 'केवियट योग्य हित' की व्याख्या सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अंतिम निर्णय के लिए लंबित है। चूँकि मामला वृहत्तर पीठ को निर्दिष्ट किया गया था, समन्वय पीठों द्वारा दो विरोधाभाषी दृष्टिकोणों को अभिव्यक्त किया गया था और, इसलिए, अभिव्यक्ति केवियट योग्य हित' की विधिक एवं सही व्याख्या के लिए निर्देश किया गया था।

6. अवर न्यायिक आयुक्त, राँची ने याची की ओर से दिए गए आवेदन को भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 283 (1)(c) के प्रावधानों के अधीन आवेदन मानते हुए आक्षेपित आदेश द्वारा खारिज कर दिया।

7. आक्षेपित आदेश के परिशीलन पर, यह पता चलता है कि स्व॰ उमाशंकर जायसवाल ने केवल वर्ग I के पक्ष में अपनी अनन्य संपत्ति के 1/6 वें हिस्से के संबंध में वसीयत निष्पादित किया। अवर न्यायालय का निष्कर्ष यह है कि याची ने छह भाईयों से गठित भागीदारी फर्म से संबंधित संपत्ति में अपना दावा किया है किंतु वसीयत के विषय वस्तु का याची के साथ कोई संबंध नहीं है। अवर न्यायालय का दृष्टिकोण था कि अधिनियम की धारा 283 (1) (c) के अधीन आवेदन विलंबकारी युक्ति के अलावा कुछ नहीं है क्योंकि अवर न्यायालय को वसीयत की वास्तविकता के संबंध में अत्यन्त सीमित दायरे में प्रोबेट प्रदान करने के प्रश्न का परीक्षण करने की आवश्यकता थी।

8. दोनों पक्षों के अधिवक्ता को विस्तारपूर्वक सुनने और मेरे समक्ष प्रस्तुत उद्धरणों के परिशीलन के बाद वर्तमान रिट याचिका में विनिश्चित किया जाने वाला एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या प्रोबेट प्रदान करने के संबंध में अपनी आपत्तियों को उठाने की अनुमति याची को नहीं देने में अवर न्यायालय का आदेश वैध था। **जी॰ गोपाल बनाम सी॰ भाष्कर एवं अन्य, (2008)10 SCC 489** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश दिया कि वसीयतकर्ता की संपदा में अल्पतम हित रखने वाला व्यक्ति भी केवियट दाखिल करने और प्रोबेट के प्रदान का प्रतिवाद करने का हकदार है किंतु बाद के चरण पर **जगजीत सिंह एवं अन्य बनाम पामेला मनमोहन सिंह, (2010)5 SCC 157 [:2010(2) JLJ 210 (SC)],** मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने **कृष्ण कुमार बिड़ला बनाम राजेन्द्र सिंह लोधा एवं अन्य, (2008)4 SCC 300** अथवा **जी॰ गोपाल (ऊपर)** के मामलों में अपनाए गए दृष्टिकोण को अनुमोदित नहीं किया था। न्यायालय का दृष्टिकोण था कि यद्यपि अधिनियम में ''केवियट योग्य हित'' परिभाषित नहीं किया गया है किंतु अनेक निर्णयों में अभिव्यक्ति की व्याख्या की गयी है और सामान्य न्यायालय का हस्तक्षेप केवल

तब होता था यदि वसीयतकर्ता की संपदा आपत्ति करने वाले व्यक्ति के साथ संबंधित थी जो स्थापित और सिद्ध कर सकता था कि उसका हिस्सा है और उसे इससे वंचित किया गया है। **कँवरजीत सिंह ढिल्लन बनाम हरदयाल सिंह ढिल्लन एवं अन्य, (2007)11 SCC 357 [:2008(2) BLJ 32 (SC)],** मामले में न्यायालय ने आदेश दिया कि प्रोबेट मामले में यह अवधारित करना होगा कि वसीयत द्वारा तात्पर्यित रूप से दी जाने वाली संपत्ति, यदि यह वास्तविक प्रत्यक्ष उत्तराधिकारी के पक्ष में है, तब परीक्षण किया जाने वाला मामला यह है कि क्या केवियेटर को प्रोबेट प्रदान किए जाने के प्रति आपत्ति करने की अनुमति है।

9. वरीय अधिवक्ता श्री पी॰ के॰ प्रसाद ने **चिरंजीलाल श्रीलाल गोयनका बनाम जसजीत सिंह एवं अन्य, (1993)2 SCC 507,** मामले में निर्णय पर विश्वास किया।

10. वर्तमान मामले में, याची ने अपनी आपत्ति इस आधार पर उठायी है कि वह वसीयतकर्ता के भाईयों के बीच निष्पादित भागीदारी विलेख और परिशुद्धि विलेख के माध्यम से सृजित अपने हित को देखभाल करना चाहता है। भागीदारी करार लक्ष्मी नारायण जायसवाल और राम नारायण जायसवाल के बीच हुआ था और मदिरा निर्माण का व्यवसाय मेसर्स लक्ष्मी नारायण रामनारायण के नाम और शैली में किया जा रहा था और याची को अपने हिस्से से वंचित नहीं किया जा रहा है यदि वसीयत इस कारण से प्रोबेट किया जाता है कि वसीयतकर्ता ने केवल अपने 1/6वें हिस्से का वसीयत किया है। उसके हिस्से में जो भी हिस्सा आता है, उसके प्रत्यक्ष उत्तराधिकारी लाभान्वित होंगे। याची विवाद नहीं कर सकता है वसीयत किसी अंतरस्थ हेतु के साथ किया गया है अथवा कूट रचित है। लाभार्थी और कोई नहीं बल्कि वर्ग I से आने वाले उसके उत्तराधिकारी हैं जैसा उत्तराधिकार अधिनियम में प्रावधानित किया गया है। यदि याची महसूस करता है कि उसके हिस्से के संबंध में कोई विवाद है, इसे पृथक कार्यवाही में, जैसे सिविल वाद में, स्पष्टत: विनिश्चित किया जा सकता है जिसका प्रोबेट मामले से कुछ लेना-देना नहीं है। **कँवरजीत सिंह ढिल्लन (ऊपर)** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि प्रश्न यह है कि क्या संपत्तियाँ, जो वसीयत की विषय वस्तु थी, संयुक्त पैतृक संपत्ति थी अथवा अर्जित संपत्ति थी अथवा हक से संबंधित थी। ये प्रश्न प्रोबेट मामले की चारदीवारी के अंतर्गत नहीं आते हैं, वसीयत में दी गयी संपत्ति में वसीयतकर्ता का हक केवल साक्ष्य के आधार पर सिविल न्यायालय में विनिश्चित किया जा सकता है। प्रोबेट केवल साक्ष्य के टुकड़ा के रूप में हो सकता था जिसके साक्ष्यिक मूल्य का परीक्षण सक्षम सिविल न्यायालय कर सकता था।

11. वर्ग I में विनिर्दिष्ट अपने निकटतम उत्तराधिकारियों के पक्ष में स्व॰ उमाशंकर जायसवाल द्वारा निष्पादित दिनांक 13.2.2002 के वसीयत पर प्रशासन पत्र दिए जाने में याची को कोई भी आपत्ति नहीं हो सकती है। याची का हस्तक्षेप अनपेक्षित है। धारा 283(1)(c) केवल उन लोगों के हित की सुरक्षा के लिए है जिनका केवियट योग्य हित है विशेषत: यदि आपत्तिकर्ता को अपने हिस्से और संपत्ति जो वसीयत की विषयवस्तु है में दावा से वंचित किया जा रहा है। अवर न्यायालय ने इस प्रभाव का स्पष्ट निष्कर्ष दर्ज किया है कि कोई विवाद नहीं है कि वसीयतकर्ता ने अपने अनन्य 1/6 वे हिस्से के संबंध में वसीयत निष्पादित किया। इसके अतिरिक्त, वसीयत में विनिर्दिष्ट प्राख्यान का कोरा परिशीलन दर्शाता है कि वसीयतकर्ता की पत्नी, पुत्र और अन्य उत्तराधिकारी केवल शिवनी जिला में भूमि और बगीचा में केवल 1/6वाँ हिस्सा पाएँगे। इस प्रकार, आसवन का व्यवसाय, जो अनेक राज्यों और अन्य शहरों में किया जा रहा है, प्रभावित नहीं होता है।

12. अत: मेरा सुविचारित मत है कि मृतक वसीयतकर्ता ने अपने निकटतम उत्तराधिकारियों के हित और उनके बीच विवाद की सुरक्षा की दृष्टि से वसीयत निष्पादित किया और इसलिए याची का हस्तक्षेप अनपेक्षित है। आक्षेपित आदेश में कोई त्रुटि नहीं है, मैं वर्तमान रिट याचिका में कोई त्रुटि नहीं पाती हूँ और तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है।

ekuuh; ,pñ lhñ feJk] U;k;efr

बसंत प्रसाद साहू

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. Rev. No. 603 of 2010. Decided on 10th April, 2012.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 125—भरण-पोषण–अवर न्यायालय ने याची को अपनी अधित्यजित पत्नी और अवयस्क पुत्र प्रत्येक को भरण-पोषण के रूप में 4000/- रुपया का भुगतान करने का निर्देश दिया–भले ही पत्नी की अपनी आमदनी है, यह दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 125 के अधीन आवेदन दाखिल करने से रोके जाने के लिए पर्याप्त नहीं है–यह स्थापित करना होगा कि अपने द्वारा अर्जित आमदनी से वह स्वयं का भरण-पोषण करने में सक्षम थी–अवर न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य को समुचित रूप से विचार में लिया है और पाया है कि याची जो स्वीकृत रूप से ओ॰ एन॰ जी॰ सी॰ में कार्यरत अभियन्ता था, अपनी पत्नी का भरण-पोषण करने मे सक्षम था और वि॰ प॰ पत्नी केवल दैनिक पारिश्रमिक पा रही थी और उसकी आमदनी को पर्याप्त अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है–आक्षेपित आदेश में अवैधता नहीं है। (पैराएँ 7 से 10)

निर्णयज विधि.–2011 (4) JLJ 205 (SC) : 2011 AIR SCW 4340; **2008 (2) BLJ 46 (SC) :** A.I.R. 2008 SC 530; **2012 (1) JLJ 10 (SC)** 2012 (1) Cr. R 51 S.C.—Relied.

अधिवक्तागण.–Mr. Mohit Prakash, For the Petitioner; A.P.P., For the State; Mr. B.K. Mishra, For the Opp. Party No. 2.

आदेश

यह आवेदन भरण-पोषण केस सं॰ 13 वर्ष 2005 में विद्वान प्रधान न्यायाधीश कुटुंब न्यायालय, लोहरदग्गा द्वारा पारित दिनांक 4.6.2010 के आदेश को चुनौती देते हुए दाखिल किया गया है जिसके द्वारा अवर न्यायालय ने याची को अपनी अधित्यजित पत्नी, जो इस मामले में विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 है, को भरण-पोषण के रूप में 4,000/- रुपयों का भुगतान करने का निर्देश दिया है। अवर न्यायालय ने विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के साथ रह रहे याची के अवयस्क पुत्र को भरण-पोषण के रूप में 4000/- रुपयों का भुगतान करने का निर्देश भी याची को दिया है।

2. आरंभ में ही कथन किया जा सकता है कि याची के विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित आदेश को केवल इस सीमा तक चुनौती दिया है जहाँ तक यह विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 को भरण-पोषण का भुगतान करने से संबंधित है और निवेदन किया है कि वह उस आदेश को चुनौती नहीं दे रहे हैं जिसके द्वारा याची को अपने अवयस्क संतान को भरण-पोषण के लिए 4000/- रुपयों का भुगतान करने का निर्देश दिया गया था।

3. यह प्रतीत होता है कि विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 श्रीमती नंदिता साहू ने याची की विधिवत ब्याहता पत्नी होने का दावा करते हुए याची के विरुद्ध दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 125 के अधीन आवेदन दाखिल किया था और क्रूरता और यातना का अभिकथन किया था जिस कारण उसे अपने अवयस्क पुत्र के साथ दांपत्य गृह से निकाल दिया गया था। यह कथन किया गया है कि याची ओ॰ एन॰ जी॰ सी॰ में अभियन्ता के रूप में कार्यरत था और 40,000/- रुपयों से अधिक कमा रहा था। यह प्रतिवाद भी किया गया था कि याची को गृह संपत्ति से 20,000/- रुपया प्रतिमाह से अधिक की आमदनी भी थी और तद्नुसार विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 ने स्वयं के लिए याची से 17,000/- रुपया प्रतिमाह और अपने अवयस्क पुत्र के लिए 8000/- रुपया प्रतिमाह के भरण-पोषण का दावा किया था।

4. आक्षेपित आदेश से यह प्रतीत होता है कि पक्षों के बीच विवाह स्वीकार किया गया है और यह भी स्वीकार किया गया है कि दोनों पक्ष अलग-अलग रह रहे हैं। यह भी स्वीकृत तथ्य है कि याची ओ० एन० जी० सी० में अभियन्ता के रूप में कार्यरत था किंतु याची का दावा था कि उसने सेवा से त्यागपत्र दे दिया था और उसकी कोई आमदनी नहीं थी और इस प्रकार वह अपनी पत्नी का भरण-पोषण करने में सक्षम नहीं था। याची ने यह भी दावा किया था कि 'सर्व शिक्षा अभियान' से उसकी पत्नी को आमदनी थी और इस प्रकार, वह स्वयं का भरण-पोषण करने में सक्षम थी। यह भी प्रतीत होता है कि अवर न्यायालय में दोनों पक्षों द्वारा साक्ष्य दिया गया था और पक्षों के साक्ष्य के आधार पर अवर न्यायालय इस निष्कर्ष पर आया कि भरण-पोषण मामला दाखिल किए जाते समय याची भारत की सुविख्यात राष्ट्रीयकृत कंपनी ओ० एन० जी० सी० में अभियन्ता के रूप में कार्यरत था और तद्नुसार, विपक्षी पक्षकार (वर्तमान याची) की तुलना में आवेदक (वर्तमान विपक्षी पक्षकार सं० 2) की आर्थिक हैसियत, यद्यपि वह 'सर्व शिक्षा अभियान' में कार्यरत है, को पर्याप्त अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है। अवर न्यायालय इस निष्कर्ष पर आया कि यद्यपि याची ने प्रतिवाद किया था कि उसने ओ० एन० जी० सी० की सेवा छोड़ दी थी और वर्तमान में, वह बेरोजगार था किंतु यह दर्शाने के लिए अभिलेख पर कोई दस्तावेज नहीं लाया गया था कि उसने ओ० एन० जी० सी० से त्यागपत्र दे दिया था और तद्नुसार, यह सुरक्षापूर्वक कहा जा सकता है कि याची ने बेरोजगार होने का अभिवचन अपनी पत्नी और संतान को भरण-पोषण देने से बचने के लिए किया था। अवर न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि यह विचार नहीं किया जा सकता है कि याची जो ओ० एन० जी० सी० को सेवा दे रहा था, अब बेरोजगार के रूप में रह रहा था। तद्नुसार, अवर न्यायालय ने याची को अपनी पत्नी के पक्ष में 4000/- रुपयों के भरण-पोषण का भुगतान करने का निर्देश दिया। यह भी प्रतीत होता है कि याची की 40,000/- रु० की आमदनी, जब वह ओ० एन० जी० सी० की सेवा में था, स्वयं याची के साक्ष्य में स्वीकृत तथ्य है।

5. याची के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि अवर न्यायालय द्वारा पारित आदेश, जहाँ तक यह याची को अपनी पत्नी को भुगतान करने का निर्देश देता है, पूर्णत: अवैध है क्योंकि आक्षेपित आदेश से प्रतीत होगा कि आवेदक पत्नी ने भी अवर न्यायालय में स्वीकार किया था कि याची ने ओ० एन० जी० सी० की सेवा छोड़ दी थी किंतु उसने यह भी अभिकथित किया है कि याची बहुराष्ट्रीय कंपनी के लिए काम कर रहा था जिसके लिए अभिलेख पर कोई प्रमाण नहीं लाया गया है। याची के विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि दं० प्र० सं० की धारा 125 विहित करती है कि पर्याप्त साधनों वाला कोई व्यक्ति यदि अपनी पत्नी, जो स्वयं का भरण-पोषण करने में अक्षम है, की उपेक्षा करता है अथवा उसका भरण-पोषण करने से इनकार करता है, केवल तब पत्नी के भरण-पोषण का दायित्व उद्भूत होता है। निवेदन किया गया है कि वर्तमान मामले में, चूँकि याची ने ओ० एन० जी० सी० की सेवा छोड़ दी थी, याची के पास पर्याप्त साधन नहीं है और विपक्षी पक्षकार सं० 2 पत्नी, जो 'सर्व शिक्षा अभियान' में कार्यरत है, के पास स्वयं का भरण-पोषण करने का पर्याप्त साधन है और तद्नुसार, विपक्षी पक्षकार पत्नी को भरण पोषण के रूप में 4000/- रुपया प्रतिमाह का भुगतान करने का निर्देश याची को देते हुए अवर न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश पारित नहीं किया जा सकता था। तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि आक्षेपित आदेश को विधि की दृष्टि में संपोषित नहीं किया जा सकता है और अपास्त किए जाने योग्य है।

6. दूसरी ओर, विपक्षी पक्षकार सं० 2 के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि विधि का सुनिश्चित सिद्धांत है कि पुनरीक्षण न्यायालय केवल तब हस्तक्षेप कर सकता है जब आदेश में अवैधता है, अथवा प्रक्रिया में तात्विक अनियमितता है अथवा अधिकारिता की त्रुटि है। निवेदन किया गया है कि उच्च न्यायालय को अपनी पुनरीक्षण अधिकारिता के अधीन भरण-पोषण प्रदान करने वाले आदेश में दर्ज साक्ष्य

का पुनर्मूल्यांकन करने की आवश्यकता नहीं है और पुनरीक्षण न्यायालय स्वयं अपने निष्कर्ष को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है और अवर न्यायालय द्वारा दर्ज भरण–पोषण के आदेश को पलट नहीं सकता है। इस संबंध में, विद्वान अधिवक्ता ने **पाइला मुत्यालम्मा उर्फ सत्यवती बनाम पाइला सूरी डेमूदू एवं एक अन्य, 2012 (1) Cr.R 51 SC[:2012(1) JLJ 10(SC),** में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास किया है।

7. विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 के विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि यद्यपि विपक्षी पक्षकार पत्नी 'सर्व शिक्षा अभियान' में कार्यरत है, किंतु अवर न्यायालय ने निष्कर्ष दर्ज किया है कि वह दैनिक आधार पर पारिश्रमिक पा रही थी, तद्द्वारा जिसका अर्थ है कि वह उक्त काम से कोई नियत वेतन नहीं पा रही है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि विपक्षी पक्षकार भरण–पोषण की ऐसी राशि पाने का हकदार है ताकि उसके हैसियत और जीवन यापन के ढंग, जैसा वह अपने पति के साथ रहते हुए बिता रही थी, को विचार में लेते हुए युक्तियुक्त सुविधा में रह सके और यह भी समान रूप से सुनिश्चित है कि भले ही पत्नी की अपनी आमदनी हो, यह स्वयं में दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 125 के अधीन आवेदन दाखिल करने से उसको रोकने के लिए पर्याप्त नहीं है बल्कि यह स्थापित करना होगा कि अपने द्वारा अर्जित राशि से वह खुद का भरण–पोषण करने में सक्षम थी। इस संबंध में, विद्वान अधिवक्ता ने **चतुर्भुज बनाम सीता बाई, AIR 2008 SC 530 [:2008(2) BLJ 46 (SC)],** में और **विन्नी–परमवीर परमार बनाम परमवीर परमार, 2011 AIR SCW 4340 [:2011(4) JLJ 205 (SC)]** में भी भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर विश्वास किया है जिसमें यह अधिकथित किया गया है कि न्यायालय को पक्षों के हैसियत, उनकी परस्पर आवश्यकताओं पर विचार करना होगा और न्यायालय को इस तथ्य को भी ध्यान में लेना होगा कि पत्नी के लिए नियत भरण–पोषण की राशि इतनी होनी चाहिए कि उसके हैसियत और जीवन यापन के ढंग जैसा वह अपने पति के साथ रहते हुए बिता रही थी, को विचार में लेते हुए वह युक्तियुक्त सुविधा में रह सके।

8. तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि स्वीकृत रूप से विपक्षी पक्षकार अंतिम बार याची के साथ तब रह रही थी जब वह ओ॰ एन॰ जी॰ सी॰ में अभियन्ता के रूप में कार्यरत था और वह अपनी आमदनी, जिसे वह 'सर्व शिक्षा अभियान' में रोजाना पारिश्रमिक के रूप में पा रही है, से जीवन का वही स्तर बनाए नहीं रख सकती थी। तद्नुसार, विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि अवर न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में अवैधता नहीं है जो पुनरीक्षण अधिकारिता में हस्तक्षेप किए जाने योग्य हो।

9. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद और अभिलेख का परिशीलन करने पर, मैं पाता हूँ कि अवर न्यायालय ने समुचित रूप से अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य को विचार में लिया है और पाया है कि याची, जो स्वीकृत रूप से ओ॰ एन॰ जी॰ सी॰ में कार्यरत अभियन्ता था, अपनी पत्नी का भरण–पोषण करने में सक्षम था। अवर न्यायालय ने यह निष्कर्ष भी दिया है कि पत्नी 'सर्व शिक्षा अभियान' में केवल दैनिक पारिश्रमिक पा रही थी और तद्नुसार उसकी आमदनी को पर्याप्त अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है। अवर न्यायालय ने इस तथ्य को भी ध्यान में लेते हुए कि याची स्वीकृत रूप से ओ॰ एन॰ जी॰ सी॰ में अभियन्ता के रूप में कार्यरत था, अत: यह नहीं माना जा सकता है कि वह बेरोजगार है, याची को अपनी पत्नी के पक्ष में 4000/- रुपया प्रतिमाह भरण–पोषण का भुगतान करने का निर्देश दिया है।

10. तद्नुसार, मैं आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता और/अथवा अनियमितता नहीं पाता हूँ जो पुनरीक्षण अधिकारिता में हस्तक्षेप किए जाने योग्य है। अत:, मैं इस पुनरीक्षण आवेदन में गुणागुण नहीं पाता हूँ और इसे एतद् द्वारा खारिज किया जाता है।

ekuuh; vkjñ dñ ejkfB;k ,o Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efrx.k

अनिल गोप (439 में)

निर्मल ओराँव (681 में)

cuke

झारखंड राज्य (दोनों में)

Cr. App. No. 439 of 2002 with 681 of 2003. Decided on 16th April, 2012.

सत्र विचारण सं॰ 68 वर्ष 2001 में पंचम अपर न्यायिक कमिश्नर, राँची द्वारा पारित दिनांक 22.6.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 25.2.2002 के दंडादेश के विरुद्ध।

भारतीय दंड संहिता, 1860—धाराएँ 302/34—हत्या–सामान्य आशय–आजीवन कारावास अधिनिर्णीत–अभियोजन साक्षियों का साक्ष्य विश्वसनीय नहीं पाया गया–अभिग्रहण गवाह पक्षद्रोही हो गए–चश्मदीद गवाहों के साक्ष्य में महत्वपूर्ण विरोधाभास पाया गया–उसके फर्दबयान में और उसके साक्ष्य में भी प्रहार में प्रयुक्त हथियारों के विवरण में अंतर है–मृतक गंभीर प्रकृति के अनेक आपराधिक मामलों में अंतर्ग्रस्त था–अपीलार्थीगण संदेह का लाभ पाने का हकदार है क्योंकि अभियोजन समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अपना मामला सिद्ध करने में सक्षम नहीं हुआ है–दोषसिद्धि और दंडादेश अपास्त–अपील अनुज्ञात। (पैराएँ 7 से 11)

अधिवक्तागण.–M/s Dr. H. Waris, *Amicus Curiae* (in 439), B.K. Pandey(in 681),For the Appellant; Mr. Amaresh Kumar, For the State.

न्यायालय द्वारा.–ये दोनों अपीलें सत्र विचारण सं॰ 68 वर्ष 2001 में अपीलार्थीगण को भा॰ दं॰ सं॰ की धाराओं 302/34 के अधीन दोषसिद्ध करते और उनको कठोर आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश देते हुए विद्वान पंचम अपर न्यायिक आयुक्त, राँची द्वारा पारित दिनांक 22.6.2002 के दोषसिद्धि के निर्णय और दिनांक 25.6.2002 के दंडादेश से उद्भूत होती है।

2. संक्षेप में, अभियोजन मामला यह है कि सूचक मूंगा देवी (अ॰ सा॰ 5) ने दिनांक 25.9.2000 को प्रातः लगभग 10 बजे निम्नलिखित प्रभाव का फर्दबयान दर्ज किया: प्रातः लगभग 6 बजे वह भिंडी तोड़ने अपने बारी में गयी और उसका पुत्र कुँवर गोप (मृतक) स्नान करने निकट के कुआँ पर गया। जब वह भिंडी तोड़ने के बाद प्रातः लगभग 8.30 बजे अपने घर लौट रही थी, उसने अपने घर से चिल्लाने की आवाज सुनी। जब वह अपने घर पहुँची, उसने देखा कि अपीलार्थीगण अनिल गोप और निर्मल ओराँव 'टांगी' और 'खुखरी' से उसके पुत्र के मस्तक और कंधे पर अंधाधुंध प्रहार कर रहे थे और उसका पुत्र जमीन पर पड़ा हुआ था। उसने शोर मचाया जिस पर अपीलार्थीगण भाग गए। वह पानी लेकर आयी किंतु उसके पुत्र की मृत्यु हो गयी थी। वह रोने लगी। लोग जमा हुए और उनमें से कुछ ने घटना देखा था किंतु मृतक को बचाने कोई आगे नहीं आया। घटना का कारण दुधु गोप (अपीलार्थी अनिल गोप का पिता) और मृतक के बीच चल रहा मामला बताया जाता है जिसमें दुधु गोप घायल हुआ था और पिछले दिन अपीलार्थीगण और मृतक के बीच झगड़ा हुआ था। उस विवाद के कारण अपीलार्थीगण ने उसके पुत्र की हत्या कर दी।

3. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने अनेक आधारों पर आक्षेपित निर्णय का विरोध किया। उन्होंने निवेदन किया कि इस मामले में प्रक्षेपित चश्मदीद गवाह चश्मदीद गवाह नहीं हैं और दुश्मनी के

कारण अपीलार्थीगण को इस मामले में झूठा आलिप्त किया गया है; घटनास्थल और घटना के तरीके के बारे में महत्वपूर्ण विरोधाभास है; अपीलार्थी अनिल गोप ग्यारह वर्षों से अधिक समय तक कारा में रहा है और अपीलार्थी निर्मल ओराँव नौ वर्षों से अधिक का कारावास भुगतने के बाद इस न्यायालय की पीठ द्वारा जमानत पर निर्मुक्त किया गया है।

4. दूसरी ओर, राज्य के अधिवक्ता ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया।

5. अ॰ सा॰ 1 और 2 अभिग्रहण गवाह हैं किंतु वे पक्षद्रोही हो गए हैं।

6. अ॰ सा॰ 6 डॉक्टर है जिन्होंने मृतक के मृत शरीर का शव परीक्षण किया है। उन्होंने 'टांगी' और 'खुखरी' जैसे तेज धार वाले हथियार द्वारा कारित अनेक उपहतियों को पाया और विदीर्ण जख्म और खरोंच 'टांगी' और 'खुखरी' के भोथरे हिस्से द्वारा कारित किए गए थे।

7. अ॰ सा॰ 4 (घूरन गोप), मृतक का पिता, ने स्वयं को चश्मदीद गवाह के रूप में प्रक्षेपित किया किंतु अन्वेषण अधिकारी (अ॰ सा॰ 6) ने अपने अभिसाक्ष्य के पैराग्राफ 27 में कहा कि इस गवाह ने नहीं कहा था कि उसने घटना देखा था बल्कि कहा था कि उसे घटना के बारे में सूचना अपनी पत्नी मूंगा देवी (अ॰ सा॰ 5) से मिली। इसके अतिरिक्त, इस गवाह ने अपने अभिसाक्ष्य के पैरा 8 में कहा कि केवल उसने और एक अन्य व्यक्ति ने, जिसकी मृत्यु हो गयी है, घटना देखा था। अन्वेषण अधिकारी (अ॰ सा॰ 6) ने अपने अभिसाक्ष्य के पैराग्राफ 28 में पुनः कहा कि इस गवाह ने स्वयं को चश्मदीद गवाह के रूप में प्रक्षेपित नहीं किया था।

8. इस प्रकार, यह विश्वास करना संभव नहीं है कि अ॰ सा॰ 4 एक चश्मदीद गवाह है। इसी प्रकार एक से, यह विश्वास करना भी संभव नहीं है कि अ॰ सा॰ 5 एक चश्मदीद गवाह है। अपने फर्दबयान में और न्यायालय में अपने अभिसाक्ष्य में घटना के उसके विवरण में महत्वपूर्ण विरोधाभास है। अपने साक्ष्य में, उसने कहा कि घटना उसके घर के आंगन में हुई। यहाँ यह गौर किया जाए कि आई॰ ओ॰ (अ॰ सा॰ 6) ने सार्वजनिक पथ पर मृत शरीर पाया था। अ॰ सा॰ 4 सहित किसी अभियोजन गवाह ने यह नहीं कहा है कि अपीलार्थीगण ने मृतक की हत्या के बाद घटनास्थल पर हथियार फेंक दिया, किंतु अभियोजन के मुताबिक प्रहार के हथियारों को अभिकथित रूप से घटनास्थल से बरामद किया गया था। अपने फर्दबयान में, अ॰ सा॰ 5 ने कहा कि जब वह भिंडी तोड़ने के बाद घर लौट रही थी, उसने सुना कि उसके घर में कोई चिल्ला रहा है और तब उसने अभिकथित घटना देखा किंतु अपने अभिसाक्ष्य में उसने कहा कि प्रासंगिक समय पर अपने घर में लगातार मौजूद थी और जब उसका पुत्र (मृतक) अपने घर में प्रवेश कर रहा था, आंगन में अपीलार्थीगण द्वारा उस पर प्रहार किया गया था। उसके फर्दबयान में और उसके साक्ष्य में भी प्रहार में प्रयुक्त हथियारों के विवरण में विसंगति है। साक्ष्य में यह भी आया है कि मृतक गंभीर प्रकृति के अनेक आपराधिक मामलों जैसे हत्या, डकैती, बलात्कार आदि में अंतर्ग्रस्त था।

9. यद्यपि अ॰ सा॰ 7 को पक्षद्रोही घोषित नहीं किया गया है, किंतु उसने यह कहते हुए बचाव पक्ष के विवरण का समर्थन किया कि वह अ॰ सा॰ 5 के पहले घटना स्थल पर पहुँचा था जो घटना के आधा घंटे बाद घटना स्थल पर आयी थी और यह कहकर रोने लगी थी कि किसने उसके पुत्र की हत्या कर दी है।

10. अभिलेख का सावधानीपूर्वक परिशीलन और पक्षों को विस्तारपूर्वक सुनने के बाद, हमारे मत में अपीलार्थीगण संदेह का लाभ पाने के पात्र हैं क्योंकि अभियोजन समस्त युक्तियुक्त संदेहों के परे अपना मामला सिद्ध नहीं कर पाया है।

11. परिणामस्वरुप, इन अपीलों को अनुज्ञात किया जाता है। अपीलार्थीगण के विरुद्ध विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि का निर्णय और दंडादेश अपास्त किया जाता है। अपीलार्थीगण को आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है। अपीलार्थी निर्मल ओराँव जमानत पर है। उसे उसके जमानत बंध पत्र के दायित्व से उन्मोचित किया जाता है। अपीलार्थी अनिल गोप कारा में है। उसे तुरन्त निर्मुक्त करने का निर्देश दिया जाता है यदि किसी अन्य मामले में उसकी आवश्यकता नहीं है।

---

ekuuh; ihñ ihñ HkVV] U;k;efr

दुर्गा प्रसाद माथुरी

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

W.P. (C) No. 2065 of 2012. Decided on 27th April, 2012.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908—आदेश 7, नियम 14(3) सह-पठित धारा 151—अभिधानवाद—प्रत्युत्तर अस्वीकार किया जाना—वाद वर्ष 1990 का है—वादी ने 20 वर्षों के भीतर दस्तावेज दाखिल नहीं करने के लिए पर्याप्त कारण दिखाए बिना कार्यवाही के अंतिम सिरे पर इस याचिका को दाखिल किया है—आक्षेपित आदेश मान्य ठहराया गया है। (पैराएँ 3 से 5)

अधिवक्तागण.—Mr. S.K. Tiwari, For the petitioner(s); J.C. to S.C., For the Respondent(s).

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया और अभिलेख का परिशीलन किया गया।

2. याची ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन वर्तमान रिट याचिका दाखिल करके अभिधान वाद सं॰ 512/1990 में विद्वान मुंसिफ I, धनबाद द्वारा पारित दिनांक 3.1.2012 के आदेश को अपास्त करने के लिए प्रार्थना की है जिसके द्वारा सी॰ पी॰ सी॰ के आदेश 7, नियम 14(3) सह-पठित धारा 151 वादी की ओर से दाखिल दिनांक 14.9.11 की याचिका और राज्य द्वारा दाखिल दिनांक 17.9.11 को इसका प्रत्युत्तर और प्रतिवादी नारायण तुरी एवं अन्य द्वारा दाखिल दिनांक 20.9.2011 का प्रत्युत्तर खारिज कर दिया गया है।

3. विद्वान सिविल न्यायाधीश (जूनियर डिविजन) द्वारा पारित दिनांक 3.1.2012 के आदेश के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि अवर न्यायालय ने पक्षों के परस्पर विरोधी निवेदनों पर सावधानीपूर्वक विचार करने और केस फाइल के प्रासंगिक तात्विक तथ्यों पर विचार करने के बाद इस आदेश को पारित किया है। आगे प्रतीत होता है कि विद्वान अवर न्यायालय ने उक्त आदेश पारित करते हुए कोई गलती नहीं की है। वाद वर्ष 1990 का है और वादी ने 20 वर्षों के भीतर उक्त दस्तावेज दाखिल नहीं करने का पर्याप्त कारण दिखाए बिना कार्यवाही के अंतिम छोर पर इस याचिका को दाखिल किया है और इसलिए, विद्वान अवर न्यायालय ने सही प्रकार से याचिका खारिज कर दिया है।

4. इस न्यायालय का दृष्टिकोण है कि आक्षेपित आदेश पारित करते हुए विद्वान अवर न्यायालय द्वारा कोई अनियमितता अथवा अवैधता नहीं की गयी है। अतः, भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन इस न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है क्योंकि भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन शक्तियों का प्रयोग गंभीर अन्याय का अवसर आने वाले अथवा न्याय की विफलता के मामलों में किया जा सकता है जैसा मामला यहाँ नहीं है।

5. तद्नुसार, इस रिट याचिका को अस्वीकार किया जाता है।

---

ekuuh; Mhñ ,uñ mikè;k;] U;k;efr

सच्चिदानन्द सिंह

cuke

झारखंड राज्य एवं एक अन्य

Cr. Misc. No. 2234 of 2001. Decided on 27th April, 2012.

भारतीय दंड संहिता, 1860—धारा 420—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 204—छल—समन जारी—यह उम्मीद नहीं की जाती है कि निविदा के बिना अथवा लिखित में काम के किसी आवंटन के बिना ठेकेदार काम संपन्न करेगा—याची का कार्यपालक अभियन्ता होने के नाते उससे उम्मीद नहीं की जाती थी कि वह मौखिक आश्वासन पर संविदा कार्य देगा–आक्षेपित आदेश अभिखंडित–आवेदन अनुज्ञात। (पैराएँ 2, 3, 6 एवं 7)

अधिवक्तागण.–Mr. A.K. Sahani, For the Petitioner; Mr. S.K. Srivastava, For the Opposite Party.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

यह दांडिक विविध आवेदन परिवाद केस सं॰ 53 वर्ष 1999 में श्री एस॰ पी॰ त्रिपाठी, विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, चतरा द्वारा पारित दिनांक 26.6.1999 के आदेश को अभिखंडित करने के लिए दाखिल की गयी है जिसके द्वारा याची को भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए विचारण का सामना करने के लिए समन किया गया है।

2. संक्षेप में, अभियोजन मामला, जैसा परिवाद से प्रतीत होता है, यह है कि विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 सिविल ठेकेदार था और उसने याची के मौखिक आश्वासन पर रख-रखाव और मरम्मती और सब-डिविजनल न्यायिक दंडाधिकारी के निवास स्थान की पुताई का काम किया था। विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 को किए गए काम के विरुद्ध कोई भुगतान नहीं किया गया था और इसलिए, उसने स्वयं को छला गया महसूस किया और मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, चतरा के न्यायालय में परिवाद केस सं॰ 53 वर्ष 1999 दाखिल किया जिसे जाँच के लिए न्यायिक दंडाधिकारी के न्यायालय को अंतरित किया गया था और जाँच करने के बाद तत्कालीन न्यायिक दंडाधिकारी, श्री एस॰ पी॰ त्रिपाठी ने दं॰ प्र॰ सं॰ की धारा 204 के अधीन आदेश पारित किया और याची को भा॰ दं॰ सं॰ की धारा 420 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए विचारण का सामना करने का निर्देश दिया।

3. यह निवेदन किया गया है कि याची ने कोई मरम्मती काम अथवा पुताई करने के लिए परिवादी/विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 को कभी निर्देश नहीं दिया था और न ही उसने ऐसे काम के विरुद्ध कोई भुगतान करने का वादा किया था। याची से पी॰ डब्ल्यू॰ डी॰ विभाग में कार्यपालक अभियन्ता होने के नाते यह उम्मीद नहीं की जाती थी कि वह मौखिक आश्वासन पर संविदा कार्य देगा। इसके अतिरिक्त, यदि विभाग के विरुद्ध कोई भुगतान बकाया था, परिवादी/विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 राशि की वसूली के लिए वाद दाखिल करने के लिए स्वतंत्र था। यह दर्शाने के लिए कागज का टुकड़ा तक प्रस्तुत नहीं किया गया है कि सब डिविजनल न्यायिक दंडाधिकारी, चतरा के निवास स्थान में कोई मरम्मती अथवा पुताई का काम किया गया था और न ही संबंधित सब डिविजनल न्यायिक दंडाधिकारी से कोई प्रमाण पत्र प्राप्त किया गया है। यह परिवाद मामला अंतरस्थ हेतु के साथ और याची का द्वेषपूर्ण अभियोजन करने के असद्भावपूर्ण आशय के साथ दाखिल किया गया है।

4. परिवादी विपक्षी पक्षकार सं॰ 2 की ओर से वकालतनामा दाखिल किया गया है।

5. बार-बार बुलाए जाने पर भी, याची की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ किंतु, राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान अधिवक्ता मौजूद हैं।

6. याची के विद्वान अधिवक्ता के निवेदनों में सार प्रतीत होता है और यह उम्मीद नहीं की जाती है कि निविदा के बिना अथवा लिखित में काम के किसी आवंटन के बिना कोई ठेकेदार काम संपन्न करेगा।

7. उक्त परिस्थितियों के अधीन, मैं इस आवेदन में गुणागुण पाता हूँ। तद्नुसार यह आवेदन अनुज्ञात किया जाता है और तत्कालीन न्यायिक दंडाधिकारी, चतरा, श्री एस० पी० त्रिपाठी के न्यायालय में लंबित परिवाद केस सं० 53 वर्ष 1999 में पारित दिनांक 26.6.1999 के आक्षेपित आदेश को एतद् द्वारा अभिखंडित किया जाता है। किंतु विभाग से राशि, यदि हो, की वसूली के लिए सिविल वाद दाखिल करने की स्वतंत्रता परिवादी को दी जाती है।

---

ekuuh; ,pñ lhñ feJk] U;k;efr

दीपक नन्दी

cuke

झारखंड राज्य एवं अन्य

Cr. Rev. No. 1054 of 2010. Decided on 16th April, 2012.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धाराएँ 125 एवं 126 (2) परन्तुक—भरण-पोषण–कुटुंब न्यायालय द्वारा याची को अपनी अधित्यजित पत्नी को 3000/- रुपया प्रतिमाह और अपनी अधित्यजित पत्नी के साथ रहने वाले पुत्र को 1500/- रुपया का भुगतान करने का निर्देश दिया गया–आक्षेपित आदेश एकपक्षीय रूप से पारित किया गया था क्योंकि समाचार पत्र में नोटिस के प्रकाशन के बावजूद याची न्यायालय में उपस्थित नहीं हुआ था–दं० प्र० सं० की धारा 126 (2) के परन्तुक के अधीन, जिसमें एकपक्षीय आदेश को अपास्त करवाने के लिए प्रावधान है, किसी उपचार का लाभ लिए बिना आक्षेपित आदेश के विरुद्ध यह आवेदन याची ने दाखिल किया है–वर्तमान याचिका पोषणीय नहीं है और तद्नुसार, इसे खारिज किया जाता है। (पैराएँ 2 से 6)

अधिवक्तागण.–Mr. Ashok Kumar Sinha, For the Petitioner; A.P.P., For the State; Mr. Ananda Sen, For the Opp. Parties.

आदेश

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. याची ने विविध केस सं० 67 वर्ष 2006 में विद्वान प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, जमशेदपुर द्वारा पारित दिनांक 27.1.2010 के आदेश को चुनौती दिया है जिसके द्वारा याची को विपक्षी पक्षकार सं० 2 जो उसकी अधित्यजित पत्नी है को 3000/- रुपया प्रतिमाह और अधित्यजित पत्नी के साथ रहने वाले अपने पुत्र को 1500/- रुपया प्रतिमाह का भुगतान भरण-पोषण के लिए करने का निर्देश दिया है।

3. आक्षेपित आदेश से यह प्रतीत होता है कि आदेश एकपक्षीय रूप से पारित किया गया था क्योंकि समाचार पत्र में नोटिस के प्रकाशन के बावजूद, क्योंकि याची पर नोटिस तामील करने के पूर्विक प्रयास विफल हो गए थे, याची अवर न्यायालय में उपस्थित नहीं हुआ था।

4. यह भी प्रतीत होता है कि याची ने दं० प्र० सं० की धारा 126 (2) परन्तुक के अधीन, जिसमें एकपक्षीय आदेश अपास्त करवाने के लिए प्रावधान है, किसी उपचार का लाभ लिए बिना आक्षेपित आदेश के विरुद्ध इस आवेदन को दाखिल किया है।

5. इस प्रकार, मेरे सुविचारित दृष्टिकोण में, यह आवेदन पोषणीय नहीं है और तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है।

6. यह कहना अनावश्यक है कि इस आदेश का याची पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा यदि वह अवर न्यायालय में अपने विरुद्ध पारित एकपक्षीय आदेश को अपास्त करवाने के लिए आवेदन दाखिल करता है जिसे स्वयं इसके अपने गुणागुणों पर निपटाया जाएगा।